श्रीगुरुचरितम्(द्विसाहस्त्री)

यह श्रीवासुदेवानंदस्वामीमहाराजजी का प्रथम ग्रंथ है। माणगांवमें गृहस्थाश्रमकी अवस्थामें श्रीदत्तप्रभूकी आज्ञासे इसकी रचना हुई(इ.स.१८८४)। मूल मराठी ' श्रीगुरुचरित्र ' को श्रीदत्तसंप्रदायमें एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण ग्रंथ माना जाता है। इसमें श्रीदत्तभगवानके कलियुगमें प्रसिद्ध दो अवतारों(श्रीपादश्रीवल्लभ और श्रीनृसिंहसरस्वती) के चरित्र तथा अनेक पौराणिक कथाओं के आधारसे वैदिक धर्म के- विशेषतः श्रीदत्तसंप्रदायके आचार, तत्त्वज्ञान और उपासना का वर्णन है। मराठी न जाननेवालों दत्तभक्तों के लिए इसका संस्कृत में निर्माण श्रीस्वामीमह्राजजीने ' श्रीगुरुचरितम् ' के रूपसे किया है। मूल ७००० ओवी का ग्रंथ है। इस को २०००से कुछ कम संख्या में मूल ग्रंथ का पूरा आशय निबद्ध करने में श्रीस्वामीमहाराज ने अपनी भाषाप्रभुत्व का परिचय दिया है। ग्रंथ दो सप्ताह से भी कम समय में पूरा हुआ। उसी समय श्रीस्वामीजी के कानों पर श्रीदत्तप्रभूक वाणी आई ' **संहितेयं द्विसाहस्त्री** '. इसका भाव जानने के लिये श्रीस्वामीजी ने ग्रंथ का गणना की तो श्लोकसंख्या उतनी पूरी नहीं आई। फिर कुछ सोंच कर जब गणना में उवाच मंत्र, अर्धश्लोक आदि मिलाए- जैसे कि सप्तशती की हवनादि के लिए की जाती है, तो संख्या पूरी हुई। इस लिए इस ग्रंथ को ' द्विसाहस्त्री ' का नाम प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ की टीका तथा चूर्णिका १५ वर्ष पश्चात् स्वामीजी के संन्यासाश्रममें, द्वारका और प्रभास क्षेत्र में श्रीदत्तप्रभू की आज्ञा से ग्रंथ पास न होते हुए भी संपन्न हुई। संस्कृत भाषा का अल्पस्वल्प ज्ञान होने पर भी चूर्णिका समझी जा सकती है।

सप्ताहपाठपद्धति - प्रथमेऽह्नि, चतुर्थाध्यायांत, द्वितीये नवमाध्यायांत, तृतीये चतुर्दशाध्यायान्त, पंचमे एकोनविंशाध्यायन्त, षष्ठे एकविंशाध्यान्त, सप्तमे त्रयोविंशोऽध्यायान्त पठित्वा रहस्यद्वयं पठेत्। प्रत्यहमादौ ग्रन्थपूजनोत्तरं श्रीवैष्णवेत्यादिस्तुतयः पठेत्। अन्ते चोत्तरपूजनं कृत्वा ' रसज्ञा वशेत्यपराधक्ष्मापनस्तोत्रं पठेत्। इस ग्रंथ के आरंभमें ' **श्रीगुरुस्तुति** ' ११२ श्लोकोंमें की है। इसमें मंगलाचरण, मानसपूजा, पराधक्ष्मापनस्तोत्र, अष्टोत्तरशतनामावली, श्रीदत्तगुरू और ब्रह्म का अभिन्नत्व, माया, मानवदेह का ईश्वरोपयोगित्व , श्रीदत्तात्रेय की दिनचर्या, ध्यान और चरित्र यह विषय हैं। आगे २१ अध्याय में आए विषयों की सूचि नीचे लिखी है।

अध्याय १. जीवब्रह्मैक्य, तत्त्वंपदार्थ, नामधारक का श्रीदत्त के निकट गमन, श्रीगुरुदर्शन न होने पर नामधारक का अनशन और उसे स्वप्न में दर्शनलाभ।

अध्याय २. सिद्धनामधारकसंवाद, गुरु शब्द का अर्थ, जगत्सर्जन, कृतादियुग का वर्णन, कलि और ब्रह्मा का संवाद, कलियुग का वर्णन, देवताओंसे भी गुरुकी श्रेष्ठता तथा दीपकाख्यान।

अध्याय ३. उपोद्धात, अनसूया के पातिव्रत्य का वर्णन, ब्रह्मा-विष्णु-महेश का अत्रि ऋषि के आश्रम में आगमन, उन तीनों अपनी मनीषा का कथन, तीनों का बालक होना और सती के दुग्धपान से तृप्त होना, अत्रिऋषि का घर आना और तीनों ईश्वरों की स्तुति और उनका नामाभिधान तथा अंबरीषाख्यान।

अध्याय ४. श्रीदत्त-यदुसंवाद और चौबीस गुरु का निरूपण, प्रह्लाद को स्वरूपानंद की प्राप्ति के उपाय का निरूपण तथा कार्तवीर्य को अष्टाङ्गयोग का निरूपण।

अध्याय ५. राजा ब्राह्मण की पत्नी से श्राद्धान्नभिक्षा से तुष्ट हो कर वरदान के रूप में उस का पुत्र होना, व्रतबंध के पश्चात् विवाह के लिये निषेध, माता को स्वरूपदर्शन,दोनों भ्राताओं के शरीर सुदृढ बना कर गृहत्याग और तीर्थयात्रा।

अध्याय ६. गोकर्णवर्णन, रावण से लिंग का हरण और उस की स्थापना, मित्रसह राजा और चांडाली की कथा।

अध्याय ७. मूढ पुत्र के साथ आत्महत्या को उद्युक्त विधवा ब्राह्मणी को शनिप्रदोषव्रत की कथा और माहत्म्य निरूपण, उसे स्वतुल्य वंद्य पुत्रप्राप्ति का वरदान और उसके पुत्र को सुविद्य करना, अदृश्य होने के पश्चात् भी वणिग्वृत्ति ब्राहमण को बचाना।

अध्याय ८. कारंजग्राम में माधव और अंबा के पुत्र के रूप में अवतारग्रहण, जन्मतः ॐकारोच्चारण, मूकत्व धारम करना, लोह का सुवर्ण बनाना, व्रतबंध के अवसरपर चारों वेदों पठन, माता-पिता से संन्यासके लिये आज्ञा मांगना, माता को उपदेश, माता के और दो पुत्र(युगल) होने पर काशी जाना, श्रीकृष्णसरस्वती से संन्यासग्रहण, गंगासागर जाना तथा गुरुपरंपरा।

अध्याय ९. श्रीगुरू के प्रमुख शिष्य, जन्मस्थानगमन, गौतमीतीरगमनं, ब्राह्मण का शूलरोगपरिहार, सायंदेव के घर भिक्षा, उसे यवन के भय से छुडाना, उपासनानिरूपण, सप्तभूमिका, आश्रमधर्म तथा तीर्थयात्रानिर्देश।
अध्याय १०. गुरुत्यागी ब्राह्मण को उपदेश, धौम्यमुनि के तीन शिष्यों की कथा।
अध्याय ११. विद्वद्‌ब्राह्मण के मूर्ख पुत्र का जगन्माता भूवनेश्वरी के मंदिर में जिह्वात्याग, देवी की आज्ञा से नदी के दूसरे तट पर श्रीगुरु के पास जाना और उनकी कृपा से जिह्वा और विद्वत्ता का लाभ, श्रीगुरु का कृष्णा-पंचगंगासंगम पर आगमन, सात्त्विक द्विज के घर शाकभिक्षासे संतुष्ट हो कर उसे संपत्ति प्राप्त कराना, औदुंबरवृक्ष की महिमा, चतुःषष्टी योगिनी की पूजा ग्रहण करना , गंगानुज को योगगति से त्रिस्थली यात्रा कराना, योगिनी को वरदान तथा गाणगापूर को जाना।
अध्याय १२. अपत्यनाशपीडित शिरोल की ब्राह्मणी की सेवा से उसकी पिशाचपीडा से मुक्ति और पुत्रप्राप्ति, उसके ज्येष्ठ पुत्र का चौलकर्म के पूर्व मृत्यू, उसे तत्त्वज्ञान का उपदेश और सांत्वना, ब्राह्मणी का नृसिंहवाडी आना और पुत्र का शरीर देने से नकार, उसे स्वप्न में दर्शन दे कर उस के पुत्र का संजीवन।
अध्याय १३. वंध्यामहिषीदोहन, राजा के प्रार्थना से नगर में आगमन, ब्रह्मराक्षस का उद्धार, त्रिविक्रमभारती को विश्वरूपदर्शन तथा उसको उपदेश।
अध्याय १४. गर्वित वैदिक विप्रों के साथ त्रिविक्रमभारती का आगमन, उन्हें वेदों के स्वरूप का निरूपण तथा अंत्यजद्वारा उनका गर्वपरिहार।
अध्याय१५. कर्मविपाक, अंत्यज की विद्या का हरण तथा भस्ममाहृत्म्य।
अध्याय१६. गोपीनाथ के श्रीदत्तप्रसाद से प्राप्त यक्ष्माग्रस्त पुत्र को लेकर उसकी भार्या का गंधर्वपुर को आना और उस का मृत्यू, सती का शोक, श्रीगुरु का रूपांतर से उसको उपदेश एवं बृहस्पतिद्वारा लोपामुद्रा को उपदिष्ट स्त्रियों के आचार तथा विधवाधर्म का निरूपण, साध्वी का सहगमन का निश्चय और श्रीगुरुद्वारा उसके पति का संजीवन।
अध्याय१७. रुद्राक्षधारण की महिमा, मर्खट-कुक्कुटाख्यान, रुद्राध्यायमहिमा, अतिरुद्राभिषेक से राजपुत्र की आयर्वृद्धि, स्त्रियों को मंत्रोपदेश का निषेध, कचाख्यान, सोमवारव्रत का निरूपण तथा सीमंतिनी की कथा।
अध्याय १८. परान्नत्यागी ब्राह्मण की पत्नी की कथा, परान्नग्रहणाग्रहणविचार, पाराशरोक्त कर्ममार्ग, ब्राह्मण के आचार(दिनचर्या)।
अध्याय १९. तीन व्यक्ति के लिए बनाए अन्न से चार हजार लोगों का भोजन, अश्वत्थ की महिमा, जरद्वंध्या को कन्या-पुत्र की प्राप्ति, श्रद्धामाहात्म्य, शबरकथा, नरहरिविप्र के कुष्ठ का परिहार, नरहरिकृत श्रीगुरुस्तुति।
अध्याय २०. सायंदेव का गाणगापूर को आना और उसकी भक्ति की परीक्षा, त्वष्टापुत्र का कथा, काशीयात्रानिरूपण, सायंदेवकृत श्रीनृसिंहसरस्वतीस्तोत्र, अनंतव्रत।
अध्याय २१. तंतुकभक्त को योगगति से श्रीशैल्य का दर्शन, विमर्षण राजा की कथा, नंदीनाम द्विज का कुष्ठपरिहार, नंदीकृत गुरुस्तुति, नृकेसरी कवि को स्वप्न में दर्शन और उसका शिष्य के रूप में स्वीकार।
अध्याय २२. दीपावली के अवसर पर भक्तों के आग्रह से आठ रूप धारण कर उन सब के घर जाना, शूद्र भक्त के अपक्व क्षेत्र को कटवा कर उसी में शतगुण अनाज पैदा करना, गाणगापूर के अष्ट क्षेत्र, पूर्वाश्रमभगिनी रत्ना का कुष्ठपरिहार।
अध्याय २३. रजक भक्त को सार्वभौम राजा बनने का श्रीपादश्रीवल्लभ का वरदान, उसका म्लेच्छवंशीय राजा के रूप में पुनर्जन्म, वज्रबाहू राजा के पुत्र की कथा, राजस्फोटक की शांति, श्रीगुरु का उसके नगर जा कर उस की पूजा ग्रहण करना तथा श्रीगुरु का श्रीशैलपर्वत जा कर अंतर्धान होना।
योगरहस्यम्. इसमें अष्टांगयोग का विवरण है।
बोधरहस्यम्. इसमें वेदान्त का निरूपण है।

चूर्णिका

श्रीगुरुस्तुतिः

श्रीवैष्णवैशगाणेश-सौर्यशाक्त्यादिरूपधृक्। दत्तात्रेयोऽस्त्वजोऽनन्तः सदा मे हृदि सद्गुरुः ।।१।।

योऽजोऽनन्तोऽगुणोऽरूपो निस्तृडेकोऽक्रियोऽसृजत् । विश्वं धृत्वा षोडशांशं पुंरूपं योगमायया ।।२।।

दृश्यते ज्ञानदृष्ट्या यत्सहस्राक्षिशिरोऽङ्घ्रि सत्। रूपं यदङ्गसंस्थानैर्लोकव्यासः प्रकल्प्यते ।।३।।

नानावतारबीजं यदनन्तं यत्कलामुखैः। देवतिर्यङ्मुखं सृष्टमस्वतन्त्रं जगत्पुरु ।।४।।

गोभिः स्वार्थादानमीश-सृष्टं नेशात्परं क्वचित्। देहेन्द्रियात्मजीवोत्थौ रागद्वेषावियन्तु भित् ।।५।।

भूतेट् सोऽजोऽव्ययात्मापि संभवत्यात्ममायया। श्रेयोऽर्हसाधुगुप्त्यै स्वप्रकृतिस्थो युगे युगे ।।६।।

श्रुत्वा तत्कर्म निर्द्वन्द्वो मुच्यते कर्मबन्धनात् । न तथा कर्मसिद्धीप्सुर्द्वन्द्वात्मा भ्रान्तहृन्नरः ।।७।।

गुणकर्मभिदा सृष्ट-चातुर्वर्ण्यस्य सोऽव्ययः। कर्ताप्यकर्ता यैर्ज्ञातो बध्यन्ते कर्मभिर्न ये ।।८।।

।।श्रीगणेशाय नमः।। श्रीसरस्वत्यै नमः।। श्रीगुरुभ्यो नमः।। अथ श्रीगुरुचरितं वक्तुं प्रथमं मंगलार्थं परःशतश्लोकैः श्रीगुरुः स्तौति श्रीति। अत्र **श्री**शब्दो देवतावाचकत्वान्मंगलार्थः। यदुक्तं देवतावाचकादिशब्दाः ये च भद्रादिवाचकाः।। सर्वे ते नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ' इति।। सांख्यप्रवचनेऽपि ' मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनाच्छ्रुतितश्च। अत्र तावदभेदेन श्रीदत्तं स्तुवन् वस्तुनिर्देशात्मकं मंगलमाचरति।। विष्णोरिदं **वैष्णवं** तस्येदमित्यण् एवमन्यत्र। श्रीमन्ति ज्ञानैश्वर्याद्यतिशययुक्तानि च तानि रूपाणि **आदि**शब्दादैन्द्राग्नेयादीनि तानि स्वमायाशक्त्या धरतीति तथोक्तः।।१।। **निस्तृट्** निरिच्छः **षोडश अंशाः** कलाः एकादशेन्द्रियाणि पञ्चभूतानि च यस्मिन् त**त्पुंरूपं** पुरुषरूपं **योगमायया** शक्त्या दृश्यते योगिभिरिति शेषः।।२।। **सहस्र**शब्दोऽनंतवाची यस्य **रूपस्यांगसंस्थानै**रवयवैः पातालादिलोकविस्तारः कल्प्यते।।३।। अन्तो नाशो न विद्यते यस्य तत् **यत्कलामुखै**र्ब्रह्ममरीच्यादिभिः **देवतिर्यङ्मुखं** देवतिर्यगादिनानाभेदभिन्नं **पुरु** बहु अपरिमितमित्यर्थः।।४।। **गोभिः** इन्द्रियैः स्वस्वग्रहणमीश्वरेण सृष्टं तत्तु सर्वमधिष्ठानभूतादीश्वरा**त्परं क्वचिद**पि किमपि न विद्यते तथात्वेऽपि देहेन्द्रियादितादात्म्याभिमानापन्नेन जीवेन सृष्टौ **रागद्वेषौ इयन्तु भित्** भेदः जीवसृष्टिरीशसृष्टिरिति ज्ञापको भेद इत्यर्थः। यया भिदा जीवोऽहं कर्ता भोक्ता सुखी दुःखीत्यादि स्वमात्मानं सच्चिदानन्दैकरसं विस्मृत्य विरुद्धं मनुते।।५।। **स भूतेट्** भूतानामीश्वरः मोक्षयोग्यसाधुसंरक्षणाय।।६।। **तत्कर्म** भक्तानुग्रहलक्षणं चरितं निष्कामतया **श्रुत्वा कर्मबन्धना**त्साधुर्यथा मुक्तो भवति तथा कर्मसिद्ध्यभिलाषी **भ्रान्त**चित्तः श्रवणपराङ्मुखोऽसाधुः न विमुच्यते।।७।। सत्त्वादि**गुणभेदे**न शमादि**कर्मभेदे**न च **सृष्टस्य चातुर्वर्ण्यस्य कर्ता**ऽपि **स** ईश्वरोऽसङ्गोदासीनत्वे**नाकर्ते**ति यैर्ज्ञातोऽतएव स्वयमपि **कर्मभिः** स्वनुष्ठितै**र्ये न बध्यन्ते।**।८।। **भूभारभूता**स्तेषां **द्वेष्या** असाधवस्तेषां विनाशाय **तनू**रवतारान् यथा पदलग्नकण्टकोऽन्येन कण्टकेन निष्कास्यते तद्वत्स्वावताररूपकण्टकेन

भूभारभूतद्द्वेष्य-घाताय विविधास्तनूः। धृत्वा कण्टकवन्मत्वा कृतकार्यो जहात्यसौ ।।९।।
अस्यैवापूर्णकृत्याः स्युस्तन्वस्तासूत्तमोत्तमा। तनुरेकास्ति दत्ताख्या कृपासूः स्मर्तृगामिनी ।।१०।।
मुक्तैर्मुमुक्षिभिश्चान्यैर्ध्येया नान्येदृशी कलौ। कामदा यस्य कस्यापि स्मृतिगामिन्यनुक्षणम् ।।११।।
विश्वं ततान योऽव्यक्तस्तद्यत्स्थं यो न तत्स्थितः। तद्यत्स्थं नैश्वराद्योगात्तद्भृत्तत्स्थो न वायुवत् ।।१२।।
मावशाद्योऽवशोऽभीक्ष्णं व्यसृजत्तदबंधनः। येनाध्यक्षेण मा सूते जगद्वेदामलं न यम् ।।१३।।
नृरूपेणावतीर्णं यत्तत्त्वाज्ञोऽसुरभावगः। न वेत्ति योगगम्यं यं सद्धर्मत्राणकारणम् ।।१४।।
सोऽन्वर्थाख्यानसूयात्रिपुत्रो जज्ञेऽज ईश्वरः। अचिन्त्याव्यक्तरूपोऽपि दत्तोऽर्च्यः स्मृतितोषणः ।।१५।।
परानन्दमयो विष्णुर्हृत्स्थोऽवेद्योऽप्यतीन्द्रियः। सदा सम्पूज्यते भक्तैर्भगवान् भक्तिभावनः ।।१६।।
अचिन्त्यस्य कुतो ध्यानं कूटस्थावाहनं कुतः। क्वासनं विश्वसंस्थस्य पाद्यं पूतात्मनः कुतः ।।१७।।
क्वानर्घोरुक्रमस्यार्घ्यं विष्णोराचमनं कुतः। निर्मलस्य कुतः स्नानं क्व निरावरणेऽम्बरम् ।।१८।।
स्वसूत्रस्य कुतः सूत्रं निर्मलस्य च लेपनम्। निस्तृषः सुमनोभिः किं किमक्लेद्यस्य धूपतः ।।१९।।

निष्कास्यान्ते तमवताररूपं कण्टकवन्मत्वा **कृतकार्यः** सन् **जहाति** द्वयोस्तुल्यत्वात् ।।९।। तर्हि नरनारायणनारदसनकाद्याः कुतोऽवशिष्टाः कार्यशेषत्वादित्याह - **अस्ये**श्वरस्यावतारा अद्या**प्यपूर्णकृत्याः** श्रीदत्तनरनारायणसनत्कुमारादयः **तासूत्तमोत्तमा** कृपां सूत इति **कृपासूः** सत्सूद्विषेत्यादिना क्विप्। दयाजननी।।१० **अन्यैर्**विषयिभिः **ईदृशी** स्मर्तृगामिनी शीघ्रफलदा च।।११।। **यो** ज्ञानैश्वर्यतेजोबलवीर्यात्मकः **अव्यक्तः** परोक्षत्वात् न प्रधानं पुंस्त्वादेशात् **तद्**विश्वं यस्मिन्नीश्वरे तिष्ठतीति तथापि **य** ईश्वरो न तस्मिन् विश्वस्मिन्स्थितः। यदुक्तं पूर्वाचार्यैः '*मायाध्यासाश्रयेण प्रविततमखिलं यन्मया तेन मत्स्थान्येतान्येतेषु नाहं यदपि हि रजतं भाति शुक्तौ न रौप्ये।। शुक्त्यंशस्तेन भूतान्यपि मयि निवसन्तीति विश्वग्विनेता प्राह* ' इति।।१२।। **मा** माया **व्यसृजद्**विविधमसृजत् तद्बंधरहितः।।१३।। **योगगम्य**त्वाद्यस्य भगवतस्तत्त्वमविद्वानासुरीसम्पत्समन्वितो **नृरूपेणावतीर्णं** मलनिवर्तकमपि **सद्धर्मत्राणकारणमपि यं** भगवंतं न वेद।।१४।। **स** सार्थकनाम्नोरनसूयात्र्योः **पुत्रो जज्ञे** स्मरणमात्रसंतुष्टः।।१५।। **हृत्स्थो** हृदयस्थोऽपि **अतीन्द्रिय**त्वात् वृत्तिव्याप्तिं विना**ऽवेद्यः** तथा स **भक्तिभावनो भक्तैः** सम्यक्पूज्यते भावनयेति शेषः।।१६।। भावनैव कारणं दर्शयितुमाह **कूटस्थ** एकरूपतया कालव्यापी।।१७।। अमूल्या **उर**वः **क्रमाः** पादविक्षेपा यस्य **विष्णोर्**व्यापनशीलस्य **निरावरणे** विक्षेपावरणरहिते**ऽम्बरं** वस्त्रं।।१८।। **स्वसूत्रस्य** स्वतन्त्रस्य। **निस्तृषो**ऽनिच्छस्य अमूर्तत्वा**दक्लेद्यस्य**।।१९।।

स्वप्रकाशस्य दीपैः किं किं भक्ष्याद्यैर्जगद्भृतः। किं देयं परितृप्तस्य विराजः क्व प्रदक्षिणाः ।।२०।।

किमनन्तस्य नतिभिः स्तौति को वागगोचरम्। अन्तर्बहिःप्रपूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत् ।।२१।।

सर्वतोऽपीत्यसंभाव्यो भाव्यते भक्तिभावनः। सेव्यसेवकभावेन भक्तैर्लीलानृविग्रहः ।।२२।।

तवेशातीन्द्रियस्यापि पारम्पर्याश्रुतां तनुम्। प्रकल्प्याश्मादावर्चन्ति प्रार्चयेऽर्चां मनोमयीम् ।।२३।।

कलसुश्लोकगीतेन भगवन्दत्त जागृहि। भक्तवत्सल सामीप्यं कुरु मे मानसार्चने ।।२४।।

श्रीदत्तं खेचरीमुद्रा-मुद्रितं योगिसद्गुरुम्। सिद्धासनस्थं ध्यायेऽभी-वरप्रदकरं हरिम् ।।२५।।

दत्तात्रेयाह्वयाम्यत्र परिवारैः सहार्चने। श्रद्धाभक्त्येश्वरागच्छ ध्यातधाम्नाञ्जसा विभो ।।२६।।

सौवर्णं रत्नजडितं कल्पितं देवतामयम्। रम्यं सिंहासनं दत्त तत्रोपविश यंत्रिते ।।२७।।

पाद्यं चंदनकर्पूर-सुरभि स्वादु वारि ते। गृहाण कल्पितं तेन दत्ताङ्घ्री क्षालयामि ते ।।२८।।

गन्धाब्जतुलसीबिल्व-शमीपत्राक्षतान्वितम्। साम्बवर्घ्यं स्वर्णपात्रेण कल्पितं दत्त गृह्यताम् ।।२९।।

सुस्वाद्वाचमनीयाम्बु हैमपात्रेण कल्पितम्। तुभ्यमाचम्यतां दत्त मधुपर्कं गृहाण च ।।३०।।

पुष्पवासितसत्तैलमंगेष्वालिप्य दत्त भोः। पंचामृतैश्च गांगाद्भिः स्नानं ते कल्पयाम्यहम् ।।३१।।

भक्त्या दिगंबराचान्तजलेदं दत्त कल्पितम्। काषायपरिधानं तद् गृहाणैणेयचर्म च ।।३२।।

नानासूत्रधरैते ते ब्रह्मसूत्रे प्रकल्पिते। गृहाण दैवतमये श्रीदत्त नवतन्तुके ।।३३।।

जगद्भृतो जगत्पोषकस्य **विराजः** समष्टिरूपेणावस्थितस्य।।२०।। **नतिभिः** नमस्कारैः **उद्वासनं** विसर्जनं।।२०।। इत्युक्तप्रकारेण **सर्वतोऽसंभाव्योऽपि** लीलया गृहीतनरदेहो **भाव्यते** कल्पितोपचारैः पूज्यते।।२२।। पाषाणादौ गुरुपारम्पर्यतः श्रुतां प्रतिमारूपां तनुं **प्रकल्प्य** स्वबुद्ध्योऽ**र्चन्ति** अहन्तु ध्यानयोगार्थं अष्टविधप्रतिमासूत्तमां **मनोमयीमर्चां** प्रतिमां क्षिप्रैकाग्र्यार्थं प्रकर्षेणा**र्चये** पूजये।।२३।। **कला** मनोहराः शोभनाः **श्लोकाः** यशांसि यस्मिंस्तेन **गीतेन**।।२४।। लम्बिकोर्ध्वगामिन्या समनस्कया जिह्वया **मुद्रितं**। **सिद्धासनं** गुदमेढ्रोर्ध्वगुल्फस्थापनारूपं। अभय**वरप्रदौ करौ** यस्य।।२५।। **अञ्जसा** शीघ्रम् ।।२६।। पीठदेवतामयं **यन्त्रिते** यन्त्रयुक्तेऽत्रासने।।२७।।२८।। **साम्बु** जलसहितं।।२९।।३०।। **गाङ्गादिभिर्**गङ्गोदकैः।।३१।। आचान्तं जलं येन सः भो **आचांन्तजल** कृताचमन। एणीमृगस्येद**मैणीयं**।।३२।।३३।।

भूतिमृत्स्नासुकस्तूरी-केशरान्वितचंदनम्। रत्नाक्षताः कल्पितास्त्वामलङ्कुर्वेऽथ दत्त तैः ।।३४।।

सच्छमीबिल्वतुलसी-पत्रैः सौगंधिकैः सुमैः। मनसा कल्पितैर्नानाविधैर्दत्तार्चयाम्यहम् ।।३५।।

लाक्षासिताभ्रश्रीवास-श्रीखण्डागरुगुग्गुलैः। युक्तोऽग्नियोजितो धूपो हृदा स्वीकुरु दत्त तम् ।।३६।।

स्वर्णपात्रे गोघृताक्त-वर्तिप्रज्वालितं हृदा। दीपं दत्त सकर्पूरं गृहाण स्वप्रकाशक ।।३७।।

सषड्रसं षड्विधान्नं नैवेद्यं गव्यसंयुतम्। कल्पितं हैमपात्रे ते भुंक्ष्व दत्तांब्वदः पिब ।।३८।।

प्रक्षाल्यास्यं करौ चाद्भिर्दत्ताचम्य प्रगृह्यताम्। तांबूलं दक्षिणां हैमीं कल्पितानि फलानि च ।।३९।।

नीराज्य रत्नदीपैस्त्वां प्रणम्य मनसा च ते। परितस्त्वत्कथोद्घातैः कुर्वे दत्त प्रदक्षिणाः ।।४०।।

मन्त्रवन्निहितो मूर्ध्नि दत्त ते कुसुमाञ्जलिः। कल्प्यन्ते मनसा गीत-वाद्यनृत्योपचारकाः ।।४१।।

प्रेर्यमाणप्रेरकेण त्वया दत्तेरितेन ते। कृतेयं मनसा पूजा श्रीमंस्तुष्टो भवानया ।।४२।।

(अपराधक्षमापनस्तोत्रम्)

दत्त मानसतल्पे मे सुखनिद्रां रहः कुरु। रम्ये व्यायतभक्त्यामतूलिकाढ्ये सुवीजिते ।।४३।।

रसज्ञावशा तारकं स्वादु लभ्यं गृहीतं कदाचिन्न ते नाम दत्त ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।४४।।

भूतिर्भस्म **मृत्स्ना** प्रशस्तमृत्तिका सस्नौ प्रशंसायामिति पाणिनीयात्।।३४।। **सौगंन्धिकैः** कल्हारैः।।३५।। **सिताभ्रो** हिमवालुका **श्रीवासो** वृकधूपः। **अगुरुः** कालागुरुः।।३६।। भोः **स्वप्रकाशक** स्वयंज्योतिः।।३७।। *भक्ष्य*मपूपादि *भोज्यं* पायसादि *लेह्यं* गुडादि *चोक्ष्य*मिक्षुदंडादि *पेयं* पानकादि *चर्व्यं* चिपिटादि एवं **षड्विधं** मधुरादि**षड्रस**युक्तं **अद** इदमम्बु।।३८।। **हैमीं** स्वर्णमयीं।।३९।। **त्वत्कथोद्घातैः** त्वत्कथाभ्यागानैः।।४०।। **कुसुमाञ्जलिः** पुष्पाञ्जलिः। **मन्त्रवत्** समन्त्रकं यथा तथा।।४१।।अस्मादीनां **प्रेर्यमाणा**नां **प्रेरकेणा**ऽन्तर्यामिना **त्वयेरितेन**।।४२।। **रह** एकान्ते कामसङ्कल्पदिकोलाहलवर्जिते **रम्ये** मैत्र्यादिभावनया शोभमाने **व्यायतभक्ति**रूपा कोमला मृदुला **तूलिका** तयाऽऽ**ढ्ये** कल्पितवालादिव्यजनेन **सुवीजिते** असुभिः प्राणैर्वीजिते वा।।४३।। **इति मानसपूजा**।। अथ अपराधक्षमापनस्तुतिः भुजंगप्रयातवृत्तैरुच्यते।। **रसना** जिह्वा वशवर्तिनि। विद्यत इति शेषः। पूनर्भवन्नाम **स्वादु, लभ्यं** च न तु महार्घं। भोः **क्लिन्नचित्त** आर्द्रहृदय।।४४।।

वियोन्यन्तरे दैवदार्ढ्याद्विभो प्राग्, गृहीतं कदाचिन्न ते नाम दत्त ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।४५।।
मया मातृगर्भस्थितिप्राप्तकष्टाद् गृहीतं कदाचिन्न ते नाम दत्त ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।४६।।
मया जातमात्रेण संमोहितेन गृहीतं कदाचिन्न ते नाम दत्त ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।४७।।
मया क्रीडनासक्तचित्तेन बाल्ये गृहीतं कदाचिन्न ते नाम दत्त ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।४८।।
मया यौवनेऽज्ञानतो भोगतोषाद् गृहीतं कदाचिन्न ते नाम दत्त ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।४९।।
मया स्थाविरेऽनिघ्नसर्वेन्द्रियेण गृहीतं कदाचिन्न ते नाम दत्त ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।५०।।
हृषीकेश मे वाङ्मनःकायजातं हरेऽज्ञानतो ज्ञानतो विश्वसाक्षिन् ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।५१।।
स्मृतो ध्यात आवाहितोऽस्यर्चितो वा न गीतः स्तुतो वन्दितो वा न जप्तः ।।
क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं क्षमस्वापराधं प्रभो क्लिन्नचित्त ।।५२।।

अन्या विविधा योनयो योन्यन्तरं तस्मिन्।।४५।।४६।।४७।।४८।।४९।। **अनिघ्नानि** पराधीनानि **सर्वेन्द्रियाणि** यस्य तेन।।५०।।५१।। **न स्मृतो,** न **ध्यात** इति प्रत्येकं सम्बध्यते।।५२।।

दयाब्धिर्भवादृङ् न सागाश्च मादृग् भवत्याप्तमन्तोर्भवान्मे शरण्यः ।।
यथालम्बनं भूर्हि भूनिस्सृतांघ्रे-रिति प्रार्थितं दत्तशिष्येण सारम् ।।५३।।
दत्तं वन्दे दशातीतं दयाब्धिं दहनं दमम्। दक्षं दरघ्नं दस्युघ्नं दर्शं दर्पहरं दवम् ।।५४।।
दातारं दारुणं दांतं दास्यादं दानतोषणम्। दानं दावप्रियं दावं दासत्रं दारवर्जितम् ।।५५।।
दिक्पं दिवसपं दिक्स्थं दिव्ययोगं दिगम्बरम्। दिव्यं दिष्टं दिनं दिश्यं दिव्याङ्गं दितिजार्चितम्।।५६।।
दीनपं दीधितिं दीप्तं दीर्घं दीपं च दीप्तगुम्। दीनसेव्यं दीनबन्धुं दीक्षादं दीक्षितोत्तमम् ।।५७।।
दुर्ज्ञेयं दुर्ग्रहं दुर्गं दुर्गेशं दुःखभंजनम्। दुष्टघ्नं दुग्धपं दुःखं दुर्वासोऽग्र्यं दुरासदम् ।।५८।।
दूतं दूतप्रियं दूष्यं दूष्यत्रं दूरदर्शिपम्। दूरं दूरतमं दूर्वाभं दूराङ्गं च दूरगम् ।।५९।।
देवार्च्यं देवपं देवं देयज्ञं देवतोत्तमम्। देहज्ञं देहिनं देशं देशिकं देहिजीवनम् ।।६०।।
दैन्यं दैन्यहरं दैवं दैन्यदं दैविकांतकम्। दैत्यघ्नं दैवतं दैर्घ्यं दैवज्ञं दैहिकार्तिदम् ।।६१।।

यतो दयासागरो **भवादृङ्** न विद्यते **सागाः** सापराधश्च **मादृङ् न भवति** त्वयि जातापराधस्य **मे** त्वमेव **शरण्यः**। अर्थान्तरेण दृढयति **भुवि निःसृताङ्घ्रेः** स्खलितपादस्य **भूर्**भूमिरेवालम्बनं यथा तथा **हि**रेवार्थे **शिष्येण** शासनार्हेण इति सम्पूर्णम्।।५३।। अथाष्टोत्तरशतनामावलिः।। **दहन**मग्निरूपं एवमन्यत्राप्यूहं **दरघ्नं** भयहरं **दस्युघ्नं** चोरघ्नं पितृतृप्तये **दर्श**रूपं **दवो** वनं तद्रूपं ' वन्याय च ' इति श्रुतेः। इमान्यभिधानानि श्रीगुरोः सर्वात्मत्वबोधकानि।।५४।। पापिनां यमरूपेण **दारुणं दावप्रियं** वनप्रियं **दावं** वनाग्निरूपं **दानं** सात्त्विकदानरूपं **दासत्रं** दासपरिपालकं।।५५।। **दिक्पं** दिक्पालरूपं **दिवसपं** सूर्यरूपं **दिक्स्थं** दिग्गजरूपं **दिव्यं** दिवि भवं देवरूपं **दिष्टं** कालरूपं **दिश्यं** दिग्भवं दैत्यपूजितं च।।५६।। **दीनपं** दरिद्रपालकं **दीधितिं** किरणरूपं **दीप्तगुं** देदीप्यमानदृष्टिं प्रखरकिरणं वा मन्त्रादिदीक्षा ददातीति तं **दीक्षादं**।।५७।। ब्रह्मरूपत्वाद् **दुर्ज्ञेयं** ' गुहाहितं गह्वरेष्ठं ' इति श्रुतेः। **दुर्गं** गुहाहितं दुर्गा हैमवती तदीशः शिवस्तद्रूपः दुर्गपालकं वा।।५८।। अग्निरूपेण देव**दूतम् दूष्यं** वस्त्रवेश्मरूपं **दूष्यत्रं** पापितारकं **दूरदर्शिपं** पण्डितेशं **दूरतमं** बहिर्मुखानां कल्पकोटिभिरलभ्यत्वात्।।५९।। समयोचितदेयं जानाति तथा तं **देयज्ञं देहज्ञं** क्षेत्रज्ञं अवताराभिप्रायेण **देहिनं देशिक**मुपदेष्टारं सद्गुरुं।।६०।।**दैवं** प्राक्तनकर्मरूपं **दैन्यदं दैन्यहरं दैविकान्तकं** आधिदैविकादिदुःखहरं विष्णुरूपेण **दैत्यघ्नं दैहिकार्ति**हरं **दैवज्ञं** गणकरूपं।।६१।।

दोषघ्नं दोषदं दोषं दोषित्रं दोर्द्वयान्वितम्। दोषज्ञं दोहपं दोषेड्बन्धुं दोर्ज्ञं च दोहदम् ।।६२।।

दौरात्म्यघ्नं दौर्मनस्य-हरं दौर्भाग्यमोचनम्। दौष्ट्यत्रं दौष्कुल्यदोष-हरं दौर्हृद्यभञ्जनम् ।।६३।।

दण्डज्ञं दण्डिनं दण्डं दम्भघ्नं दम्भिशासनम्। दन्त्यास्यं दन्तुरं दंशि-घ्नं दण्ड्यज्ञं च दण्डदम् ।।६४।।

अनन्तानन्तनामानि सन्ति तेऽनन्तविक्रम। वेदोऽपि चकितो यत्र नुर्वाग्हृद्दूर का कथा ।।६५।।

(प्रार्थना)

नामरूपगुणातीत भेदसङ्गविवर्जित। एक एवाद्वितीयोऽसि परमात्मन् हि नाकवत् ।।६६।।

नामरूपगुणाभेदा मायासक्तिरनेकता। कल्पिता स्थूलधीभिस्ते महाकाशादिवद्विभो ।।६७।।

बहुरूपाप्रमेया ते मायैषा जगदीश्वर। मन्यते मेऽहमित्यस्या रममाणो गुणेष्वसौ ।।६८।।

कारणं त्विदमेवात्र जगद्विपरिवर्तने। येषां नाव्यक्त गम्योऽसि त्वमेव परमा गतिः ।।६९।।

आसत्यलोका लोकास्ते पुनरावर्तिनोऽक्षर । तस्मात्त एव धन्याः स्युर्गृहीतं धाम यैस्तु ते ।।७०।।

उन्निनीषया भक्तानां **दोषघ्नं** अधोनिनीषया पापिनां **दोषदं** प्राक्कर्मफलदानाय कफादि**दोष**रूपं **दोषिभ्यस्त्रा**यत इति तं सांसर्गिकपापहरं **दोर्द्वयान्वितं** द्विभुजान्वितं चन्द्रसोदरं **दोर्ज्ञं** भुजकोट्यादिज्ञं गवादि**दोहदं।।६२।। दौरात्म्यघ्नं** दुःस्वभावहरं दौष्ट्येभ्यस्त्रायत इति तं **दौष्ट्यत्रं**।।६३।। दण्डनीतिज्ञं **दण्डिनं** मस्करिणं **दम्भिशासिनं** दाम्भिकशास्तारं **दन्त्यास्यं** गणेशरूपं **दन्तुरं** करालं राक्षसादिरूपं **दंशिघ्नं** मक्षिकाबाधावारकं **दण्ड्यज्ञं** दण्डार्हाभिज्ञमिति।।६४।। **अनन्तविक्रम**त्वा**दनन्त**स्य **तेऽनन्तनामानि** यत्र नामसंख्याने **वेदोऽपि** शंकित हे **वाग्हृद्दूर** वाङ्मनसयोरगोचर तव नामसंख्याने **नुर्**नरस्य तु **का कथा** न काऽपि।।६५।। **नामरूपगुणातीत**सततोऽप्यधिकस्तत्संबुद्धौ त्रिविध**भेदै**र्माया**सङ्गे**न च **विवर्जित**स्तत्सम्बुद्धौ **नाकवदा**काशवत्त्वं **एक एवाद्वितीयोऽसि** परमात्मरूपत्वात्।।६६।। तथा **स्थूलबुद्धिभि**र्लौकिकैः सगुणनिष्ठैर्वा नामरूपगुणादयः यथैकस्यैवाकाशस्य **महाकाशा**भ्राकाशजलाकाशघटाकाशा उपाधिवशात्कल्प्यन्ते तथा हे **विभो ते** तवापीयं कल्पना न तात्त्विकी किन्तु कल्पितत्वाद्घटाकाशादिवदज्ञानविजृम्भिता किंवा शुद्धस्वरूपज्ञानार्थं शाखाचन्द्रवज्ज्ञानिभिः कल्पिताः 'विकल्पतदभावाभ्यामसंस्पृष्टात्मवस्तुनि। विकल्पित्वलक्ष्यत्वसम्बन्धाद्यास्तु कल्पिताः' इत्युक्तेः।।६७।। अंशभेदेन गुणभेदेन च **बहुरूपाऽप्रमेया** प्रमाणाविषया तथाऽ**प्येषा** कार्येणानुमेया **ते** तव **माया** सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वाच्या **अस्या गुणेषु** मायारचितदेहादिष्वध्यासेन **रममाणोऽसौ** पुरुषो ममा**हमिति मन्यते**।।६८।। **जगतो विपरिवर्तने**ऽभिमानरूपमि**दमेव कारणं** हे **अव्यक्त त्वमेव परमा गति**रिति **येषां न गम्योऽसि**।।६९।। यो यदात्मकः स तद्गतस्तदाश्रयश्च भवति इति वक्तुं युक्तं मृदाश्रय इव घटादिः अतएव परमां स्वगतिमविद्वांसो ये **ते लोका** 'आब्रह्मभुवनाल्लोका' इति स्मृतेः सत्यलोकोऽस्ति येषां तान्मर्यादीकृत्ये**त्यासत्यलोकाः।** आङ्मर्यादावचन इत्यव्ययीभावः। **ते लोकाः पुनरावर्तिनः।**

नानुमानेन ते धाम ग्रहीतुं शक्यते ह्यतः। मृग्योऽसि पुरुषेणैव बुद्ध्यादिगुणहेतुभिः ।।७१।।

पुंस्त्वेऽप्यर्क इवान्धानां गोकल्पानामतीन्द्रिय। स्वप्नेऽपि नैव ते वार्ता पुनः प्रत्यक्षता कुतः ।।७२।।

प्रेष्ठत्वद्भक्तसंयोग-विवेकामलदृष्टिभिः। साङ्ख्ययोगपरैर्धीरैः क्रमात्ते धाम गम्यते ।।७३।।

तस्माद्दत्तं नृजन्मेदं त्वया दिष्ट्याऽमृतक्षमम्। सद्दृष्टिदानाद्भगवंस्तत्साफल्यं कुरु प्रभो ।।७४।।

त्वत्प्रेमभक्त्यैव सदा मदात्मा धिया धियं दृष्टिमपीश दृष्ट्या ।
अंगैः सदाङ्गानि दृढं दयाब्धे हरे निबध्नात्विति मेस्ति याच्ञा ।।७५।।

पादौ त्वदीयालयतीर्थयात्राविहारिणावर्चनतत्परौ मे।
करौ रसज्ञापि भवत्वजस्रं सत्त्वत्कथोद्घातरसज्ञतोत्का ।।७६।।

ननु कौशीतकिब्राह्मणे पर्यङ्कविद्यायां 'तं पंचाशतान्यप्सरसां प्रधावन्ति शतं चामरहस्ताः शतं मालाहस्ताः शतमाञ्जनहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फलहस्तास्तं ब्रह्मालङ्कारेणालङ्कुर्वन्ति ल ब्रह्मालङ्कारेणालङ्कृतो ब्रह्मविद् ब्रह्मैवाभिप्रैति' इत्यादिना स्वाराज्यं प्राप्य ब्रह्मणा सह मुच्यते 'कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्' इति न्यायात्। 'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था' इति श्रुतेः 'ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे। परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परम्पदं' इति स्मृतेश्च क्रममुक्तिश्रवणात् 'छायातपयोरिव ब्रह्मलोक' इति काठके चेतरलोकापेक्षया ब्रह्मणो लोके छायातपयोरिवात्मानात्मनोः स्पष्टतरप्रतीतिरीदृशे ब्रह्मलोके क्रममुक्त्यर्हेऽपि तद्गतानामितरलोकगतानामिव कथं पुनरावृत्तिरुच्यत इति चेदुच्यते ब्रह्मलोको द्वेधा क्रममोक्षगामिलभ्यः कर्मिलभ्यश्च तयोः कर्मिण एव पुनरावृत्तिरिति विवेकः प्रकृष्टपुण्यकर्मवशाद् ब्रह्मलोकगतानामपि तत्र ज्ञानसाधनाभावात्पुण्योपभोगान्ते पुनरावृत्तिरत उक्तं पुनरावर्तिन इति 'साम्पराये तर्तव्यभावात्तथा ह्यन्य' इति न्यायोऽत्रानुसन्धेय**स्तस्मादा**त्मभावेन **ते धाम** स्वरूपं **यैर्गृहीतं ते धन्या एव**।।७०।। **हि** यस्माद**नुमानेन ते धाम** स्वरूपं **गन्तुं** ज्ञातुं **न शक्यतेऽतः पुरुषेणैवा**प्रमत्तेन **बुद्ध्यादिगुणहेतुभिर्मृग्योऽसि** देहव्यतिरिक्तत्वंपदार्थशुद्धिमात्रस्यैवा**नुमानेन** विवक्षितत्वात्।।७१।। पुरुषत्वे**ऽपि** पशु**कल्पानां** नृणां **स्वप्नेऽपि** तव **वार्ता नैव पुनः कुतस्**तरां **प्रत्यक्षता** साकारब्रह्मनिष्ठताऽपि नैव लभ्या पुनर्मोक्षवार्ता तु दूरतोऽपास्तैवेति भावः। तस्य ज्ञानैकलभ्यत्वात् '*नान्यः पन्था अयनाय विद्यत*' इति श्रुतेः।।७२।। **प्रेष्ठः** प्रियतमः चासौ **त्वद्भक्त**श्च तस्य **संयोगः विवेको** विचारश्च तावेवा**मलदृष्टी येषां** तैः **सांख्यं** ज्ञानं **योगं** निष्कामकर्मानुष्ठानं तत्**परैर्**ब्रह्मचर्यादिसाधनसम्पन्नैः **क्रमाच्छ्र**वणमननादिक्रमेण **गम्यते**।।७३।। **अमृतक्षमं** निःश्रेयसहेतुभूतं 'पुरुषे त्वाविस्तरामात्मा' इति श्रुतेः।।७४।। **त्वत्प्रेमभक्ति**द्वारेणैव मदीयस्वभावः **सदा** निरन्तरं तव मम च परस्परवियोगो माऽस्तु **इत्येवं**रूपा **याच्ञा**।।७५।। इदं शरीरमपि त्वदुपयौगिकं भवत्विति प्रार्थ्यते पादावित्यादिना **त्वदीयालयानि** प्रासादाः काश्यादिक्षेत्राणि वा **तीर्था**नि पुष्करादीनि च तद्गमनशीलौ। **करौ** त्वत्पूजनतत्परौ। सत्यश्च तास्त्वत्**कथा**श्च तासां **उद्घातरसज्ञतोत्का** गीतानन्दस्वादज्ञतोत्कण्ठा च भवतु।।७६।।

त्वत्पादपद्मच्युतपुष्पगन्धं नासा भजत्वक्षियुगं गुणात्मन् ।
त्वन्मूर्तिमासेचनकां श्रुती मे श्राव्यास्त्वदीया भगवन्कथाश्च ।।७७।।
त्वदीयभक्ताङ्घ्र्यमलाब्जपूतां धूलिं मदङ्गानि सदा वहन्तु ।
मनस्तुरङ्गो निवसत्वजस्त्रं त्वय्येव दीपोऽङ्ग यथा निवाते ।।७८।।
शिरो नमत्वीश्वर तेऽङ्घ्रिपद्मं देहः सदाऽऽलिङ्गयतु त्वदर्चाम् ।
एषा त्वदीयैव तनुस्त्वमेव संबन्धिनो मे नहि केऽद्वितीय ।।७९।।
नूनं भवानृषिर्नैव न वर्णाश्रमलिङ्गभाक्। निर्मितं भवतैवेदं विश्वं स्वांशांशतोऽखिलम् ।।८०।।
न जानन्ति भवन्माया-मोहिता दिव्यमुत्तमम्। भवद्धामात एवैते भ्रमन्त्यसुरभावगाः ।।८१।।
कर्ता भर्तासि हर्ता त्वं प्रत्यक्षं तत्त्वमस्यपि। भो सर्वं खल्विदं ब्रह्म त्वमस्यात्मासि केवलम् ।।८२।।
त्वदुदेति रमत्येतद्विश्वं त्वय्येव लीयते। अष्टमूर्तिभिराभिस्त्वमाभासीव जगन्मयः ।।८३।।
दिक्पाला लोकपालाश्च श्रूयते दृश्यतेऽखिलम्। चराचरं जगल्लोका विष्णो तेऽवयवा अमी ।।८४।।

भो **गुणात्मन्**नाविष्कृतसगुणमूर्ते यद्दर्शनात्तृप्तेरन्तो नास्ति सा**सेचनका** तां **श्रुती** कर्णौ **श्राव्याः** हृद्याः।।७७।। म**दङ्गानि** शिरःप्रभृतीनि **मन** एव **तुरङ्गो**ऽश्वः परमानन्दरूपे **त्वय्येव** नितरां वसतु यथा **निवात**देशे इतस्ततश्चलनाभावाद्**दीपो** निश्चलो भवति तथा संकल्पप्रभवसकलसर्वकामत्यागपूर्वकं वैराग्याभ्यासेन च शनैः शनैरुपरतं चित्तं त्वय्येव नितरां वसतु धर्ममेघाख्यानिर्बीजसमाधिसिद्धिर्भवत्विति प्रार्थना।।७८।। **त्वदर्चां** त्वत्प्रतिमां **त्वमेव मे सम्बन्धिनो** पित्रादयो मित्राणि च भो **अद्वितीय** त्वत्तोऽन्ये **के**ऽपि मम सम्बन्धिनो न **हि** एवमात्मज्ञानयोग्यः कारणसम्बन्धोऽस्त्विति प्रार्थनाभावः।।७९।। ननु ऋषिपुत्रस्य मम कुतो न्वियं प्रार्थनेत्यत आह **नूनं** निश्चयेन **ऋषिपुत्रो**ऽत्रिपुत्रो न **वर्णाश्रमा**दि**लिङ्गभाग**पि न वर्णाश्रमादयो देहे मायया परिकल्पिता इत्युक्तेरात्मनस्तव तत्सम्बन्धाभावोऽसङ्गत्वात् 'असङ्गो न हि सज्जत' इति श्रुतेः। यो हि कूटस्थं प्रत्यक्स्वरूपं स्वात्मतयानुभवति स वर्णाश्रमलिङ्गभाङ् न भवति किमुत वक्तव्यं लीलाविष्कृतमूर्तेरपि परमात्मनो वर्णराहित्यं। **स्वांशो** ब्रह्मा त**स्यांशा** मरीच्यादयस्तद्द्वारेण **भवतैवा**भिन्ननिमित्तोपादनकेनेदं नामरूपात्मकं **विश्वं** निर्मितम्।।८०।। ईदृशं जगत्कारणं **भवद्धाम न जानन्त्यत एव भ्रमन्ति** संसरति।।८१।। सगुणरूपेन कर्त्रादिरूपोऽसि **त्वं तत्त्वमसि इदं** विवर्तरूपं जगत्**केवलमात्मा** परं **ब्रह्म**।।८२।। विश्वोद्भवादिकारणं त्वमेवेत्याह **त्वदि**दिति **रमति** रमते '*यतो वा इमानि भूतानि*' इत्यादिश्रुतिभ्यः पृथिव्यादिभि**रष्टमूर्तिभिः**। **इव**शब्देन न तथात्वं(इति) सूचितं।।८३।। **दिक्पालाः** इन्द्रादयः **लोकपाला** ब्रह्मादयः **श्रूयते** श्रुत्या ज्ञाप्यते स्वर्गादि आमुष्मिकं प्रत्यक्षादिप्रमाणैः **दृश्यते चराचरं जगत् लोकाः** स्वरादयः पातालादयश्च हे **विष्णो** इमानि तवाङ्गानि विराड्रूपेणावस्थितत्वात्।।८४।।

निगूढतत्त्व ते ज्ञातं यत्किञ्चिल्लोकदुर्ग्रहम्। चेष्टितं ते प्रसादोऽयं प्राक्पुण्यैर्मय्युपस्थितः ।।८५।।

सुखमैन्द्रियकं क्वापि न कांक्षे ते पदाश्रितः। नाकादीन्न प्रशंसामि नैव निन्दामि नारकान् ।।८६।।

यथेच्छं क्वापि मां कर्म-योगात्स्थापय विश्वभृत्। मां यत्र क्वापि ते भक्तिर्न जहात्विति काङ्क्षितम् ।।८७।।

स्तुवन्तु निन्दत्वपि ताडयन्तु मां पूजयन्त्वत्र जना न वापि ।
देहः पतत्वद्य युगान्तरे वा न किञ्चिदिष्टं न च मेऽप्यनिष्टम् ।।८८।।

हृद्धयात्मेन्द्रियवाक्कायैः सदा प्रकृतिभावतः। यद्यत्करोम्यर्पयामि परात्मन्दत्त सर्व ते ।।८९।।

लीलात्मना योऽत्रिगृहेवतीर्णो दत्ताख्य उन्मत्तपिशाचवद्यः ।
बालो युवा क्वापि जरन्जटाभृत् क्वचिद्दृषिर्व्यक्तपरीक्षितश्च ।।९०।।

त्यागी सुभोगी क्वचिदस्ति संगी योगी सुवासाः क्वचिदस्ति नग्नः ।
तुष्टः कृशः पुष्ट इह क्वचिद्यो दंडी च भिक्षुः क्वचिदस्ति वर्णी ।।९१।।

गृही वनी वर्णविरुद्धचेष्टः क्वचिच्च वर्णाश्रमधर्मयुक्तः ।
इत्यादयो यस्य विचित्रचेष्टा देवर्षिहृद्वागयनं व्यतीताः ।।९२।।

गुहाहितत्वान्निगूढं तत्त्वं यस्य तत्सम्बुद्धौ **लोकदुर्ग्रहं** तव **चेष्टितं यत्किञ्चिज्ज्ञातं अयं** तव **प्रसादः उपस्थितः** प्राप्तः।।८५।। इतः परं त्वत्**पदाश्रितः** सन् **क्वाऽपि** स्वर्गे नरकेऽपि विषयसुखं **न काङ्क्षे** कर्मफलस्यावश्यंभावित्वात् कदाचित्पुण्यातिशयेन प्राप्तान्स्वर्गादीन् **न प्रशंसामि नारकांश्च नैव निन्दामि**।।८६।। हे **विश्वभृत् क्वाऽपि** स्वर्गे नरके मर्त्यलोके वा तव प्रेमलक्षणा **भक्तिर्यत्र क्वाऽपि** स्थितं **मां न जहातु** इति मया **काङ्क्षितम्**।।८७।। **न वा पूजयन्तु** सुखादि किमपी**ष्टं न मे** दुःखाद्य**निष्टम**पि **न**।।८८।।**हृन्**मनः **धी**र्बुद्धिः **आत्मा**ऽहंकारः **इन्द्रियाणि** दश पुनर्**वाग्**ग्रहणं विशिष्टवाचिककर्मज्ञापनार्थं **कायो** देहश्च तैः **प्रकृति**स्व**भावतः** लौकिकमपि **यद्यत्करोमि** कर्म त**त्ते** तुभ्यं समर्पयामि।।८९।। **लीलात्मना** लीलाविग्रहेण भक्तपरीक्षार्थमु**न्मत्तपिशाचवत्** न तु तथा अलुप्तज्ञानैश्वर्यात् **जरन्**वृद्धः **क्वचिद्व्यक्तः** क्वचिल्लोकैः **परीक्षितश्च**।।९०।। **त्यागी** निष्कामकर्मानुष्ठाता **क्वचिदि**ति सर्वत्र सम्बध्यते **दण्डी** दण्डधरो मस्करी वा **भिक्षुर्**दण्डरहितः परमहंसः **वर्णी** ब्रह्मचारी।।९१।। **गृही** गृहस्थः **सुभोगी**ति पूर्वमुक्त्वाप्याश्रमाचारवत्त्वं पुनर्गृहीशब्देन ज्ञापितम् **वनी**वानप्रस्थः **वर्णविरुद्धचेष्टो**ऽत्याश्रमस्थः ईदृशो दृष्टोऽपि पुनः **क्वचिद्वर्णाश्रमधर्मयुक्त इत्यादयो यस्य विचित्रचेष्टा** अद्भुतलीलाः यास्ता **देवर्षी**णां **हृन्**मनो **वा**ग्वाणी तयोः पन्थानं विशेषेणातीताः पुनर्मनुष्याणां हृद्वाङ्मार्गमतीता इति किमु वक्तव्यं।।९२।।

यो भक्तरक्षाक्षण एव यस्य वै सेवा स्मृतिर्भोज्यनिवेदनं धिया ।
पूजाफलं योऽर्पयतीह दुर्लभं भक्तस्मृतौ संनिधिकृत्क्षणे क्षणे ।।९३।।
यस्यास्ति माहुरे निद्रा निवासः सह्यपर्वते। भागीरथ्यां सदा स्नानं ध्यानं गन्धर्वपत्तने ।।९४।।
कुरुक्षेत्रे चाचमनं धूतपापेश्वरे तथा। विभूतिधारणं संध्या करहाटे श्रियः पुरे ।।९५।।
भिक्षा विट्ठलपुर्यस्य सुगन्धिद्रव्यधारणम्। भुक्तिः सारपुरे सायं-संध्या पश्चिमसागरे ।।९६।।
स एष भगवान्दत्तः सदा वसतु मे हृदि। हृद्धीन्द्रियादिव्यापारे सदा तत्स्मृतिरस्तु मे ।।९७।।
पादादि मूर्धपर्यन्तमेतद्वै भौतिकं वपुः। परिरक्षतु विश्वात्मा सदा सर्वत्र सर्वतः ।।९८।।
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यदृग्योपि शृणोत्यकर्णः ।
यो वेत्ति वेद्यं न हि यस्य वेत्ता सोऽग्र्यः प्रधानः पुरुषो हि दत्तः ।।९९।।
आधारभूतः स्थिरजङ्गमानां क्षमास्वरूपस्थितिरस्ति नित्यम् ।
आप्यायते यो जगदप्स्वरूपी सर्वाघहृत्स्थास्नुचरिष्णु जीवः ।।१००।।

स्व**भक्तरक्षा**यां **क्षणः** उत्सवः यस्य स **यस्य स्मृतिः** स्मरणमेव **सेवा** यत्स्व**भोज्य**स्य **निवेदनं** भक्त्या तस्मै समर्पणं सैव **पूजा** ईदृश्या भक्त्या भावितो भक्तेभ्यस्तपआदिभि**र्दुर्लभं फलं यच्छति** प्रयच्छति।।९३।।९४।। **धूतपापेश्वरे** हिमाद्रिपादे **विभूतिधारणं**।।९५।। **श्रियः पुरे** करवीरे **सारपुरे** पाञ्चालेश्वरे भोजनं।।९६।। **हृन्**मनः **आदि**शब्देन देहः **तत्स्मृतिः** तस्य श्रीदत्तस्य **स्मृतिः** स्मरणं।।९७।। पाञ्च**भौतिक** स्थूलं सूक्ष्मं च शरीरं तयोर्भौतिकत्वात् कवचमिदं।।९८।। **अपाणिर्ग्रहीता**ऽऽदानकर्ता **अपादो**ऽपि **जवनो** गन्ता नात्र पाठक्रमः किन्तु श्रुतिवदर्थक्रमः पाठक्रमादर्थक्रमस्य बलीयत्वादत्र पठितस्यापि तदनन्तरं सङ्गतिरवगन्तव्या यथान्येषां दाहकोऽप्यग्निः स्वात्मानं न दहति तद्वदयं **वेद्यं वेत्ति** स्वमात्मानमियन्मानोऽहमिति न वेत्ति तस्य सर्वज्ञस्य कोऽन्यो **वेत्ता न** तर्हि सर्वज्ञत्वभङ्ग इति चेन्न न हि शशविषाणाज्ञानं सर्वज्ञत्वं हन्ति **अग्र्य** आदिः **प्रधानः** श्रेष्ठः **पुरुषो**ऽन्तर्यामी।।९९।। अस्याष्टमूर्तित्वमाह **क्षमा** पृथ्वी **अप्स्वरूपी** सन् **सर्वा**णि च तानि कायिकादी**न्यघानि** पापानि सर्वेषामघं वा हरतीति तथा **स्थास्नु** स्थिरतरं वृक्षादि **चरिष्णु** चरणशीलं जङ्गमं तयोर्**जीव**भूत आत्मा।।१००।।

वैश्वानरात्माखिलदेहसंस्थः पचत्यसौ प्राणसखः सदान्नम् ।
यो भास्वदात्माखिलकर्मसाक्षी विश्वं सदा चेतयते स्वभासा ।।१०१।।
योऽब्जो रसात्मा सकलौषधीर्वै पुष्णाति संतापहरोऽखिलेड्यः ।
क्षेत्रेषु भूत्वा दशधाखिलेषु प्राणात्मको यः पवतेऽखिलात्मा ।।१०२।।
आकाशरूपोऽखिलगोऽपि सौक्ष्म्याद्योऽभेदसङ्गः किल शब्दसंस्थः ।
भुनक्ति चोत्क्रामति तिष्ठतेऽपि मूढा विदुर्यं न सदात्मरूपं ।।१०३।।
यः सर्वहृत्स्थोऽस्य यतः स्मृतिर्विद् वेदान्तकृद्योऽपि च वेदवेद्यः ।
समौ यदंशौ सयुजौ सुपर्णौ वृक्षाश्रितौ भुक्त्यवलोकनोत्कौ ।।१०४।।
स त्वं परात्मा पुरुषोत्तम श्रुति-ख्यातः समाविश्य जगत्त्रयं सदा ।
ईशाव्ययानन्त बिभर्षि दत्त ते पादाब्जयुग्माय नमोऽस्तु सर्वदा ।।१०५।।

वैश्वानरो जठराग्नि**रात्मा** स्वरूपं यस्य त्रिकोणत्वेन नृदेहे चतुष्कोणत्वेन पशुषु वर्तुलत्वेन पक्षिषु दीर्घत्वेन मत्स्यादिषु च **देहसंस्थो**ऽपानसहित**प्राणः सखा** यस्य सः प्राणापानयोरुद्दीपकत्वात् ' *ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वाऽन्नं च कृत्वा जलोपरि।। अग्नेश्चाधः स्वयं प्राणः स्थित्वाग्निं धमते शनैः* ' इत्याद्युक्तत्वात् ' *प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्* ' इति स्मृतेश्च **भास्वदात्मा** सूर्यरूपी प्रकाशयति।।१।। **अब्जश्**चन्द्रः व्रीह्याद्य**ौषधीः** संवर्धयति **अखिलेड्यः** सर्वस्तुत्यः **तापहरत्वात्** ईड्यत्वं सर्वस्थापि **क्षेत्रेषु** देहेषु प्राणापानसमानव्यानोदाननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जयाः एवं **दशधा** सूत्रत्वेनावस्थितत्वाद्वाऽखिलात्मा ' *वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्* ' इति श्रुतेः।।२।। सूक्ष्मत्वाद्**भेदसंग**रहितः **शब्दसंस्थः** आकाशस्य शब्दगुणत्वात्।। **आत्मरूपं** जीवरूपं देहान्तरं गच्छन्तं।।३।। **हृत्स्थो**ऽन्तर्यामिरूपेणाविष्ट इव प्राणिमात्रस्य पूर्वानुभूतस्मरणं **स्मृतिः** विषयेन्द्रियसंयोगजज्ञानं **वित् वेदान्तकृत्**साम्प्रदायप्रवर्तको ज्ञानप्रदो गुरुः वेदैः सर्वैस्तत्तद्देवतारूपेण **वेद्य** उपनिषद्भागरूपवेदवेद्यो वा ' *तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि* ' इति श्रुतेः **समौ** समानस्वभावौ **यदंशौ** जीवेश्वरौ **सयुजौ** सखायौ सुष्ठु **पर्णं** गतिः सहायं वा ययोस्तौ। पर्णं गतौ सहाये चेति विश्वः। ओव्रश्चू छेदन इति धातोर्व्रश्चना**द्वृक्षो** देहोऽसङ्गशस्त्रेण छेद्यमानत्वात् तमा**श्रितौ**। **भुक्तिः** कर्मफलभोगः **अवलोकनं** साक्षित्वेन तद्दर्शनं जीवः कर्मफलभोगोत्कण्ठः ईशस्तु साक्षित्वेनावलोकनोत्कण्ठः अत्र श्रुती' *ऊर्ध्वमूलोवाक्शाख०* ' ' *द्वाऽसुपर्णा सयुजा०* ' ।।४।। ईदृशो यो **स त्वं परात्मा**ऽचेतनात्क्षराद्विलक्षणश्चेतनादक्षरान्नियन्तृत्वेन चोत्तमः अत एव **पुरुषोत्तमः** ' *स वा अयमात्मा सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपति सर्वमिदं* प्रव्हीभावोऽस्तु।।५।।

(ध्यानम्)

वज्राङ्कुशध्वजाब्जाङ्क-युग्रक्ताब्जाभपत्तलः। गूढगुल्फः कूर्मपृष्ठोल्लसत्पादोपरिस्थलः ।।१०६।।

जानुपूर्वकजङ्घश्च विशालजघनस्थलः। पृथुश्रोणिश्च काकुत्स्थश्चारुनाभिर्दलोदरः ।।१०७।।

अररोरा मांसलांसो युगव्यायतबाहुकः। सुचिह्नचिह्नितकरः कम्बुकण्ठः स्मिताननः ।।१०८।।

स्नैग्ध्यधावल्ययुक्ताक्षश्चलत्-पिङ्गजटाधरः। चन्द्रकान्तिः प्रभुः कृष्ण-भ्रूरःश्मश्रुकनीनिकः ।।१०९।।

भावशुद्धद्विजाकीर्ण-स्वास्याब्जोऽभीवरप्रदः। दत्तात्रेयः स भगवान्सदा वसतु मे हृदि ।।११०।।

कलौ द्विराविरासीत्स दीनान्त्रातुं जनान्कलौ। सद्धर्मगुप्त्यै श्रीपाद-नरहर्यभिधानतः ।।१११।।

उड्ड्डीयन्ते यथाशक्ति यथोच्चावचपक्षिणः। अनन्तेऽनन्तलीलां तन्यायाद्वक्ष्ये यथामति ।।११२।।

।। इति श्रीगुरुचरिते श्रीगुरुस्तुतिः ।।

अथ ध्यानम्।। **वज्रा**दिचिह्नैर्युक्ते **रक्त**कम**लाभे** पादे यस्य **गूढा**वदृश्यौ **गुल्फौ** यस्य **कूर्मपृष्ठ**मि**वोल्लस**त्पादयोरुपरि स्थलं यस्य सः।।६।। **जानु**नः **पूर्व**भागे लीलया स्थापिता एका **जङ्घा** येन सः **विशालं** पृथुलं **जघनस्थलं** यस्य **पृथ्वी श्रोणिः** कटिपश्चाद्भागो यस्य स ककुदि तिष्ठतीति सोऽवयवविशेषयुक्तः **चार्वी** गम्भीरावर्तव**न्नाभि**र्यस्य जाड्यादिरहितं **दल**वत्पर्णव**दुदरं** यस्य सः।।७।। **अरर**मिव कपाटमिव विशाल**मुरः**स्थलं यस्य सः **मांसलौ** बलिष्ठौ बाहू यस्य **युग**वद्विशेषेणा**यतौ** बाहू यस्य स्वार्थे कन् एतेन लम्बत्वं उक्तं शोभन**चिह्नै**र्लक्षितौ करौ यस्य **कम्बु**वत्त्रिवलीयु**क्कण्ठो** यस्य ईषद्धास्ययुक्त**माननं** मुखं यस्य।।८।। स्निग्धगुणविशिष्टे धवले नेत्रे यस्य चलन्त्यः पिङ्गलवर्णाः **जटा**स्तासां **धरः** धारकः **चन्द्र**स्य **कान्ति**रिव कान्तिर्यस्य **भ्रु**कुटिरुरःस्थलं **श्मश्रु**णी प्रसिद्धे अक्ष्णोः **कनीनिके** चैतानि **कृष्णा**नि यस्य।।९।। स्वभावनिर्मलदन्ताकीर्णं शोभनमास्यकमलं यस्य **अभीः** अभयं '*वामहस्तेन वरदो दक्षिणेनाभयप्रदः*' **तिष्ठतु** गतिनिवृत्तिं करोत्वित्यर्थः।।१०।। **द्विर्**द्विवारं **आविरासीत्**प्रादुर्बभूव **सन्तः** साधवः **धर्मः** श्रुतिस्मृतिपुराणमूलश्चैषां **गुप्त्यै** संरक्षणाय।।११।। **उच्चावचपक्षिणो** नैकभेदाः शलभाद्या गरुडान्ताः **अनन्ते** आकाशे **अनन्तलीलां** भगवत्कथां।।१२।।

।। प्रथमोऽध्यायः ।।

नौम्युदेति यदज्ञानाज्जगद्रज्ज्वहिवत्पुनः। यत्तत्त्वं मीलति ज्ञानां तं चिदानन्दसद्गुरुम् ।।१।।

अथ चरितम्।। ॐ श्रीगुरुदत्तेरणया श्रीगुरुचरितार्थबोधिनीं कुर्वे। पूर्वाचार्यमताढ्यां टीकां पश्यन्त्वमत्सरा सर्वे।।१।। इह हि खल्वहो अतिगम्भीरा दुरवगाह्या विचित्रा माया चेयं यदयं सर्वो जन्तुः परमार्थतः परमार्थसतत्वोप्येवंबोध्यमानोऽहं परमात्मेति न गृह्णाति देहेन्द्रियादिसङ्घातमात्मानं घटादिवदात्मनो दृश्यमानमप्यात्मत्वेनाहं ब्राह्मणोमुष्य पुत्र इत्यनुच्यमानोऽपि गृह्णाति नूनं परस्यैव मायया मोमुह्यमानः प्रायशः सर्वोपि लोको बम्भ्रमीति। तद्भ्रमपरिहारार्थं मातापित्रशतेभ्योऽपि गरीयसीभिः श्रुतिभिः परमकारुणिकैर्भाष्यकृद्भिर्बहुबोधिता अपि मिष्टाशी रुग्णो बालो निम्बमिव विषयाकृष्टचित्ताः संसारिणस्तं बोधं प्रायो नाद्रियन्तेऽतः खण्डलड्डुकवत्सगुणब्रह्मप्रसादरूपफलेन तानादरपूर्वकं परो तत्त्वे प्रवर्तयितुं श्रीदत्तप्रेरणयाऽत्रेयगोत्रो वासुदेवशर्मा कश्चिद्विप्रः श्रुतिसारसंग्रहरूपं श्रीगुरुचरितग्रन्थं चिकीर्षुः काम्यप्रतिषिद्धयोरनारम्भादारब्धस्य चोपभोगेन क्षयान्नित्यानुष्ठानेन च प्रत्यवायाभावादयत्नत एव स्वात्मन्यवस्थानं- मोक्षोऽथवा निरतिशयायाः प्रीतेः स्वर्गशब्दवाच्यायाः कर्महेतुत्वात्कर्मभ्य एव मोक्ष इत्यादिपूर्वपक्षाननूद्य निराकृत्य चान्तेऽविद्याकामकर्मोपादाननिवृत्तौ स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षः स्वयं चात्मा ब्रह्म तद्विज्ञानादविद्यानिवृत्तिर्मोक्ष इति भाष्यकृद्भिरुक्तत्वाज्ज्ञानकाण्डस्य मुख्यतमत्वात्साक्षान्मोक्षप्रदत्वाच्च आदौ भगवद्गुणानुवादसहितं ज्ञानकाण्डं वक्तुं निर्विघ्नतया तत्परिसमाप्तिप्रचयगमनार्थं शिष्टाचारप्राप्तं मंगलं तावदनुष्टुभा निबध्नाति नौमीति।। *श्रीगुरुः प्रथमाध्याये श्रीगन्धर्वपुरे स्तुतः ।। स्वप्ने व्यदर्शयन्नामधारकाय निजं महः।।१।।* **तं चिदानन्दसद्गुरुं नौमि**।। कोऽसौ यस्य नित्यमुक्तस्य विवर्ताधिष्ठानस्य जगदुपादानभूतस्वाश्रयस्वविषयमाया-ख्यानिर्वाच्यशक्तिसहितस्य सत्यज्ञानानन्तादिलक्षणस्य दत्तात्रेयाख्यस्य सर्वेश्वरस्याज्ञानादविद्यागतव्यामोहकनिबन्धनाद् **रज्जावहि**रिव नामरूपाऽऽत्मकं **जगदुदेति** उत्पद्यते।। अत्र रज्जुसर्पदृष्टान्तकथनेन विवर्तवादः एवाङ्गीकृतः श्रुतिसंमतत्वात् नारम्भपरिणामौ अतएवात्मनोऽवयवावयव्यादिष्वपरिगणनाद् द्रव्यत्वानङ्गीकाराच्च तस्य जगतो न समवायसम्बन्धो नापि संयोगसम्बन्धः किन्त्वध्यास एव इति ज्ञेयं। एवमज्ञानेन प्रपञ्चोत्पत्तिरुक्ता, ज्ञानेन तल्लयोऽर्थसिद्धः **यदज्ञानाज्जगदुदेति** तत्कीदृशमिति उच्यते। यत्तत्वमिति यस्याज्ञानविजृम्भितस्य जगत**स्तत्त्वं** तात्त्विकं स्वरूपं **ज्ञानां** स्वाभेदेन विवर्ताधिष्ठानभूतपरब्रह्मवेत्तॄणां पुनर्**मीलति** निमीलति नश्यतीत्यर्थः एतादृशं जगद्यदज्ञानादुदेति तं नौमीति सम्बन्धः। अत्र देहलीदीपन्यायेनोभयत्रापि रज्जुसर्पदृष्टान्तः जगतो मिथ्यात्वादधिष्ठानसत्तातिरक्तसत्ताभावात्तत्त्वज्ञानेनैव लयो नान्यथा लोके रज्जुविवेकदर्शिनां सर्पाभिधानबुद्धी निवर्तते तद्वत्सच्चिदानन्दविवेकदर्शिनां तदन्यशब्दविकारबुद्धी निवर्तेते 'यतो वाचो निवर्तन्त ' इति श्रुतेः जगतो मिथ्यात्वात्। अत्रायं प्रयोगः विवादाध्यासितं जगन्मिथ्या भवितुमर्हति अज्ञानविलसितत्वाद्रज्जुसर्पवदिति। ननु जगदुत्पत्त्यादिहेतुत्वेन ब्रह्मणः प्रधानस्य वा श्रवणात्कथमत्र परमेश्वर एवाभ्युपगम्यते इति चेत् 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्' इति श्रुत्या 'गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे' इति स्मृत्या च ब्रह्मणः परशिष्यत्वप्रतिपादनात् 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' इति श्रुत्या मायायाः परशक्तित्वप्रतिपादनात्तस्या अचेतनात्वाच्च जगदुत्पत्तिहेतुत्वेनात्र परमेश्वरमेवाभ्युपगन्तव्य इत्याह-**चिदानन्दसद्गुरुमि**ति। चिच्चैतन्यस्वभावो जडविलक्षणः स्वयंप्रकाशः निरतिशयो निरुपाधिको नित्य आनन्दः सन्सत्यः कालत्रयाबाधः स चासौ गुरुश्चेति एतादृश एव जगदुत्पत्त्यादिकारणं न ब्रह्मा नापि प्रधानं नाणवो नाप्यसत्। शारीरकमीमांसायां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयपादे ' रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ' इत्यारभ्याष्टाभिरधिकरणैर्मतान्तरवादा निराकृता दृष्टव्याः। तथा च श्रुतयः 'तस्माद्वा एतस्मादात्मान आकाशः सम्भूतः' *'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति*

भात्यनेकवदेकं सद्धीभेदादेकरूपया। विदास्यैक्यं परं ब्रह्म तत्सत्यं दत्तसंज्ञितम् ।।२।।

तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ' इति। अत्र संसर्गं विशिष्टं च वाक्यार्थं निराकृत्य सत्यज्ञानादिवाक्यं त्वखण्डार्थनिष्ठं भवति लक्षणावाक्यत्वात्प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्र इतिवदिति पूर्वाचार्यैर्दृष्टान्तपूर्वकमखण्डार्थस्वीकारात् '*संसर्गो वा विशिष्टो वा वाक्यार्थो नात्र सम्मतः। अखण्डैकरसत्वेन वाक्यार्थो विदुषां मत* ' इति वाक्यवृत्तावुदाहृतत्वाद्गुरुशब्दोपलक्षितं ब्रह्म चिदानन्दसच्छब्दैर्लोहितोष्णप्रकाशप्रदीपवदखण्डैकरसं ज्ञेयं एवं च सतीष्टप्राप्तिरनिष्टनिवृत्तिश्चेहार्थतः संभवतीति बोध्यं। अत्र जीवस्य नित्यदुःखित्वसंसारित्ववादनिरासार्थं 'ब्रह्मैव ब्रह्माप्येति' इति श्रुत्यर्थद्योतनाय **पुनः**शब्द उक्तः। ज्ञानामिति बहुवचनेनैकमुक्तौ सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इति पक्षो निरस्तः। ज्ञशब्देन च 'ज्ञोऽत एव' इत्यधिकरणन्यायसिद्धः जानातीति ज्ञ इगुपधेति कप्रत्ययः। अनेन जीवस्य नित्यत्वं चिद्रूपत्वं नाचिद्रूपत्वमिति सूचितं तस्य सुषुप्त्यादावपि तत्साक्षित्वेनावस्थानात्। कथं तर्हि सुषुप्त्यादौ द्वैताप्रतीतिरिति चेद् द्वैतलोपात् 'यद्वै तन्न पश्यति' इति श्रुतेः। यद्वा 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इति श्रुतेर्ज्ञानशब्देनात्रेश्वरोऽभ्युपगन्तव्यस्तस्माज्ज्ञशब्देन सर्वेश्वराभिन्नत्वं ज्ञानिनः समर्थितम् 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इति श्रुतेः 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' इति स्मृतेश्च।। शास्त्रमिदमारम्भणीयं वा न वेति चेद्विषयप्रयोजनसद्भावादारम्भणीयं 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इति न्यायात्। एवं च सत्यशेषानर्थप्रपञ्चनिवृत्तिः प्रयोजनं विवर्ताधिष्ठानभूतब्रह्मज्ञानं विषयः तत्कामः साधनचतुष्टयसंपन्नो ब्राह्मणोऽधिकारीत्यूह्यम्।।१।। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' इत्युक्तेः '*एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।*' '*एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म*' '*एकधैवानुद्रष्टव्यं*' '*नेह नानास्ति किञ्चन*' इति श्रुतिप्रतिपादितैकात्म्यं वस्तुनिर्देशात्मकमङ्गलत्वेनाह **भातीति**- '*सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्*' इति श्रुत्यैक्यावधारणद्वैतप्रतिषेधतः प्रतिपादित**मेकं** सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं सत् कालत्रयाबाधं देशकालवस्तुपरिच्छेदरहितं **परं ब्रह्म धीभेदाद**न्तःङ्करणोपाधिभेदात्सुरनरतिर्यगादिरूपेणा**नेकवद्विभाति** तत्त्वेकमेव 'तत्त्वमसि' इति श्रुतेः। ननु सृष्टेः पूर्वं तथा भवितुमर्हतीदानीं स्थितिकाले तु सार्वजनीन प्रत्यक्षादिप्रमाणैः सर्वैरपि प्रतीयमानमशनायादिव्यवहारोपेतं जगन्नामरूपात्मकमेवानेकवद्भातं तत्कथमेकरूपं ब्रह्म भायादित्यत आह भागलक्षणालक्षित**यैकरूपया विदा** ज्ञाने**नास्य** जगतश्चालकत्वेन भासकत्वेन च विद्यमानस्य सतः **ऐक्य**मेकत्वं निर्बाधं '*अयमात्मा ब्रह्म*' इति श्रुतेः। यद्वा पूर्वश्लोकेन तत्पदार्थ उक्तोऽनेन श्लोकेन त्वंपदार्थश्च यथा **एकं** साक्षिभूतमवस्थात्रयेऽपि विद्यमानं सत्प्रत्यग्रूपं **धीभेदात्** धीशब्देन ज्ञानेन्द्रियाणि गृह्यन्ते श्रोत्रादीनां शब्दादिविषयोपाधिभेदे**नानेकवद**कृत्स्नव**द्भाति** प्रत्यग्रूपं स्वतो निर्मलमपि अधमोपाधिवशान्नानात्वेन प्रतीयते यदा तूपाधिविशिष्टं परित्यज्य तत्तदुपाध्युपलक्षितं शाखाचन्द्रन्यायेन विविच्यते तदानीमुपाधिकृतस्यापकर्षस्याभावात्प्रकर्ष एव परिशिष्यते तच्चैतन्यं श्रोत्राद्युपाधिगतमिति कृत्वा तस्यैव मुख्यात्मत्वमिति विनिर्णयः नोपाधिविशिष्टस्य मुख्यात्मत्वं बृहदारण्यके '*स एव देहे प्रविष्ट*' इत्यादिना प्रविष्टं जीवात्मानं प्रकृत्याम्नायते '*तन्न पश्यन्त्यकृत्स्नो हि स प्राणन्नेव प्राणनामको भवति, वदन्वाक्, पश्यंश्चक्षुः, शृण्वन् श्रोत्रं, मन्वानो मन एतानि कर्मनामधेयानि भवन्ति*' इति। श्रीमद्विद्यारण्यमतोऽस्याऽयमर्थः देहे नखाग्रपर्यन्तं प्रविष्टं ज्ञानक्रियाशक्त्युपाधिकं तमात्मानं विवेकिनः पुरुषाः स्वात्मतया न पश्यन्ति यस्मात्स आत्मोपाधिविशिष्टः कृत्स्नो न भवति तस्मान्न मुख्यात्मत्वं कुतः प्राणचलनेनैव श्वासं कुर्वन्प्राणोपाधिविशिष्टतया प्राणनामको भवति न वागाद्युपाधिष्वनुगच्छति एवमेकैकोपाधिविशिष्ट इतरत्र न गच्छति अभिवदनकाल एक वागुपाधिक एवमितरत्रापीति एव**मेकं** सदुपाधिवशा**दनेकवद्भात्य**तो न कृत्स्नं तर्हि तस्य कृत्स्नत्वं कथमित्याकाङ्क्षायामाह **एकरूपया विदास्यैक्यं** शब्दाद्युपाधिविशिष्टपरित्यागे सति कृत्स्नत्वं बृहदारण्यकेऽप्युक्तं '*आत्मानमेवोपासीत तर्ह्येते सर्व एकीभवन्ति*' तदैक्येन निर्धारितं सत्यं कृत्स्नं निर्बाधं तत्वंपदार्थोपस्थितिभूतमखण्डैकरसं दत्तेति संज्ञाऽस्य सञ्जातेति **दत्तसंज्ञितं** पूर्णं **ब्रह्मे**त्यर्थः। ***अथ सूर्यपक्षे***। '*एकैव वा*

बोद्धुं भूत्वात्रिपुत्रः स्वपदरसपरान्दिव्ययोगेन बालान्
दत्ताख्यः कार्तवीर्यं यदुमपि च समान्स्वाश्रितानुद्दधार ।
भूयोऽन्यान् श्रीपदाख्यः पुनरपि नृहरिः संज्ञया स्वीयभक्तान्
कृष्णाभीमातटस्थो जयति परगुरुः स्मर्तृगाम्येष दत्तः ।।३।।

योऽजोऽक्रियोऽस्पृहोऽप्येको बहुः स्यामिति तृष्णया। प्रकृत्या गुणमय्येदं ततानेशो जगत्प्रभुः ।।४।।

महानात्मा देवता सूर्य इत्याचक्षत ' इत्यादिनोक्तं सूर्यात्मकं महः '*सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च* ' इति एत् '*एकं सत् इंद्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः* ' इत्यादिश्रुत्युक्तदेवतारूप**धीभेदादनेकरूप भाति** ' एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ' इति श्रुतेः। ***अथ विष्ण्वादिपक्षे***। एकं सद्वैष्णवं शैवमन्यद्वा रूपं ऊर्ध्वाधरवामदक्षिणकरकलितायुधरूप**धीभेदादनेकवद्भाति** केशवनारायणादिनामव्यवहारार्हं भवति। एवं चतुर्भुजस्य विष्णोः २४, षड्भुजस्य भगवतः श्रीदत्तात्रेयस्य ७२०, अष्टभुजायाः देव्याः ४०३२०, दशभुजस्य शिवस्य ३५२८८०० भेदा ज्ञातव्याः। अन्यत्सुगमम्।।२।। ननु मुनिपुत्रो दत्तात्रेय एवंविधः कथमित्यत आह **बोद्धु**मिति अलुप्तषड्गुणैश्वर्यतयाऽविकृतेन चिदानन्दैकरूपेणात्र लोकशिक्षार्थं स्वात्मतत्त्वं **बोद्धु**मुपासनयोगाद्युपायैरुपेयं स्वात्मतत्त्वं ज्ञातुमिवेत्यर्थः। '*अधीहि भगवो ब्रह्म* ' इत्यादिश्रवणान्नात्र विगानं '*आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च* ' इति न्यायाच्चा**त्रिपुत्रो भूत्वा**ऽत्रेऽर्गृहेऽवतीर्येत्यर्थः। **स्व**स्य **पदं** पद्यते योगिभिर्गम्यत इति पदं देशाद्यनवच्छिन्नं स्वरूपं तस्याभेदेन यो **रसः** स्वरूपानन्दः '*रसो वै सः रसँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति* ' इति श्रुतेः। तत्**परान्बालान्**बालवन्मानावमानचिन्तारहितान्। सगुणपक्षे स्वचरणभजनप्रेम**रसा**सक्तान्**बाल**वद्विषयक्रीडारतान्वा कृतवीर्यस्यापत्यमर्जुनं **यदुं** ययातिपुत्रमन्यानपि **समान्** सर्वान् **स्वाश्रितान्** प्रऱ्हादालर्कप्रभृतीन् **दिव्ययोगेन** दिव्यो ज्ञानात्मक औपनिषदः स चासौ योग उपायः तच्छीलानां गर्भवासजन्मजरानिशातनात्तदवसादनाद्वा ब्रह्मण उपगमयितृत्वाद्वोपनिषत्त्वस्मरणात्तज्जन्यज्ञानं दिव्यो योगः।। '*तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि* 'इति श्रुतेः। शाब्दस्य परोक्षत्वेऽपि श्रवणमननादिना संशयभावनाऽसंभावनाविपरीतभावनातिरस्कारात्तस्यैवापरोक्षत्वप्रतिपादनात्। ध्यानयोगो वा। '*आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिं। ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत्* ' इति श्रुतेः।। तेनाष्टाङ्गयोगेन ज्ञानयोगेन च '*नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय* ' इति श्रुतेः। **उद्दधार** ऊर्ध्वं '*पादोऽस्य विश्वा भूतानि* ' इति प्रतिपादनान्मायामयप्रपञ्चाख्यात्पादादूर्ध्वं '*त्रिपादस्यामृतं दिवि* ' इति श्रुत्या निर्धारिते द्योतनामके स्वयंप्रकाशरूपेऽमृतसंज्ञिते त्रिपादशब्दबोधिते ब्रह्मण्यभेदेन **दधार** स्वभक्तेषु स्वीयं साम्यं व्यधादित्यर्थः। यद्यपि निरंशेऽनन्तेंऽशकल्पना नास्ति तथापि परप्रसिद्ध्या परो बोधनीय इति न्यायेन परप्रसिद्ध्येदं योज्यं उक्तं चाभियुक्तैः '*निरंशेऽप्यंशमारोप्य कृत्स्नेंऽशे वेति पृच्छतः। तद्भाषयोत्तरं ब्रूते श्रुतिः श्रोतृहितैषिणी* ' इति। **भूयः** पुनः कालान्तरे **श्रीपादाख्यो** भूत्वा**ऽन्यान्**भक्तानुद्दधार। **पुनरपि** कलौ **संज्ञया नरहरिर्**भूत्वा **स्वीयभक्तान्** सिद्धादीनुद्दधार। एवं सति भगवत्कृपैव स्वभक्तमोक्षहेतुः श्रुतिश्च '*एष एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष एवासाधु कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषत* ' इति। एवं सत्यपीश्वरस्य वैषम्यनैर्घृण्ये पापपुण्यसम्बन्धश्च नैव, भजनानुसारेण तत्तत्फलदातृत्वोपपत्तेः। **कृष्णा**तटे नृसिंहवाटिकासु **भीमातटे** गन्धर्वपुरे च तिष्ठतीति तथोक्तः **स्मर्तृगामी** '*दत्तात्रेयः स्मर्तृगामी* ' इति दलादनोक्तेः। एषः स्वप्रकाशापरोक्षरूपः परेषां ब्रह्मादीनामपि गुरुः '*स एव पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्* ' इति पातञ्जलोक्तेः। दत्तसंज्ञितः परमात्मा जयति स्वभक्तोद्धरणेन।।३।। **यः** पूर्वोक्तो**ऽजो** जन्माद्यतीतः '*महानज आत्मा* ' इति श्रुतेः। **अक्रियः** क्रिया कर्म उपलक्षणमेतत् क्लेशादीनां '

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देहबुद्धीन्द्रियात्मकम्। सृष्टं चराचरं तत्र संवित्पात्रं नरोत्तमः ।।५।।

इन्द्रियार्थे स्थितौ रागद्वेषौ येन जितौ स तु। दैवीसंपल्लभेन्मोक्षं तदर्थं संभवत्यजः ।।६।।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वर ' इति पातञ्जलात्। **अस्पृहो** निरिच्छ आप्तकामत्वात् '*आप्तकाम*' इति श्रुतेः। **एको**ऽद्वितीयः '*आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्* ' इति श्रुतेः ईदृशस्य जगद्भावापत्त्यसम्भवात् '*मायां तु प्रकृतिं विद्यात्* ' '*इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयत* ' इत्यादिश्रुतिभिर्मायासहितस्योपादानस्य विवक्षितत्वान्मायाङ्गीकार्या अङ्गीकृतायामपि तस्यां न चान्यसद्भावः शङ्कनीयः शक्तित्वेनावस्तुत्वेन च मायायाः पृथग्गणनानर्हत्वात् न हि भृतेभ्यो वित्तं प्रयच्छन्तः स्वामिनस्तवैतद्धनं त्वदीयशक्तेश्चैतावदिति विभज्य गणयन्ति नाप्यवस्तुभूतं चन्द्रबिम्बाद्यपेक्ष्य द्वौ चन्द्रौ वस्तुभूताविति बुद्धिमन्तो व्यवहरन्ति एतच्च व्यासेन सूत्रितं '*प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्* ' इति। योऽयं परमेश्वरो नासौ केवलं निमित्तमेव किन्तु प्रकृतिरूपोपादानमपि कुतः '*येनाश्रुतँ श्रुतं भवत्यमतम्मतमविज्ञातं विज्ञातम्* ' *इत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञानायाः* '*यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातँ स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्* ' इत्यादिदृष्टान्तस्य चानुपरोधादितिसूत्रार्थः तया **गुणमय्या प्रकृत्ये**शनशील **ईशः** सर्वज्ञत्वादिलक्षणः **प्रभुः** स्वतन्त्रो भगवान् **बहु स्याम्** भवेयं **इति तृष्णा**रूपेण सङ्कल्पेन **जगत्ततान** '*सत्यकामः सत्यसङ्कल्प* ' इति श्रुतेरीश्वरस्य सत्यसङ्कल्पाज्जगतो न मनोराज्यतुल्यत्वं सङ्कल्पस्य निरङ्कुशत्वाज्जगत्सृष्टौ नेश्वरस्य भूयान् प्रयासः '*स तपस्तप्त्वा इदँ सर्वमसृजत्* ' इति श्रुतेस्तपोरूपं साधनमपेक्षितमिति न किन्तु स्रष्टव्यपर्यालोचनं बहु स्यामित्येवंरूपं तपः न कृच्छ्रादि '*यस्य ज्ञानमयन्तपः* ' इति श्रुतेः। जगत्ततानेत्युक्तं तद्घटादिवज्जडं न किन्त्वव्यहिताग्रिमश्लोके देहबुद्धीन्द्रियात्मकमिति वक्ष्यमाणत्वात्कुलालनिर्मितमृन्मयघटशरावादिविलक्षणमभिन्ननिमित्तोपादानकं प्राणिकर्मादिनिमित्तरूपमिदं जगद्देशतः कालतो नाम्ना रूपेण च पूर्वकल्पवद्यथानुभवं सर्वैः प्राणिभिः सर्वावस्थैरनुभूयमानन्तद्गुहायां द्रष्टृश्रोतृमन्तृविज्ञात्रित्यादिविशेषवदुपलभ्यमानस्वरूपानुप्रवेशसहित**न्ततान** '*तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्* ' इति श्रुतेः। न चात्र गृहं प्रविष्टो देवदत्त इव जले प्रतिफलितः सूर्य इव वाऽनुप्रवेशोऽपरिच्छिन्नत्वादरूपत्वाच्चात्मनस्तस्माद्द्रष्टाऽऽदिलक्षण एवानुप्रवेशः।।४।। '*हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे* ' '*स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यत* ' इति श्रुतिस्मृतिभ्यो ब्रह्मणोऽपि शरीर्यन्तःपातित्वात्प्रथमजत्वाच्च तत आरभ्य स्थावरपर्यन्तं **देहबुद्धीन्द्रियात्मकं चराचरं** जगत्**सृष्टं तत्र संवित्पात्रं** ज्ञानयोग्यो **नर** एव ईश्वरेणाचेतनलोकरक्षार्थं सृष्टाभ्यो देवताभ्यस्तत्प्रार्थनया गवादिशरीरेष्वानीतेषु '*न वै नोऽयमलम्* ' इति प्रतिवारमुक्तेष्वन्ते विवेकसंपन्नमानीतं पुरुषं दृष्ट्वा ता देवता अब्रुवन्'*सुकृतं बत* ' इत्यैतरेय उक्तत्वात् तत्रैव च पूर्वमुदाहृतं '*पुरुषे त्वाविस्तरामात्मा स हि प्रज्ञानेन संपन्नतमो विज्ञातं वदति विज्ञातं पश्यति वेद श्वस्तनं वेदलोकालोकौ मर्त्येनामृतमीप्सत्येवं संपन्नतमोऽथेतरेषां पशूनामशनापिपासे एवाभिविज्ञानम्* ' इति। पुरुषो हि ज्ञानकर्माधिकारः शक्तत्वादर्थित्वादपर्युदस्तत्वाच्चार्थी विद्वान्समर्थः कर्मज्ञानयोरधिक्रियते। अद्वितीयात्मतत्त्वमनन्यलभ्यत्वादुपनिषदो विषयः '*शास्त्रयोनित्वात्* ' इति न्यायात् शास्त्रप्रमाणत्वादिति सूत्रार्थः। तदधिकारी ब्राह्मणः स च विवेकेन हे मनः किमर्थं त्वं पिशाचवत्प्रधावसि न तावत्स्वप्रयोजनार्थं तव जडत्वात्प्रयोजनसंबन्धानुपपत्तेर्विषयाणां क्षयिष्णुत्वादिदोषदुष्टानां संबन्धेन प्रयोजनानुपपत्तेर्नाऽपि चेतनार्थं तस्यासङ्गत्वात्परमानन्दस्वभावाच्चेत्येवं मनोनियन्त्र्या विषयकल्पनाशून्यया ब्रह्मास्मीत्यविषयतयैव ब्रह्मभावव्यञ्जिकया महावाक्योत्थया बुद्धिवृत्त्यात्मानं ज्ञातुं शक्नोति। अत्र **नरोत्तम**शब्देन कृतबुद्धिब्राह्मणो ग्राह्यः। उक्तं च गारुडे '*भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठास्तेभ्यो बुद्ध्युपजीविनः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।। ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः* ' इति।।५।। ननु '*परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्* ' '*श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः* ' '*क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति* ' इत्यादिश्रुतिभ्य इन्द्रियाणां पराक्त्वप्रतिपादनाच्छ्रवणादिदौर्लभ्यात्क्षुरधारावज्ज्ञानमार्गस्य प्रतिपादनात्कथं नरोत्तमः संवित्पात्र इत्याशङ्क्य ' *कश्चिद्धीरः*

गाढं प्रियोऽस्य भगवांस्तस्यायमपि तादृशः। गुप्त्या अवतरत्यस्य लीलाधाम्नाप्यजोऽव्ययः ।।७।।
युगे युगेऽवतीर्यापि कार्यान्ते व्यसृजत्तनूः। एवं ब्राह्मेऽह्नि संप्राप्तो युगाष्टाविंशपर्ययः ।।८।।
दारुणेऽस्मिन्कलौ प्राप्ते ज्ञात्वा स्वांशांशजोतयः। दयोना इत्याविरासीद्दत्तस्तु भगवान्स्वयम् ।।९।।
स कृष्णामरजातीर-विहारी लोकपावनीः। भिक्ष्वात्मनात्र सल्लीलाः कृत्वाऽदृश्योऽस्ति तत्र हि ।।१०।।
ॐकारोच्चारणं जातमात्रेण नयनं तथा। स्वर्णतामयसोऽभ्यासमृतेऽपि ब्रह्मपाठनम् ।।११।।

प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुररमृतत्वमिच्छन् ' '*यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः* ' '*यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्* ' इत्यदिश्रुतिभिरेवं प्रतिपादितत्वान्मैवमित्याह **इन्द्रियार्थे** जातावेकवचनं सर्वेष्वपीन्द्रियार्थेषु **स्थितौ** प्रकृतिसंज्ञकपूर्वजन्मसंस्कारवशात्स्थितौ अनुकूलविषयो रागः प्रतिकूलविषयो द्वेषः '*सुखानुशायी रागः* ' '*दुःखानुशायी द्वेष* ' इति पातञ्जलात् तौ **येन** भगवद्ध्यानादिना **जितौ स तु** रागद्वेषादिवर्जितः दैवी संपद्यस्य स **मोक्षं लभेत** विजितरागद्वेषस्य दैवीसंपत्तिमतो ब्राह्मणस्याज्ञानकल्पितदेहाद्यहंकारान्तबन्धेभ्यो मोक्षः। '*इन्द्रियस्येन्द्रि..*' '*दैवी संपद्विमोक्षाय* ' इति गीतोक्तेः। दैवी संपद्भगवद्गीतायां षोडशाध्याये प्रोक्ता। **तदर्थं** मोक्षयोग्यस्वभक्तप्रीत्यर्थं जन्मातीतोऽपीश्वरोऽवतरति।।६।। यतो**ऽस्य** भक्तस्य **भगवान् गाढ**मत्यर्थं **प्रियः अयमपि** भक्तस्**तादृशस्तस्ये**श्वरस्य **प्रियो** वल्लभः '*प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रिय* ' इति स्मृतेः। अतो**ऽस्य** भक्तस्य **गुप्त्यै** रक्षणाय लीलाविग्रहेणेश्वरो**ऽजोऽव्ययो**ऽपि उत्पत्तिनाशरहितोऽपि **अवतरति** हि।।७।। अस्मिन्वाराहकल्पे ब्रह्मण इदं ब्राह्मं '*नस्तद्धित* ' इति टिलोपः तस्मिन्**ब्राह्मे** दिवसे वैवस्वतमन्वन्तर इति शेषः वर्तमानत्वात्।।८।। अधर्मप्राबल्यात्कलेर्दारुणत्वं। अत्र च' *धर्मभ्रष्टा नराः सर्वे शिश्नोदरपरायणाः। अव्रता वर्णिनोऽशौचा यतयश्च कुटुम्बिनः १ ग्राम्यार्थसक्ता वनिनो लुप्ताचाराश्च गेहिनः। ऱ्हस्वाकारा महाहारा मन्दभाग्या अपत्रपाः २ स्त्रैणा बहुप्रजा मूढास्त्यक्तस्वजनसौहृदाः ३ भर्त्रवज्ञापरा नार्यः पुत्राः पितृद्रुहोऽनुगाः। पतित्यागपराः शिष्याः सर्वथा गुरुवञ्चकाः ४ अर्थतो भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छप्राया नृपाः प्रजाः। द्विजा वराटार्थमपि वेदविक्रयिणः खलाः ५ प्रतिग्रहपरान्नस्त्रीसक्ताः सिद्धिविवर्जिताः। हीनवृत्तिरताः श्रेष्ठाः हीनाश्च श्रेष्ठवृत्तयः ६ यज्ञयागविहीनेऽत्र वृष्टिरन्नं क्वचित्क्वचित्। नरा वृद्धाः षोडशेऽब्दे प्रसूता दशमेऽबला ७ दस्युप्रायाश्च भूपालाः पाखण्डप्रचुरो वृषः। शूद्रप्रायाः सर्ववर्णाश्छागप्रायाश्च धेनवः ८ आश्रमाश्च गृहप्रायाः शून्यप्राया गृहा अपि। अणुप्राया ओषधयः शमीप्राया महीरुहाः ९ विद्युत्प्राया वारिवाहाः कलावेवं भविष्यति* ' इति कलेर्दारुणत्वं एवंभूते **दारुणेऽस्मिन्कलौ प्राप्ते स्वांशो** ब्रह्मा तस्यांशा मरीचिकश्यपादयः तेभ्यो जाता इन्द्रमरुद्गणवस्वादित्यप्रभृतयः **ऊतयः** विभूतयः विभूतिरूपा देवाः त एते पापा अस्माभिरुपेक्ष्या इति दयया ऊना जाता **इति** मत्वा **स्वयं भगवान् दत्तस्तु आविरासीत्** यथा कार्यनियुक्तान् न कार्यभराक्रांताञ्छ्रान्तानुपरतोद्यमान्भृत्यान्ज्ञात्वा स्वामी अनन्यगतिके प्राप्तकार्ये स्वयमेव प्रवृत्तो भवति तं दृष्ट्वा श्रान्ता अपि भृत्याः स्वत एवानुप्रवृत्ता भवन्ति तद्वदत्राऽप्यन्यथा वैषम्यापत्तेः।।९।। सोऽवतीर्णो **भिक्ष्वात्मना** संन्यासिरूपेण नास्तिकाना**मदृश्यो**ऽपि न भक्तानां **ही**ति प्रसिद्धम्।।१०।। अघटितघटनापटीयत्वेनास्य साक्षाद्भगवत्त्वं प्रपञ्चयति सप्तभिः- **जातमात्र**स्य कफसंरुद्धत्वादुच्चारणमघटमानं लोके प्रसिद्धं जातमात्रत ॐकारोच्चारणादस्य साक्षाद्भगवत्त्वमभ्युपगन्तव्यं एवमन्यदपि **अयसः स्वर्णतां** नयनं हस्तस्पर्शमात्रेण

तत्त्वोपदेशनं पित्रोर्बाल्ये तीर्थाटनं तथा। योगाख्यापनसंन्यास-वर्त्मसंस्थापनेऽन्यथा ।।१२।।

कथं भाव्यं द्राग्घरणं प्रतीपाचरणै रुजः। तथाऽवाचोऽपि विद्वत्ता-दानं स्राग्विप्रदुर्गतेः ।।१३।।

हरणं त्रिस्थलीयात्रा-चरणं मृतजीवनम्। वशागोदोहनं विश्व-रूपाविष्करणं यतौ ।।१४।।

विद्वद्गर्वापहरणं निन्द्यास्याद्वेदवाचनम्। विश्वस्ताया अवैधव्य-दानं कर्मप्रकाशनम् ।।१५।।

जरदेधःपल्लवतां नयनं निष्कलस्त्रियै। सुप्रजस्त्वार्पणं कुष्ठ-हरणं दृष्टिमात्रतः ।।१६।।

क्षणेऽष्टग्रामगमनं छिन्नसस्यविवर्धनम्। इत्यादिकं कृतं दिव्यं करोति च करिष्यति ।।१७।।

भपार्थिवरजोऽम्ब्वंश-गणकाः सन्तु कुत्रचित्। भूयोऽगणेयोरुगुण-गुणान्गुणयितुं ह्यलम् ।।१८।।

लीलाप्रादुष्कृतगुण-रूपोऽरूपोऽगुणोप्यरम्। श्रवःसृत्या प्रविश्यांतर्भक्तस्याघं धुनोत्यजः ।।१९।।

तदेकनिष्ठः पूतात्मा जीवन्मुक्तो भवेत्ततः। निर्द्वन्द्वस्यारब्धभुजो देहः पततु वा न वा ।।२०।।

न रसादियोगेन **अभ्यासमृते** गुरोः सकाशाद्वेदपाठं विना **ब्रह्म**णो वेदस्य **पाठनम्**।।११।। **पित्रोः** मातापित्रोः '*पिता मात्रा*' इत्येकशेषः **तत्त्व**ज्ञानो**पदेशः बाल्ये**ऽष्टमेऽब्दे **तीर्थ**पर्यटनं योगोपदेशः संन्यासमार्गस्थापनं च अन्यथेत्यस्याग्रिमेण संबन्धः।।१२।। प्रतिकूलाचरणैः रोगस्य शीघ्रपरिहारोऽन्यथा **कथं भाव्यः** एवं सर्वत्र। **अवाच**श्छिन्नजिह्वस्य **स्राग्** झटिति विप्रदैन्यस्य **हरणं**।।१३।। क्षणात्**त्रिस्थलीयात्राचरणं मृत**विप्रपुत्र**जीवनं गो**शब्दः सौरभेय्यां रूढतोऽपि लुलायां लक्ष्यः कथासंदर्भात् अगोरिति पदच्छेदेन तदन्यत्वे नञो योजना वा। **यतौ** त्रिविक्रमभारत्यां **विश्वरूप**प्रकटनं।।१४।। **विद्वद्**ब्राह्मण**गर्वापहरणं निन्द्यास्यात्**पतितमुखात् **विश्वस्तायै** विधवायै **अवैधव्यदानं** नाम प्रमीततद्भर्तृजीवनं **कर्म**काण्ड**प्रकाशनं**।।१५।। **जरदेधः** जीर्णं शुष्कमौदुम्बरकाष्ठं **निष्कला** विगतार्तवा वन्ध्या वृद्धा सा चासौ **स्त्री** च तस्यै सुष्ठु प्रजा यस्याः सा सुप्रजाः' *नित्यमसिच्प्रजामेधयोः* ' इत्यसिच् सुप्रजसो भावः **सुप्रजस्त्वं** तस्य समर्पणं रजोनिवृत्तावापि वरदानेन वन्ध्यायाः कन्यापुत्रौ जाताविति प्रसिद्धं दृष्टिमात्रेण नन्दिशर्मणः **कुष्ठहरणं**।।१६।। **क्षणे** दीपावल्युत्सवे कालविशेषोत्सवयोः क्षण इत्यभिधानात् प्रेष्ठभक्तप्रार्थनयाष्टसु ग्रामेष्वेकसमयावच्छेदेन गतिः अष्टरूपधरो भूत्वैकसमयेऽष्टग्रामगोऽभवदित्यग्रे वक्ष्यति। **इत्यादिकं दिव्यं** अलौकिकं कृतं भूतकाले **करोति** वर्तमानकाले तद्वत्**करिष्यति** भविष्यत्काले।।१७।। **भा**नि नक्षत्रानि **पार्थिवरजांसि** धूलयो**ऽम्ब्वंशा** जलकणा एषां **गणकाः कुत्रचित्सन्तु** पुन**रगणेया उरुगुण**स्य ये गुणास्तान्**गुणयितुं अलं** पर्याप्तं **ही**ति श्रुतिप्रसिद्धिं सूचयति '*विष्णोर्नु कं वीर्या..*' वेवेष्टीति विष्णुस्तस्य व्यापकस्य वीर्याणि कं प्रवोचं कः प्रवोचत नु इति वितर्के यः पार्थिवानि रजांस्यपि विममे गणितवान्सोऽपि नैव। यो विष्णुस्त्रेधा विचक्रमाणस्त्रिविक्रमं कुर्वन्नुत्तरं लोकं सत्याख्यं अस्कभायदवष्टभ्य धृतवान् कथंभूतं लोकं सधस्थं, सहस्य सधादेशात्तिष्ठतीति स्थः तत्रस्थदेवैः सह वर्तमानमित्यर्थः।।१८।। **अरूपोऽगुणो**ऽप्यजो भगवान् लीलयाविष्कृतगुणा एव रूपं यस्य सो**ऽरं** द्रुतं श्रवणमार्गेणा**न्तः प्रविश्य** पापं **धुनोति** भक्तस्येति शेषः।।१९।। **ततः** पापक्षालनानन्तरं **तदेकनिष्ठः** भगवत्परायणोऽत एव **पूतः** शुद्धो रागादिरहित

(क्षेपकः)तत्राज्ञानसमुत्पन्न-द्वंद्वाभावः प्रवर्तते। प्रारब्धान्ते स यात्येव कैवल्यं पदमुत्तमम्

अयं हि ब्रह्मभूयाप्ति-सत्पथो नाक्षिगोचरः। मोहान्धानामसत्संग-विवेकानां कुसंपदाम् ।।२१।।

कृतस्ववर्णाश्रमदृष्टकर्मा विद्वान् सदिष्टो गुरुदेवभक्तः ।
इहैव भुक्तिं च लभेत मुक्तिं संन्यासनेनैव पथा स योगी ।।२२।।

एवं सुवृत्तं महिमानमीशितुः श्रुत्वास्य भीमामरजागमे ययौ ।
कश्चिद्भवभ्रष्टमनाः स्तुवन्गुरुं तप्तः शरण्यं श्रितकल्पशाखिनम् ।।२३।।

गणेशं शारदां नत्वा श्रीगुरुं नामधारकः। द्विजस्तुष्टाव घोरेऽत्र नृधाम्ना विश्रुतं हरिम् ।।२४।।

सर्वज्ञ मां न जानीषे विश्वसाक्षिन्न चेक्षसे। विलापो न श्रुतो विष्णो मम श्रुत्वाप्युपेक्षसे ।।२५।।

आत्माऽन्तःकरणं यस्य सः अपरोक्षानुभवेन जीवन्नेव मुक्तो भवेत्। **निर्द्वन्द्वस्य** दुःखेष्वनुद्विग्नमना इत्युपलक्षणलक्षितस्य स्वारब्धं भुनक्तीति तस्य **देहः पततु वा न वा** पततु।।२०।। क्षेपकः सुगमः।। **हि** निश्चयेना**यमु**क्तः ब्रह्मसायुज्यप्राप्तेः शोभनो मार्गः सत्सङ्गविचाररहितानां अतएव **मोहान्धानां** आसुरीसम्पत्त्या वर्तमानानां नृणां **नाक्षिगोचरः**। '*सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं लोचनद्वयं। यस्य नाऽस्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गग* ' इति गारुडोक्तेः। कर्णान्तविश्रान्तयोर्लोचनयोर्विद्यमानयोरपि चक्षुष्मत्ता तु सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना सत्सङ्गविवेकाख्यलोचनद्वयेनैव तदभावेऽन्ध एवामार्गगोऽनिष्टाचरणेन पश्वादियोनिगः।।२१।। कृतमनुष्ठितं स्ववर्णाश्रमोचितकर्म येन स सतां वल्लभो वाऽत एव गुर्वभिन्नेश्वरभक्तस्तदुपासकः **अनेनैव पथा विद्वान्**ज्ञानी सन् विद्वत्ते हेतुः '*अनाश्रितः कर्मफलं..* ' इति स्मृतेः। निष्कामकर्मानुष्ठानेन विविदिषाया उत्पन्नत्वादीश्वराभिन्नगुरुभक्तिरूपोपासनया चित्तैकाग्रत्वसंपन्नत्वात्तत्संपत्तौ शमदमादयोऽर्थसिद्धास्ते चात्मविद्यायामन्तरङ्गभूताः '*शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति* ' इति श्रुतेः अतो मुख्याधिकारी भूत्वा गुरूपसत्त्या कृतश्रवणादिना विद्वान्सन्निहैव मुक्तिं लभेत चापरं तैत्तिरीयोक्तोत्तरोत्तरशतगुणसार्वभौमादिहिरण्यगर्भान्तानन्दभुक्तिं लभेत। यद्यपि मुक्तौ कामादिविषयभुक्तिर्नास्ति तथापि विषयानन्दानां ब्रह्मानन्दांशरूपत्वेन तत्रान्तर्भावाद् ब्रह्मानन्दप्राप्त्या सर्वकामभुक्तिरुपचर्यते अत्राप्रतिबन्धज्ञानाप्तौ **इहैव** मुक्तिः प्रतिबन्धे तु सति जन्मान्तर एव '*ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्* ' इति न्यायात्।।२२।। **एवं** शोभनवृत्त**मीशितुर्**दत्तात्रेयस्य **महिमानं श्रुत्वा**ऽऽधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकताप**तप्तो**ऽतएव **भवभ्रष्टमना** विरक्तः **कश्चिद्** द्विजः श्रीगुरुं **स्तुवन् भीमामरजासङ्गमे** लीलया वर्तमानं स्वभक्तकल्पवृक्षं शरणे साधुं **गुरुं** लोकदृष्ट्या पादुकारूपं **ययौ**।।२३।। स **नामधारकः** सरस्वतीपंत इति प्रसिद्धो गङ्गाधरात्मजोऽभिमानपरिहाराय लोके नामधारक इति कल्पितसंज्ञासंज्ञितः नाम्नो दामरूपत्वादुक्तं चैतरेये '*तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तस्येदं वाचातन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम्* ' इति। स **द्विजः** साक्षाद्दर्शनाकांक्षी स्तुत्या गुरुः प्रसीदेदिति मत्वा तत्राविघ्नार्थं गणेशादीन्नत्वा **घोरे** कलौ नरहरिसंज्ञं श्रीदत्तं तुष्टाव।।२४।।'*यः सर्वज्ञः सर्ववित्* ' इति श्रुतेर्हे

चेज्ज्ञातेऽत्र क्व वैक्लव्यं कथं दैन्यं त्वयेक्षिते। श्रुते चेच्छुक्कुतोऽप्यर्हा त्वय्युपेक्षा दयानिधे ।।२६।।

सर्वदेवेश्वरोऽपि त्वं त्वं नोऽपि कुलदैवतम्। त्वां हित्वा कतमं याचे वेद्ॎमीशन्त्वापि वेत्सि माम्।।२७।।

सर्वोऽपि वेत्ति भूपं न भूपः सर्वन्तथोचितम्। अज्ञे तु त्वयि सर्वज्ञे कथं श्लाघ्यमिदं प्रभो ।।२८।।

नासेवकायादात्रेऽपि चेद्दास्यस्युचितं न तत्। सेवेच्छुः श्रीश किं दाता तद्वत्प्रत्युपकार्यपि ।।२९।।

ज्योतिर्द्योतमिहाब्दोम्बु सेवोनेऽर्पयति ध्रुवे। पदं बिभीषणेऽदात्रोर्दत्तं मे देह्यतः प्रियम् ।।३०।।

निधयस्तेऽनुगा दास्यः सिद्धयः श्रीस्तु किङ्करी। तत्ते किं भगवन्देयं किं कार्यं परिपूर्ण ते ।।३१।।

स्वसेवककुलं भूमौ पालयन्ति नृपा अपि। कुतो मोपेक्षसे दीनं मत्पूर्वार्चित विश्वभृत् ।।३२।।

देवेश मेऽपराधैश्चेदायास्यन्तर्विषादताम्। पत्ताडितार्भकैः किं नु प्रसू रुष्यति मानुषी ।।३३।।

सर्वज्ञ मां न जानीषेऽपि प्रश्ने गर्हासमुच्चयप्रश्नजिज्ञासानुनयेष्वपीत्यभिधानात्। **विष्णो** व्यापनशील **विलापः** परिदेवनं हेतुगर्भाणि विशेषणानि।।२५।। अन्वर्थकत्वे च सर्वेषां संबोधनानामन्यथाप्रतीतिः कथमिति शंकते चेदिति। त्वयाऽहं ज्ञात इति चेत्तर्हि त्वया सर्वज्ञेन **ज्ञाते** मयि **वैक्लव्यं** विह्वलत्वं **क्व** कुतः विश्वसाक्षिणा **त्वयेक्षिते** च **दैन्यं कथं** तिष्ठेत्। विष्णुना त्वया मद्विलापः श्रुत इति चेत्तर्हि त्वया मद्विलापे **श्रुते कुतः** शोकोऽवतिष्ठते उपेक्षितत्वादिति वदसि चेद्**दयानिधे त्वयि** भक्तोपे**क्षाऽर्हाऽपि** योग्या किं अपितु नैव योग्या।।२६।। विलम्बेन कार्यं सिद्ध्येत् कार्यविलम्बासहने देवतान्तरं भजेति चेत्त्वादृशो नान्यो नास्तीत्याह सर्वेति। **कतमं** देवतान्तरं वा बहूनां जातिपरिप्रश्न इति डतमच्। त्वमेव **सर्वदेवः** कुतः **त्वा** त्वामीशं **वेद्मि**' *सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्ट* ' इति शाब्दात्। त्वमपि भक्तं **मां वेत्सि** साक्षात्।।२७।। तर्हि **सर्वोऽपि** जनो **भूपं वेत्ति** परन्तु स **भूपो** विशेषतः सर्वजनं **न** वेत्ति यथा तथेदमपीत्यत आह अल्पज्ञे भूपे **तथा उचितं** हे विभो **त्वयि सर्वज्ञे तु इदं कथं श्लाघ्यं** श्लाघनीयं भवेत्।।२८।। अस्त्विदं **असेवकायाऽदात्रे** वा **न दास्यसि चेत्तन्नोचितं**। कुतः हे **श्रीशे**ति संबुद्ध्याऽव्याहतैश्वर्यत्वाद्दानाननुरूपत्वं औदार्यवत्त्वं च सूचितं **सेवेच्छुः दाता** भवेत्**किं** अथवा कुत्सितो दाता **किंदाता प्रत्युपकार्यपि तद्वत्**। उक्तं श्रीरामेण हनुमन्तं प्रति सीतान्वेषणोत्तरं वाल्मीकीये '*मय्येव जीर्णतां यातु उपकारो हरे तव। नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिवाञ्छति* ' इति।।२९।। तर्ह्येतादृशं दानं क्व दृष्टमित्यत आह सूर्यचन्द्राग्निरूपं **ज्योतिः** कर्तृ **द्योतं** प्रकाशं **अब्दो** मेघः सेवारहिते लोके **ध्रुवे बिभीषणे** च द्वयो**रदात्रोः पदं** राज्यं च त्वया **दत्तं अतो मे प्रियं** तव दर्शनं **देहि**।।३०।। तदा दत्तमधुना किञ्चिदादाय दास्यामीति चेद्देयाभावं कार्याभावं चाह **निधय** इति **तत्**तस्मात्**ते किं देयं** न किमप्यनुरूपं परिपूर्णत्वात्कार्यस्याप्यसंभवः।।३१।। तथापीच्छसि चेल्लोके **नृपा** मानुषा **अपि** हे **मत्पूर्वार्चित कुतो** हेतोर्**मा** माम**ुपेक्षसे** मत्कृतसेवाऽभावेऽपि मत्पूर्वार्चितत्वान्नोपेक्ष्योऽहं **विश्वभृदि**ति संबुद्ध्या स्वदायः सूचितः जगदन्तःपातित्वान्नो चेद्विश्वस्माद्बहिः कुर्विति भावः।।३२।। यद्वा मत्कृतापराधैश्चित्ते विषादतामायासि चेत् गर्भगतैरङ्कगतैर्वा**ऽर्भकै**र्लत्तया प्रहृता **मानुषी** अपि **प्रसू रुष्यति किं** अपि तु न रुष्यति त्वं तु **देवेशो**ऽतो रोषोऽनुचितः।।३३।। अपि चाभिन्ननिमित्तोपादनत्वान्मातृत्वं पितृत्वं च त्वय्येव संगच्छते लौकिकदृष्ट्या

जीवनं पितरौ यत्र भिन्नावन्यतराच्छिशोः। त्वं तूभयं मे किं कार्यं निर्घृणे विश्वभृत्त्वयि ।।३४।।
साहसं कुरु मेत्युक्त्वा यथा दारु भिनत्ति विः। तथा साहजिकैर्दोषैर्निन्दाम्यंहः करोम्यहम् ।।३५।।
आघे पुण्यवतः प्रोक्तं प्रायश्चित्तमवेक्ष्य माम्। आरात्पलायते भीत्या शार्दूलमिव शृङ्गिणी ।।३६।।
मालिन्यदोषभीत्या तु माषराशेः पृथक्किमु। कार्यं जपो मदङ्गाघात्किं करोति पृथग्घरे ।।३७।।
माटृक्पापो हरे नास्ति भवाटृङ् नास्ति पापहा। पाह्यनन्याश्रयं दीनं त्यक्त्वौदासीन्यमीश माम् ।।३८।।
द्रवन्त्यपि शिलाः श्रुत्वा मद्विलापं दयानिधे। कारुण्यं ते कुतो यातं म्रियमाणं न वेत्सि यत् ।।३९।।
एवं विलाप्य मार्गेऽसौ गुरुध्यानैकतानहृत्। तस्थौ प्रायोपवेशेन दैवात्स्वप्रस्तदाभवत् ।।४०।।
धेनुर्वत्सं यथोपैति भगवान्भक्तवत्सलः। प्राप्यावधूतवेषेण स्वप्नेऽमुं पर्यतोषयत् ।।४१।।

।। इति श्रीगुरुचरिते चरितानुसंधानं नाम प्रथमोऽध्यायः ।।

सांख्यदृष्ट्या वा यत्र पक्षिणि माता च पिता च **पितरौ** पिता मात्रेत्येकशेषः तौ **भिन्नौ** तत्र द्वयोर्मध्यादेकस्मा**च्छिशोर्**बालस्य वेदान्तानभिज्ञस्य वा **जीवनं त्वं तु** सर्वेश्वरः उपनिषत्पक्षाश्रयिणो **मे उभयमे**व *'पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामह '* इति स्मृत्या त्वयैवोक्तत्वात् हे **विश्वभृत्** मद्बुद्ध्या निर्घृण इव त्वयि भाते सति मया **किं** कर्तव्यं।।३४।। अपराधरूपं पापं किमर्थं करोषीति पृच्छसि चेत्सहजदोषादिति सदृष्टान्तमाह कश्चिद्**विः** पक्षी **मा कुरु साहसमित्युक्त्वा** स्वयं काष्ठं **भिनत्ति तथा अंहः** पापं।।३५।। तर्हि प्रायश्चित्तं कुरु चेद् *'विध्यपराधे प्रायश्चित्तम् '* इति सूत्रात्**पुण्यवत** ईषदघ**माघं** तस्मिन्समुत्पन्ने सति ऋषिभिः **प्रोक्तं** य**त्प्रायश्चित्तं** तन्**मां** सर्वपापास्पदं दृष्ट्वा **आराद्** दूरान्मत्तो **भीत्या शार्दूलं** दृष्ट्वा ततो भीता गौरिव **पलायते** ईदृशोऽहं पापी यतो भवानुपेक्षते।।३६।। जपादिना परिहर्तव्यमिति चेन्**मालिन्यदोषभीत्या तु माषराशेरन्यत् किं पृथक्कर्तुं** योग्यमस्ति अपि तु नास्त्येव तथा जपोऽपि मदङ्गमेवाघं तस्मात्किं पृथक्करोति हे **हरे** इति संबुद्ध्या तव नाम्न ईदृक् पापहरणशक्तिरिति सूचितं *'नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः। तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जन '* इति वचनात्।।३७।। तदेवाह मादृगिति स्पष्टम्।।३८।। मयौदासीन्यं कदा धृतमित्यत आह द्रवन्तीति। हृदयरहितानामपि शिलादीनां द्रवोत्पादको **मद्विलापस्**त्वयि न फलत्यतः **ते** तव **कारुण्यं कुतः** कुत्र **यातं** गतं मे वद यतो **म्रियमाणं** मां **न वेत्सि**।।३९।। **एवम**सौ नामधारको **विलाप्य मार्गे** गुरुप्राप्त्युपायभूते गुरुचिन्तने एकतानमनन्यवृत्तिकं चेतो यस्य स **प्रायोपवेश**नेन **तस्थौ** 'संन्यासवत्यनशने पुमान्प्राय ' इत्युक्तलक्षणेनोपवेशनेन गतिनिवृत्तिं चकारेति भावः। **तदा दैवात्**परवैराग्येण ध्याननिष्ठस्यापि लयोन्मुखीभावरूपप्राक्तनयोगाद्देवप्रसादाविर्भावकः प्रबोधेऽपि सत्यत्वप्रतीतिदायकः स्वप्नोऽभवत्। मिथ्याभूतस्यापि स्वप्नस्य प्रबोधेऽपि सत्यत्वप्रतीतेः किं प्रमाणमिति चेद्देवप्रसादस्य लोकप्रसिद्धत्वात् *'स्वाप्नाद्देवप्रसादादभिलषितफलं सत्यतां प्रातरेति सत्यप्राप्तिस्त्वसत्यादपि भवति '* इति पूर्वाचार्यैरुक्तत्वान्नात्र विसंवादः।।४०।। **धेनुर्**नवसूतिका वात्सल्यार्थे दृष्टान्तः **अमुं** नामधारकं।।४१।। इति श्रीगुरुचरिते चरितानुसंधानं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

तत उत्थाय नालोक्य स्वप्ने दृष्टं द्विजोभितः। ध्यात्वा व्रजन्ददर्शाग्रे दयार्द्रं योगिनं समम् ।।१।।

अभिवाद्य स तं हर्ष-पुलकोद्गमशोभितः। प्रेमगद्गदया वाचा वक्तुं समुपचक्रमे ।।२।।

माता पितोपदेष्टा भी-हर्ता भर्तापि मे भवान्। क्वायातोऽस्ति कुतो गन्ता दिष्ट्या मेऽद्याक्षिगोचरः ।।३।।

कालेऽनुकूले प्रतीपे ना स्वैः सद्भिश्च युज्यते। निःसंगस्य मुमूर्षोर्मे सर्व एवाद्य वै भवान् ।।४।।

नामधारकशर्माहं विप्रस्तप्तोऽत्र सद्गुरुम् । द्रष्टुकामोऽयने क्लेशान्मुमूर्षुरभवं प्रभो ।।५।।

इन्द्रियोच्छोषणं शोकं कोऽपि हर्तुं न मे प्रभुः। जाने त्वमेव शक्नोषि हृष्टं दृष्ट्यैव हृद्धि मे ।।६।।

।। सिद्ध उवाच ।।

योगिध्येयस्त्रिमूर्त्यात्मा यद्भक्ता भुक्तिमुक्तिगाः। योऽस्ति भीमातटेऽसौ तच्छिष्यः सिद्धो धराचरः ।।७।।

।। नामधारक उवाच ।।

सद्गुरुः सोऽपि भगवानस्माकं कुलदैवतम्। श्रद्धाभक्त्या भजे तं मां कष्टाब्धौ मज्जयत्यहो ।।८।।

द्वितीये कलशे प्रोक्तां गुरुशिष्यकथां शुभां।। धात्रा सिद्धोऽब्रवीद्भक्तिदाढ्यार्थं नामधारकं।।१।। **ततः** स्वप्नादु**त्थाय द्विजो** नामधारकः **स्वप्ने दृष्टं** पुरुषं तदानीं नावलोक्य तद्रूपं मनसि **ध्यात्वा**ऽभितो **व्रजन्नि**तस्ततः परिभ्रमन**ग्रे** दयया क्लिन्नं शत्रुमित्रादिभावराहित्यात्**समं योगिनं ददर्श** स्वप्नदृष्टमिव।।१।। **स** नामधारकः **तं** योगिनमभिवाद्य **वक्तुमुपचक्रमे** आरेभे।।२।। लोके उपकारत्वेन मात्रादयः सन्तु संप्रति तु **मे** मम मात्रादिर्**भवाने**व परमाल्हादकत्वात् यद्वा '*त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसि* ' इति श्रुतेर-ध्यात्मज्ञानदानसमर्थत्वाद्भवानेवात्रमात्रादिः। ज्ञानिन ईश्वराभिन्नत्वाद्वा मात्रादिभावना '*पिताहमस्य जगतो माता* ' इति स्मृतेः। भवान्**क्व** कुत **आयातोऽस्ति कुतः** क्व वा **गन्ता** दर्शनाल्हादात्संभ्रमोक्त्याऽव्ययव्यत्ययः सार्वविभक्तिकत्वेन वा योजना **अद्य मे दृष्टिगोचर** एतद्**दिष्ट्या**।।३।। **ना** पुरुषोऽर्थाद्य**नुकूले काले स्वैः** स्वजनैः **प्रतीपे** प्रतिकूले काले **सद्भिश्च युज्यते** स्त्रीपुत्रादिसङ्गरहितस्य **मुमुर्षोर्मे** म**माद्य भवान्सर्व एव वै** निश्चयेन।।४।। शर्मशब्दे ब्राह्मणजातिप्रतीतावपि पुनर्विप्रशब्दोक्तिर्वेदाध्यायित्वद्योतनार्थित्वं ज्ञापयितुं **अयने** मार्गे।।५।। सर्वेन्द्रियाणामुच्छोषणं **मे शोकं हर्तुं कोऽपि** ब्रह्माऽपि **न** समर्थ इति मतं तथाप्यद्य मे शोकं हर्तुं **त्वमेव शक्नो**ऽषीति **जाने** अत्र हेतुः हि यतः भवतो **दृष्ट्यैव** दर्शनेनैव **मे हृद्**धृदयं **हृष्टम्**।।६।। उत्तरमाह योगिध्येय इति। **त्रिमूर्त्यात्मा** ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः श्रीदत्तः अथवा सच्चिदानन्दात्मिका त्रयी आत्मा स्वरूपं यस्यासौ आत्मा **असौ सिद्ध**नामकः **तस्य** श्रीदत्तस्य **शिष्यः धराचरः** योगबलादव्याहतस्वैरगत्या पृथिवीपर्यटनशीलः क्वायातोऽस्ति कुतो गन्तेत्यस्योत्तरमिदं।।७।।।।श्रीगुरवे नमः।। **सोऽपि** स एव **सद्गुरुर्भगवा**न्छ्रीदत्तः **अहो** इति खेदे।।८।। **अन्येषु** ब्रह्मादिषु **प्रभुः** स्वभक्तरक्षणसमर्थः **अस्मिन्**गुरौ **रुष्टे कोऽपि न** समर्थः नैतावत्किन्तु **लौकिकेऽपि** गुरौ रुष्टे कोऽपि न प्रभु-

।। सिद्ध उवाच ।।

स सद्गुरुस्त्रिमूर्त्यात्मा रुष्टेष्वन्येष्वयं प्रभुः । कोऽपि नास्मिन्लौकिकेऽपि नेष्टोऽस्यासीति भाति मे ।। ९।।

संशयात्माऽश्रद्दधानः क्वापि कैर्नैव गोप्यते। त्र्यात्मश्रीगुरुस्त्यक्त-संशयात्मेश्वरोऽत्र कः ।।१०।।

।। नामधारक उवाच ।।

रुष्टेऽपि लौकिके नेशः कोऽपीत्युक्तं वदस्व चेत् । प्राग्वृत्तं चैष त्र्यात्मा कथं मे छिन्धि संशयम् ।।११।।

।। सिद्ध उवाच ।।

पुरा निराशिषोऽप्येको बहुस्यामित्यभून्मतिः। या योगनिद्रितस्यैषा विष्णोर्मायाऽनया जगत् ।।१२।।

सृष्टं प्राङ्नाभिकमलादभवच्चतुराननः। ददौ तस्मै विनीताय वेदांस्तैरसृजज्जगत् ।।१३।।

कृतं त्रेतां द्वापरं च सधर्मं व्यसृजत्कलिम्। वर्णाश्रमविभागेन मनुष्यस्थितिहेतवे ।।१४।।

वैराग्यज्ञानवान्सत्यः सत्यवाग्यज्ञसूत्रभृत् । यज्ञसंभारधृक्त्रेता द्वापरस्तु सुशास्त्रभृत् ।।१५।।

रिति पूर्वाभिमर्शः **अस्य**सद्गुरो**रिष्टः** सेवादिना तच्चित्ताल्हादको **नासि** न भव**सीति मे भाति**।।९।। यतोऽयमात्मा स्थूलदेहरूपो वा सूक्ष्मदेहरूपो वा ताभ्यां व्यतिरिक्तो वा व्यतिरिक्तत्वेऽपि अणुपरिमाणो वा मध्यमपरिमाणो वा सर्वगतो वा जडो वा द्रव्यबोधात्मको वा चिद्रूपो वेश्वरादन्यो वेश्वर एव वा प्रपञ्चः सत्यो वा मिथ्या वा मोक्षसाधनं कर्माणि वा योगो वा ज्ञानं वेत्यनन्ताः स्वबुद्धिदोषजन्याः सांसर्गजा बहुविधशास्त्राभ्यासेनोत्पादिताश्च संशया आत्मन्यन्तःकरणे यस्य स **संशयात्मा** तथाविधोऽपि पुनर्वेदान्तवाक्येष्व**श्रद्धधानः** पुरुषः **क्वापि कै**रपि **न** रक्ष्यते त्रयीमूर्त्यात्मको यः **श्रीगुरुस्**तेन परि**त्यक्तश्चा**सौ संशयात्मा च तस्येश्वरोऽनुग्राहकः **कोऽत्र** न कोऽपीत्यर्थः।।१०।। **लौकिकेऽपि** गुरौ **रुष्टे कोऽपि नेश** इति यद्भवतोक्तं तत्**प्राग्वृत्तं चेन्मे वदस्व चा**परं **एष** श्रीदत्तः **त्र्यात्मा कथं** जातस्तदपि वदस्व कृपां कृत्वा **मे** मम **संशयं छिन्धि**।।११।। उत्तरमाह पुरेति।। **पुरा** नैमित्तिके कल्पे **निराशिषो** निरिच्छस्य तर्हि **बहु स्यामिति** स्वकीयबहुभवनेच्छारूपा **मतिः** कुतः। अत आह प्रलये सर्वप्राणिवासनासहितमनसां योगः सैव निद्रा संहाररूपत्वात् साऽस्य सञ्जातेति **योगनिद्रितः** 'तदस्य *संजातमितितच्* ' तस्य **विष्णोर्**व्यापनशीलस्येश्वरस्य फलोन्मुखीभूतप्राणिकर्मभि**र्बहु स्यां** भवेयं इति मतिरूपकामो जात इति ज्ञेयम् श्रुतिः '*तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे...कामस्तदग्रे समवर्तताधि...सीत्* ' इति।। इच्छाज्ञानक्रियाशक्त्यात्मकस्य **विष्णोरेषा** मिथ्याभूताऽपि कार्यानुमेयत्वाद्भावरूपा मायोक्ता अनया ईक्षणलेशेन चोदितया सचेतनवत्प्रतीयमानयोपादानभूतया तेन विष्णुना **जगत्**सृष्टमित्यग्रेणान्वयः अत्र तेन विष्णुना सृष्टमित्यनेन जन्मादेरन्यनिष्ठत्वेऽपि तत्कारणत्वं विष्ण्वाख्यब्रह्मणि कल्पनया संबद्धं तटस्थलक्षणं भविष्यति '*जन्माद्यस्य यत* ' इति न्यायात्।।१२।। सर्जनमाह। **प्राक्**प्रथमं **विनीताय** नम्राय **तस्मै** ब्रह्मणे **तैर्**वेदैस्तदुक्तप्रकारैर्**जगदसृजद्** ब्रह्मेति शेषः। '*धाता यथापूर्वमकल्पयत्* ' इति श्रुतेः। तस्मै वेदान्ददावित्यनेन स एव वेदस्य कर्ता भवितुमर्हति अनादित्वान्नार्वाचीनाः '*शास्त्रयोनित्वात्* ' इति न्यायात्।।१३।। वैराग्यध्यानादिधर्मसहितं **कृतं** यजनादिधर्मोपेतां **त्रेतां** परिचर्याधर्मोपेतं **द्वापारं** कीर्तनधर्मोपेतं कलिं एवं **सधर्मं** ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः इति वर्णविभागः ब्रह्मचारी गृही वनी संन्यासी चेत्याश्रमविभागः तेन।।१४।। **सत्यः** कृतयुगन्तस्य वैराग्यज्ञानसत्यवत्त्वात्तस्मिंस्तादृशी प्रजा एवमन्यत्रप्यूह्यम्।।१५।। त्रेतादिषु तिसृषु धर्मस्यैकैकपादऱ्हासोऽतएव द्वापारे द्विपादधर्मोपेते

पुण्यपापोग्रताशान्ति-दयानैष्ठुर्यसंयुतः। कलिस्तु लिङ्गजिह्वाभृत्कच्चरोऽसन्पिशाचवत् ।।१६।।
एकैकं यतकालं कौ प्रेरयद्विश्वहेतवे। प्रयाणकाले कलये प्रोक्तां गुरुकथां शृणु ।।१७।।

।। कलिरुवाच ।।

कथं यास्ये वृषपर-प्रशान्तजनसेविताम्। भुवं श्रुत्वापि मे चेतः खिद्यतेऽङ्गं च तप्यते ।।१८।।
छेत्ताहं धर्मसेतोः शुक्कलहद्वेषतापकृत्। भ्रातान्यस्त्रीस्वहर्ता मे षड्-द्विड्भाक्प्राणवल्लभः ।।१९।।
क्षतव्रतोऽपि मे प्राणो नास्तिकोऽधार्मिकोऽपि मे। ये स्थिता भारते वर्षे धार्मिकास्ते ममारयः ।।२०।।
गुर्वीशदेवसद्विप्र-पितृधर्मपरेक्षणात् । बहिर्यान्त्यसवो मेऽपि योगिज्ञानीक्षणात्क्षणात् ।।२१।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

आसुर्या संपदा गच्छ वशा लोका भवन्ति ते। शतायुर्हि नरः कोऽपि धन्यो भूयान्न तं जहि ।।२२।।
गुर्वीशदेवसद्विप्र-पितृधर्मपरो नरः। त्वद्दोषैर्लिप्यते नैव गुरुभक्तो विशेषतः ।।२३।।
नाम्बुनाब्जदलं यद्वल्लिप्यतेऽघैर्गुरुप्रियः। नैव जेतुं गुरोर्भक्तं देवा अपि न शक्नुयुः ।।२४।।

।। कलिरुवाच ।।

गुरुर्वरोऽमरेभ्योऽपि कथं वद हि यत्प्रियः। केनाप्यजेय इत्येतत्प्राग्वृत्तं क्वापि चेद्वद ।।२५।।

पुण्यपापादिमिश्रत्वं **तु**शब्देन कलेर्युगत्रयवैलक्षण्यं सूचितं **लिङ्गजिह्वाभृत्**त्वेन तस्मिञ्जैह्वौपस्थ्यसुखासक्ताः प्रजाः प्रायो दृश्यन्ते **कच्चरो** मलदूषितो **असन्**नसाधु **पिशाचवत्** दुश्चेष्टत्वात् ।।१६।। **यतकालं** कृतस्याष्टाविंशतिसहस्राधिकसप्तदशलक्षवर्षात्मकःकालः। त्रेतायाश्चतुःसहस्राब्दोनत्रयोदशलक्षात्मकः द्वापारस्य चतुःषष्टिसहस्राधिकाष्टलक्षाब्दात्मकः कलेर्द्वात्रिंशत्सहस्राधिकचतुर्लक्षाब्दात्मक एवं नियतकालमे**कैकं** युगं **कौ** भुवि **विश्व**स्थिति**हेतवे प्रेरयद्** ब्रह्मा **प्रोक्तां** ब्रह्मणेति शेषः।।१७।। ब्रह्मणा भुवं गच्छेत्युक्तो धर्माद्भीता **कलिरुवाच** धर्मपरो यः **प्रशान्तजन**स्तेन **सेवितां भुवं कथं यास्ये** इत्यन्वयः तल्लोकवार्तां **श्रुत्वाऽपि मे** मम **चित्तं खिद्यते अङ्गं च** तप्तं भवति।।१८।। यतो**ऽहं धर्म**मर्यादाया उच्छेत्ता **शुक्** शोकः शोकादिकर्ता चाहं स्वभावतः यश्च परस्त्रीपरधनहर्ता स च **मे भ्राता** कामादिषड्रिपुसेवकश्च **मे** मम **प्राणवल्लभः** प्रियः।।१९।। **क्षतव्रतो**ऽवकीर्णी सो**ऽपि मे प्राणः** प्राण इव वल्लभः परलोको नास्तीति मतिर्यस्य स **नास्तिकः** धार्मिकादन्यो**ऽधार्मिकः** एतावपि **मे** प्राणवत्प्रियौ **अरयः** शत्रवस्तापकरत्वात्।।२०।। **असवः** प्राणाः ततोऽपि **योगिज्ञानि**वीक्षणेनेत्यर्थः **क्षणात्**क्षणेनैवासवो **बहिर्यान्ति** मृतावस्थोत्पद्यत इति भावः।।२१।। दम्भदर्पादिलक्षणा आसुरी सम्पत्तया **गच्छ** भुवमिति शेषः।।२२।। **गुर्वा**दिपरेषां मध्ये **विशेषतो गुरुभक्तः त्वत्कृतदोषैर्न लिप्यते**।।२३।। **यद्व**ज्जलेन पद्मपत्रं न लिप्यते तद्वद**घैर्गुरुप्रियो** गुर्वनुग्रहपूर्णः **नैव** लिप्तो भवति। *'तद्यथा पुष्करपलाशमापो न श्लिष्यन्त '* इत्यादिश्रुतेः **गुरोर्भक्तं जेतुं** विघ्नैरभिभवितुं **देवा अपि** समर्था न भवेयुरितरेषां तु का कथा।।२४।। **कथं** देवेभ्यो**ऽपि** श्रेष्ठो **हि** यस्माद्**यत्प्रियो** गुरुभक्तो जेतव्यमात्रोऽपि नेति

।। ब्रह्मोवाच ।।

ज्ञानं गुरुं विना न स्याद्यस्य कस्यापि निर्जराः। गुरुभक्त्यैव सिद्धार्थाः स्युस्ततोऽप्यधिको गुरुः ।।२६।।

पुरा गोदावरीतीरे वेदधर्मैकदा मुनिः । बहुशिष्यप्रशिष्यस्तन्निष्ठां ज्ञातुमिदं जगौ ।।२७।।

तपसा क्षालितं पापं बहु प्रारब्धमस्ति मे । तद्भोग्यं व्याधिरूपेण काश्यां कस्तत्र रक्षकः ।।२८।।

गलत्कुष्ठाभिभूतस्य मम दंशादिवारणैः। क्षालनैरन्नदानैश्च प्रेम्णा कस्तत्र रक्षकः ।।२९।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा तूष्णीं तस्थुर्भियाखिलाः। तत्रैको दीपको नाम शिष्य ऊचेऽभिवाद्य तम् ।।३०।।

न शेषयेद्दोषशेषं मोक्षविघ्नं भवत्कृतम्। ममात्मनैव भोक्ष्येऽहमनुज्ञां दातुमर्हसि ।।३१।।

।। गुरुरुवाच ।।

भोक्तव्यं स्वयमेवाघं नान्यद्वारेण तत्क्षयः। अतः कष्टेन तद्भोक्ष्ये काश्यां शक्तोऽसि चेदव ।।३२।।

एतत्क्वाऽपि प्राग्वृत्तं चेत्तर्हि **वद**।।२५।। **निर्जरा** इन्द्राश्विमुखा **अपि** देवाः प्रजापतिदध्यङ्मुख**गुरुभक्त्यैव सिद्धार्थाः** मुक्ताः **स्युस्ततोऽप्यधिको गुरुः**। ननु स्वर्गस्थानामिन्द्रादीनां कथं संसारः तं विना मोक्षो न घटत इति चेत् '*ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनापिपासाभ्यामन्ववार्जत्ता एनमब्रवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठता अन्नमदाम* ' इति श्रुतेर्देवतानामप्यशनायापिपासादिरूपसंसारपातश्रवणान्मोक्षार्थं गुरूपसत्तिर्युक्ता '*आचार्यवान्पुरुषो वेद* ' '*नैषा तर्केण मति...ष्ठ* ' इत्यादिश्रुतेः। तर्हि कर्मानुष्ठानादिक्रमेण मनुष्या मुक्तिं व्रजन्ति देवानां तु देवतान्तराभावात्कर्माभावेऽन्तःकरणशुद्ध्याद्यभावात्कथं गुरूपसत्त्यैव मोक्ष इति चेद्यथोपनयनादिसंस्कारो मनुष्याणां वेदाधिकारार्थं देवानां तु स्वयंप्रतिभातवेदत्वान्नोपनयनादि संस्काराः (तथा) तेषां यज्ञादिकर्मादि नापेक्षितम् शुद्धान्तःकरणत्वात्। ये ह्यशुद्धान्तःकरणास्तेषां अन्तःकरणशुद्ध्या विविदिषोत्पादनार्थं कर्मकाण्डोक्तैः कर्मभिर्देवतायजनं युक्तं तथा चोक्तं सूत्रकृता '*तदुपर्यपि बादरायणः संभवात्* ' इति मनुष्याणामुपरि स्वर्गादौ वर्तमाना ये देवास्तेषामपि ज्ञानाधिकार इति बादरायणाचार्यो मन्यते। कुतः संभवात्। मघवा ब्रह्मचर्येण चतुर्वारं प्रजापतिं गुरुमुपास्य ज्ञानं लब्धवान्। अश्विनौ दध्यंचं गुरुमुपास्याश्वशिरसो मधुब्राह्मणाख्यविद्यां प्रापतुरिति सूत्रार्थः। तस्मान्निर्जरा अपि गुरुभक्त्यैव सिद्धार्थाः स्युः ततोऽप्यधिको गुरुरिति भावः।।२६।। अत्रार्थे इतिहासमाह पुरेति। **तन्निष्ठां** समवेतशिष्यप्रशिष्यनिष्ठां **जगौ** उवाच।।२७।। '*धर्मेण पापमपनुदति* ' '*तपसा कल्मषं हन्ति* ' इति श्रुतेः **तपसा बहु पापं क्षालितं** अवशिष्टं **मे भोग्यं** भोगार्हं 'चजोः कु घिण्यतोः' इति कुत्वं **प्रारब्धमस्ति** प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयात्तत्पापरूपं प्रारब्धकर्म विविधा आधयः कर्मभोगनिमित्ता मानसी व्यथा यस्य तद्व्याधि ईदृशं रूपं स्वरूपं यस्य तेन मया। यद्वा शिष्यपरीक्षार्थे कर्मभोगस्वीकारेऽपि विगत आधिर्यस्मात्तादृशं रूपं यस्य तेन विवेकित्वाद्भोगस्य स्वप्नतुल्यत्वाद् दुःखेष्वनुद्विग्नमनस्तया **काश्यां तद्भोग्यं तत्र** भवतां मध्ये **को** मम **रक्षको** भवेत्।।२८।। सर्वेऽपि भविष्याम इति चेच्छृणुत मे **गलत्कुष्ठा**र्दितस्य प्रेमपूर्वकं **को रक्षको** भवेत्।।२९।। तस्माद्गुरोर्**भिया** भयेनोभयथाऽपि शप्स्यतीति मत्वा छात्रास्तूष्णीं **तस्थुः तं** गुरु**मभिवाद्योचे** वक्ष्यमाणमुवाच।।३०।। **भवत्कृतं** पापं मम देहेनैवाहं **भोक्ष्ये अनुज्ञा**माज्ञां।।३१।। **अन्यद्वारेण** पुत्रशिष्यादिप्रतिनिधिद्वारेण तस्य कर्मणः **क्षयो न**। '*एकः प्रजायते जन्तुरेक एव विलीयते। एकोऽपि भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्* ' इति गारुडोक्तेः। **अव** मां रक्ष।।३२।। **इति गुरुणोक्तमाश्रुत्या**ङ्गीकृत्य '*या गतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसां। सा गतिः सर्वजन्तूनां गौतमीतीरवा-*

इत्युक्तं गुरुणाश्रुत्य काशीं तेन समं ययौ । कुष्ठी भूत्वापि सोऽन्धोऽघं बुभुजे भेज एष तम् ।।३३।।

गुरुर्गलद्व्रणत्रस्तः कार्याकार्याज्ञ एव सन् । प्रतीपाचरणैः शिष्यं शश्वद्व्यर्थं व्यताडयत् ।।३४।।

स सेवावसरे भिक्षां सेवां भिक्षाक्षणेऽपि तम् । ययाचेऽहनदप्राप्तौ नाखिद्यत सदाप्यसौ ।।३५।।

दत्तां याचितकां भिक्षां मुनिस्तद्दोषकीर्तनात्। भूमौ प्रक्षिप्य रुष्टोऽन्नं स्वाद्वानीहीत्युवाच तम् ।।३६।।

भिक्षार्थमपि गच्छन्तं निवर्त्योचे कृता न मे। विण्मूत्रोत्सर्गसंशुद्धिः क्व यास्यश्नन्ति मक्षिकाः ।।३७।।

यथोक्तं कर्तुमुद्युक्तं निवार्योचे न वेत्सि माम्। क्षुधा कण्ठगतप्राणं देह्यन्नं पाप मे द्रुतम् ।।३८।।

भुक्त्वा याचितकान्नं स कदाचित्तात पुत्रक। श्रान्तोऽसि मे स्वपेत्युक्त्वा सुप्तेऽस्मिन्क्षुधितोऽब्रवीत् ।।३९।।

एवं संछलितोप्येष भेजेऽखेदोऽनिशं गुरुम्। विस्मृतस्वात्मयात्रोऽपि मत्त्वा सर्वामरेश्वरम् ।।४०।।

गाङ्गाम्भो गुरुपादाम्भः साक्षाद्विश्वेश्वरं गुरुम् । सर्वानन्दनिधिं बुद्ध्वा मनो न क्वाप्यचोदयत् ।।४१।।

गुरुभक्तिसुपूतोऽभूज्ज्ञात्वा विश्वेश्वरोऽप्यमुम् । प्राप्योचे वरदोऽस्मीष्टं वरं वरय तेऽस्तु शम् ।।४२।।

दीपकोऽप्याह किं कार्यं वरेण गुरवस्तु मे । रुक्शान्त्यै वरमिच्छन्ति यदि पृष्ट्वा वृणोमि तत् ।।४३।।

सिनां।। रेवातीरे तपः कुर्यान्मरणं जाह्नवीतटे। दानं दद्यात्कुरुक्षेत्रे तत्त्रयं गौतमीतट ' इति गौतम्या माहात्म्येऽपि विशेषतः काश्याः प्रभावं दर्शयितुं शिष्यपरीक्षकस्य मुनेर्गौतम्याः सकाशात्काश्यां गमनं कुष्ठादिरोगस्वीकरणं च तथा च वक्ष्यति ' *काशीप्रभावमादेष्टुं शिष्यभावं परीक्षितुं। वेदधर्माऽभवत्कुष्ठी पापशङ्का कुतो मुनेः*' इति। **एष** शिष्यस्**तं** गुरुं।।३४।। **स** गुरुः **सेवावसरे** सेवाकाले याचितस्य भिक्षादेस्तत्कालमप्राप्तौ सत्यां **तं** शिष्यम**नहदद**ताडयत **असौ** शिष्यस्तथापि **नाखिद्यत** खिन्नो न बभूव।।३५।। **याचितकां** याच्ञया प्राप्तां **भिक्षां** भिक्षान्नं इदं शीतलं न मधुरप्रायं इति दोषकीर्तनेन।।३६।। **निवर्त्य** परावर्त्य मम विष्ठामूत्रोत्सर्गनिरासादिना सम्यक्शुद्धिर्न कृताऽतो मक्षिकादयः पूतिगन्ध्यागत्य मामश्नन्ति त्वं त्वधुना **क्व यासीत्यूचे**।।३७।। **यथोक्तं** दुर्गन्धपसारणं **कर्ममुद्युक्त**मासक्तं दीपकं अलं क्षालनेनेति **निवार्योचे क्षुधा कण्ठगतप्राणं मां न वेत्सि किं** तस्मात् हे **पाप मे** मह्यं **द्रुतमन्नं देहि** द्रुतमिति शीघ्रं वा '*अन्नायुर्वा एष यद्वायुः* ' इति श्रुतेरन्नबन्धनप्रयुक्तस्य प्राणस्यायुर्हेतुत्वाद्वाजिसनेयिभिरन्नं दामेति वाक्येनान्नस्य प्राणबन्धनरज्जुमननात् अन्नशैथिल्ये च '*तद्यथाम्रं वौदुम्बरं वा पिप्पलं वा बन्धनात्प्रमुच्यत एवमेवाङ्गेभ्यः संप्रमुच्यत* ' इत्यादिश्रुतिभिः प्राणस्याप्युत्क्रमणमाम्नातं तस्मादगतिकस्य मम मरणेन हत्या भविष्यतीति वक्तुं शिष्यस्य पापेति संबोधनं।।३८।। तनोतीति तातः तत्संबुद्धौ हे **तात** शिष्यस्यापि शिष्यप्रशिष्यद्वारा गुरुपरम्पराविस्तारकर्तृत्वात्तातेति संबोधनं युक्तं **मे** मदर्थं अस्मिञ्छिष्ये **सुप्ते** सति **क्षुधितः** सन्नन्नं देहीत्य**ब्रवीत्** ।।३९।। **एष** शिष्यः **विस्मृता स्वात्मयात्रा** स्वदेहयात्रा येन सः किं पुनरन्यत्।।४०।। **क्वापि** विषयान्तरे देवयात्रादौ च **नाचोदयत्** प्रैरयत् अत्र मनःशब्देन कामसङ्कल्पादीनपि देवतान्तराय न प्रैरयदिति सूचितम्। सर्वदेवोऽयमिति निश्चितत्वात् वक्ष्यति च श्रीसद्गुरुर्देवदेव इत्यादि।।४१।। **गुरुभक्त्या** सुतरां **पूतः** पवित्रो**ऽभूत अमुं** दीपकं **प्राप्या**ऽऽगत्य उवाच **ते** तुभ्यं श्यति दुःखं तनूकरोति **शं** कल्याणमस्तु।।४२।। **यदि** रोग**शान्त्यै वरमिच्छन्ति** तर्हि तान्**पृष्ट्वा वृणोमि** वर्तमानसा-

इत्युक्त्वैत्य शशंसास्मै गुरुस्तप्तोऽब्रवीत्स तम् । भोगादेव क्षयं नेष्ये सेवायां मे बिभेष्यपि ।।४४।।

तच्छ्रुत्वा स तथेत्युक्त्वा शिवमेत्याब्रवीद्वरम् । न गुर्वसंमतं काङ्क्षे तच्छ्रुत्वागात्स दुर्मनाः ।।४५।।

निर्वाणमण्डपं गत्वा प्राह विष्णुमुखामरान्। चण्डो मुनिर्वेदधर्मा रुग्णस्तच्छिष्य उत्तमः ।।४६।।

गुरुभक्तः कम्बलाश्वतरासन्नोऽस्ति दीपकः। वरं दातुमगां प्रेम्णा नाददे स गुरूद्यतः ।।४७।।

इति श्रुत्वेशवाक्यं तं द्रष्टुकामो हरिर्ययौ। विष्णुर्दीपकमाहाङ्ग वरदोऽस्मि वरं वृणु ।।४८।।

तपसाष्टाङ्गयोगैश्च सूपायैर्मननादिभिः। उपवासैर्व्रतैर्योगैर्धर्मैर्गम्योऽस्मि नो नृणाम् ।।४९।।

गुरुसद्विप्रभक्तस्य मन्मयाभ्यन्तरात्मनः। निर्द्वन्द्वस्याऽपि साध्व्याश्च विष्णुर्दृश्योऽस्मि सर्वदा ।।५०।।

तस्मात्कष्टेन सुभग सद्गुरुः सेवितस्त्वया। तेनैव परितुष्टोऽस्मि वरं वरय मत्प्रिय ।।५१।।

।। दीपक उवाच ।।

श्रीसद्गुरुर्देवदेवो यतो ज्ञानं ततोऽमृतम् । अतोऽधिकं किमस्माकं भवन्ति त्वादृशा वशाः ।।५२।।

चेद्विश्वेशो यथा यातस्तथा गन्तुं न रोचते। गुरावेवाचलां भक्तिं देह्यन्यन्न वृणेऽध्रुवम् ।।५३।।

मीप्यात्।।४३।। इति विश्वेश्वरं प्रत्युक्त्वा गुरु**मेत्या**गत्या**स्मै** गुरवे तच्**छशंस क्षयं नेष्ये** प्रारब्धकर्म **मे सेवायां** मत्तो **बिभेष्यपि** किं अपिः प्रश्ने।।४४।। गरु**णासंमतं** तैरननुमतं **स** विश्वेश्वरः वरानादराद्विमनाः।।४५।। **चण्डो**ऽत्यन्तकोपनः **उत्तमो**ऽनुच्यमानोऽपीङ्गितज्ञ उत्तमया शिष्यवृत्त्या गुरुसेवायां प्रवृत्तः।।४६।। **नाददे** न स्वीचकार **गुरूद्यतः** गुरुतत्परः।।४७।। **तं** दीपकं **अङ्ग** हे दीपक।।४८।। कृच्छ्रादितपसा **मननादिभिः** सुगमोपायैः न **गम्योऽस्मि** न प्राप्योऽस्मि।।४९।। **सन्**साधुः **मन्मयं अभ्यन्तरं** यस्य तस्मिन्भक्ते **आत्मा** चित्तं यस्य **साध्व्याः** पतिव्रतायाः।।५०।। शोभनो **भगो** भाग्यं यस्य तत्संबुद्धौ न ह्यस्माभिर्दृष्टो भाग्यहीनो भविष्यतीति सूचितं **तेनैव** सद्गुरुसेवनेनैव।।५१।। श्रीमांश्चासौ गुरुश्चेति गन्धद्विपवत्समासः एतेन सद्गुरोः श्रीशब्दोपलक्षितसर्वैश्वर्ययुक्तत्वेन स्वभक्ताभीष्टसंपादने सामर्थ्यं सूचितं। देवानां देवः रामकृष्णाद्यवतारे त्वयाऽपि गुरुभक्तिरस आस्वादित इति ज्ञापितं **यतो** गुरोः **ततो** ज्ञानान्मोक्षः **अतो** गुरो**रधिकं किं** न किमपीति भावः। **त्वादृशास्**त्वमिव दृश्यन्त इति त्वादृशाः। त्यदादिषु दृश इति कञ्। **वशा** अधीना **भवन्ति** बलिवाहिका भवन्ति '*सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति* ' इति श्रुतेः। अस्मै विदुषेऽङ्गभूताः सर्वे देवाः बलिमिष्टार्थमावहयन्तीति श्रुत्यर्थः। इयान् गुरुभक्तिमहिमा।।५२।। यथा विश्वेश्वरो देवो वरमदत्वैव गत**स्तथा गन्तुं** त्वां न **रोचते चेत्त**र्हि **गुरावेवाचलां** निश्चलां **भक्तिं देहि** सैव ध्रुवा सोक्षपर्यवसायित्वात् '*यस्य देवे परा..त्मन* ' इति श्रुतेः। **अन्यदध्रुवं** स्त्रीधनादि **न वृणे** त्वया दत्तमपि न स्वीकुर्वे ज्ञानप्रतिबंधकत्वात्।।५३।। सर्वविषयभुक्तिर्दत्ता चेत्तर्हि चित्तविक्षेपणासावधानेन वा मुक्तिर्न स्यादित्यत आह मुक्तिश्च ते दत्ता। विषयान्

।। विष्णुरुवाच ।।

श्रद्धाभक्तिः सदा तेस्ति दास्येऽप्यन्यदयाचितम्। दत्ता भुक्तिश्च ते मुक्तिः सत्कीर्तिः स्मर्तृतापहृत् ।।५४।।

यः स्तौति सद्गुरुं भक्त्या वेदोपनिषदादिभिः। तुष्टिर्मे तेन दास्यैश्च सान्निध्यं तस्य मे सदा ।।५५।।

कालादपि भयं नास्ति कुतोन्यस्मात्तु सिद्धयः। स्युस्तद्दास्योऽधिकं नात इत्युक्त्वान्तर्दधे हरिः ।।५६।।

शिष्योऽपि गुरवे सर्वं शशंस स तु तत्क्षणम्। प्रीतः सुखाकरकरं दधौ तन्मूर्ध्नि सद्गुरुः ।।५७।।

तेन सद्योऽभवच्छिष्यो वेदवेदाङ्गपारगः। कुशलः स्मर्तृतापघ्नो जीवन्मुक्तोऽखिलप्रियः ।।५८।।

काशीप्रभावमादेष्टुं शिष्यभावं परीक्षितुम्। वेदधर्माऽभवत्कुष्ठी पापशङ्का कुतो मुनेः ।।५९।।

इत्याद्या भूरिशो वृत्ताः कले गुरुकथा भुवि। वक्तृश्रोतृमलघ्न्योऽतो भक्तं मा प्रेक्ष्य गां व्रज ।।६०।।

इत्यादिष्टः कलिर्धात्रा भुवमेत्य तथाऽकरोत् । महिमा लौकिकस्यायं किं पुनस्त्र्यात्मसद्गुरोः ।।६१।।

तत्सात्त्विकीं धृतिं लब्ध्वा दृढभक्त्यैव सद्गुरुम् । भजन्ति कृतकृत्यास्ते भवन्ति न ससंशयाः ।।६२।।

तस्माद्यदीच्छसि श्रेयः श्रद्धयाऽसंशयं भज । गुरुं नृधाम्ना क्रीडन्तं भवाब्धेः पारमेष्यसि ।।६३।।

।। इति श्रीगुरुचरिते गुरुशिष्यचरितानुकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

सेवमाना अप्यस्मद्वरदानेन भोगानासक्ता हि भवादृशा न विक्षिप्ता भवन्ति अतो मुक्तिं यास्यन्ति नापरे विषयासक्तत्वात् मुक्तस्याऽपि भोगयुक्तस्य लोके निन्दा स्यादिति चेन्न प्रत्युदस्मद्वरदाने स्मर्तृतापहन्त्री सत्कीर्तिर्भविष्यतीति भावः।।५४।। ईश्वरभावेन **स्तौति तेन** गुरुस्तवनेन दास्यादिभिश्च **तुष्टिः** संतोषः।।५५।। सर्वसंहारकात्**कालादपि भयं** तस्य **नास्ति कुतोऽन्यस्माद्**विघ्नादेस्तु कुतो भयं नेत्यर्थः। **सिद्धयस्तु तस्य दास्यो**ऽतःपरमधिकदानं नेत्युक्त्वा **हरि**रन्तर्धानं गतः।।५६।। **शशंस** कथयामास **स** गुरुस्**तु** सुखस्याकरं खनिं यद्यपि '*ज्ञप्तेस्तु कारणं राम शिष्यप्रज्ञैव केवलम्* ' इति वासिष्ठोक्तेस्तथापि '*परिपक्वमला ये तानुत्सादनहेतुशक्तिपातेन। योजयते परे तत्त्व* ' इत्युक्तेर्गुरुप्रसादोऽपि ज्ञप्तेः कारणमभ्युपगन्तव्यं अतो वदति तेनेति।।५७।। **तेन** शक्तिपातेन **सद्यस्**तत्क्षणेन शाब्दपरब्रह्मवेत्ताऽभूदित्यर्थः।।५८।। **मुनेर्**मननशीलत्वात्**कुतः पापशङ्का**।।५९।। हे **कले वृत्ता** जाताः वक्तुः श्रोतॄणां च पापहर्त्र्योऽतो हेतोर्गुरोर्**भक्तं मा प्रेक्ष** एवं वृत्तस्त्वं **गां** भूमिं गच्छ।।६०।। **आदिष्ट** आज्ञप्तः **लौकिकस्य** गुरोः कैमुतिकन्यायेन **सद्गुरो**र्दर्शयति **किं पुनरि**ति।।६१।। एवमितिहासेन दृष्टान्तमभिनीयार्थान्तरन्यासेन द्रढयति **तत्**तस्मात्कारणात् '*धृत्या यया धारयते..*' इत्युक्तलक्षणां सात्त्विकीं धृतिम्।।६२।। **श्रेयो** मोक्षम् **भवाब्धिं द्राक्तरिष्यसी**ति पाठः।।६३।।

टीकायां द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

अथ तृतीयोऽध्यायः।।

।। नामधारक उवाच ।।

त्र्य्यात्मासौ कुतो जातो भूमौ नर इवेश्वरः। यं ब्रवीषि परं ब्रह्म तन्मे शुश्रूषवे वद ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यत्ते भक्तिरधोक्षजे । संजाता भवबन्धघ्नी हर्षो मेऽतीव वर्धते ।।२।।

कोऽपि गां पर्यटन्तं मां न पृच्छति गुरोः कथाम् । त्वयाद्य भक्तचन्द्रेण बोधाब्धिर्मे प्रपूरितः ।।३।।

अनन्ताः सन्त्यनन्तस्य लीलाः प्रश्नमृतेपि ताः। न वक्तुर्यान्ति निजधी-परिणामावधिं स्मृतिम् ।।४।।

कलौ तु नास्तिका मर्त्यास्तत्कथाश्रवणात्मकम्। प्लवं तर्तुं भवाब्धिं नो विदुर्मज्जन्त्यतोऽत्र ते ।।५।।

यत्राम्ब्ववित्तु तृष्णोर्मिर्ग्रहाः कामादयो ध्वनिः। भोगोऽपारेऽत्र नौस्त्वेषा गुरुर्नेता कृपामरुत् ।।६।।

तस्माद्दिष्ट्या साधनानि प्राप्तान्यत्राप्ययत्नतः। तरिष्यसि भवाब्धिं स्त्रागतो वक्ष्ये कथाः शृणु ।।७।।

इत्युक्त्वाऽमरजाभीमासङ्गमे ह्युपविश्य सः । गुर्वधिष्ठितकल्पद्रु-मूलेऽस्मै प्राह सत्कथाः ।।८।।

अथ तृतीयोऽध्यायः। *अनसूयासत्त्वहृत्यै तृतीये स्त्रीरितेश्वराः। गर्भा जाता इति प्रोक्तमम्बरीषकथापि च।।१।।* कृतप्रश्नयोरेकस्योत्तरं लब्धमपरस्य नृधाम्ना क्रीडन्तमित्युद्देशमात्रेणोक्तस्य विस्पष्टज्ञानाय पृच्छति त्रयीति। योगिध्येयत्वत्रिमूर्त्यात्मत्वप्रतिपादनात् **यं परं ब्रह्म ब्रवीषि असौ त्र्य्यात्मा** । **तद्** जन्मकारणम्।।१।। प्रश्नमभिनन्दति धन्य इति।।२।। लोके चन्द्रदर्शनोद्भवोऽब्धेः पूरो बहिर्यातीति प्रसिद्धं तद्वदिहापीति भावः।।३।। **अनन्तस्य** सर्वा **लीला** वक्तुं न शक्यन्ते कश्चिद्यथामति वक्तुं प्रवृत्तश्चेत्**प्रश्नं** विना **ता** अपि **स्मृतिं न यान्ति** ।।४।। **भवाब्धिं तर्तुं तत्कथाश्रवण**रूपं नावं **नो विदुः** विदो लटो वेति झेर्जुसादेशः। **ते** नास्तिकाः **अत्र** भवाब्धौ।।५।। **यत्र** भवाब्धौ उदकमज्ञानं **ऊर्मि**रायताशा **ग्रहाः** मकरादयः सुखभोगजन्यो हर्षशब्दः दुःखभोगजन्यो हाहाशब्दः **एषा** गुरुकथा **नेता** नौनायकः **गुरुः कृपा**ऽनुकूलवायुरिति पूर्वाचार्यैस्त्वेवं रूपकं- '*महानविद्याकामकर्मप्रभवदुःखोदकः तीव्ररोगजरामृत्युमहाग्राहोऽनादिरनन्तोऽपारो निरालम्बो विषयेन्द्रियजनितसुखलवलक्षणविश्रामोऽपि पञ्चेन्द्रियार्थतृण्मारुतविक्षोभोत्थितानर्थशतमहोर्मिर्महारौरवाद्यनेकनिरयगतहाहेत्यादिकूजिताक्रोशनोद्भूतमहारवः सत्यार्जवदानदयाऽहिंसाशमदमधृत्याद्यात्मगुणपाथेयपूर्णज्ञानोडुपः सत्सङ्गसर्वत्यागमार्गो मोक्षतीर ईदृग्भवाब्धि* ' रिति।।६।। **साधनानि** सद्गुरुलाभसच्छ्रवणरूपाणि **स्त्राक्**शीघ्रं।।७।। **कल्पद्रुर**श्वत्थः **गुर्वधिष्ठित**त्वात् तस्य कल्पवृक्षत्वं कल्पितभक्तमनोरथपूरकत्वाद्वा '*तस्मात्तं विधिना साध्वि भज द्राक्सिद्धिदोऽस्ति सः। पुत्रादिकामसिद्ध्यै नो विलम्बोऽक्षय्यपुण्यदात्* ' इत्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात् **अस्मै** नामधारकाय शिष्यत्वेन स्वीकृताय **सत्कथाः** शोभनाः कथाः सतो भगवतः कथा वा।।८।। अस्मिन्लोके विषयिणो मुमुक्षवो मुक्ताश्चेति त्रयस्तेषां सर्वेषामपि विषयभूतं श्रीगुरुचरितमित्याह विषयिणां श्रवणेन पठणेन वाऽभीष्टार्थप्रदं मुमुक्षूणां संसाररोगनिवर्तकं भेषजं मुक्तानां निरुपमाह्लाद-

मुमुक्षुभेषजं मुक्त-जीवनं विषयीष्टदं । श्रीगुरोश्चरितं वाग्हृद्दूरत्वाद्वच्मि तेऽल्पकम् ।।९।।
जगत्येकार्णवीभूते शेषतल्पश्रितोऽस्पृहः। नारायणो जगत्स्त्रष्टुं मायामुद्भाव्य सोऽण्डजम् ।।१०।।
स्त्रष्टारं व्यसृजत्सृष्ट्यै सप्तर्षीन् सोऽपि मानसान् । तत्रैकोऽत्रिस्तपस्वीशो यस्याभूद्भगवान्सुतः ।।११।।
ऋषेरत्रेस्तपोऽर्थस्य पातिव्रत्यविभूषिता। आसीद् भार्याऽनसूयाख्या त्रिलोक्यां विश्रुता सती ।।१२।।
जातोर्वी मृदुलार्काग्री शीतौ मन्दो मरुद्भिया। तस्या देवाः पदापाय-भ्रान्त्याऽऽपुः शरणं हरिम् ।।१३।।
एकदा नारदोऽप्येत्य तद्धर्मान्ब्रह्मविष्णवजान्। प्राब्रवीन्नेदृशी साध्वी सर्वदाऽभ्यागतप्रिया ।।१४।।
इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्य विषीदन्त्य उपस्थिताः। तद्देव्योऽसहमाना द्राग्बभूवुर्मूर्छिता भृशम् ।।१५।।

कत्वेनैव जीवनभूतं कृतघ्नत्वनिवृत्तिद्वारा वा जीवनसाफल्यकारणं यदुक्तं '*आजीवितं त्रयः सेव्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः। पूर्वं ज्ञानाप्तये पश्चात्कृतघ्नत्वनिवृत्तय* ' इति। श्रीगुरुचरितशब्देनात्र त्रितयसेवनमपि द्योतितं तस्य गुर्वीश्वरवेदान्तप्रतिपादकत्वात् '*यतो वाच..*' इति श्रुते**र्वाग्हृद्दूरत्वात्ते** तुभ्यं **अल्पकं** निजधीपरिणामावधि।।९।। **एकार्णवीभूते** नैमित्तिकप्रलये द्विपरार्धावसाने ब्रह्मणो दिनान्ते शिष्यत इति शेषोऽनन्तः स एव तल्पं शय्या तच्छ्रितः निरीहः। नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणि तान्येवायनं प्राप्त्युपायो यस्याथवा नराणां समूहो नारन्तदेवायनं यस्य स '*आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः*' इति वचनात्। **माया** सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वाच्या प्रकृतिः तां **उद्भाव्य** स्वेक्षणवशात्कार्यक्षमां कृत्वा**ऽण्डज**मण्डादुत्थितं **स्त्रष्टारं** ब्रह्माणं **व्यसृजन्**निद्रानन्दाद्बोधयामास न तूत्पादितवान् प्रलयस्य नैमित्तिकत्वात्। प्राकृतिके प्रलये तूत्पादयति। किमर्थं **सृष्ट्यै** सृष्ट्युत्पादनार्थम्। **सोऽपि** प्रबुद्धो ब्रह्माऽपि मायावेशाद्रजआधिक्येन स्वात्मनि परिच्छिन्नत्वेन कर्तृत्वाद्यध्यस्य मनःसङ्कल्पमात्रेण मरिच्यत्रिक्रतुपुलस्त्यपुलहाङ्गिरोदक्षाख्यान् **सप्तर्षीन**सृजत् अपि शब्दाद् ब्रह्मनिष्ठाः सनत्कुमारसनकसनन्दनसनातननारदा अपि ग्राह्या **तत्र** ते**ष्वेकः** तेषांमध्ये एकोऽन्वर्थकस्तपस्वीवरिष्ठः कोऽसौ यस्यात्रेः सुतः साक्षाद्भगवान् श्रीदत्त आसीत्।।१०।।११।। ईश्वरस्य जगत्सृष्टृत्वे प्रमाणभूताः श्रुतयः पूर्वमुदाहताः। ईश्वरस्य कर्तृत्वादिकं श्रुतिभिस्तात्पर्येण न प्रतिपाद्यते अध्यारोपं विनाऽपवादो न विधीयतेऽत एव कर्तृत्वादिनिषेधार्थं मायाविलसितं प्रतिपाद्य '*निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरञ्जनं* ' '*एकधैवानुद्रष्टव्यं* ' '*नेह नानास्ति किञ्चन*' '*यस्मिन्सर्वा...*' '*अतोऽन्यदार्त्तं* ' इत्याद्यपवादेन द्वैतस्य प्रतिषेधनात्। अलमस्तिविस्तरेण प्रकृतमनुसरामः। अत्र श्रीदत्तात्रेयस्य प्राधान्यात्तदवतारं कथयितुमुपोद्घातमाह ऋषेरिति। **ऋषेर्**मन्त्रद्रष्टुः '*अत्रिः पञ्चमे मण्डल* ' इत्युक्त्वात् **तपोऽर्थस्य** बहुज्ञत्वात् उक्तं च ग्रहज्ञानावसरे '*यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य १ न्ये अशक्नुवन्* ' अयं मन्त्रः शाकलशाखायां षड्विंशाऽध्याये तप एव अर्थोऽस्य तस्यात्रेः पतिव्रताधर्मेणैव विशेषतो भूषिता नत्वाभरणैः '*कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनं। चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणाम्* ' इति रसाकरोक्तेऽपि अनसूयायाः पातिव्रत्यमेव भूषणमितीयांश्चित्रो विशेषः। न विद्यतेऽसूया यस्याः सा तन्नामिका **विश्रुता सती** पतिव्रता '*अत्रेर्यथाऽनसूया स्यात्* ' इति श्रुतेः। त्रयाणां लोकानां समाहारः '*तद्धितार्थ* ' इति तत्पुरुषः सङ्ख्या पूर्वद्विगुः संज्ञायां ङीप् द्विगोरेकवचनमित्येकवचनं तस्यां **त्रिलोक्यां**।।१२।। '*भयादस्याग्निस्तपति* ' इति श्रुतेरधिकारिका अप्यग्न्यादयो यस्मात्परमात्मनो भीता नियमेन स्वस्वकार्यादौ प्रवर्तन्ते स परमात्मा '*एष सेतुर्विधरण* ' इति श्रुतेर्धर्मरूपः स यया स्वाधिकारेण पूर्णत्वेन धृतोऽतस्या भीतिहेतुत्वं पृथिव्यादीनां युक्तमेव। **ऊर्वी** पृथ्वी **शीतौ** तथा प्रतीयमानौ स्वपदभ्रंशशङ्कया**ऽपुः** प्रापुः।।१३।। तस्या अनसूयाया धर्मान् पतिशुश्रूषाऽभ्यागतातिथ्यादिरूपान्।।१४।। **उपस्थिताः** समीपस्थाः **तेषां**

पतिव्रतामानिनीस्ताः सावित्रीश्रीश्वरीस्त्रयः। आश्वास्यातिथिवद्भूत्वा रोषाच्छप्तुं सतीं ययुः ।।१६।।

पतिव्रतापि तान्दृष्ट्वा स्वाश्रमाभ्यागतान्सुरान्। प्रत्युद्गत्वा समानीय स्वासने संन्यवेशयत् ।।१७।।

वीजितान्कृतपच्छौचान्सूपविष्टान्जगौ सती। स्वागतं वोऽद्य किं कार्यं मुनिस्तु तपसे गतः ।।१८।।

त ऊचुः साध्वि नो विद्‍्मस्तपःसक्तमना मुनिः। कदाऽऽयातीत्यतो देहि क्षुधितेभ्योऽन्नमाश्वलम्।।१९।।

इति श्रुत्वा गिरस्तेषां तथेत्युक्त्वा गृहं गता । पात्राण्यासाद्य तेभ्योऽन्नं परिविष्टं न्यवेदयत् ।।२०।।

त आहुः साध्वि नो देहि नग्ना भूत्वेत्यपेक्षितम्। नेदं चेद्रोचतेऽन्यत्र गच्छामः क्षुधिता इतः ।।२१।।

तच्छ्रुत्वापि प्रहस्यैषा ऋषेः सङ्गात्तपस्विनः। पूताया मम कामेन किं भवेच्चेत्तथाऽकृते ।।२२।।

शप्त्वा गच्छन्ति विमुखा महान्तोऽमी ममात्मजाः। इति स्वगतमुद्भाव्य तथेत्युक्त्वांशुकं जहौ ।।२३।।

ब्रह्मविष्णवीश्वराणाम् शक्तिभूताः **देव्यः** पत्न्यः मात्सर्येण तद्धर्मोत्कर्ष**मसहमानाः** सत्यो **द्राक्** श्रवणमात्रेणैव **भृशं मूर्छिता बभूवुः**।।१५।। जगति वयं पतिव्रता इति मन्यमानास्**ता आश्वास्य त्रयः** ब्रह्मविष्णवीशाः अतिथय इव **भूत्वा रोषात्सती**मनसूयां **ययुः** स्त्रीसङ्गिनामीदृशी गतिः स्त्रीबुद्धिः प्रलयाय चेति लोके दर्शयितुं प्रवृत्ता बभूवुः अन्यथाऽऽत्मारामाणा-मीश्वराणां किं कार्यमिति भावः। अरोषादिति वा छेदः स्त्रीमतानुसारिणोऽपि तीर्थमाहात्म्यद्योतनायारोषेण शमेन ययुः '*नारी तीर्थं पतिव्रता* ' इति स्मरणात्।।१६।। **पतिव्रतापि** अन-सूयापि **सुरान्**ब्रह्मविष्णवीशानतिथिवेषेण स्वाश्रमाभ्यागतान्**दृष्ट्वा प्रत्युद्गत्वा** संमुखीभूय सत्कारपुरःसरं गृहं **समानीय** शोभने आसने **संन्यवेशयत्**।।१७।। व्यजनेन **वीजितान्कृत**पादक्षालनान्सुखेनोपविष्टान्तान्कुशलप्रश्नपूर्वकं **सती** प्राह **वः** युष्माकं बहुवचनस्य वसादेशः **स्वागतं अद्य** मया **किं कार्यं** तदाज्ञापयन्तु भवन्त इति भावः। ननु गृहप-तिनैवेदं प्रष्टव्यं न स्त्रियेत्यत आह गृहपतिर्**मुनिस्तु तपसे** तुमर्थाच्च भाववनाच्चेति चतुर्थी तपस्तप्तुं गतः अतः प्रार्थये।।१८।। **ते** देवाः **ऊचुः** तपसि '*मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः। तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते* ' इति स्मृतेर्बाह्यान्तःकरणसमाधानरूपं तपो ब्रह्मप्राप्तिद्वारमिति निश्चयेन तस्मिन् तपस्यासक्तं मनो यस्य स **मुनिः कदा**ऽऽश्रममा**यातीति नो विद्मः** अत **आशु** शीघ्रं **क्षुधितेभ्यो**ऽस्म्यभ्यम**लं** पर्याप्त**मन्नं देहि**।।१९।। **तथेति** दास्यामीत्यु**क्त्वा गृहं** पाकगृहम्।।२०।। तदाऽन्नं परिविष्टमिति तया निवेदितं श्रुत्वा **ते** देवा अप्यूचुः हे **साध्वि** त्वं **नग्ना** दिगम्बरा **भूत्वा नो**ऽस्माभ्यमन्नं **देहीत्य**स्माभि**रपेक्षितं इदं** तुभ्यं **न रोचते चेत्**तर्हि **क्षुधिता** वयं **इत** आश्रमादन्यत्र **गच्छामः** धर्मसत्त्वपरीक्षार्थमियमुक्तिः।।२१।। तत **एषा**ऽनसूया तदसमञ्जसमपि श्रुत्वा प्रहासं कृत्वाऽऽत्मन्यमन्यतेदं। **तपस्विन ऋषेः** समागमाच्छुद्धान्तःकरणाया **मम कामेन** पातिव्रत्यहरं विकारजातं **कि भवेन्**न किमपीति भावः। तर्ह्यतिथिसत्कारकामनयापि परपुरुषसन्निधौ नग्नत्वेन व्यवहरणं प्रायश्चित्तायेति चेत् '*कामोऽकार्षीत् कामः करोति नाहं करोमि कामः कर्ता नाहं कर्ता कामः कारयिता नाहं कारयिता* ' इत्ययं मन्त्रो विवेकिनं प्रति कामात्मनोः संबन्धाभावं बोधयन्नविवेकिनः प्रायश्चित्तार्थो भवत्येवेत्यभिप्रेत्य **पूताया मम कामेन किं** इत्युक्तं अन्यच्च तैर्यथोक्तं **तथा** मया **अकृते**ऽननुष्ठिते।।२२।। अस्माञ्**छप्त्वा विमुखाः** सन्तो **महान्त** एते **गच्छन्ति** '*स इद्भोज* ' इति मन्त्राभ्यामन्वयव्यतिरेकाभ्यां सत्कारास-त्कारयोरिष्टानिष्टफलप्रतिपादनात्तथैव कार्यं **अमी** अतिथयो **ममात्मजा इति स्वगतमुद्भाव्य** कल्पयित्वा **तथा** दास्यामि न गन्तव्यमित्यु**क्त्वांशुकं** परिहितवस्त्रं **जहौ** नग्ना बभू-

तदैव तेऽभवन्बाला निर्विकारा अपीश्वराः । जगत्सृडीश्वरहराः पातिव्रत्यप्रभावतः ।।२४।।
तान्सा तथाविधान्प्रेक्ष्य सचित्राभूद्धृतांशुका । पयः प्रसूत्या इवास्यास्तदालं स्तनतोऽस्रवत् ।।२५।।
सपद्येवाद्भुताविष्टा प्रेम्णा हृष्टतनूरुहा । प्रत्येकं पाययामास क्षीरं तेऽपि पपुर्मुदा ।।२६।।
जगदुत्पत्तिकरण-सुश्रान्त इव विश्वसृट् । पीत्वा पतिव्रतास्तन्यं परमां शान्तिमाययौ ।।२७।।
विश्वम्भरो विश्वरक्षा-क्रियात्रस्त इवामलम्। पतिव्रतापयः प्राश्य पीनां विश्रान्तिमाविशत् ।।२८।।
हरस्तु विश्वसंहार-कर्मतष्ट इव क्षणात् । सत्यौधस्याशनात्तृप्तः पुष्टिवर्धनतां ययौ ।।२९।।
स्वधर्मज्ञाततत्सत्त्वा पाययित्वाऽपि तान्पयः। सा जगौ तत्कथोद्घातं प्रेम्णा विन्यस्य पालके ।।३०।।
अत्रान्तरे वनादेत्य श्रुतगीतः सतीमुखात् । सर्वं श्रुत्वेश्वरान्ज्ञात्वा ध्यानान्नत्वाऽस्तुवन्मुनिः ।।३१।।
विश्वसर्गस्थितिप्रान्त-निदानं विश्वसाक्षिणम्। विष्णुं विश्वमयं वन्दे विश्वाद्यं विश्वसंग्रहम् ।।३२।।

व।।२३।। **तदा**ऽव्यवहितकाल **एव जगत्सृड्** ब्रह्मा ईशनं रक्षणं तच्छीलो विष्णुः **हरो** जगत्संहर्ता रुद्रः पातिव्रत्यधर्मसामर्थ्यात्। पञ्चम्यास्तसिलिति पञ्चम्यर्थे तसिः।।२४।। **सा**ऽनसूया **तथाविधान्**बालान् **सचित्रा** साश्चर्या **हृतं** परिहृतं **अंशुकं** वस्त्रं यया। धृतवस्त्रा वा। **प्रसूत्या इव** जातापत्याया इव।।२५।। **सपदि** तत्क्षणं **अद्भुताविष्टा** आश्चर्यप्रयुक्ता **प्रेम्णा** पुत्रस्नेहेन जातरोमाञ्चा **तेऽपि** बालाः।।२६।। सुतरां श्रान्त इव ब्रह्मा स्तने भवं **स्तन्यं** दुग्धं शरीरावयवाद्यत्।।२७।। **विश्वम्भरो** विष्णुः **पीनां** विपुलां **आविशत्**प्राविशत्।।२८।। **हरो** रुद्रः **विश्वसंहार**रूपकर्मणा **तष्टस्**तनूकृतः क्षीण **इवे**ति यावत् तनूकरणे तक्षः **सत्या** ऊधसि भवं दुग्धं शरीरावयवात् ऊधस्यमेवौ**धस्यं** स्वार्थेऽण् पुष्टिं वर्धयतीति पुष्टिवर्धनस्तस्य भावस्तत्ता तस्य भावस्त्वतलाविति तल् स्वयं पुष्टः सन्नन्येषामपि पुष्टिं वर्धयतीति भावः '*सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्* ' इति मन्त्रलिङ्गात्।।२९।। स्वधर्मेण पातिव्रत्येन तत्प्रभावेणेति यावत् ज्ञातं तेषां बालानां सत्त्वं बलं यया सा इमे जगत्प्रभव इति विदिता सती **तान् पयः पाययित्वा सा**ऽनसूया **प्रेम्णा पालके विन्यस्य** तेषां देवानां **कथोद्घातं** कथाभ्यागानम् **जगौ**।।३०।। **एत्या**गत्यानसूयामुखाच्छ्रुतं गीतं गानं येन सः पुनरनसूयामुखात्सर्वं **श्रुत्वा** ध्यात्वा च **ध्यानाद्**ध्यानप्रभावात्तान्बाला**नीश्वरान्ज्ञात्वा नत्वा** प्रणम्य च **मुनि**रत्रिस्ता**नस्तुवत्**।।३१।। स्तुतिमेवाह विश्वेति विश्वसर्गादेरादिकारणं उपबृंहितेन रजसा **सर्ग** उत्पत्तिः सत्त्वेन च **स्थितिः** पालनं दुष्टनिग्रहशिष्टानुग्रहलक्षणं तमोगुणेन च **प्रान्तः** प्रलयः एषां **निदान**मादिकारणं अभिन्ननिमित्तोपादानरूपं **विश्वस्य साक्षिणं** तद्गुहायां साक्षित्वेन वर्तमानं अलेपकं '*नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा* ' इति '*द्वा सुपर्णा* ' इति श्रुतेः *द्वा* द्वौ सुष्ठु पर्णं गतिः सहायं वा ययोस्तौ '*पर्णं गतौ सहाये च* ' इति विश्वः। *सयुजौ* समानौ *सखायौ* च जीवेश्वरौ *समानं वृक्षं* '*ओव्रश्चू छेदने* ' इति धातोस्तत्त्वज्ञानेन छेत्तुं योग्यत्वाद्रूपकेण वृक्षं शरीरं *परिषस्वजाते* आलिङ्गयतः *तयोः* एको जीवः *पिप्पलं* कर्मफलं *स्वादु अत्ति* अतो बध्यते *अन्यः* ईश्वरस्तु *अनश्नन्नभिचाकशीति* साक्षित्वेन पश्यतीति श्रुत्यर्थः। तर्हि परिच्छिन्नः किं नेत्याह **विष्णुं** विष्लृ व्याप्ताविति धातोर्व्यापकं देशकालवस्तुपरिच्छेदरहितं, ईदृशोऽहं चेन्मत्तो द्वितीयत्वेन प्रतीयमानस्य जगतः का गतिरित्यत आह विवर्तन्यायेन विश्वस्याद्यं कारणं **विश्वमयं** त्वदतिरिक्तविश्वाभावात् **विश्वसंग्रहं** स्वरूपानुभवेन लयहेतुत्वात् अध्यस्तस्य जगतोऽधिष्ठानत्वेन त्वमेव सर्वस्वरूपः नह्यारोपितानां

तपस्तप्तं यदर्थं स त्वमेकोऽपीश लीलया । त्रिधा भूत्वात्मनात्मानं स्वैर्गुणै रमयस्युत ।।३३।।
अध्यारोपापवादाभ्यां समुद्भूतं जगत्ततः। अहंममाभिमानेन पार्थक्यं तस्य नापरम् ।।३४।।
इति स्तुवति तस्मिंस्ते पालके बालरूपतः। स्थिता अप्याद्यरूपैः स्वैः स्थित्वोचुस्तं वरं वृणु ।।३५।।
स प्राह साध्वीं सुभगे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । त्वद्भक्त्याप्ता मनोदूरा अतोऽभीष्टं वरं वृणु ।।३६।।
साऽप्याह सुतपः सृष्ट्यै त्रिधाभूतेन वै भवान् । सृष्टोऽमुनामुमेवातः पुत्रत्वेन वृणोत्वजम् ।।३७।।
ऋषिः सोऽपीदमेवेष्टं मत्वा वव्रे तदेव हि । विष्णुः सर्वात्मनाऽहं ते मया दत्तः किलाब्रवीत् ।।३८।।

सर्पजलधारादण्डमालाबलीवर्दमूत्रित्वादीनां अधिष्ठानभूतां रज्जुमन्तरेणान्यत्किञ्चिद्वास्तवं रूपं तद्वत्त्वमिति भावः तं त्वां **वन्दे**।।३२।। **यदर्थं तपस्तप्तं स त्वमेकोऽपि लीलया** सत्त्वादिगुणैर्ब्रह्मादिरूपेण **त्रिधा भूत्वा** संख्याया विधार्थे धा इति धा प्रत्ययः **आत्मना** स्वकल्पित**गुणै**र्भावै**रात्मानं रमयसि**।।३३।। एवंभूतं यत्तव स्वरूपमविकृतं ततः स्वरूपाद**ध्यारोपापवादाभ्यां** जगदुत्पत्तिविलयौ तौ यथा ईक्षणादिप्रवेशान्तेश्वरसृष्टिरूपः जाग्रदादिप्रबोधान्तजीवसृष्टिरूपश्चाध्यारोपस्तेनाध्यारोपेण भूतभौतिकरूपं जगत्समुत्पन्नं रज्जु-सर्पवत्। अस्य दृश्यमानस्य जगतो देहादा**वहमि**त्यभिमानेन गृहस्त्रीपुत्रधनपश्वादौ **ममे**त्यभिमानेन ततोऽविकृतात्तव स्वरूपात्**पार्थक्यं** पृथक्त्वं सद्वितीयत्वं भवति **तु**शब्देन तदध्यस्तं मिथ्याभूतमिति सूचयति **अपवादे**नाद्वितीयात्मसाक्षात्कारेणा**परं** नामरूपविभागापन्नं द्वैतं **न** नास्ति देहं प्रविष्टो जन्ममरणजागरादिभिः संसारभूतो जीवः कदाचिदीश्वरानुग्रहेण गुरुशा-स्त्रप्रसादाच्च दृश्यमानान्याकाशादीनि भूतानि प्राणिदेहाश्च कुत उत्पद्यन्ते केन वा रक्ष्यन्ते कुत्र वा प्रलीयन्त इत्येवं शास्त्रं विविच्य सर्वसंसारस्य मायाकल्पितत्वात्परं ब्रह्मैव तत्त्वमि-त्यपरोक्षानुभवेन निश्चिनोति सो**ऽपवादः** तेनापवादेन परब्रह्मस्वरूपिणो भवतोऽपरमन्यन्न '*एकधैवानुद्रष्टव्यं* ' '*नेह नानास्ति किञ्चन* ' इति श्रुतेः। तर्ह्येतादृशस्येदृशी दशा कुत इति चेत्पूर्वमेवोक्तमेकोऽपि लीलया त्रिधा भूत्वाऽऽत्मानं रमयसि नेदं वास्तवं तव रूपं किं तु लीलेति भावः। तर्हि ममैव गृहे किमर्थमित्यत्रापि पूर्वोक्तमेव तपस्तप्तं यदर्थमिति लोके स्वभक्तवशतां दर्शयितुं मत्तपो निमित्तीकृत्यैतैर्बालरूपैर्लीलया प्रादुर्भूतोऽसि कुतस्तवोत्पत्तिः को वा तवोत्पादकः कोऽपि नैव तथा च श्रुतिः '*न जायते म्रियते..*' अतएव भक्तानुजि-घृक्षया तवावतार इति।।३४।। **इति तस्मिन्** मुनौ **स्तुवति** सति **ते** देवा अंशेन **पालके बालरूपतः स्थित्वा अपि** स्वकीयैः पूर्वरूपैः **स्थिता** अत्रेरग्रत इति शेषः **वरं वृणु** इति **तम**त्रिमु**चुः**।।३५।। मुनिरग्रतः स्थितान्तान्दृष्ट्वा तेषां वचनं च श्रुत्वाऽयं पतिव्रताधर्मप्रभाव इति मनस्यानीय **सो**ऽत्रिः **साध्वी**मनसूयां वक्ष्यमाणं **प्राह** ईश्वरमातृत्वापन्नत्वात् हे **सुभग** इति संबुद्धिः यतो मनसाऽपि विदूरा **ब्रह्मविष्णुमहेश्वरास्**तव **भक्त्याऽऽप्ताः** प्राप्ताः '*पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया* ' इति वचनादेतेषां लब्धये भक्तिरेव कारणं **अतो**ऽनन्यलभ्येभ्यो एभ्यो**ऽभीष्टं वरं** वृणीष्व।।३६।। एवं ब्रुवतोऽत्रेर्वचनं श्रुत्वा ऋषेस्तपसः प्रभावोऽयं मद्भक्तिः पातिव्रत्यं वा किमुतेति मनस्यानीय **सा**ऽनसुया**ऽपि** स्वपतिं वक्ष्यमाणं प्राह शोभनं निष्कल्मषं तपो यस्य तत्संबुद्धौ भोः **सुतपः** ईश्वरोद्देशेनानुष्ठितत्वात्सात्त्विकत्वाच्च तपसो निष्कल्मषत्वं **त्रिधाभूतेनामुना** परमेश्वरेणै**व** सृष्ट्यर्थं **भवान्सृ-ष्टोऽतः** कारणाद्रूपत्रयोपेतममुमेवा**जं** जन्मादिभाववर्जितमीश्वरं **पुत्रत्वेन** भवान्**वृणोतु** पुत्रस्य गौणात्मत्वात्तद्रूपेणावस्थितस्य हृषीकेशस्य ललितालिङ्गनादिना मुख्यात्मप्राप्तिः सुल-भेति भावः।।३७।। ऋष गताविति धातोर्ऋषति पश्यतीति **ऋषिः** '*ऋषयोऽनागतातीतवर्तमानार्थवेदिन* ' इति स्मरणात् **विष्णुर्**व्यापनशीलः **सर्वात्मना** सर्वस्वभावेन।।३८।।

पतिव्रताप्रभावोऽयं बाला भूत्वेश्वराः स्थिताः । स्वस्वप्राग्रूपतोऽप्येते स्वं स्वं स्थानं ययुस्त्रयः ।।३९।।

पृथङ्नामानि बालेभ्यो ददौ तेभ्योऽर्थविन्मुनिः । पूर्णत्वेन मयाऽहं ते दत्त इत्युक्तवान् स्वयम् ।।४०।।

भगवानिति नाम्नैनं मुनिर्दत्तं चकार सः। ब्रह्मांशं चन्दनाच्चन्द्रमौग्रं दुर्वाससन्तथा ।।४१।।

त्रयाणामप्ययं साक्षाद्दत्तस्तु भगवान्स्वयम्। श्रुत्यन्विष्टाङ्घ्र्यब्जरेणुः सच्चिदानन्दविग्रहः ।।४२।।

सदेष्टयोगसंविद्दः स्मर्तृगामी क्षणे क्षणे । चण्डोऽप्यन्योऽनुग्रहाशीश्चन्द्रो जननवर्धनः ।।४३।।

दुर्वासःशापमाश्रुत्य भूदेवार्थमनन्तशः। धृत्वावतारान्कार्यान्ते लीलाकायान्जहात्यजः ।।४४।।

परानुग्रहकार्यार्थमवतीर्णः स्वयं किल । दत्तरूपेण कार्यस्य नित्यत्वान्नामुमत्यजत् ।।४५।।

।। नामधारक उवाच ।।

कुतो दुर्वाससा शप्तः शापोऽव्यक्ते कथं वद । लग्नः परावरेऽमुं मे संशयं छेत्तुमर्हसि ।।४६।।

।। सिद्ध उवाच ।।

भक्ताधीनतया त्वेष भगवान् भक्तिभावनः । अव्यक्तोऽप्यस्ति सुव्यक्तः पूर्णाऽतोऽत्र सहिष्णुता ।।४७।।

ईश्वरा अंशतो **बाला भूत्वा** पालके **स्थिताः** पुनश्चैते त्रयोऽपि स्वकीयेन रूपेण नत्वतिथिरूपेण **स्वं स्वं स्थानं** सत्यलोकवैकुण्ठकैलासाख्यं **ययुः**।।३९।। **अर्थविच्**छब्दार्थज्ञो **मुनिः** तेभ्यो **बालेभ्यः पृथक्**पृथक् नाम तदंशानुगुणद्योतकं ददौ **पूर्णत्वेन मयाऽहं ते दत्त इति** हेतोरेनं विष्णोरंशभागं **नाम्ना दत्तं चकार स** मुनिः **स्वयं** दत्तत्वाद् '*दत्तात्मा तु स्वयं दत्त* ' इति स्मरणात् अनेनैव न्यायेन '*अथ ह शुनःशेपो विश्वामित्रस्याङ्कमाससाद* ' इति श्रुत्युक्तं। शुनःशेपस्यात्मदानं द्व्यामुष्यायणकं अत एव स्मर्यते '*अजीगर्तिः शुनः-शेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात* ' इति गोत्रप्रवरादेरर्वाचीनत्वात्स्वात्मदानकर्तुराद्यस्य विष्णोर्गोत्राद्यभावान्न द्व्यामुष्यायणत्वं। चद्याल्हादन धातोश्**चन्दनाच्चन्द्रः** चदेरौणादिको रप्र-त्ययः उग्रस्य शंकरस्यायमौग्रस्तं **दुर्वाससं**।।४०।।४१।। **त्रयाणां** मध्ये**ऽप्ययं दत्तस्तु साक्षाद्भगवाने**व न त्वंशावतारः पूर्णत्वेनात्मदानात् कथंभूतः श्रुतिभिरन्विष्टो मार्गितोऽङ्घ्रि-कमलसंबन्धी रेणुर्जगज्जन्मादिलक्षणो यस्य स एतेन तटस्थलक्षणमुक्तं सच्चिदानंदविग्रह इति स्वरूपलक्षणमुक्तं भवति।।४२।। इष्टमभीष्टं योगोऽष्टाङ्गः संविज्ज्ञानं एतानि ददा-तीति तथा **अन्यो दुर्वासाश्चण्डोऽप्यनुग्रहे**च्छुः **जननवर्धनः** वंशवर्धको लोकपोषको वा।।४३।। दुर्वाससा दत्तं **शापमाश्रुत्या**ङ्गीकृत्य अजो न जायत इति **अजः** अन्येष्वपि दृश्यत इति डप्रत्ययः अनन्तानित्य**नन्तशो**ऽपरिमितान् संख्येकवचनाच्चेति शस्।।४४।। **स्वयं** विष्णुः परानुग्रहकार्यस्य **नित्यत्वादमुं** मुनिविग्रहं भूभारहरणान्ते रामकृष्णादिवन्ना**त्यजत्**।।४५।। **कुतो** हेतोः न व्यज्यते केनापि लक्षणेनेत्यव्यक्तः परे ब्रह्मादयोऽवरे निकृष्टा यस्मादेतादृशे शापः कथं संलग्नः।।४६।।**एष भगवान् भक्ताधीन**त्वेन **तु** स्वयम**व्यक्तोऽपि** स्वेच्छया शान्त्यादिलक्षणैः सुतरां व्यज्यतेऽसौ **सुव्यक्तः भक्तिभावनो** भवत्यतो हेतोरत्र भगवति **पूर्णा सहिष्णुता** भक्तवात्सल्याद्भगवति सर्वमुपचर्यत इति

पुराम्बरीषनामैको भक्तो भागवतोत्तमः । एकादशीव्रतपर आसीदभ्यागतार्चकः ।।४८।।
एकदा व्रतभङ्गाय पारणाहे तदालयम् । चण्डः प्राप्याह दुर्वासा भोजनं मेऽर्पयेति च ।।४९।।
दास्यामीत्युक्तवत्यस्मिन्गत्वा स्नातुं नदीमरम् । छिद्रान्वेषी तत्र तस्थौ तरितुं पारणाक्षणम् ।।५०।।
सोऽप्यभुक्ते मुनौ भोज्यं नान्यथा व्रतभङ्गभीः। तीर्थात्तूभयसिद्धिर्मे इति मत्वा पपौ जलम् ।।५१।।
तदैत्याह मुनिः पीतं हित्वा मां क्षुधितं यतः । दुर्भगानेन दोषेण भ्रमिष्यसि भवे भवे ।।५२।।
इत्युक्तः सोऽप्यजं भीतो दध्यौ स्वकुलदैवतम् । स्वदासजीवनं विष्णुं सोप्यागत्याह तं मुनिम् ।।५३।।
मुने मोघं न ते वाक्यं शापं देहि तमेव मे। नायं सोढुं प्रभुर्भक्त-वात्सल्यान्मे सहिष्णुता ।।५४।।
इत्याकर्ण्य मुनिर्मत्वा भुव्ययं दुर्लभो नृणाम् । अम्बरीषप्रभावेण शापसम्बन्धकारणात् ।।५५।।
भविष्यत्यत्र सुलभस्तच्छपाम्येनमित्यसौ । तं शशापाप्यजः शापाद् बहुधावतरत्यजः ।।५६।।
अस्यावतारा मत्स्याद्याः पुराणोक्ता हि विश्रुताः । द्विवारमाविरासीत्स दीनान् त्रातुं जनान् कलौ ।।५७।।

भावः।।४७।। **अम्बरीषनामा** सूर्यवंशीयो राजर्षिर्भगवद्भावमात्मन्यात्मानं सर्वात्मके भगवति च प्रेक्षको **भागवतोत्तमः** त्रिदिनात्मकै**कादशीव्रत**तत्परोऽतिथिपूजकश्चासीद्द्वादशीक्षेत्र इति शेषः।।४८।। **व्रतभङ्गाय** व्रतभङ्गं कर्तुं तुमर्थाच्च भाववचनाच्चेति चतुर्थी **पारणाहे** मुहूर्तमात्रावशिष्टायां द्वादश्यां **प्राप्य आहे**ति छेदः।।४९।। भोजनं **दास्यामीत्यस्मिन्**नम्बरीष **उक्तवति** सति **अरं** शीघ्रं **तत्र** स्नानविधावेव **तस्थौ** गजवत्स्नातुमारेभे इत्यर्थः तर्हि किं शास्त्रसिद्ध्यै नेत्याह छिद्रेति **पारणा**कालं **तरितु**मुल्लङ्घयितुं।।५०।। ऋष्यागमने विलम्बे जाते सति **मुनौ अभुक्ते न भोज्यं अन्यथा** पारणाकरणे व्रतभङ्गाद्भयं तस्मादुभयसाधकात्**तीर्थात्**तीर्थजलपानान्मे **उभयसिद्धिः** पारणासिद्धिरतिथ्यादरश्चे**ति सो**ऽम्बरीषो**ऽपि मत्वा** तीर्थ**जलं पपौ** स्वयं।।५१।। **तदा** पानकाल एव हे **दुर्भगानेना**तिथ्यवमानरूपेण **दोषेणा**ऽतःपरं जन्मनि जन्मनि **भ्रमिष्यसि** भूत्वा भूत्वा तत्तद्देहतादात्म्येनाहं मत्स्योऽहं कूर्मोऽहं वराहोऽहं सिंह इत्यादिभ्रान्तिरूपां बुद्धिं प्राप्स्यसि अत्र श्रौतप्रत्यवायज्ञापनार्थं दुर्भगेति संबुद्धिः श्रुतिश्च काठके ' *आशाप्रतीक्षे...ब्राह्मणो गृह* ' इति। तस्मात्सर्वावस्थासु अतिथिरनुपेक्षणीय इति भावः।।५२।। **इति** तेनो**क्तः सोऽपि** भागवतोत्तमोऽपि जन्मान्तरेण भगवद्विस्मरणकारणाद्**भीतः** न तु जन्ममरणनिमित्तात् **सोऽपि** विष्णुरपि **आगत्य आहे**ति पदच्छेदः।।५३।। **मोघं** निरर्थकं तपःप्रभावात्सत्यसंकल्पाच्च **तमेव** शापं **मे देहि अयं** भक्तः **सोढुं न** समर्थः अहमपि तथापि **भक्तवात्सल्यान्**मम सहनशक्तिरस्ति।।५४।। **इति** विष्णुवाक्यं श्रुत्वा **मुनिर्**दुर्वासाः **भुवि अयं** विष्णुर्**नृणाम् दुर्लभः** तपआदिना प्राप्तुमशक्यः **अत्र** मर्त्यलोके सुखेन लब्धुं शक्यो **भविष्यति** अम्बरीषस्य जन्मभिः किं न किमपि **तत्**तस्माद्धेतोर**ेनं शपामीति** मत्वा**ऽसौ** दुर्वासास्**तं** विष्णुं **अजो**ऽपि विष्णुरपि **शापाद्**धेतोर्**बहुधा** मत्स्यादिरूपै**रवतरति**।।५५।।५६।। **विश्रुताः** पुराणादौ विख्याताः ते च यथा चैत्रशुक्लतृतीयामपराह्णे मत्स्यरूपेणावतीर्य वेदानुद्धृत्य मनुं ररक्ष १ वैशाखपूर्णिमायां सायं कूर्मो भूत्वाऽमृतप्राप्तये स्वपृष्ठे मन्दरं दधौ २ भाद्रशुक्लतृतीयामपराह्णे वराहो भूत्वा भूमिमुद्धरिष्यन् हिरण्याक्षं ददार ३ वैशाखशुक्लचतुर्दश्यां प्रदोषे नरसिंहरूपेणावतीर्य हिरण्यकशिपुं

अद्यापि तौ कामदौ स्तः पामरागोचरौ कलौ । यतकालकलौ द्राक्शं सिद्ध्येन्नान्यदतोऽवितः ।।५८।।

इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे दत्तावतारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

विददार ४ भाद्रशुद्धद्वादश्यां मध्याह्ने वामनो भूत्वा व्याजेन बलिं बबन्ध ५ वैशाखशुक्लतृतीयायां मध्याह्ने परशुरामो(भार्गवरामो)ऽवतीर्य कार्तवीर्यादिनृपानहनत् ६ चैत्रशुद्धनवम्यां मध्याह्ने दाशरथी रामोऽवतीर्य सकुलं रावणं जघान ७ श्रावणकृष्णाष्टम्यां निशीथे कृष्ण आविर्भूय भूभारमवातरत् ८ आश्विनशुक्लदशम्यां सायं बुद्धो भूत्वा कारुण्यं ततान ९ श्रावणशुक्लषष्ठ्यां कल्की जनिष्यते म्लेच्छान्हनिष्यति च १० ।। इति दशावताराः।। मार्गपौर्णिमास्यां प्रदोषे बुधवासरे मृगभे च श्रीदत्तात्रेयोऽवतीर्य विजयतेऽस्मै नमः अन्येऽप्यव-ताराः पुराणादौ विश्रुताः **अस्ये**त्यनेन श्रीदत्तात्रेयस्येति संबध्यते **स** श्रीदत्तात्रेयः **कलौ** युगे **दीनान् जनान् त्रातुं द्विवारमाविरासीत्** श्रीपादो नरहरिरिति चावतारौ जाताविति भावः।।५७।। **अद्यापि पामरा**णाम**गोचरा**वविषयौ **तौ** द्वौ वर्तमाने घोरे भक्तानां **कामदौ स्तः** एतादृशौ तौ यदि समर्थौ तर्हि सकलदोषनिधिं क्रूरमेतं कलिं कुतो न निघ्नतः यतो महाननर्थः प्रवृत्तः इत्यत आह **यते**ति। नियमितः कालो यस्य स चासौ कलिस्तस्मिन्**द्राक्**संकल्पमात्रेणैव **शं** पुण्यं **सिद्ध्येत् अन्यत्** पापं संकल्पान्**न** सिद्ध्येत् **अतोऽवितः** रक्षितः दुष्टत्वेऽपि महागुणत्वान्नियतकालत्वाच्च रक्षणं युक्तं।।५८।।

टीकायां तृतीयोऽध्यायः।।

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

।। यदुरुवाच ।।

श्र्यायुःकीर्त्यृद्धिहेतुर्ना न्त्रर्थसक्तोऽन्यथा भवान्। कल्पः स्वङ्गो ज्ञोऽप्यकर्ता कुतोऽत्रातृट् समुत्विति ।।१।।
श्रीदत्तो यदुना पृष्टस्तं पुंसां श्रेयसेऽब्रवीत् । परं ध्युपाश्रितगुरु-शिक्षितज्ञानमात्मनः ।।२।।
न दैवानुगभूतार्तः क्ष्मेव धीरः सृतेश्चलेत् । सदा परार्थोद्भवेहो नगाच्छिक्षेत्परात्मताम् ।।३।।
प्राणवृत्त्याक्षिप्तहृद्वाग्विद्धृत्तुष्येन्न गोप्रियैः । तद्भुग्दोषगुणास्पृग्वि-धर्मासक्तश्च देहगः ।।४।।
गुणाश्रयो गुणैर्युज्येन्न गन्धैर्वायुवत्स्वदृक्। कालोत्थगुणतेजोऽब्भू-मयभावास्पृगित्पुमान् ।।५।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ चतुर्थोऽध्यायः।। आत्मविद्यां वक्तुं तत्स्तुत्यर्थमुपाख्यानं ब्रह्मबोधद्वारोपदेशं दर्शयति '*पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात्* ' इति न्यायात्।। *चतुर्विंशतिगुर्वाप्तज्ञानं तुर्येऽब्रवीद्यदुम्। दत्त आन्वीक्षिकीं चापि प्रऱ्हादायार्जुनाय च १* अथ ह किल पर्यटन् यदुराजाऽकुतोभयं सर्वसङ्गविवर्जितं विजने वने धरोपस्थे शयानं दक्षमवधूतं दृष्ट्वाऽऽश्चर्येण तं पृच्छति **ना** पुरुषः **श्री** संपदा**ऽऽयुर्**जीवितकालः **कीर्तिर्**यशः एषामृ**द्धौ** समृद्धौ **हेतुः** कामना यस्य सः **न्त्रर्थाः** पुरुषार्था धर्मादयस्तेषु **सक्तः** प्रायो दृश्यते श्र्यादिकमकांक्षन्**भवां**स्तु **अन्यथा** धर्माद्यनासक्तो लक्ष्यते तदनैपुण्येनाशक्त्याऽज्ञानेन वा भवतोऽकर्तृत्वमिति वक्तुं न शक्यते यतो भवान् **कल्पो** निपुणः **स्वङ्गः** शोभनाङ्गः शक्तः **ज्ञः** प्राज्ञो**ऽप्यकर्ता** लक्ष्यते। तथाप्य**त्र** विजने गहने वने **कुतः** कारणात् **अतृट्** निरिच्छोऽपि सन्कलत्रादिरहितोऽपि **तु समुत्**सानन्द **इति**।।१।। **यदुना** ययातिपुत्रेण **पृष्टः श्रीदत्तः** यदुं पुरुषाणां मुक्तये **आत्मनः** बुद्ध्युपाश्रितपृथिव्यादि**गुरुशिक्षित**हेयोपादेयरूप**ज्ञानं** भ्रमप्रमादनाशकरत्वात्**परं** उत्कृष्टं **अब्रवीत्**।।२।। तत्रतावत्तितिक्षायाः पारमार्थिकप्राधान्यात्पृथिव्याः शिक्षितां क्षमां प्राह नेतीति। **दैवानुगैर्**दैववशवर्तिभिर्**भूतैरार्**तः पीड्यमानोऽपि **धीरः क्ष्मेव** पृथ्वीव **सृतेर्**मार्गान्**न चलेत्**किन्तु धैर्येण क्षमां वहेत्। पर्वतरूपायाः पृथिव्याः शिक्षितमाह **सदा** सर्वथा **परार्थः** परोपकारार्थः **उद्भवः** संभव **ईहा** च यस्य स **नगाद्**वृक्षात्पर्वताद्वा **परात्मतां** पराधीनात्मतां **शिक्षेन्**नगो यथा खण्डित उत्पाटितो वाऽप्यखिन्नस्तदनुमन्यते तद्वत्।।३।। क्षमावतो विषयासक्त्या नान्तर्मुखत्वं तस्माद्बाह्याभ्यन्तरवायुशिक्षितां विषयानासक्तिमाह सार्धेन। प्राणो ह्याहारमात्रेण प्रवर्तते रसादीन्नापेक्षते तस्य वृत्त्याऽविक्षिप्तमनोवाक्पुरुषस्**तुष्येन्ने**न्द्रियविषयैः प्राणवृत्त्यकरणे मनोवैकल्येन ज्ञानं नश्येत् गुणलिप्सायां तु वाङ्मनश्च विक्षिप्येत। विषयान्सेवमानस्यापि तेष्वनासक्तिं बाह्यवायुशिक्षितामाह **तद्भुग्**विषयभुक् शीतोष्णादि**वि**विध**धर्मा**नासक्तस्त**द्दोषगुणा**संस्पृष्टश्च यथा वायुर्दहने वने वा न सज्जते तद्वद् **देहग** इत्यग्रेण संबन्धः।।४।। देहादियोगेनाहंप्रत्ययेन प्रतीयमानोऽपि **गन्धा**दियोगप्रतीतो **वायु**र्यथा न तद्योगी तद्वद्**गुणाश्रयो**ऽपि **गुणैर्न युज्येत्** एतद्वा कथमित्यत आह **स्वदृक्**स्वरूपानुसंधानवान्। एतादृशस्यापि निर्विकारव्यापकात्मज्ञानाभावे न स्वास्थ्यमत आकाशाच्छिक्षितं तदेवाह सार्धेन **काल**सृष्ट**गुणा** येषु ते च ते **तेजोऽब्भूमयभावाः** त्रिवृत्करणविकारदेहास्तत्स्पर्शरहित एव **पुमान्**।।५।।

वायूत्थाब्दास्पृक्खवच्चान्तःस्थेनाभिदसङ्गती। भाव्ये सर्वान्वयव्याप्त्या ब्रह्मात्मत्वात्ततात्मनः ।।६।।
रस्यः स्निग्धः प्रकृत्याच्छो ज्ञोऽब्वद्धाम्ना पुनाति नॄन्। छन्नः स्पष्टोऽपि काम्यर्च्यः प्रागुदग्दात्रघं दहन्।।७।।
क्वापि भुङ्क्ते तपस्तेजो-दीप्तोऽक्षोभ्योऽपरिग्रहः। मलास्पृक्सर्वभक्षोऽपि ज्ञोऽग्निवच्चेन्धसीयते ।।८।।
तत्तद्रूपः स्वमायोत्थोच्चासत्स्थेशोऽग्निहेतिवत् । कालान्नित्येऽपि दृश्येते नात्मभूतोद्भवक्षती ।।९।।
देहः कलावद्विकारी कालेनात्माब्जवद् ध्रुवः । भात्यात्मा तत्स्थवद्व्यक्तौ न स्वस्थो बुध्यतेऽर्कवत् ।।१०।।
स्थूलबुद्ध्याऽर्कवद्गोभिर्-गा यथास्वं गुणैर्गुणान् । आदत्ते विसृजत्यत्र सदा योगी न युज्यते ।।११।।
नाऽतिस्नेहप्रसङ्गाक्तो नश्येद्दीनः कपोतवत् । कश्चित्कपोतः कपोती क्रीडादौ चेरतुर्वने ।।१२।।

वायुप्रेरितमेघास्पृष्टाकाशवत्। अन्यच्**च** देहस्थेन **सर्वान्वयव्याप्त्या** व्यापकस्य प्रत्यगा**त्मनो ब्रह्मात्मत्वाद्**देहादिनाऽभेदोऽसंगश्च भाव्यः मणिषु सूत्रस्येव न व्याप्तिः किन्त्वाकाशस्येव घटादिनाऽसंगोऽभेदश्च तद्वत्। ईदृशोऽपि स्वच्छत्वादियुक्तश्चेज्जगत्पुनातीति।।६।। उदकाच्छिक्षितमाह **रस्यो** मधुरालापी **स्निग्धो** लोकेष्वनुरागवान्स्वभावशुद्धश्च **ज्ञः** स्वदेहेन दर्शनादि कुर्वतो **नॄन् पुनाति** उदकवत्। ईदृशस्तेजस्वीत्यग्नेः शिक्षितमाह सार्धद्वयेन। **छन्नो** गुप्तः **स्पष्टोऽपि** वा कामिपूज्यः पूर्वोत्तर**दात्रघं** पापं **दहन्**।।७।। **क्वाऽपि भुङ्क्ते** तथापि न दोषी ज्ञानातिशयात्**तपस्तेजोऽदीप्तो**ऽतएवा**ऽक्षोभ्यः अपरिग्रह** उदरपात्रः **सर्वभक्षोऽपि अग्निवन्न मलास्पृक्** ज्ञानी अन्यच्चेन्धसीयत इत्यग्निमेण संबन्धः।।८।। **इन्धसि** वर्तुलादिकाष्ठे **तत्तद्रूपो**ऽग्निरिव **स्वमाया**सृष्टेषूच्चेषु देवादिषु असत्सु तिर्यगादिषु तिष्ठतीति स चासावीशश्च तत्तद्रूपः प्रतीयते सा प्रतीतिर्न वास्तवी काष्ठसंयुक्ताग्न्याकारवन्मृषा। अन्यच्च कालवेगेनात्मसंबन्धिभूताना**मुद्भवक्षती** उत्पत्तिनाशौ अग्निज्वालावन्**नित्येऽपि** अनुक्षणं वर्तमानेऽपि स्थूलदृष्ट्या **न दृश्येते**ऽतः क्षणभङ्गुरत्वं वैराग्यार्थं ज्ञातव्यं।।९।। तद्वत्षड्भावविकारा अपि देहस्य नात्मनः इति चन्द्राच्छिक्षितमाहार्धेन **देहश्**चन्द्र**कलावद्विकारी आत्मा** चन्द्रवद् **ध्रुवः** कूटस्थः अत्रेयं ज्योतिःशास्त्रप्रक्रिया '*तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलक* ' इति वचनादाप्यमण्डलश्चन्द्रस्तेजोमण्डलः सूर्यः तयोरेकर्क्षावस्थाने चन्द्रो न दृश्यते चक्षुषः सूर्यमण्डलेन समदेशस्थितत्वव्यवधानात् साऽमावास्या। अथ षष्टिकलाभिश्चन्द्रो नक्षत्रान्तरं याति सूर्यस्तु त्रयोदशभिरहोरात्रैरतः प्रतिपदमारभ्य विषमस्थस्य सूर्यमण्डलस्य पञ्चदशः पञ्चदशो भागः आप्यमण्डले प्रतिबिम्बितो दृश्यते सा कलेत्युच्यते एवं पञ्चदशेऽह्नि त्रयोदशभिर्नक्षत्रैरन्तरमिति राशिचक्रस्य सप्तविंशतिनक्षत्रात्मकस्य मध्ये संमुखौ चन्द्रसूर्यौ तिष्ठतः तदा संपूर्णं प्रतिबिम्बं भूछायालाञ्छितं दृश्यते सा पूर्णिमा तस्याममावास्याप्रतिबिम्बेन सह षोडषकलचन्द्र उपचर्यतेऽथ पुनः प्रतिपदमारभ्य मण्डलयोर्विषमीभावात् कलाऱ्हासस्तत्र कलानामेव विकारो नाप्यमण्डलस्य तथात्मनोऽपि। आत्मा देहस्थ इति प्रतीतोऽपि न तथेति सूर्याच्छिक्षितमाह सार्धेन। स्वतो भेदशून्योऽप्यात्माऽभिव्यनक्तीति व्यक्तिर्देहाद्युपाधिस्तत्र **तत्स्थवत्**तद्गत इव **भाति स्थूलबुद्ध्या स्वस्थः** स्वरूपावस्थितो **न बुध्यतेऽर्कवत्**।।१०।। यथार्कः स्वर्गस्थोऽप्युदकुम्भे प्रतिबिम्बितस्तच्चलनादिना चलित इत्यादि लक्ष्यते तद्वत्। अन्यच्च **यथास्वं** यथाकालं **गोभिः** किरणैर्**गाः** जलानि **अर्क** इव **गुणै**रिन्द्रियैर्**गुणान्** विषयाना**दत्ते** पुनः पात्रे **योगी विसृजति अत्रा**दाने विसर्गे च स योगी न युज्यते मया लब्धं दत्तं वेत्यभिमानं न करोति।।११।। अथ एवंयुक्तोऽप्यतिस्नेहप्रसङ्गौ करोति चेन्नश्यतीति कपोताच्छिक्षितमाह चतुर्भिः। **ना** पुमान् **अतिस्नेहो**ऽतिप्रीतिर**तिप्रसङ्गो** लालनाद्यासक्तिस्ताभ्याम**क्तो** व्याप्तश्चेत्**कपोतवन्नश्येत्**तदेव विवृणोति। **कश्चित्कपोतस्**तत्स्त्री **कपोती** च **प्रेम्णा** स्नेहेन **मिथः** परस्परं बद्धानि **धीर्**बुद्धि**रक्षि** दृष्टिश्चाङ्**गं** च याभ्यां तौ निःशङ्कं **वने क्रीडादौ** मिथुनीभूय **चेरतुः**।।१२।।

प्रेम्णाऽशङ्कं मिथोबद्धध्यक्षङ्गौ पाति स श्रमात्। तर्पयन्ती साऽसूतार्भास्-तांस्तौ पुपुषतुर्मुदा ।।१३।।
कदाचिल्लुब्धको नीडाद् बहिःस्थांस्ताञ्छिचाददे। क्रोशन्तीं पतितां दुःखात्-तां तं चापस्मृतिं तथा ।।१४।।
द्वन्द्वारामः प्रियाऽशान्तो गृहासक्तो विवन्नरः। क्रान्तापावृतमुक्तिद्वार्-नृजन्मच्युत एव सः ।।१५।।
क्वाप्यस्त्यैन्द्रियसौख्यं तन्-नैच्छेदाजगरोऽक्रियः । यदृच्छयाप्तं महान्तं ग्रासं वाल्पं रसारसम् ।।१६।।
भक्षेच्चेन्नाप्तोऽनशनो दैवभुक्सर्पवत्स्वपन् । विनिद्रोऽक्रियबल्यङ्ग-धृग्गोमानपि नेहते ।।१७।।
पूर्णो हीनोऽप्यजपरो न सर्पति न शुष्यति । ज्ञोऽब्धिवत्सिन्धुभिर्निम्नोऽनन्तपारो दुरत्ययः ।।१८।।
सदाऽक्षोभ्यो दुर्विगाह्यः प्रसन्नः स्तिमिताब्धिवत् । नाऽवशोऽग्नौ विवन्नश्येत् स्त्रीलीलारूपमोहतः ।।१९।।

सहासवीक्षितालापादिभिस्**तर्पयन्तीं स** कपोतीं कपोतः **श्रमात्**कष्टेनापि वाञ्छितदानेन **पाति साऽर्भान**ण्डरूपान**सूत** ततः स्वभावकर्मादिशक्तिभिर्भिन्नाण्डेभ्यो व्यक्ताकारान्**तान्मुदा तौ पुपुषतुः** तन्मुखेषु कवलदानेनाच्छादनादिना च।।१३।। प्रौढान् तान् **कदाचिन्नीडाद्बहिः** स्थितान् **लुब्धकः शिचा** जालेन जग्राह तेषामन्नार्थे वनान्तरं गता तन्माता तदैवागत्य बद्धान् तान् ददर्श ततः पुत्रशोकेन **क्रोशन्तीं दुःखाज्**जाले **पतितां तां तथा** च प्रकारवचने थाल् तेनैव प्रकारेण तादृशं पतितं **अपस्मृतिं** स्मृतिवर्जितं कपोतं **चाददे** लुब्धक इति पूर्वाभिमर्शः एवंविधान्गृहासक्तान्कालो भक्षतीत्यूह्य।।१४।। दृष्टान्तमभिनीय दार्ष्टान्तिके योजयति। **द्वन्द्व**सुखे **आरामो** यस्य **प्रिय**विषया**शान्तो गृहे** गुणबुद्ध्या**सक्तो नरः विवत्**कपोतपक्षिवत् **क्रान्तं** यदपावरणं **मुक्तिद्वार**भूतं **नृजन्म** तस्मात्प्र**च्युत एव स** भवेत्ततो हीनतरं लोकं गमिष्यतीति भावः।।१५।। एवं ज्ञात्वा प्रारब्धकर्माणोऽवश्यंभावित्वात्तदर्थोद्यमैर्वृथायुर्व्ययो न कार्य इत्यजगराच्छिक्षितमाह द्वाभ्यां। **क्वाऽपि** स्वर्गे नरकेऽपि **ऐन्द्रियसौख्यमस्ति** यथा दुःखं अतो**ऽक्रिय** उदासीनोऽजगरवृत्तिः सन् **तन्नैच्छेत्** तर्हि देहनिर्वाहो कथमित्यत आह **दैव**लब्धं **महान्तं अल्पं वा** मिष्टं वा विरसं वा **ग्रासं भक्षेत् न** प्राप्तो **चेदनशनो**ऽपि **दैवभुग्**दैवमेव प्रापकमिति धैर्यवान्**स्वपन्न**पि स्वार्थदत्तदृष्ट्या **विगतनिद्रः अक्रिय**मुद्यमरहितं तच्च तद्**बल**वद**ङ्गं** च तद्धारक ईदृशो **गोमानि**न्द्रियवान**पि नेहते** दर्शनादिव्यापारमपि निवारयति।।१६।।१७।।ईदृशोऽपि दैवलब्धेन वा भोगेन युतो वियुतोऽपि वा हर्षशोकरहितो भवेदिति समुद्राच्छिक्षितमाह सार्धेन। **सिन्धुभिर्**नदीभिः **सिन्धुः(अब्धिः)** समुद्र इव **ज्ञः पूर्णः** समृद्धकामः समुद्रपक्षे प्रावृषि सरिद्भिः समृद्धोऽपि **न सर्पति** हर्षाद्विक्षिप्तो न भवति पक्षे बहिर्न प्रसरति **हीन** इष्टवियुक्तोऽपि पक्षे ग्रीष्मे नदीप्रवाहरहितोऽपि **न शुष्यति** न शोकेन तप्तो भवति। अन्यच्च **निम्नो**ऽन्तर्गम्भीरः **अनन्तपारः** भूमा आविर्भूतस्वरूपत्वात् कालतो देशतश्चापरिच्छेद्यः पक्षे सर्वतो विस्तीर्णः **दुरत्ययो** नातिक्रमणीयः तेजस्वित्वात् पक्षे भीमरूपत्वात् **सदाऽक्षोभ्यो**ऽविकार्यः रागाद्यभावात् पक्षे मर्यादापालकत्वात् **दुर्विगाह्य** एवंभूत इति परिकलयितुमशक्यो बहिः **प्रसन्नश्च स्तिमिताब्धिवन्**निश्चलसमुद्रवद्भवेत्।।१८।। ' *कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च। एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च* ' इति गारुडोक्तेरेवं सन्नपि विषयासक्तश्चेन्नश्यतीति पञ्चभ्यः शिक्षितमाह सार्धचतुर्भिः रमणीविलासलावण्यरूपमोहितोऽतए**वावशो ना** पुमान् पतङ्गवच्छलभवन्नश्येत्।।१९।।

गृण्हीयात्सर्वतः सारं रमेन्नैकत्र चाल्पभुक् । संग्रहे नाशबीजेऽपि मधुकृद्वन्मुनिः सदा ।।२०।।
बध्येत नाङ्गनास्पर्शाच्-छूरैर्हन्येत वेभवत् । अन्योऽकात्सञ्चितं लुब्धैर्न भुक्तं नार्पितं धनम् ।।२१।।
भुङ्क्तेऽकार्जितगृह्यन्नं प्राग्भिक्षुर्मधुहेव च । ना बध्येतैणवद्गीतान्-नृत्याद्वाप्यृष्यश्रृङ्गवत् ।।२२।।
प्रमाथिजिह्वया नैति बडिशैर्मत्स्यवल्लयम् । जय्याल्पभुज्या साऽसक्त्या जितं सर्वं जिते रसे ।।२३।।
वेश्यैकार्थदकान्ताशा-ध्वस्तनिद्रा सुखावहं । चिन्ताहेतुं हि निर्वेदं गत्वाऽत्मस्थं रतार्थदम् ।।२४।।
रामं हित्वा कुवृत्त्यान्यं भीशुङ्मोहदमध्रुवम् । काङ्क्षे धिङ्मात्मनात्मानं रमे क्रीत्वाऽमुनेति सा ।।२५।।
मत्वा तथाऽभूद्धत्वाशाऽकं नैराश्यं परमं सुखम् । परिग्रहोऽकाय तज्ज्ञोऽस्वोऽप्यनन्तसुखायते ।।२६।।

मधुकरो द्विविधः मधु कृन्तति पुष्पाद्याच्छिद्य गृह्णातीति **मधुकृत्** भृङ्गः मध्वाहारत्वेन स्वरूपेण च करोतीति **मधुकृन्**मधुमक्षिका ताभ्यां शिक्षितमाह **सर्वतो**ऽणुभ्यो महद्भ्यश्च **सारं** गृह्णीयात् '*बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत्* ' इति साङ्ख्यप्रवचनात् **अल्पभुक्सन्नैकत्र रमेत् च** एवार्थः। यथा भृङ्गो विशिष्टरसलोभेनैकस्मिन्पद्मे वसन्नस्तमये मुकुलिते तस्मिन्बध्यते एवं ज्ञोऽपि गुणलोभनैकगृहमाश्रितस्तन्मोहेन बध्यते स **मुनिः सदा** स्वात्मना सह नाशहेतौ मधुवत्संग्रहे **न रमेत्** यतः स्वेन सह संग्रहनाशः।।२०।। गजाच्छिक्षितमाह **ना** पुरुषः स्वस्यान्यस्य चा**ङ्गनास्पर्शात्**स्नेहेन पाशेन च **बध्यते वा**ऽथवा **शूरैर्हन्येतो**भयत्रापी**भवत्**। त्यागभोगहीनोऽर्थसञ्चयो घाताय भवति स्वोद्यमाभावेऽपि भोगः संभवतीति च मधुकृन्मधुहराभ्यां शिक्षितमाह दुःखात्**संचितं न भुक्तं** स्वयं न दत्तं अन्येभ्य ईदृशं लब्ध**धनं** संचितं मधुवत्सहसा**ऽन्यो** भुङ्क्ते।।२१।। दुःखाद्गृहिणार्जित**मन्नम**नुद्यमोऽपि **मधुहेव भिक्षुः** पूर्वं **भुङ्क्ते**। हरिणाच्छिक्षितमाह **ना** पुरुषः ग्राम्य**गीत**श्रवणात् न तु भगवद्गुणगीतश्रवणात् **एणवन्**मृगवद्**बध्येत नृत्या**द्यवलोकनाच्चापि मृगीसुत**र्ष्यशृङ्गवद्बध्येत**।।२२।। मत्स्याच्छिक्षितमाह अतिक्षोभकया **जिह्वया ना** पुमान् **बडिशै**रामिषलिप्तलोहकण्टकैर्**मत्स्य** इव **लयमेति** अतो **अल्पभुज्या** परिमितभोजनेन रसना**ऽसक्त्या** च **सा** जिह्वा जेतुं शक्या। '*क्षय्यजय्यौ शक्यार्थं* ' इति निपातनात्साधुः। रसासक्तिं परित्यज्यौषधिवद्भुञ्जीत। प्राणवृत्त्येति श्लोकार्थस्येदं प्रकारान्तरं रसनादुर्जयत्वादुक्तं यतो **रसे जिते सर्वं जित**मेव।।२३।। जितरसस्यापि आशा प्रतिबन्धकर्त्री अतो वेश्यायाः शिक्षितं नैराश्यमाह सार्धद्वयेन। विदेहपुरस्थै**का** पिङ्गला नाम **वेश्या** बहुद्रव्यदातृ**कान्ताश**या **ध्वस्ता निद्रा** यस्याः सा दैवयोगाद्द्रव्य**चिन्तै**व हेतुर्यस्य तं **सुखावहं निर्वेद**मलंबुद्धिं **गत्वा** विवेकेनात्मानं **धिक्**कुर्वन्ती आह **आत्मस्थं** अंतर्यामिणं **रतं** स्वानुभवेन परानन्दं **अर्थं** मोक्षरूपं च ददातीति तं।।२४।। ग्रन्थिभेदसंशयच्छेदकर्मक्षयपूर्वकं स्वरूपे रमयतीति **रामं** प्रत्यगात्मानं **हित्वा** साङ्केतवार्तया**ऽन्यं** स्त्रैणं अननुमताचरणाद्भीति विरहेण शोकं अतिस्नेहप्रसङ्गतश्च मोहं ददातीति तं **अध्रुवं** मर्त्यं तुच्छं जारं **काङ्क्षे**ऽतएव **मां धिक्** इतःपर**मात्मना** देहेना**त्मानं क्रीत्वाऽमुना** स्वप्रकाशापरोक्षरूपेणात्मारामेणा**हं रमे इति सा**।।२५।। मननं कृत्वा **तथाभू**दाशां छित्वाऽऽत्मारामाऽभूत् **हि** यस्मादा**शाऽकं** दुःखं **नैराश्यं परमं सुखं** व्यवहारेऽपि सुखेन निद्रानन्दप्रदत्वात् '*निराशः सुखी पिङ्गलावत्* ' इति साङ्ख्यप्रवचनात्। निराशस्यापि परिग्रहो दुःखायेति कुरराच्छिक्षितमाहैकेन प्रियतम**परिग्रहोऽकाय** दुःखाय भवति तं जानातीति **तज्ज्ञः** '*आतोनुपसर्गे क* ' इति कः। तस्य ज्ञ इति षष्टीसमासो वा। '*इगुपधज्ञे*ति ' कप्रत्ययः। एवं विद्वा**नस्वोऽपि** अकिञ्चिनस्त्यक्तपरिग्रह इति यावत् न तु दरिद्रः **अनन्तसुखायते**।।२६।।

सामिषं कुररं हन्ति शूरोऽतो व्यामिषः सुखी । मानावमानचिन्तोनः स्वक्रीडः स्वरतिः सुखी ।।२७।।
बालवद्धि जडोऽज्ञोऽर्भश्-चात्मानन्दो गुणातिगः। भङ्क्त्वैकैकं महारावान् रणन्तौ द्वौ कुमार्यपि ।।२८।।
पाण्योर्धृत्वैकैकशङ्खं रहःकृत्येऽलभत्सुखम् । कलिर्भूम्नि द्वयोर्वार्ता ह्येकतस्तच्छङ्खवच्चरेत् ।।२९।।
एकचार्यप्रमत्तोऽल्प-वाग्गुहास्थोऽगृहो मुनिः। एकोऽहिवद्गत्यलक्ष्यो गृहारम्भोऽध्रुवात्मनः ।।३०।।
विफलोऽकाय सर्पोऽन्य-कृतधाम्न्येधते सुखम् । जितश्वासासनेनेशे वैराग्याभ्यासबद्धहृत् ।।३१।।

तदाह **शूरः सामिषं कुररं हन्ति** अतः सामिषादन्यो **व्यामिषः** आमिषरहितः स **सुखी** परिग्रहाभावात्। ईदृशस्यापि मानापमानचिन्ताराहित्येन परमसुखत्वं। बालाच्छिक्षितमाहैकेन **मानः** सत्कारः **अवमानस्**तिरस्कारो गृहपरिवाराशनादि**चिन्ता** ताभि**रूनः** स्वेनात्मना **क्रीडा** यस्य स्वस्मिन्नात्मनि **रतिः** प्रीतिर्यस्य स **सुखी बालवदि**त्यग्रिमेण संबन्धः।।२७।। **हि** यस्माज्**जडो**ऽनुद्यमो**ऽज्ञो** विमुग्ध एवंभूतो**ऽर्भो** बाल **आत्मानन्द**श्चापरः प्रकृतिगुणानतिक्रम्येश्वरभावं गच्छतीति **गुणातिग**श्चात्मानन्द एतौ द्वौ चिन्तया मुक्तत्वादात्मानन्दौ परमानन्दनिर्भरावित्यर्थः। एवंभूतावस्थालब्धयेऽभ्यासः कर्तव्यः स तु बहूनां द्वयोर्वा मध्ये न सिद्ध्यति '*बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत् द्वाभ्यामपि तथैव* ' इति सूत्राभ्यां कपिलमुनिना प्रतिपादितं कुमारीकङ्कणाच्छिक्षितमाह। काचिद्धि किल कुमारी बन्धुषु क्वापि यातेषु स्ववरणाय गृहागतानामभ्यवहारार्थं रहसि शालीनवहनत् तदा तत्प्रकोष्ठस्थाः शङ्खवलया महाशब्दं चक्रुस्तदा सा दरिद्रताद्योतकं तज्जुगुप्सितं मत्वा व्रीडिता सती स्वप्रकोष्ठात् क्रमे**णैकैकं** शङ्खान् शङ्खवलयान् कङ्कणानीति यावत् कथंभूतान् **महारावान्** महाशब्दान् **भंक्त्वा** परादपसार्य पृथक्कृत्येति यावत् **द्वौ** द्वावरक्षत् **रणन्तौ** शब्दं कुर्वन्तौ शिञ्जितौ तावपि भङ्क्त्वेति पूर्वेण संबन्धः एवं **कुमारी**।।२८।। **पाण्योः** स्वकरयोः सौभाग्यत्वादे**कैकं शङ्खं धृत्वा**ऽवशेष्य शाल्यवहननरूपे **रहःकृत्ये सुखमलभत** शब्दाभावात् ततः किं शिक्षितमित्यत आह **हि** यतः **भूम्नि** बहुत्वे **कलि**रेकत्र **द्वयोर्**योगेऽशनादि**वार्ता** तस्मात्**तच्छङ्खवदे**काकी तपश्**चरेत्**।।२९।। ईदृशो निःसंगोऽपि निर्विघ्नार्थमनियतनिकेतो भवेदिति सर्पाच्छिक्षितमाह एकाकी चरतीति **एकचारी** सावधानमितवाक् **गुहा**वासी अतो**ऽगृहो**ऽनियतगेहः **एको**ऽसहायः **गत्या**चारेणा**लक्ष्यो मुनिरहिवत् अध्रुव**देहस्य **गृहारम्भो** निष्फलो दुःखाय च भवति **सर्पस्**त्वन्य**कृत**गेहे **सुखं** यथा तथा वर्धते '*अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत्* ' इति कापिलानुशासनात्।।३०।। एकान्तस्थोऽपि जितश्वासासनश्चेदप्रमत्ततयैकाग्र्यं लभेतेति शरकाराच्छिक्षितमाह द्वाभ्यां **वैराग्य**पूर्वकम**भ्यासेन जितः श्वास आसनं** च येन तेन योगिना द्वैताऽस्फूर्तिलक्षणसमाधिसिद्ध्यर्थं दोषदृष्टिजिहासा भोग्याऽदीनतारूपैर्हेतुस्वरूपकार्यैः परिचितेनैहिकामुष्मिकविषयवैराग्येण विक्षेपाभावकारणेन लक्ष्ये ध्रियमाणचित्तस्थिरीकरणेना**भ्यासे**न च **बद्धं** वशीकृतं पञ्चमभूमिकाप्राप्तमिव तच्च तत् **हृद**न्तःकरणं च शरस्थानीयं।।३१।।

संयुक्तं वासनां मुक्त्वा सत्त्ववृद्ध्यैत्यनिन्धनम् । निर्वाणं वेत्त्यतो नान्तर्-बहिःस्थं मुनिरात्मदृक् ।।३२।।
यथेष्वितात्मेषुकृन्नो वेदेनं यान्तमग्रतः । प्रेम्णाप्यचलहृद्ध्यानाद्-विष्णोः सारूप्यमेति ना ।।३३।।
प्राग्रूपमुत्सृजन्पेशस्कृद्ध्यानात्कीटवद्द्रुतम् । यथोर्णनाभिस्ततोर्णा विहार्यान्तेऽत्ति तां तथा ।।३४।।
प्राक्स्वमायासृष्टमेकः संहृत्याभूत् क्षयेऽद्वयः। शक्त्याखिलाश्रयः सर्वेट् कालेनात्मानुभावतः ।।३५।।
साम्येतसत्त्वादिशक्तिः प्रधानपुरुषेडजः । व्युपाधिः परमानन्दो मोक्षाख्यः सपरावरः ।।३६।।

ईशे प्रत्यगभिन्नपरब्रह्मणि लक्ष्यस्थानीये **संयुक्तं** सत् धनुःस्थानीयप्रणवयोगेन सम्यक्सावधानतया प्रयुक्तं। अयमर्थः-ऐकाग्र्यं हि ध्यानस्य प्रधानसाधनम् '*यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात्* ' इति न्यायात् तच्चासनसिद्ध्या सिध्येत् '*आसीनः संभवात्* ' इति न्यायात्पूर्वमेवासनजयो विधेय आसनजये श्वासजयः श्वासजये श्वासाधीनं मनो निश्चलं भवति तच्च **वैराग्येणा**विक्षिप्यमाणं **अभ्यास**योगेन च **बद्धं** लक्ष्ये स्थिरीकृतं सुषुप्ताविव सर्वथा न लीयते लयविक्षेपात्मकमपि तन्मनः परमानन्द ईश्वरे **संयुक्तं** लब्धास्पदं सत् कर्म**वासनां मुक्त्वा** लयविक्षेपकारणीभूततमोरजोगुणोपमर्देन जातया **सत्त्ववृद्ध्यो**पशमात्मकयाऽ**निन्धनं** गुणास्तत्कार्यं च तद्रहितं **निर्वाणम**वृत्तिकं ध्येयाकारेणावस्थानं योगमुपैति '*योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः*' '*तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्* ' इति पातञ्जलात्। अन्यच्च '*मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः। याऽसंप्रज्ञातनामाऽसौ समाधिरभिधीयत* ' इति। अतो द्वैतस्फूर्त्यभावाद**न्तर्बहिस्थं** किमपि न वेद न जानाति कुतः **आत्मदृक्**।।३२।। क इव **यथेषुकृत् इष्वितात्मा** तस्य ऋजूकरणे दत्तचित्तः भेरीघोषै**रग्रतो यान्तमिनं** नृपं **न वेद** वेत्ति विदो लटो वेति णलादेशः तद्वदयमित्यर्थः। '*इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः*' इति सांख्यात् अस्योपासकस्यात्र प्रत्यगभिन्नब्रह्मसाक्षात्कारासंभवे देहपातेऽपि विशेषः स्मर्यते '*तदोकोग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकतया* ' इति न्यायात् एवं ध्याननिष्ठस्य प्रत्यगभिन्नपरब्रह्मसारूप्यं न चित्रमिति कीटाच्छिक्षितमाह **प्रेम्णाऽपि** अपिशब्दात्स्नेहेन द्वेषेण भयेन वा **विष्णो**र्व्यापकस्य न परिच्छिन्नस्य अचलहृदा यद्**ध्यानं** विजातीयप्रत्ययनिरासेन सजातीयप्रत्ययप्रवाहीकरणरूपं निदिध्यासनं तस्मान्मिथ्यातादात्म्याध्यासेन स्वीकृतं **प्राग्रूपम**नुभवात्पूर्वं विद्यमानं कर्तृत्वादिलक्षणं मायामयं **रूपमुत्सृजन्ना** पुरुषः **द्रुतं** प्रतिबन्धाभावेऽस्मिन्नेव जन्मनि प्रतिबन्धे च सति जन्मान्तरे वा **विष्णोः सारूप्यमेति**।।३३।। मुक्तो भवति एतच्च व्यासेन सूत्रितं '*ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्* ' प्रस्तुतप्रतिबन्धाभावे यस्मिन्नेव जन्मन्युपदेशोऽभ्यासश्च तस्मिन्नेव जन्मनि ज्ञानान्मोक्षोऽन्यथा जन्मान्तरे कुतः '*गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच* ' इति वामदेवे तद्दर्शनादिति सूत्रार्थः। अत्र निदर्शनं **पेशस्कृद्ध्यानात् कीटवत्** भयेन भ्रमरविशेषस्य पेशस्कृतो ध्यानेनैव सारूप्यं गतः कुड्यां नीडे प्रवेशितकीट इवेति चित्रम् जीवस्य तु '*ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति* ' इति श्रुतेः ब्रह्मरूपप्राप्तिर्न चित्रा। ईशस्यैकत्वज्ञाने ऊर्णनाभेः शिक्षितमाह सामग्रीनिरपेक्ष **ऊर्णनाभि**र्नाभेरुद्भूतायां मुखेन सं**तता**यां प्रसारितायां विहरतीति तथा विहा**रान्ते ताम्** ऊर्णा**मत्ति यथा तथा**।।३४।। **प्राक्** सृष्ट्यादौ **एकः** कारकनिरपेक्षः ईशः ईक्षणवशादुपादानकारणभूतया **माय**या **सृष्टं** जग**त्क्षये** स्वात्मनि कालशक्त्योप**संहृत्याद्वयोऽभूत्** अधिष्ठानत्वेना**खिला**धारः **सर्वे**श्वरः **कालेनात्मानुभावतः**।।३५।। गुण**साम्यं इताः** गताः सत्त्वादिशक्तयो यस्मात् **प्रधानं** प्रकृतिः **पुरुषः** जीवः तयो**रीट्** ईशोऽत एवा**जः व्युपाधि**र्निरुपाधिकोऽत एव **परमानन्दः मोक्षाख्यः** कोऽसौ?ब्रह्मा? न। **सपरावरः** परे ब्रह्मादयोऽवरे च जीवास्तैः सहितः **सपरावरः** स्वात्मन्युपसंहृताखिलत्वात्परमेश्वरो **मोक्षाख्य** आस्ते।।३६।।

गुणत्मिकां स्वमायां स क्षोभयन्स्वानुभावतः। तया सृजति सूत्रं सा त्रिगुणा शक्तिरासृजत् ।।३७।।
विश्वं यस्मिन्प्रोतमेतद् येन संसरते पुमान् । देहात्स्तो बोधवैराग्ये पारक्यात्सोद्भवक्षयात् ।।३८।।
आत्मेष्टभृत्सृष्टबीजः प्रियेच्छुर्नश्यति द्रुवत् । गावः स्वार्थे सपत्नीवत्तं लुनन्ति हि दुर्लभम् ।।३९।।
मत्वा नृजन्मात्तवित्क्ष्मां चरे मुक्तोऽनहंकृतिः। तच्छ्रुत्वा समचित्तोऽभून् मुक्तसङ्गो यदुर्द्रुतम् ।।४०।।
कष्टसंसारादिहेतु-प्राणार्थेहापनुत्तये । वैराग्यतोषदमधुकृन् महाहिसुशिक्षितम् ।।४१।।

स पुनः **स्वानुभावतः गुणात्मिकां स्वमायां क्षोभयन्** **तया** मायया जीवसंसारहेतुभूतं **सूत्रं** क्रियाशक्तिप्रधानं महत्तत्त्वं **सृजति** यत्**सूत्रं सा त्रिगुणा शक्तिर**हङ्कारद्वारेण **विश्वमसृजत्**।।३७।।**यस्मिन्**सूत्रे कारणभूते समष्टिरूपे एतद्**विश्वं प्रोतं** ग्रथितं '*वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना गौतम सूत्रेण चायं लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि* ' इति श्रुतेः **येन** वाय्वात्मप्राणरूपेण **पुमान्**जीवः संसरते। देहोऽपि गुरुरित्याह **पारक्याच्**छ्वसृगालादिभक्ष्याद्**बोधो** विवेकः मातापितृरक्तरेतोरूपमलद्वयो**द्भव**श्च **क्षयो** मरणं च ताभ्यां सहितात्। न हि मातापितृमलद्वयरूपनश्वरदेहस्य निरन्तरधारणादन्यदधिकं जुगुप्सितं **वैराग्य**कारणमुदाहर्तुं शक्यते अत एव विष्णुपुराणे पठ्यते '*स्वदेहाशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान्।।विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यत* ' इति।।३८।। आत्मानं इष्टान् स्त्रीपुत्रादींश्च बिभर्ति पुष्णातीति तथोक्तः(**आत्मेष्टभृत्**) **सृष्टं** देहान्तर**बीजं** कर्म येन स **प्रियेच्छुः** सुखाभिलाषी **द्रुवद्**वृक्ष इव **नश्यति** म्रियते। वृक्षो हि वृक्षान्तरबीजं सृष्ट्वा शुष्यति किञ्च **गाव** इन्द्रियाणि स्वविषयार्थे **तं लुनन्ति** त्रोटयन्ति बह्व्यः **सपत्न्यः** पुरुष**मिव** तथापि **हि** यस्मादीदृशमपि **नृजन्म** ज्ञानप्रदत्वादुत्तमं **मत्वो**क्तप्रकारेणैभ्यो गुरुभ्य **आत्तविल्**लब्धज्ञानोऽत एव **मुक्त**संगो**ऽनहङ्कृतिश्च क्ष्मां** प्रारब्धभोगाय **चर** इति लोकोक्त्या आदेशः '*तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येथ संपत्स्य* ' इति श्रुतेः। ज्ञानेनाज्ञाने तत्कार्ये च विनष्टे यावत्प्रारब्धं देहस्तिष्ठति उक्तं च सूत्रकारेण '*भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यत* ' इति। **यदुस्तच्छ्रुत्वा मुक्तसंगः** सन् **द्रुतं समचित्तोऽभूत्** अधिकार्युपदेष्टृप्रभावात् शत्रुमित्रोदासीनस्वपरभावरहितोऽभूत् यद्वा समे सर्वसमे श्रीदत्तेऽयं तारकः श्रीगुरुदत्त इति चित्तं यद्वा सममविक्रयं उक्तं याज्ञवल्क्येन '*यः कण्टकैर्वितुदति चन्दनैर्यश्च लिम्पति। अक्रुद्धो परितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च* ' इति। अयं गुरोः प्रभावः श्रुतिश्च '*आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः। न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः। अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्* ' इति एवमेतेऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मन्यसंभावनादिमात्रनिवर्तका बुद्ध्युपाश्रिता गुरवो नैते परमार्थोपदेशका इति ज्ञेयं '*तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि* ' इति श्रुतेः।।३९।।४०।।अथ संक्षेपतः प्रऱ्हादानुग्रहो वक्ष्यते चतुर्भिः। अलब्धात्मज्ञानो भागवतः प्रऱ्हादः पर्यटन्कदाचिद्दैवयोगेन वैराग्यसंतोषयुक्तं प्राणार्थचिन्तारहितमकुतोभयं कविमवधूतं दृष्ट्वा तमभिवाद्य सर्वसंसारधर्मनिर्मुक्तत्वमकुतोभयत्वं प्राणार्थचिन्ताराहित्यं च तव कथमिति पृच्छति स्म। तं चाधिकारिणं ज्ञात्वा परमकारुणिकः सर्वज्ञो भगवान् श्रीदत्तः प्राह किमाह तदुच्यते **कष्ट**रूपो यः **संसारस्**तस्या**दिहेतो**र्निदानभूतायाः **प्राणस्यार्थस्य** चे**हाया अपनुत्यै** नाशाय **वैराग्यदं महाहे**रजगराच्छिक्षितं संतोषदं **मधुकृतः शिक्षितं**।।४१।।

प्रऱ्हादायाप्यात्मतत्त्वं प्राहेदं भगवान् परम् । स्वरूपं सुखमीहोप-रतिस्तनुरशाश्वतान् ।।४२।।
दृष्ट्वा भोगान्संविशन्सन् स्वपेन्नेतः परं हितम्। हुनेद्विकल्पं चित्तौ तां मनस्यर्थभ्रमे तु तत् ।।४३।।
वैकारिके तं मायायां तां स्वस्मिन्विरमेत्ततः। इत्युक्त्वा विरराम‍ाजः प्रऱ्हादोऽप्यभवत्तथा ।।४४।।
देवोऽर्जुनायापि योगं प्राहाष्टाङ्गं निवृत्तये। सद्वाच्याविद्याशबल-ब्रह्मातोऽव्यक्तकं महत् ।।४५।।

पर**मात्मतत्त्वमिदं प्रऱ्हादायापि प्राह स्व**स्यात्मनो **रूपं सुखं** न दुःखमविद्याप्रतीतं तस्यागन्तुकत्वाद्व्याप्त्यभावात् अत्रायं प्रयोगः दुःखमात्मनो रूपं न भवति यत्र यत्रात्मा तत्र तत्र दुःखमिति साहचर्यनियमाभावात् समाधिनिद्रादौ साक्षित्वेनात्मनि विद्यमानेऽपि दुःखानुपलब्धेस्तप्तजलौष्ण्यवत्प्रतीतिमात्रमेव तर्हि तत्सुखं रूपमिति किं न प्रकाशते तत्राह **ईहा** सर्वक्रियेच्छा तस्या **उपरति**र्निवृत्तिः तनोतीति **तनुः** सर्वक्रियेहानिवृत्तौ स्वत एव प्रकाशत इति भावः अतो**ऽशाश्वतान्** शश्वत्सिद्धः शाश्वतः आत्मा '*अजो नित्यः शाश्वत* ' इति श्रुतेः। शैषिकोऽञ्प्रत्ययः कालाठ्ठञिति ठञोऽपवादेऽपि येषां च विरोधः शाश्वतिक इति सूत्रकारप्रयोगवशात्साधुः तदन्ये अनात्मभूता आद्यन्तवन्तस्ते**ऽशाश्वताः**।।४२।। तान्पारतन्त्र्यादिदोषदुष्टान्सातिशयान् **भोगान्**तत्त्वतो **दृष्ट्वा** दैवयोगेनोपलब्धान्**संविशन्सन्** भुञ्जानोऽपि **स्वपेन्**निरुद्यमो भवेदिति भावः **इतः परं** महद्**धितं** परमानन्दकारणं **न**। एवंभूतस्य स्वरूपानन्दप्राप्त्युपायमाह **विकल्पं चित्तौ** भेदग्राहकमनोवृत्तौ **हुनेत् तां** चित्ति**मर्थ**रूपो **भ्रमो** यस्य तस्मिन् **मनसि हुनेत्**।।४३।। तत्तु मनो **वैकारिके**ऽहङ्कारे हुनेत् **तम**हङ्कारं महत्तत्त्वसहितं **मायायां** प्रकृतौ **तां** च **स्वस्मिन्**सर्वकारणकारणे सर्वविलापावधिभूते हुनेद्विलापयेत् ततोऽशेषविलापानन्तरं लयविक्षेपाद्यभावात्स्वरूप एव विरतः शान्तो भवेत् श्रुतिश्च काठके '*यच्छेद्वाङ्मनसौ प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञानात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि* ' वाचं मनसि नियच्छेत् लिङ्गव्यत्ययो दैर्घ्यं च छान्दसं अत्र सर्वेन्द्रियतदर्थग्रहणोपलक्षणे वाक्शब्दः '*इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मन* ' इति श्रुतेरुपक्रमात् अन्यत्स्पष्टं अत्र तु विकल्पचित्तिशब्दाभ्यां इन्द्रियतदर्थग्रहणं उत्तरोत्तरमान्तरत्वसूक्ष्मत्वव्यापकत्वप्रत्यक्त्वानामिन्द्रियादिपुरुषान्तानामेकैकेषां ज्ञात्वा विकल्पाद्युपसंहारक्रमेण स्वशब्दबोधितपुरुषाधिगमः कर्तव्य इति भावः निषेधावधित्वात् '*पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः*' इति श्रुतेः। **इति** पूर्वोक्तविलापनमतद्व्यावृत्तिरूप**मुक्त्वाऽजः** श्रीदत्तः **विरराम** प्रवचनादिति शेषः। व्याङ्परिभ्यो रम इति परस्मैपदं। **प्रऱ्हादोऽपि** तच्छ्रुत्वा मत्वा ध्यात्वा च **तथा** तेन प्रकारेणैव विररामेदमेव स्वानुभवस्योत्तरं '*अवचनेनैव प्रोवाच स ह तूष्णीं बभूव* ' इत्यादिश्रुतेर्ज्ञातृत्वस्य दुष्टत्वाच्च। उक्तं च तलवकारैः '*अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि* ' '*अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानतां* ' '*प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते* ' इत्यादि विजानतां विशेषेण जानीम इति वदतामविज्ञातमज्ञातप्रायमविषयत्वादिति भावः।।४४।। अथ कार्तवीर्यानुग्रहं चाह देव इत्यादि यावदध्यायसमाप्ति **देवो** द्योतनात्मकः स्वयंप्रकाशः श्रीदत्तः '*यस्य भासा सर्वमिदं विभाति* ' इति श्रुतेः '*यदादित्यगतं तेज* ' इति स्मृतेश्च। **अर्जुनायापि** संसार**निवृत्तयेऽष्टाङ्गं योगं प्राह** तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा इति पञ्च यमाः तपःसन्तोषशौचस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि पञ्च नियमाः इति शेषः दश दशेत्यन्ये ते च '*अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवं। क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चैते यमा दश।। तपः सन्तोष आस्तिक्यं सिद्धान्तश्रवणं तथा। नियमाः पूजनं दानं ऱ्हीर्मतिश्च जपो व्रतम्* ' इति। एषां लक्षणानि सूतसंहितायां योगशास्त्रे चोक्तानि विस्तारभिया नेहोच्यन्ते।

ततस्ततोऽहङ्कारोऽस्मात् पञ्चतन्मात्रखाद्यतः। जगत्सकार्यविकृत-भूतान्युर्वात्मवर्ष्म तत् ।।४६।।
जागृतिर्गोभिरर्थाप्तिर् विश्वस्तदभिमानवान्। सकार्यशुद्धभूतानि लैङ्गात्मात्मा स भौतिकः ।।४७।।
हिरण्यगर्भः स्वप्नः स्यात् करणोपरमेऽर्थयुक्। प्राक्संस्कारोत्थानुभूतिस् तैजसोऽत्राभिमानवान् ।।४८।।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि। कैश्चिद्यमानां नियमानां च स्वभावतो विधानादासनादिः षडाङ्गो योग उक्तः कैश्चित्समाधिं फलं मत्वा सप्ताङ्गो योग उक्तः। भगवांस्त्विह सविकल्पनिर्विकल्पभेदेन समाधिं द्विविधं मत्वाङ्गेष्वेकं समादायाष्टाङ्गं योगमाह। **निवृत्तये** इत्यनेनाध्यारोपस्यापवादेन निवृत्तय इति ज्ञाप्यते कोऽसावध्यारोप इत्यत आह सदिति '*सदेव सोम्येदमग्र आसीत्* ' इति श्रुतेः अस्तीति **सत्** आत्मा श्रुतेरात्मशब्दसच्छब्दौ पर्यायेण मतौ अतएव सदेव सौम्य इत्यत्र स्थाने बह्वृचा '*आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्* ' इति पठन्ति। त्रिविधपरिच्छेदशून्य आत्मा **सच्**छब्द**वाच्यः** अततीत्यात्मा तदेव ब्रह्म बृह बृहि वृद्धाविति धातोरर्थानुगमान्नित्यशुद्धादिलक्षणं निरतिशयरूपं पूर्वसृष्टावनुष्ठितानि सर्वप्राणिकर्माणि पूर्वमपक्वानि प्रलयकाले मायाविशिष्टे ब्रह्मणि स्थित्वा शनैः पच्यन्ते तान्यविद्याशब्देनोच्यन्ते तद्वशा**दविद्याशबलमु**च्यते पक्वकर्मभोगदानायाहं स्रक्ष्यामीतीच्छा जायते स कामः।'*कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्* ' इति श्रुतेः **अत** एवंभूतादभिन्ननिमित्तोपादाना**दव्यक्तं** माया तस्या **महत्तत्त्वं**।।४५।। तस्मा**दहङ्कारस्**तस्मात्**पञ्चतन्मात्र**सहितं च तत्**खादि** चाकाशादिभूतपञ्चकं जायते। ननु '*आत्मन आकाशः संभूत* ' इत्यात्मत एवाकाशोद्भवः श्रूयते इति चेज्जनिकर्तुः प्रकृतिरिति पाणिनीयादाकाशो जनिकर्ता तस्य प्रकृतिरुपादानं ब्रह्मेति बोधयितुं पञ्चमी प्रयुक्ता। यद्यपि मायायाः प्रकृतित्वं '*मायां तु प्रकृतिं विद्यात्* ' इति श्रुतेः तथापि मायाया ब्रह्मशक्तित्वेन स्वातन्त्र्याभावात् '*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते* ' इति श्रुत्या शक्तित्वमपि तत्रैवाम्नातं अतोऽव्यक्तशब्दवाच्या मायाऽङ्गीकृतेत्यविरोधः महदहङ्कारयोरव्यक्तेऽन्तर्भूतयोरप्यत्र स्पष्टत्वार्थं तौ स्पष्टमुक्तौ अतो कोऽपि न विरोधः। आरम्भपरिणामवादतत्प्रत्याख्यानभूतसृष्टिविवेकादयो विस्तरभिया नेहोक्ताः। एतत्सर्वं शारीरकमीमांसाया द्वितीयाध्याये द्रष्टव्यं। अन्त्यकार्यपर्यन्तमात्मानः सर्वोपादानत्वादव्यक्तादिभावापन्नादात्मन इत्यूह्यम्। आकाशादिष्वेकोत्तरशब्दादिगुणवृद्धिः। अतः खादेर्**जगज्**जातं। **कार्यस**हितानि **विकृता**नि पञ्चीकृतानि **भूतानि उरु** स्थूलं **आत्म**नो **वर्ष्म** देहः **तच्**छब्देन विराड्वाच्यः '*सर्वं विराडुच्यत* ' इति वचनात्।।४६।। **गोभि**रिन्द्रियै**रर्थप्राप्तिर्**जागृतिः तयोः स्थूलदेहजागृत्यो**रभिमानी** जीवो **विश्व**नामकः **कार्यस**हितानि **शुद्धभूतान्य**पञ्चीकृतानि **लैङ्गा**ख्याश्चासौ **आत्मन आत्मा** देहश्च सूक्ष्मापरपर्यायः स स्थूलवद्**भौतिकः**।।४७।। तस्याभेदप्रतिपादनाय हिरण्यगर्भ इत्युक्तः समष्टिलिङ्गात्मको **हिरण्यगर्भः करणा**नामु**परमेऽर्थयुग्**विषयसहिता **प्राक्संस्कारोत्थानुभूतिः** जागृत्संस्कारजन्यविषयानुभवः **स्वप्न** उच्यते। **अत्र** लिङ्गदेहस्वप्नयोस्**तैजसा**ख्यो विश्व एवा**भिमानि**त्वेनोच्यते '*अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति* ' इति श्रुतेः।।४८।।

द्विहेत्वात्मावित्साभासा-ऽव्याकृतं ज्ञानसंहृतिः । धीहेत्वात्मस्थितिः सुप्तिर्मानी प्राज्ञोऽत्र तत्परम् ।।४९।।
शुद्धादिलक्ष्मचिन्मात्रं ब्रह्म वाक्येन लक्ष्यते। यमादिवान्पीठवित्सद्-गुरूक्त्यापूर्य चेडया ।।५०।।
प्राणं कुम्भितमन्यातो रेचयेदन्यमन्यथा । जिते प्राणेऽर्थतो गाश्च मनसोपाहरेन्मनः ।।५१।।
धारयेदात्मन्यचलं विक्षिप्तं शश्वदात्मनि । स्थिरीकुर्वन्छ्रुतं ध्यायेच्छ्रुतियुक्त्या निरासतः ।।५२।।

द्वयोः स्थूलसूक्ष्मयोर्**हेतु**भूता **आत्मावित्** आत्माज्ञानं **साभासा** आभाससहितं आभासो जीवस्तत्सहिता**व्याकृत**शब्देनोच्यते अस्पष्टदशापन्नत्वमव्याकृतत्वं '*तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्* ' इति श्रुतिश्च जगत उत्पत्तेः प्राक् अव्याकृतत्वं दर्शयति। सत्याधिष्ठाने ब्रह्मण्यव्याकृतपञ्चमहाभूतादिकं जगदारोपितं तच्च तत्त्वज्ञानेन लीयमानत्वान्न सत् दृश्याकारेन परिणतत्वान्नासत् '*परस्परविरोधे हि न हि प्रकारान्तरस्थितिः*' इति न्यायान्नापि सदसत् आत्मस्वरूपान्न भिन्नं द्वैतापत्तेः नाभिन्नमात्मनो जडत्वापत्तेः परस्परविरोधान्नापि भिन्नाभिन्नं। न कुतश्चिन्निरवयवं जगदाकारेण परिणतत्वात्। न सावयवं निरवयवस्याकाशादेरपि निदानत्वात्। तस्मादनिर्वचनीयं। तदपि ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानापनोद्यं। **ज्ञानसंहृतिः** सर्वप्रकारकज्ञानोपसंहारः **धियो** बुद्धेर्**हेत्वात्मस्थितिः** कारणात्मनावस्थानं **सुषुप्ति**र्निद्रा अनयोः कारणदेहसुप्त्यो**र्मानी प्राज्ञस्**तैजस एव प्राज्ञत्वेन परिणमते अनुक्तोऽप्यनयोरभेदो वाच्यः '*जगत्कारणरूपेण प्राज्ञात्मानं विचिन्तयेत्* ' इति वार्तिकोक्तेः। **तत्परं ब्रह्मे**त्यग्रिमेणान्वेति।।४९।। **अत्र** बुद्धेः कारणात्मनावस्थानाद्वृत्त्यभावः अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वृत्तयो बुद्धिनिष्ठा अपि तत्साक्षिण्युपचर्यन्ते यदुक्तं '*बुद्धेः प्रत्ययकारित्वं तत्साक्षिण्युपचर्यते। आत्मचैतन्यसंदीप्तां वृत्तिं धीः कुरुते यतः। चैतन्यालिङ्गिताः सर्वास्तप्तायोविस्फुलिङ्गवत्। धीवृत्तयो हि जायन्ते न क्वचिच्चिद्विवर्जिता* ' इति। ईदृशी बुद्धिर्वटबीजे वट इव कारणरूपेणात्रावस्थिता भवति अतः **ते**भ्यो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेभ्यः **परं शुद्धादिलक्षणं चिन्मात्रं ब्रह्म** तत्त्वमसीति **वाक्येन लक्ष्यते**। यदि लक्ष्यते तर्हि चिन्मात्रं सरूपि वाऽसरूपि वा चतुष्पाद्ब्रह्मास्थूलमनण्वित्यादिप्रतिपादनादिति चेत् '*न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि* ' इति न्यायात्सरूपत्वारूपत्वयोर्विरुद्धत्त्वान्नीरूपमेव तत्त्वतो ब्रह्मरूपं तूपासनार्थमनुद्यते न तात्पर्येण। ननु गुणक्रियाजात्यादिरहितं शुद्धबुद्धादिलक्षणं ब्रह्म कथं लक्ष्यत इति चेत्कल्पित्वेनेति ज्ञेयं तथाहि ' *विकल्पतदभावाभ्यामसंस्पृष्टात्मवस्तुनि। विकल्पितत्वलक्ष्यत्वसम्बन्धाद्यास्तु कल्पिता* ' इति विद्यारण्यैर्विस्पष्टमुक्तत्वात्। अथो योग उच्यते **यमादि**युक्तः **पीठविज्**जितासनः **गुरूक्त्या** गुरुवचनेन न तु स्वबुद्ध्यभ्यूहेन '*नैषा तर्केण मतिरापनेया* ' इति श्रुतेः। **इडया** वामाङ्गोपलक्षितया नाड्या।।५०।। बहिस्थं **प्राणं** वायुं शक्त्या **आपूर्य** पूरकं कृत्वा जालन्धरबन्धपूर्वकं पूरककालाच्चतुर्गुणकालावधि उदरे **कुम्भितं** जपसहितं केवलं वा**ऽन्यातः** पिङ्गलया। इतराभ्योऽपि दृश्यन्त इति सार्वविभक्तिकस्तसिः। शनैः कुम्भार्धकालेन **रेचयेत्**। उड्डियाणबन्धपूर्वकं शनैस्त्यजेन्न तु वेगतः हठात्कृते रेचके बलहानिप्रसङ्गात्। **अन्यं** प्राणायाम**मन्यथा** पिङ्गलया गृहीत्वेडया त्यजेदिति पुनः पुनर्व्युत्क्रमः। एवं त्रिषवणं दश दश कुम्भकाभ्यासेन त्रिमासोर्ध्वं प्राणजयः। एवं **जिते प्राणेऽर्थतो** विषयेभ्यो **गा** इन्द्रियाणि **मनसोपाहरे**देष प्रत्याहारः।।५१।। **मनो**ऽप्या**त्मनि** चञ्चलं यथा न भवति तथा देशसंबन्धेन **धारयेत्** '*देशबन्धश्चित्तस्य धारणा* ' इति पातञ्जलात् इयं धारणा। यदि दैवाद्**विक्षिप्तं** मनो विषयान्तरगतं चेच्**छश्वत्**पुनःपुनरभ्यासेन **स्थिरीकुर्वन्छ्रुतं ध्यायेदि**ति संबन्धः।।५२।।

विजातिप्रत्ययस्यान्य-प्रवाहीकरणं भजेत् । गुरूक्तं षड्लिङ्गवित्तं तं भागत्यागलक्षितम् ।।५३।।
तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थँ सोऽहमात्मेत्यभेदतः । नादेयं नश्वरं चित्तं लये सम्बोधयेत्पुनः ।।५४।।

श्रुत्यनुकूलया **युक्त्या विजातिप्रत्ययस्य** द्वैतसंस्कारविशेषस्य **निरासतो** निरासपूर्वकं **अन्य**स्य गुरुमुखाच्छ्रुतस्यौपनिषदाद्वैतप्रत्यगभिन्नपरब्रह्मप्रत्ययस्य जातावेकवचनं **प्रवाहीकरणं भजेत्**तथा भावयेत्। **गुरूक्तं** गुरुणा वेदान्तवाक्येन प्रतिपादितं इदं ब्रह्मरूपं वेदान्तैरवगन्तव्यं। ब्रह्मपरा वेदान्ताः, कुतः '*तत्तु समन्वयात्* ' इति न्यायात्। भिन्नप्रकरणपठितानान्तेषां कर्मादिप्रतिपादकतया कर्मशेषत्वासंभवात्। एवं वेदान्ताधारेण गुरूक्तं तात्पर्यनिश्चयहेतुलिङ्गषट्केन परब्रह्मसंभवाच्च **षड्लिङ्गै**र्**वित्तं** विज्ञातं लिङ्गषट्कमाचार्यैनिरूपितं '*उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलं। अर्थवादोपपत्तौ च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णय* ' इति। सदेव सोम्येत्यु*पक्रम्य* स आत्मा तत्त्वमसीत्यु*पसंहार*स्तयोर्ब्रह्मविषयत्वेनैकरूप्यं लिङ्गं १ असकृत्तत्त्वमसीत्य*भ्यासः* २ मानान्तरानवगम्यत्वम*पूर्वत्वं* ३ एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं *फलं* ४ सृष्टिस्थितिप्रलयप्रवेशानियमनानि *पञ्चार्थवादाः* ५ मृदादिदृष्टान्त *उपपत्ति*श्चेति ६ एतैर्ब्रह्मपरत्वं। एवमेव पुराणेऽपि ' *तत्र तावन्मुनिश्रेष्ठाः श्रवणं नाम केवलं। उपक्रमादिभिर्लिङ्गैः शक्तितात्पर्यनिर्णयः। सर्ववेदान्तवाक्यानामाचार्यमुखतः प्रियात्। वाक्यानुग्राहकन्यायशीलनं मननं भवेत्। निदिध्यासनमैकाग्र्यं श्रवणे मननेऽपि च। उत्पत्तावन्तरङ्गं हि ज्ञानस्य श्रवणं बुधाः। तटस्थमन्यव्यावृत्त्या मननं चिन्तनं तथा। कर्तव्यतर्ककोटिस्थाः शान्तिदान्त्यादयस्तथा*' इति। एतानि श्रवणमनननिदिध्यासनानि कहोळब्राह्मणे पाण्डित्यबाल्यमौनशब्दैर्व्यवहृत्य विहितानि। बाल्यशब्देन बालवयःकामचारौ मननस्यात्यन्तमनुपयुक्तौ प्रत्युत विरोधिनौ '*अनाविष्कुर्वन्नन्वयात्* ' इति न्यायात् रागद्वेषमानावमानादिग्रस्तत्वेन बहिष्प्रवृत्तिं परित्यज्य मन्तुमशक्यत्वाद्भावशुद्धिरेव बाल्यं '*ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद् बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मण* ' इति कहोळश्रुतेः। निर्विद्य निःशेषं संपाद्य पूर्वोक्तस्य पाण्डित्यस्य पुनर्मुनिशब्देन विवक्षितस्ततः '*सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत्* ' इति न्यायात् तिष्ठासेदितिपदानुवृत्त्या विधिर्लभ्यते। अस्ति च ज्ञाननैरन्तर्येण प्रयोजनं प्रबलभेदवासनावासितस्य तन्निवृत्त्यर्थत्वात्तस्मान्निदिध्यासनात्मकं मौनं विधेयं ध्यानस्यावृत्तिगुणकत्वाद्ब्रह्मसाक्षात्कारस्य दृष्टफलस्य संभवादवघातवत्फलसिद्धिपर्यन्तं श्रवणाद्यावृत्तिः कार्या '*आवृत्तिरसकृदुपदेशात्* ' इति न्यायात्। **भागत्यागलक्षितं**।।५३।। **तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थं** सोऽहमस्मीत्यभेदतो ध्यायेत्। शब्दे मुख्या गौणी लक्षणेति त्रिधा वृत्तिः। अत्रानिर्वाच्ये निर्गुणे आद्ययोरसंभवाल्लक्षणा ग्राह्या। अत्र वाक्ये पदयोः सामानिधिकरण्यं प्रतीयते एकाधारत्वात्। पदार्थयोरपि विशेषणविशेष्यभावसंबन्धश्च। '*मानान्तरविरोधे तु मुख्यार्थस्य परिग्रहे। मुख्यार्थेनाविनाभूतप्रतीतिर्लक्षणोच्यते* ' इति पूर्वाचार्यैरुक्तत्वात् तत्त्वंपदयोः पदार्थयोर्वा लक्ष्यलक्षणसंबन्धः। लक्षणा च त्रिधा जहत्यजहती भागलक्षणा चेति। अत्र जहत्स्वार्थलक्षणया गङ्गायां घोष इतिवत् सर्वथा स्वार्थत्यागे उभयोर्लक्ष्यैक्यात् स्वार्थहानिः। अजहत्स्वार्थलक्षणया काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामिति यावत् सर्वथा स्वार्थात्यागे उभयवाच्यविरोधादैक्यासंभवः। अतो भागलक्षणाऽभ्युपगन्तव्या। उक्तं पूर्वाचार्यैः '*तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा। सोऽयमित्यादिवाक्यस्य पदयोरिव नापरा* ' इति। अत्र माया मायाप्रतिबिम्ब ईश्वरो मायाधिष्ठान ब्रह्म च तत्पदवाच्यार्थः सत्यज्ञानादिर्लक्ष्यार्थः, अविद्याऽविद्याप्रतिबिम्बो जीवोऽविद्याधिष्ठानकूटस्थचैतन्यं च त्वंपदवाच्यार्थः, साक्षिभूतं चैतन्यं लक्ष्यार्थः।

विक्षिप्तं शमयेज्जह्यात् सकषायं समं वरम् । नास्वादयेद्रसं तत्र निःसङ्गः प्रज्ञया भवेत् ।।५५।।
निवातदीपवच्चित्तो ब्रह्मात्मा शून्यवृत्तिकः । कृतकृत्यः क्षीणकर्मा भिन्नहृद्ग्रन्थिसंशयः ।।५६।।

पदयोर्वाच्यार्थविरोधेऽपि लक्षणया लक्ष्यैक्यं निर्बाधम्। वस्तुतो ब्रह्मरूपस्य सतो जीवस्यान्तःकरणोपाधिकृतो दुःखित्वादिसंसारधर्मोऽतएव वास्तवविरोधाभावा**त्सोऽहमात्मेत्यभेदत** इत्युक्तं '*आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च* ' इति न्यायात्। एवं मनननिदिध्यासनाभ्यामात्मसाक्षात्कारः '*यन्मनसा न मनुत* ' इति श्रुत्या फलव्याप्तिर्निषिद्धा '*मनसैवानुद्रष्टव्यम्* ' इति वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता यदुक्तं '*ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षते। स्वयं स्फुरणरूपत्वादाभासो नोपयुज्यत* ' इति। अभेदत इत्यनेनाखण्डैकरसत्वं विवक्षितं उक्तं च पूर्वाचार्यैः '*प्रत्यग्बोधो य आभाति सोऽद्वयानन्दलक्षणः। अद्वयानन्दरूपश्च प्रत्यग्बोधैकलक्षणः। इत्थमन्योन्यतादात्म्यप्रतिपत्तिर्यदा भवेत्। अब्रह्मत्वं त्वमर्थस्य व्यावर्तेत तदैव हि। तदर्थस्य च पारोक्ष्यं यद्येवं किं ततः शृणु। पूर्णानन्दैकरूपेण प्रत्यग्बोधोऽवतिष्ठत* ' इति। ननु प्रत्यग्ब्रह्मणोरन्योन्यतादात्म्याङ्गीकारे नाखण्डैकरसत्वं सिध्यति नीलमुत्पलमित्यत्र सत्यपि तादात्म्ये गुणद्रव्यभेदस्यापि सद्भावात् एवमत्राप्यात्मत्वब्रह्मत्वकृतो भेदोऽपि प्रसज्यतेति चेन्न, गुणद्रव्ययोः परस्परव्यभिचारेण वैषम्यात् नैल्यगुणो मेघादावपि वर्तमान उत्पलं व्यभिचरति, उत्पलद्रव्यमपि शुक्लरक्तोत्पलयोर्वर्तमानत्वान्नैल्यगुणं व्यभिचरति, अतस्तत्रार्थभेदान्नाखण्डार्थत्वं इह त्वात्मब्रह्मणोः परस्परव्यभिचाराभावादेकार्थत्वे सत्यखण्डार्थत्वसिद्धिः यदुक्तं विश्वरूपाचार्यैः '*नात्मता ब्रह्मणोऽन्यत्र ब्रह्मता नात्मतोऽन्यतः। तादात्म्यमनयोस्तस्मान्नीलोत्पलविलक्षणं* ' इति। एवं तर्हि पर्यायत्वादात्मा ब्रह्मेति पदद्वयवैयर्थ्यमिति चेन्न, प्रतिपाद्यभेदाभावेऽपि मोहकल्पितयोरब्रह्मत्वपारोक्ष्ययोर्व्यावर्त्ययोर्भिन्नत्वात् उक्तमाचार्यैः '*आत्मापि सदिदं ब्रह्म मोहात्पारोक्ष्यदुषितम्। ब्रह्मापि संस्तथैवात्मा सद्वितीयतयेक्षित*' इति। इदं च वाक्यज्ञानं पूर्वं परोक्षवद्भातमपि निदिध्यासनेनापरोक्षमेव भवति स ब्रह्मसाक्षात्कार उच्यते तदप्यहं ब्रह्मास्मीत्याकारकवृत्तिज्ञानं कतकरजोन्यायेनाऽन्तेऽद्वितीयब्रह्मणि पर्यवस्यति। ध्याने प्रवृत्तस्य प्राप्तमष्टमहासिद्ध्याद्यैश्वर्यं विघ्नायैव। अतएव **तन्नश्वर**मैश्वर्यं **नादेयं**। ध्याने कदाच्चित्तमसा चित्तलये जाते तच्चित्तं **सम्यग्बोधयेत्** प्रबुद्धमपि तन्मनः **पुनः**।।५४।। विषयान्तरे **विक्षिप्तं** चेद्विषयचिन्तापरित्यागेन **शमयेत् सकषायं** चेज्**जह्यात् समं** चेत् **वरं** श्रेष्ठं तथाविधमलीनमविक्षिप्तं ध्यानान्न चालयेत्। तत्रान्तरालिकं रसमपि तदधिकप्रापणीयदृष्ट्या, तेन मनसाऽन्तरालिकं **रसं नास्वादये**देवं साक्षात्कारपर्यन्तं ध्यानं एवानुतिष्ठन् **प्रज्ञया निःसंगो भवेत्**।।५५।। एवं वर्तमानो **निवातदीपवच्चित्तो** भवेत्। अयमेव समाधिः। यदुक्तं '*ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद्ध्येयैकगोचरं। निवातदीपवच्चित्तं समाधिरभिधीयत* ' इति स्मृतिश्च '*यथा दीप* ' इति पातञ्जले '*तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्* ' इति। **ब्रह्मात्मा** '*ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति* ' इति श्रुतेः। दृढाभ्यासेन **शून्यवृत्तिकः** एवमात्मज्ञानेन **कृतकृत्यः** '*एतद्बुध्वा बुद्धि..*' इति स्मृतेः। **क्षीणा**नि प्रारब्धातिरिक्तानि **कर्मा**णि यस्य सः, तत्त्वज्ञानोत्तरं नाकार्षं न करोमि न करिष्यामीत्यकर्तृब्रह्मनिश्चयात्र पापलेशः '*तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्* ' इति न्यायात् तथैव वस्तुसामर्थ्यात्पापवत्पुण्येनापि न लिप्यते '*उभे ह्येवैष एते तरति* ' इति श्रुतेः '*इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु* ' इति न्यायाच्च **भिन्ना हृदयग्रन्थिसंशया**श्च यस्य '*भिद्यते हृदयग्रन्थि..* ' इति श्रुतेः।।५६।। प्रारब्धभोक्त्येत्यनेन ज्ञानसमकाल एव न देहनाशः '*तस्य तावदेव चिरं..*' इति श्रुतेः। '*अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः*' इति न्यायात् यथा स्वीकारपरित्यागयोः स्वातन्त्र्येऽपि मुक्ते बाणे न स्वातन्त्र्यं स तु क्षीणवेगः स्वयं एव पतति एवं तत्त्वज्ञस्यानारब्धकार्ये अपि। एवं **प्रारब्धभोक्ता**पि सुखदुःखातीत एवा**त्मारामः** '*आत्मक्रीड आत्मरति* ' इति श्रुतेः। ईदृशो **जीवन्नेव मुक्तो भवेद्ध्रुवं** निश्चितं देहपातोत्तरं न जन्मभाक्। अस्यारब्धं स्वफले सुखदुःखे भोजयेत् तदर्थमेव प्रवृत्तत्वात्।

प्रारब्धभोक्तात्मारामो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् । इत्युक्त्वोपररामेशः कार्तवीर्यस्तथाभजत् ।।५७।।

इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे दत्तलीलाकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

तेन न सुखी न दुःखी। अत एव जीवन्मुक्तस्य तेन विद्यालोपाभावान्मुक्तिर्नियता '*भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यत* ' इति न्यायात् असति प्रतिबन्धे ज्ञानमिहैव जन्मन्यन्यथा जन्मान्तरे '*ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्* ' इति न्यायात्। अन्यच्चोच्यते '*आत्मा सेतुर्विधृतिः*' इति श्रुतेर्लोके पारवान् जलस्य सेतुर्विधारकस्तं तीर्त्वा परं पारं प्रतिपद्यते तथा जगद्विधारकं ब्रह्म तीर्त्वा गन्तव्येनान्येन केनचिद्भवितव्यमिति इति न शङ्कनीयं '*परमतः सेतून्मानसंभेदव्यपदेशेभ्यः*' इति न्यायात् न ब्रह्मणः सेतुत्वं मुख्यं अतएव मुक्तस्य देह एव प्राणलयः '*प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात्* ' इति न्यायात् यथा तप्ताश्मनि प्रक्षिप्तं जलं नान्यत्र गच्छति नापि तत्र दृश्यते किन्तु स्वरूपेण लीयते तद्वत्तत्त्वविदः प्राणा देहादनुत्क्रामन्तोऽपि न देहेऽवतिष्ठन्ते किन्तु विलीयन्तेऽतएव श्रुतिः '*न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति* ' इति। तस्य करणानामपि परमात्मन्येव लयः '*तानि परे तथाह्याह* ' इति न्यायात् '*यथेमा नद्य* ' इति मुण्डकश्रुतेः '*गताः कला* ' इति शास्त्रं तु तटस्थपुरुषप्रतीतिविषयं, मूर्धन्यनाडीगमनं तूपासकानामेव तेषां ब्रह्मणा सह मुक्तिः। शुक्लगत्यपेक्षापि ज्ञानिनो नापेक्षिता अन्यद्गन्तव्याभावात्, न च मुक्तस्य नाकवन्नूतनरूपसंपादनं अत उक्तं ब्रह्मात्मा '*संपद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्* ' '*परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत* ' इति श्रुतेः स्वशब्देन विशेषितत्वात्पूर्वमपि विद्यत एव, तस्मात्पुरातनं ब्रह्मैव मुक्तिरूपं ज्योतिरूपसंपद्येति वाक्यं तत्पदार्थशुद्धिविषयमुक्तं। अतस्तदानीं भेदोऽस्तु। अपरोक्षानुभवे मुक्तस्वरूपं ब्रह्माभिन्नं अविभागेन दृष्टत्वादिति न्यायात् एवं च सति मुक्तिर्नाम निजसिद्धब्रह्मस्वरूपमेव न तु स्वर्गवदागन्तुकं '*एवं मुक्तिफलानियम* ' इति न्यायात् मुक्तः पुरुषः कदापि सर्वज्ञत्वसत्यसंकल्पत्वादिगुणयुक्तोऽहमिति न प्रतिपद्यते तत्प्रतिपत्तिहेतुभूताया अविद्याया विनाशितत्वात्। अत एव **शून्यवृत्तिकः**। अतोऽस्य युगपदेव सविशेषनिर्विशषत्वेन कालभेदो न '*ब्राह्मेण जैमिनिभिरूपन्यासादिभ्य* ' इति न्यायात्। **इति**शब्दो विद्यासमाप्त्यर्थः '*नातः परमस्ति* ' इत्यादिवत् **उक्त्वा** ज्ञानमुपदिश्यो**पररामे**ति पूर्ववद्व्याख्येयः **कार्तवीर्यो**ऽर्जुनस्**तथाऽभजद्**यथोपदिष्टमनुष्ठितवान्।।५७।।

।।इति श्रीगुरुचरिते दत्तलीलाकथनंनामक चतुर्थोऽध्यायः।।

।। पंचमोऽध्यायः ।।

।। नामधारक उवाच ।।

पुराणोक्तावतारास्तु श्रुता यद्भवतोच्यते । तन्मे शुश्रूषवे व्यासाच्छंस त्वन्याश्च तत्कथाः ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

साधु पृष्टं त्वया वत्स शृणुष्वाऽवहितोऽमलाः । तत्कथा याः पुनन्त्यत्र श्रोतॄन्वक्तारमप्यघात् ।।२।।

धर्मं गोप्तुं सतस्त्रातुं दुष्टान्हन्तुं युगे युगे। लीलाधाम्नाऽवतरति नाऽन्यत्किञ्चित्प्रयोजनम् ।।३।।

दीनान्हीनमतीन्ज्ञात्वा दुर्बलान्नॄन्स कच्चरे। आविरासीत्समुद्धर्तुं प्रेम्णा भक्तिविधित्सया ।।४।।

पीठापुरे पूर्वदेशे राजा नाम द्विजो वधूः। सुमतिस्तावुभौ नित्यं श्रीदत्तार्चनतत्परौ ।।५।।

एकदैत्यास्य वेश्मार्थि-वेषेणान्नं स्म याचते । दत्तः श्राद्धेऽकृतेप्यस्मै श्राद्धाहेऽन्नं ददौ सती ।।६।।

तदा ज्ञात्वा स तद्भावं सर्वात्मा भगवान्विभुः। प्रीतः स्वरूपं साध्व्यै तत्करं धृत्वा व्यदर्शयत् ।।७।।

स्त्रक्कुण्डीडमरूच्छूल-शङ्खचक्रधरोऽब्रवीत् । व्याघ्रचर्मावृतस्त्र्यास्यो जटिलो भस्मभूषितः ।।८।।

श्रीगणेशाय नमः।। ।।अथ पञ्चमोऽध्यायः।। ।।*पञ्चमे ब्राह्मणीभक्त्या दत्तः श्रीपादसंज्ञकः। तत्पूत्रोऽभूच्छुभान्भ्रातॄन्विधाय विजहार च।।१।।* अद्वितीयात्मतत्त्वसाक्षात्कारः साधनचतुष्टयसंपन्नानां श्रवणादिक्रमेण जायते। विमुखानां त्वधिकारानुरूपकर्मोपासनायोगेनान्तःकरणशुद्धिचित्तैकाग्र्ये संपद्यते, तत्संपत्तौ शमाद्याः अर्थतः सिध्यन्त्येवातो विमुखाय कर्मोपदेशस्तत्कर्म च गहनगतिकं '*कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः*' इति स्मरणात्। अतः कर्मादितत्त्वज्ञानाभावे कृतं कर्म विकर्म भवति विकर्म च कर्म भवतीत्यादिविवेकपूर्वकं भगवत्प्रीत्यर्थं कर्मानुष्ठानात् सात्त्विकस्य भगवत्प्रसाद एव भवतीति ज्ञापनाय पञ्चमोऽध्याय आरभ्यते **यद**वतारद्वयं **भवतोच्यते** द्विवारमाविरासीत्स इत्यादिना **तद**वतारद्वयं।।१।।**अवहितः** सावधानः सन् **अमलाः** पापनिवर्तकाः।।२।। साधुत्राणेन दुष्टहननेन च वैषम्यनैर्घृण्ये स्यातामिति न शङ्कनीयं यथा चाहुः '*लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथाऽर्भके। तद्वदेव महेशस्य नियंतुर्गुणदोषयोः*' इति। '*वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति*' इति न्यायात् अन्यत्किमपि प्रयोजनं न पूर्णकामत्वात्।।३।। **दीनान्** दरिद्रान् **हीनमतीन्** कृपणान् **दुर्बलान्** ब्रह्मचर्यादिसाधनविकलान् **कच्चरे** मलदूषिते कलौ ईदृशान् **नॄन्ज्ञात्वा** तान्**समुद्धर्तुं**मलुप्तविद्याशक्तित्वेनाप्रच्युतज्ञानबलवीर्यया शुद्धसत्त्वोर्जितसत्त्वमूर्त्या**ऽऽविरासीत्**।।४।।**राजा नाम** ब्राह्मणस्तस्य **वधूः** शोभना मतिर्यस्याः सान्वर्थनामिका।।५।। **अर्थिवेषेण** याचकरूपेणा**स्य** ब्राह्मणस्य **वेश्म** गृह**मेत्या**गत्य **दत्तोऽन्नं याचते स्म सती** सुमतिः श्राद्धाहे **श्राद्धेऽकृतेऽपि** श्रीदत्तायान्नं **ददौ**।।६।। तस्या **भावं** भक्तिं मातृबुद्ध्या **तत्करं धृत्वा** त्रिमूर्त्यात्मकं **स्वरूपं व्यदर्शयत्**।।७।।अधःकरयोः **स्त्रक्** माला **कुण्डी** कमण्डलुः मध्ययोर्**डमरूच्छुलौ** ऊर्ध्वयोः **शंखचक्रे** चैषां धारकः **त्री**णि **आस्या**नि मुखानि यस्य सः।।८।। भो **मातः** निमंत्रितेषु **द्विजेषु** दैवेषु पित्र्येषु च श्राद्धदिवसेऽद्या**भुक्तेष्व**पि **हव्यकव्या**दोऽयमिति **बुद्ध्या** श्राद्धात्पूर्वं **श्राद्धान्नं** यस्मान्**मे** मह्य**मर्पितं** दत्तं

मातर्द्विजेष्वभुक्तेषु श्राद्धाहेऽन्नं त्वयार्पितम् । हव्यकव्यादबुद्ध्या मे तत्तुष्टोस्मि वरं वद ।।९।।

।। ब्राह्मण्युवाच ।।

धन्यास्मि सर्वे पितरोऽपि धन्या यद्यो भवान्योगिमनोविदूरः ।
भूत्वाद्य मे दृग्विषयोऽपि पित्र्यं स्वाद्वाददेऽन्नं किमुताधिकं सत् ।।१०।।
सृष्ट्यादिहेतो जगतोऽसि भक्त-पुमर्थकल्पद्रुरतोऽर्पयाशु ।
मे सुप्रजस्त्वं जनसेवि मातरित्युक्तसम्बोधनसिद्धिपूर्वम् ।।११।।

एवं श्रुत्वात्रिवद्याच्त्रां प्राह भूयात्तथैव ते । पुत्रस्ते भविता मादृक्तदुक्तिं मा तिरस्कुरु ।।१२।।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे दत्तः सापि वेश्मैत्य हर्षिता। पत्ये शशंस तत्सर्वमुभावपि ननंदतुः ।।१३।।

श्रीगणेशाय नमः।। ।।अथ पञ्चमोऽध्यायः।। ।।*पञ्चमे ब्राह्मणीभक्त्या दत्तः श्रीपादसंज्ञकः। तत्पूत्रोऽभूच्छुभान्भ्रातॄन्विधाय विजहार च।।१।।* अद्वितीयात्मतत्त्वसाक्षात्कारः साधनचतुष्टयसंपन्नानां श्रवणादिक्रमेण जायते। विमुखानां त्वधिकारानुरूपकर्मोपासनायोगेनान्तःकरणशुद्धिचित्तैकाग्र्ये संपद्यते, तत्संपत्तौ शमाद्याः अर्थतः सिध्यन्त्येवातो विमुखाय कर्मोपदेशस्तत्कर्म च गहनगतिकं ' *कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः* ' इति स्मरणात्। अतः कर्मादितत्त्वज्ञानाभावे कृतं कर्म विकर्म भवति विकर्म च कर्म भवतीत्यादिविवेकपूर्वकं भगवत्प्रीत्यर्थं कर्मानुष्ठानात् सात्त्विकस्य भगवत्प्रसाद एव भवतीति ज्ञापनाय पञ्चमोऽध्याय आरभ्यते **यद**वतारद्वयं **भव-तोच्यते** द्विवारमाविरासीत्स इत्यादिना **तद**वतारद्वयं।।१।।**अवहितः** सावधानः सन् **अमलाः** पापनिवर्तकाः।।२।। साधुत्राणेन दुष्टहननेन च वैषम्यनैर्घृण्ये स्यातामिति न शङ्कनीयं यथा चाहुः '*लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथाऽर्भके। तद्वदेव महेशस्य नियंतुर्गुणदोषयोः* ' इति। '*वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति* ' इति न्यायात् अन्यत्किमपि प्रयोजनं न पूर्णकामत्वात्।।३।। **दीनान्** दरिद्रान् **हीनमतीन्** कृपणान् **दुर्बलान्** ब्रह्मचर्यादिसाधनविकलान् **कच्चरे** मलदूषिते कलौ ईदृशान् **नॄन्ज्ञात्वा** तान्**समुद्धर्तु**मलुप्तविद्याशक्तित्वेनाप्रच्युतज्ञानबलवीर्यया शुद्धसत्त्वोर्जितसत्त्वमूर्त्या**ऽऽविरासीत्**।।४।।**राजा नाम** ब्राह्मणस्तस्य **वधूः** शोभना मतिर्यस्याः सान्वर्थनामिका।।५।। **अर्थिवेषेण** याचकरूपेणा**स्य** ब्राह्मणस्य **वेश्म** गृह**मेत्या**गत्य **दत्तोऽन्नं याचते स्म सती** सुमतिः श्राद्धाहे **श्राद्धेऽकृतेऽपि** श्रीदत्तायान्नं **ददौ**।।६।। तस्या **भावं** भक्तिं मातृबुद्ध्या **तत्करं धृत्वा** त्रिमूर्त्यात्मकं **स्वरूपं व्यदर्शयत्**।।७।।अधःकरयोः **स्रक्** माला **कुण्डी** कमण्डलुः मध्ययोर्**डमरूच्छुलौ** ऊर्ध्वयोः **शंखचक्रे** चैषां धारकः **त्रीणि आस्या**नि मुखानि यस्य सः।।८।। भो **मातः** निमंत्रितेषु **द्विजेषु** दैवेषु पित्र्येषु च श्राद्धदिवसेऽद्या**भुक्तेष्व**पि **हव्यकव्या**दोऽयमिति **बुद्ध्या** श्राद्धात्पूर्वं श्राद्धा**न्नं** यस्मान्**मे** मह्य**मर्पितं** दत्तं **तत्**तस्मात्परि**तुष्टोऽस्मि** अभिप्रेतं **वरं वद** दुर्लभमपि दास्यामि।।९।। **योगिमन**सो **वि**शेषेण **दूरो**ऽपि **भवान्** मम दृग्गोचरो**ऽपि** सन् **पित्र्यमन्नं आददे** स्वीकृतवान्।।१०।। भो जगत्**सृष्ट्यादि**कारणा**शु** शीघ्रं **मातरित्युक्तं** त्वया यत्**संबोधनं** तत्**सिद्धिपूर्वं जनैः सेव**नीयं सत्पुत्रत्वं **मे** मह्यं देहि त्वं मत्पुत्रो भवेति भावः अपादादाविति निषेधेऽपि मेआदेश आर्षः।।११।। अहमिव दृश्यत इति **मादृक्** मत्तुल्यः त्यदादिषु दृश् इति कञ् **मा तिरस्कुरु** तद्वचनोल्लंघनं मा कुरु तस्य स्वतंत्रत्वात्।।१२।। **सा** ब्राह्मणी **शशंस** कथयामास।।१३।। **श्राद्धे अकृते**।।१४।। **यैरन्नैः पित्रर्थं** ब्राह्मणान्**भोजयित्वा** तद्रूपं **कर्म विष्णवे** समर्प्यते **स** विष्णुस्तानि चतुर्विधानि अन्नानि भुनक्तीति **तद्भुक्** अभुक्तवान् **तत्**कर्म

।। ब्राह्मण्युवाच ।।

मयापराद्धमद्यान्नं दत्तं श्राद्धेऽकृतेप्यहो । दत्तात्रेयाय तन्नाथ क्षन्तुमर्हस्यशेषतः ।।१४।।

।। विप्र उवाच ।।

पित्रर्थं भोजयित्वान्नैर्यैर्द्विजान्विष्णवेऽर्प्यते । कर्माभूत्स स्वयं तद्भुक्तत्कृतं सत्सुदुष्करम् ।।१५।।

रूपान्तरेण मध्याह्ने दत्तोऽटत्यर्थिवत्स्वकान् । उद्धर्तुं भगवांस्तस्मात्तदार्च्यो नान्यथाप्यते ।।१६।।

तस्माद्भद्रे कृतं भद्रं धन्ये नः पावितं कुलम् । वरोऽपि दुर्लभो लब्धो लोकस्यापि हितं यतः ।।१७।।

इत्युक्त्वा लौकिकं श्राद्धं शेषान्नेनाकरोद् द्विजः । साप्यथो गर्भिणी भूत्वा कालेऽसूतामुमप्यजम् ।।१८।।

मर्त्याकृतिं तदोद्वीक्ष्य तं दैवज्ञा जगुर्द्विज । ततपुण्यौघकल्पद्रु-फलं लब्धं सुदुर्लभम् ।।१९।।

अयं हि साक्षाद्भगवान्दत्तात्रेय इवार्चितः। अवतीर्णोऽत्र भक्त्यर्थमित्युक्त्वा ते मुदं ययुः ।।२०।।

श्रीपादः स्वङ्कितांङ्घ्रित्वान्नाम्नोक्तः पितृलौल्यतः। स्वङ्गैरृद्धिं पुपोषारं सौरांश्वाप्तेः शशीव सः ।।२१।।

संस्कृतेनोपनीतेन स्वयं त्र्यपि पाठिता । स्वोद्वाहार्थं समुद्युक्तः पितानेन निवारितः ।।२२।।

सुतरां **दुष्कर**मपि त्वया **कृतं** सतामपि सुदुष्करं वा।।१५।। अन्यद्रूपं **रूपान्तरं** तेन **अर्थिवद्**याचकव**त्स्व**भक्तानु**द्धर्तुमटति** यस्मात्**तस्मात्तदा** मध्याह्ने भिक्षान्नदानेन **भगवा-नर्च्यः** पूजनीयो**ऽन्यथा** भजनादिना **तथा नाप्यते** न प्राप्यते।।१६।। यस्मादेवं **तस्मात् यतो** वरात् **लोकस्याप्य**नुग्रहरूपं **हितं**।।१७।। ज्ञानिदृष्ट्या भगवत्प्रीत्यैव श्राद्धं सुसंपन्नं तथापि ज्ञानिदृष्टान्तेनाज्ञः कर्म त्यजेत् ज्ञानिना कर्मणि कृतेऽज्ञोऽपि जनः करिष्यत्यतो लोकसंग्रहार्थं **शेषान्नेन लौकिकं श्राद्धमकरोत्** '*विष्णोर्निवेदि-तान्नेन यष्टव्यमिति तु स्थितिः*' इति भागवतमतात् यद्यपि '*विष्णोर्निवेदितान्नेन न यजेद्देवतान्तरम्* ' इति पूर्वेण विरोधस्तथापिस्मार्तभागवतमतभेदेन व्यवस्था **सापि** ब्राह्मणी **काले** दशमे मासि **अमुं** वरद**मसूत**।।१८।। **मर्त्याकृतिं** मनुष्यरूपानुकारिणं **दैवज्ञा** ज्योतिषिका ऊचुः जन्मकालीनग्रहानुमानेन न तु तत्त्वदृष्ट्या **ततो** विस्तृतो यः पूर्व**पुण्यौघकल्पद्रु**मस्तस्य **सुदुर्लभं फल**मिदं पुत्ररूपं त्वया **लब्धं**।।१९।। **अयं हि** बालको लोकपूजितः **साक्षाद्भगवान्दत्तात्रेय इव** तव **भक्त्यर्थं अवतीर्ण** इवास्माभिर्लक्ष्यते इति शेषः। **इत्युक्त्वा ते** शोभनग्रहभावयोगावलोकनेन **मुदं** हर्षं **ययुः**।।२०।। शोभना अङ्का लक्षणान्यनयोः संजातानि **स्वङ्कितौ** तादृशौ **अङ्घ्री** पादौ यस्य तस्य भावस्त**त्त्वं** तस्माद्धेतोर्**नाम्ना श्रीपाद** इत्यु**क्तः** श्रीशब्दस्य शोभासंपत्तिपद्मास्वभिधानात् पित्रो**र्लौल्यतः** प्रयत्नतः **अरं** शीघ्रं शोभनै**रङ्गै**र्वृद्धिं **पुपोष** क इव सूरस्येमे **सौरा**स्ते च ते**ऽशवः** किरणाश्च तेषा**माप्ते**र्व्याप्तेश्चन्द्र **इव** यदुक्तं '*सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशं। क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः*' इति। निशि भवं नैशं।।२१।। जातकर्मादिभिः **संस्कृतेन** कृतोपनयनेन त्रयोऽवयवा यस्याः सा **त्रयी** वेदत्रयी आचारो

।। श्रीपाद उवाच ।।

मया प्रव्रजतोद्वाह्या योगश्रीरेव नापरा । ममैव सुलभा सा तु यतः श्रीवल्लभोऽस्म्यहम् ।।२३।।
इत्युक्त्वा प्रव्रजन्तं तं दृष्ट्वोभौ साश्रुलोचनौ । ऊचतुस्त्वयि याते क्व जीवावोऽब्जा इवाम्बुनि ।।२४।।
त्वं साक्षाद्भगवान्विष्णुः पुत्रत्वेनाप्यतीन्द्रियः । प्राक्पुण्यैर्गोचरीभूतः कुतोऽकाब्धौ जहासि नौ ।।२५।।
पङ्ग्वन्धार्भेक्षणान्नित्यं भवपाशविमोचनी । स्मृतिः प्रवयसोर्नौ ते हरे दूरतरा भवेत् ।।२६।।
इति वाक्यं सकारुण्यं श्रुत्वारं भ्रातृमस्तके । सुखाकरं निजकरं तद्वात्सल्याद्दधौ हरिः ।।२७।।
तदैव सहसा तौ तु स्वङ्गौ ज्ञौ च बभूवतुः । लीलाविहारिणीदन्नो चित्रं भगवतीश्वरे ।।२८।।

व्यवहारः प्रायश्चित्तं वा **स्वय**मेव शिष्यैः **पाठिता** ईश्वरावतारत्वात् **स्वस्योद्वाहार्थं** दारपरिणयार्थं **समुद्युक्तः पितानेन** नित्यविरक्तेन श्रीपादेन **निवारितः**।।२२।। ननु '*वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमं। अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्* ' इति मनूक्तेः '*आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः* ' इति श्रुत्यनुशासनात् '*जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभि ऋणवा जायत* ' इति श्रुत्या स्वाध्यायाध्ययनेनानुरूपदाराहरणपूर्वकं यज्ञयागाद्यनुष्ठानेन पुत्रार्थमृतौ भार्योपगमनेन च देवर्षिपित्रर्णापाकरणश्रवणात्प्रजाप्रजातिप्रजननसामर्थ्यादनुत्पद्यमानेऽपि पुत्रे पुत्रकामेष्टया यजेतेति पुत्रकाम्यादिकर्मणा पुत्रोत्पत्तौ सामर्थ्यादनुत्पद्यमानेऽपि पुत्रे पुत्रकामेष्टया यजेतेति पुत्रकाम्यादिकर्मणा पुत्रोत्पत्तौ कर्तव्यप्रयत्नश्रवणात् '*नापुत्रस्य लोकोऽस्ति* ' इत्यपुत्रस्य लोकानाप्तिश्रवणाच्च स्वोद्वाहोद्युक्तस्य पितुर्निवारणं किमर्थमित्यत आह **प्रव्रजता** सर्वं संन्यस्य गच्छता **योगो**ऽध्यात्मयोगस्तत्प्राप्त्युपायान्तरङ्गभूता **श्रीः** संपच्छ्रेयोरूपा सै**वोद्वाह्या** परिणेया लभ्येति यावत् तर्ह्यन्तःकरणशुद्धिद्वारा तल्लब्धये कर्ममयी संपद्वरणीयेति चेन्नेत्याह **नापरा** प्रेयोरूपा बन्धकत्वात् '*तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीत* ' इति श्रुतेः। यद्वा एकस्मिन्विज्ञाते सर्वं विदितं भवतीति प्रदर्शनाय ऋग्वेदादिरूपाऽपरा चित्तशुद्ध्यर्थमुक्ता सा मया नोद्वाह्या प्राप्तसाधनत्वात् अतएव श्रेयोरूपा **ममैव** मादृशाधिकारिण एव **सुलभा यतोऽहं श्रीवल्लभः** श्रियः प्रियः। अयं भावः - कर्मकाण्डोक्तविधिप्रतिषेधरूपाः श्रुतयो रागिणमधिकृत्य प्रवर्तन्ते नापरं अतएव रागतः प्राप्तानां व्यवायामिषमद्यसेवानां हुतशेषभक्षणविवाहपरिगृहीतदारसेवारूपा व्यवस्थितिर्नापूर्वेण न नियमेन वा विधीयते किं तु '*ऋतौ भार्यामुपेयात्* ' इत्यादिना नियमरूपेणाभ्यनुज्ञामात्रं क्रियते तत्पक्षेऽपि ऋत्वतिक्रमे '*ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्रसंशयः*' इति भ्रूणहत्यादिस्मरणं तु तस्यां द्वेषादिनाऽरुच्या वा यो नोपेयात्तदर्थं न तु विरक्तस्य दोष एवं सर्वत्रापि यथायथमूह्यं अतएव वाजसनेयिनः '*एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्त्येतद्ध स्म वै पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक* ' इति '*ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति* ' इति।।२३।। **उभौ** मातापितरौ जीवनहेतुभूते **त्वयि याते क्व जीवावः** अम्बुनि जाते**ऽब्जा इव** मरिष्यावः।।२४।। **अतीन्द्रियोऽपि** पूर्व**पुण्य**प्रभावाद्दृग्विषयीभूतोऽपि सन्दुःखसमुद्रे **नौ** आवां **कुतो जहासि**।।२५।। एको**ऽर्भो** बालः **पङ्गु**रपरो**ऽन्धः** तद्दर्शनजन्यदुःखात्**प्रवयसोर्**वृद्धयोर्**नौ** आवयोर्मृत्युरूप**भवपाशविमोचन्य**पि **ते स्मृतिर्दूरतरा भवेत्**।।२६।। इतीत्यादि सिद्धो वदति **अरं** शीघ्रं **सुखाकरं** सुखदातृत्वात्सुखखनिरूपं **हरिर्**दुःखहरः श्रीपादः।।२७।। **तदैव** हस्तस्पर्शनकाल एव **तौ**

मात्याप्यदृष्टपूर्वं तद्रूपमाश्चर्यवत्तदा । दृष्ट्वा दत्तोदितं स्मृत्वा प्राह गद्गदया गिरा ।।२९।।
माया दुरत्यया दैवी तव तन्मोहिता भृशम् । सत्त्वं रूपं न जानेऽतस्त्वयि मे पुत्रकल्पना ।।३०।।
ब्रह्माण्डलेखा यत्कुक्षौ स मत्कुक्षिज इत्यदः। जगद्विडम्बनं दत्त माया मां नावृणोतु ते ।।३१।।

।। श्रीपाद उवाच ।।

अदो रूपं त्वया दृष्टं नित्यं हृद्यवधारय । मायासिन्धुं द्रुतं तीर्त्वा मत्सायुज्यं गमिष्यसि ।।३२।।
शतायुषौ सुतौ तेऽपि पितृशुश्रूषणोत्सुकौ । विद्याश्रीपुत्रपौत्राढ्यौ मातर्मंक्षु भविष्यतः ।।३३।।
स्तुतोऽपि भ्रातरौ प्राह प्रव्रजाम्यधुना सदा । संसेव्यौ पितरौ तौ हि गृहिसत्पुत्रदैवतम् ।।३४।।

भ्रातरौ **स्वङ्गौ** शोभनान्यङ्गानि ययोस्तौ शोभनाभ्यां पादाभ्यां शोभनाभ्यां नेत्राभ्यां च युक्ताविति यावत् **ज्ञौ** ज्ञानसंपन्नौ च **बभूवतुः** लीलया नृरूपेण विहरतीति **लीलाविहारी** तस्मिन्**भगवती**च्छामात्रेण जगदुत्पादके **इदं न चित्रं** आश्चर्यं **ईश्वर**त्वात्।।२८।। एवमग्रजौ विधाय मात्रे स्वरूपं प्रदर्शितं **तदा माताऽपि** ज्ञानदृष्ट्या**ऽदृष्टपूर्वं** स्वरूपस्यानन्यत्वेऽपि विक्षेपावरणरूपमायाशक्त्या राहुणार्क इवावृतत्वाददृष्टपूर्वत्वं सच्चिदानन्दात्मकं **तद्रूपमाश्चर्यवद्दृष्ट्वा दत्ते**नोक्तं तदुक्तिं मा तिरस्कुर्वित्युक्तिं **स्मृत्वा गद्गदया गिरा प्राहा**श्चर्यवन्मातेति वा योजना। *'आश्चर्यो वक्ता..'* श्रुतेः *'आश्चर्यवत्पश्यति '* इति स्मृतेश्च।।२९।। यस्मात्सत्त्वासत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयत्वाद्**दुरत्यया** दुस्तरा **दैवी** अलौकिकी अत्यद्भुता **तव** परमेश्वरस्य त्रिगुणात्मिका **माया**शक्तिर्या **भृश**मत्यर्थं तया मायया **मोहिता** संजातमोहा मोहो नाम मुह वैचित्य इति धातोरुपेक्षणीये चित्तवृत्त्यनुदयः। अहं तव **सत्त्वं** यथातथ्यं **रूपं न जानेऽतो** हेतोस्**त्वयि** भगवति **मे** ममायं **पुत्र** इति **कल्पनो**दिता मृषेयं।।३०।। यतोऽसङ्ख्यातानां **ब्रह्माण्डा**नां **लेखाः** पङ्क्तयः सावकाशः **यत्कुक्षौ** जठरे विद्यन्ते **स** त्वं **मत्कुक्षिजो** मदुदरोत्पन्न **इति** यद**दः जगति विडम्बन**मेव भो **दत्त** विक्षेपावरणशक्तिरूपा **ते माया मां नावृणोतु** असत्त्वावरणमभानावरणं च जन्ममरणादिरूपसंसारकारणं न विक्षेपः अपरोक्षानुभूतौ कञ्चित्कालं तस्मिन् विद्यमानेऽपि न संसारापत्तिः। मन्दान्धकारे रज्ज्वज्ञानाद्रज्जुरेव सर्पोऽयमिति भाति तदा भयकम्पादयो विक्षेपा अप्युत्पद्यन्ते। दीपादिदर्शनेनायं न सर्पः किन्तु रज्जुरेवेति तस्यां ज्ञातायामपि तदैव कम्पादिर्न निवर्तते, नापि तदुपशमनाय पुरुषः प्रवर्तते, स स्वयमेवोपशाम्यति तद्वद्विक्षेपोऽपीत्यत उक्तं माया मां नावृणोतु **त** इति।।३१।। भो मातर्यदधुना प्रदर्शितं मम**ादो रूपं त्वया दृष्टं** वृत्तिव्याप्त्यानुभूतं तन्**नित्यं** मनननिदिध्यासनाभ्यां सत्त्वप्रधाने **हृदि अवधारय** शश्वच्चिन्तय *' आवृत्तिरसकृदुपदेशात् '* इति न्यायात्, तेन **माया**रूपं समुद्रं प्रतिबन्धापायाद्**द्रुतं तीर्त्वा** सच्चिदानन्दस्य मम **सायुज्यं गमिष्यसि**।।३२।। अपि च तवेमौ पुत्रौ **शतायुषौ भविष्यतः** पित्रोर्युवयोः सेवायां तत्परौ **विद्या** पराऽपरा **श्रीः** संपत् **पुत्रपौत्राः** प्रसिद्धा एतैर**ाढ्यौ** युक्तौ लोकवन्द्यौ च **भविष्यत** इति सर्वत्र संबध्यते।।३३।। इत्युक्तवन्तं स्वानुजं श्रीपादं तौ **भ्रातरावपि** परमेश्वरबुद्ध्या स्तुतवन्तौ ताभ्यां **स्तुतः** स श्रीपादस्**तौ** भ्रातरावपि **प्राहाधुना**ऽहं **प्रव्रजामि** युवाभ्यां **सदा पितरौ** सम्यगकपटेन मुख्यया पुत्रवृत्त्या सेवितुं योग्यौ **हि** यस्मात्**तौ** पितरौ **गृहिणः सत्पुत्रस्य दैवतं** *' मातृदेवो भव पितृदेवो भव '* इति श्रुत्यनुशासनात्। गृहिशब्दो ब्रह्मचारीसं-

इत्युक्त्वा त्रिः परिक्रम्य प्रणम्य पितरौ स तु । जगाम तदनुज्ञातः काशीं च बदरीवनम् ।।३५।।

साधूनुद्धर्तुकामोऽथ गोकर्णं सज्जनाश्रयम् । ययौ यत्र गणेशेन शैवं लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।।३६।।

।। इति श्रीगुरुचरिते श्रीपादावतारो नाम पञ्चमोध्यायः।।५।।

न्यासीव्यावर्तकः, ब्रह्मचारिणो गुर्वधीनत्वात्संन्यासिनो निर्ममत्वाच्च। सच्छब्दः पुत्रस्य गुणावद्योतकः।।३४।। **पितरौ** पितामात्रेत्येकशेषः **त्रिः** कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य 'तिष्ठद्गु..' इत्यव्ययीभावः प्रदक्षिणं संद्यमानं कृत्वेत्यभूततद्भावे च्विः **ता**भ्यां मातापितृभ्याम**नुज्ञातः**।।३५।। **सज्जनाश्रय**भूतं **गोकर्ण**क्षेत्रं शिवलिङ्गं स्थापितम्।।३६।। श्राद्धीयमन्नं श्राद्धात्पूर्वमन्यस्मै दीयते चेद्विकर्मैव बुभुक्षिताय गृहागताय ब्राह्मणायातिथयेऽन्नादानेऽपि विकर्मैव '*स इद्भोजोय* ' इति मंत्राभ्यामन्नदानश्रवणात् एवं स्थितेऽप्यदानाद्दानं वरमिति निर्धार्यातिथिः सर्वरक्षक इत्यनुस्मृत्य हव्यकव्यादोऽयं विष्णुरूपोऽतिथिरितीश्वरबुद्ध्यातिथयेऽन्नं दत्तवत्याः सत्त्वगुणोपेताया ब्राह्मण्याः श्राद्धफलादनन्तफलं लब्धं एतेन न्यायेन कर्मादौ प्रवृत्तस्य बन्धमोक्ष एव भवेदन्यथा कर्मणो गहना गतिरिति।

श्रीगुरुचरिते श्रीपादावतारो नाम टीकायां पञ्चमः।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः।।

।। नामधारक उवाच ।।

शैवं तत्र गणेशेन कुतो लिङ्गं प्रतिष्ठितम् । सज्जनाश्रयमेतत्तु कथं श्रावय मे मुने ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

विष्णवाज्ञया गणेशेन रावणात्तं प्रतिष्ठितम् । शैवं लिङ्गं ततोऽत्रासन्देवाः संतोऽप्यदः शृणु ।।२।।

भजन्तीं मृन्मयं लिङ्गं कैलासाप्त्यै तु रावणः । प्रसूं निषिध्य सेशाद्रिं श्रीमानाहर्तुमाययौ ।।३।।

हठात्कैलासमुद्धर्तुमुत्कमोजस्विनं शिवः । लोकोत्पातभिया गौर्या स्तुतोऽगाधोऽवरोधयत् ।।४।।

सोऽपि मृत्यून्मुखीभूतो ध्यानतुष्टेन शम्भुना । समुद्धृतो दशमुखस्तत्तुष्ट्यै साध्वगायत ।।५।।

सुस्वरं साङ्गरागाढ्यं माधुर्यं स्वर्णमुत्तमम् । कालोचितं जगौ गीतं ततानद्धघनारयुक् ।।६।।

प्राणिमात्रमनोहारि दिव्यं गानं स शंकरः । प्रीतोऽब्रवीत्साधु गीतं रावणेष्टं वरं वृणु ।।७।।

।। रावण उवाच ।।

पूर्मेऽन्यदुर्लभा हैमी श्रीर्दासी दैवविद्विधिः । मृत्युर्दासोऽनुगा देवास्तन्मे न क्वापि दुर्लभम् ।।८।।

मात्राज्ञप्तोऽस्मि कैलासमानेतुं भो त्वयान्वितम् । देहि मे वरणीयार्थं भगवन्वरदोऽसि चेत् ।।९।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ षष्ठाध्याय आरभ्यते।। *रावणं वञ्चयित्वैशं गणेशा लिङ्गमाहृतम्। षष्ठे चण्डाल्युद्धृतिश्च प्रोक्ता गोकर्णवर्णनम्।।१।।* कर्मतत्त्वज्ञस्य सात्त्विकस्येश्वरप्रसाद उक्तः तद्विपरीतस्य लब्धप्रसादस्यापि विघ्नोपहतत्वमधुनोच्यते यत्र **गणेशेन लिङ्गं प्रतिष्ठित**मित्युक्तं तत्**कुत** इति पृच्छति **शैव**मिति। **एतद्गोकर्णं कथं** केन प्रकारेण **सज्जनाश्रय**मिति प्रश्नः।।१।। रावणात् आत्तं गृहीतं **रावणात्तं शैवं लिङगं विष्णो**राज्ञया स्थापितं **ततस्**तत्र गोकर्णे **देवा** ब्रह्मादयः **संतः** साधवश्चा**सन्** सूत्रमिदं।।२।। **कैलास**प्राप्तये **प्रसूं** मातरं **निषिध्य** निवार्य **ईशेन स**हित**मद्रिं** कैलासं **आहर्तु**मानेतुं।।३।। **हठात्**प्रसह्य **उत्क**मुत्सुकं उत्क उन्मना इति निपातः **ओजस्विनं** बलिनं रावणं **लोकोत्पात**भयेन **गौर्या स्तुतः शिवोऽगाधः** कैलासस्याधोभागे**ऽवारोधयत्**।।४।। मरणो**न्मुखीभूतः स** रावणो**ऽपि**। तत्कृत**ध्यानतुष्टेन शम्भुना** कैलासाधोभागात्**समुद्धृतः तत्तुष्ट्यै** शिवतोषाय **साधु** मनोहर**मगायत्**।।५।। शोभनाः षड्जादि**स्वराः** यस्मिन् रागिणीसहित**राग**युक्तं **स्वर्णं** शोभनयमकगीतियुक्तं **ततं** वीणादिवाद्यं **आनद्धं** मुरजादि **घनं** कांस्यतालादि **आरं** वंशादि तैर्युज्यत इति।।६।। सर्वेषां **प्राणि**नां **मनोहारि दिव्यम**लौकिकं **साधु** शोभनं।।७।। **पूर्**लङ्का **विधिर्**ब्रह्मा **दैवज्ञः अनुगा** अनुचराः।।८।। **त्वयान्वितं कैलासमानेतुं मात्रा आज्ञप्तोऽस्मि** वरन्ददातीति आतोनुपसर्गे इति कः।।९।। **ततो** मत्सहितात्कैलासात्**प्राणलिङ्गमधिकं** तदेवाहा**नेनेति**। **पूः** पुरं।।१०।। यदि भूमौ **यत्र**

।। शिव उवाच ।।

कैलासेन तु किं साध्यं प्राणलिङ्गं ततोऽधिकम् । गृहाणानेन मातृक्त्वं पूस्ते कैलासवद्भवेत् ।।१०।।
स्थाप्यते यत्र तत्रैव सुस्थिरं प्रतितिष्ठति । तस्मात्स्थापय पुर्येव धृत्वेदं कर्म मा कुरु ।।११।।
इत्युक्त्वा तत्करे लिङ्गं भक्त्याकृष्टमना ददौ । रावणोऽप्यतिसन्तुष्टो ययौ लङ्कां खलाग्रणीः ।।१२।।
ज्ञात्वैतन्नारदो योगी शशंस ब्रह्मणेऽपि सः। विष्णवे द्राक् त्रयोऽपीशं गत्वोचुः किं कृतं त्विदम् ।।१३।।
बद्धाः सर्वेऽमरा येन प्रसिद्धो लोककंटकः । राक्षसः प्राणिमात्राशी त्वत्समः स कथं कृतः ।।१४।।

।। शिव उवाच ।।

भक्त्याकृष्टं मनो मेऽद्य तेन गानादिना ततः । दत्तं लिङ्गं मया हर्षात्स नाद्यापि पुरं गतः ।।१५।।
व्याजेनैव खलो जय्य इत्युक्त्वा प्रेरयन्मुनिम् । विघ्नेशं च तदा विष्णुर्लिङ्गाहरण हेतवे ।।१६।।
नारदस्त्वञ्जसा योगी गत्वाग्रे रक्षसोऽब्रवीत् । आयातोऽसि कुतो ब्रूहि रावण द्राक् क्व गच्छसि ।।१७।।
रावणस्त्वब्रवीद् ब्रह्मन् तोषयित्वाद्य शंकरम् । लब्ध्वा लिङ्गं पुरं यास्ये पश्येदं शैवमुत्तमम् ।।१८।।
तत्प्रेक्ष्योचे मुनी रक्षः शृण्वेकः सैरभाशनः । मृगयायां हतो ब्रह्महरीशैर्दुर्धरो मृगः ।।१९।।
तैस्त्रीण्याप्तानि लिङ्गानि तच्छृङ्गेभ्यस्तदात्मवत् । मतान्यैशं त्विदं दैवाल्लब्धं सायुज्यदं विभोः ।।२०।।

स्थाप्यते तत्रैवाचलं **प्रतितिष्ठति पुर्यैव** लङ्कायामेव।।११।। **भक्त्या** आ**कृष्टं मनो** यस्य सः शिवः लोकान् रावयतीति **रावणो** अतएव **खलाग्रणीः लङ्कां ययौ** लङ्कां गन्तुं प्रवृत्त इति भावः।।१२।। **योगी** योगपक्वकषायतया विदितवेदितव्यो **नारदः एतल्**लिङ्गदानादि **ज्ञात्वा** मनोगत्या ब्रह्मलोकमागत्य **ब्रह्मणे शशंस** ब्रह्माप्**येतद**प्रियं स्वस्यापरिहार्यं च मन्वानो नारदेन सह वैकुण्ठं गत्वा **विष्णवे** शशंस तत्र विचार्य तत्प्रतिकाराय **त्रयोऽपि** ते **द्राक्** शीघ्रमिच्छामात्रेणै**वेशं गत्वोचुः इदं** वरदानरूपं कर्म त्वया **किं कृतं** बत।।१३।। देहतोऽर्थतश्च **प्राणिमात्र**भक्षकः **स** स्वदृशः **कथं कृत** इति प्रश्नः।।१४।। मया भक्तिवशाल्**लिङ्गं दत्तं** यस्मै **स** रावणो**ऽद्यापि** लङ्का**पुरं न** प्राप्तः अनेनात्रानर्थो भवेच्चेद्भव-द्भिर्वरदानाविरोधेन लिङ्गाहरणोद्यमः कर्तव्य इति ध्वन्यते।।१५।। **तदा विष्णुर्**विचार्य **व्याजेनैव खलो** जेतुं योग्यो न सामादिने**त्युक्त्वा लिङ्गाहरणा**य मार्गे विलम्बनार्थं नारदं विघ्नार्थं गणेशं च **प्रेरयत्**।।१६।। तयोर्मध्ये प्रथमं शीघ्रं **रक्षसो** रावणस्याग्रतो **नारदो गत्वा** तम**ब्रवीत्** हे **रावण कुत आयातोसि** शीघ्रं **क्व गच्छसि** च **ब्रूहि**।।१७।। हे **ब्रह्मन्**नारद **पुरं** लङ्कां **इदं शैवं** लिङ्गं।।१८।। **तल्**लिङ्गं दृष्ट्वा **मुनिर्**नारद **ऊचे** हे **रक्षः** रावण इतिहासं **शृणु एको** वन्यमहिषादिभक्षकोऽतएव **दुर्धरो मृगः ब्रह्महरीशैर्हतः**।।१९।। **तच्छृङ्गेभ्यः** सकाशात्**त्रीणि लिङ्गानि तैर्**ब्रह्महरीशैः **आप्तानि** लब्धानि **तदा** तानि तै**रात्म**तुल्यानि **मतानि**। मतिबुद्धीति वर्तमाने क्तः तेषामित्यध्याहर्तव्यं

सोऽप्याह नाद्य श्रोतव्यं गन्तव्यं सत्वरं मुने । क्वातीत्य संध्यां यासीति मुनिनोक्त उपाविशत् ।।२१।।
अत्रान्तरे गणेशोऽपि वर्णिलिङ्ग्यायायौ स तम्। करे कृत्वाऽब्रवीत्कोऽसि कस्य पुत्रः क्व गच्छसि ।।२२।।
सोऽप्याहोमाशंकरौ मे पितरौ देयमस्ति ते । किं ताभ्यां भो न चेत्पाणिं मोचयाशु बिभेम्यहम् ।।२३।।
रावणोऽप्याह नादेयं ताभ्यां लिङ्गं क्षणं वह । हैमीं मे गौरवाल्लङ्कां दर्शयामि सुखं वस ।।२४।।
बालेनैवोरु लिङ्गं नो धार्यतेऽपि न गम्यते। लङ्का घोरेत्यपि प्रोक्तः स तमाश्वास्य तद्ददौ ।।२५।।
दत्तलिङ्गोऽब्धितीरे स सांध्यां कर्तुं क्रियां ययौ । बालोऽप्याह त्रिराहूय नागते स्थापयामि कौ ।।२६।।
इत्युक्त्वा किञ्चिद्विश्रम्य स्वः पश्यत्सु सुरेषु तम् । त्रिराहूय हरिं स्मृत्वा लिङ्गं सोऽस्थापयद्भुवि ।।२७।।
सोऽपेत्य स्थापितं दृष्ट्वा सन्ताड्यार्भं भुजैस्तु तत्। उद्धर्तुमैच्छत्क्ष्मा तेन चकम्पेऽप्यचलं तु तत् ।।२८।।
महाबलेश्वर इति लिङ्गं तत्संज्ञितं ततः । गोकर्णवद्बलोद्धृत्या जातं तत्संज्ञितं स्थलम् ।।२९।।
कैलासोऽयं क्षितौ साक्षाद्यत्रेशः परिवारयुक् । सदा जागर्त्यतस्तत्र स्थिता देवर्षिसज्जनाः ।।३०।।
देवर्ष्यसुररक्षोनृ-तिर्यग्भिर्यत्र शंकरात् । लब्धोऽभीष्टो वरो नान्यदितः सत्पावनं स्थलम् ।।३१।।

वा क्तस्य च वर्तमान इति षष्ठीसापेक्षात्। **इदं तु विभोर्**व्यापकस्येशस्य **सायुज्यदं** इदं त्वैशं लिङ्गं त्वया **दैव**योगा**ल्लब्धम्**।।२०।। इति नारदवचः श्रुत्वा **स** रावणो**ऽप्याह** भो **मुने सत्वरं** मया **गन्तव्यं** अतः श्रवणानवकाशान्**न** मया **श्रोतव्यं**। **संध्या**कर्मा**तीत्य क्व यासीति** नारदेनोक्तः रावण उपविवेश।।२१।। वर्णः प्रशस्तिरस्यास्तीति **वर्णी** ब्रह्मचारी वर्णाद्ब्रह्मचारिणीतीनिः तस्य **लिङ्गं** चिह्नमस्यास्तीति स ब्रह्मचारीवेषवान् **स** रावणस्**तं करे कृत्वा** हस्तमवलंब्य।।२२।। **स** गणेशो**ऽपि** प्राह **उमाशङ्कर**नामकौ मम **पितरौ ताभ्यां** तव **देयमस्ति किं भो** राक्षस नो **चेद्**देयं तर्हि करं **मोचय** यतस्त्वत्तो **बिभेमि**।।२३।। **ताभ्यां** त्वत्पितृभ्यां सकाशान्**न आदेयं** किन्तु **क्षण**मात्रं **लिङ्गं** धारय ततो **गौरवे**ण तुभ्यं स्वर्णमयीं मम **लङ्का**पुरीं **दर्शयामि** तत्र यथा**सुखं** निवासं कुरु।।२४।। **उरु** जडे **अपि** च **लङ्का घोरा** मया **न गम्यते इति प्रोक्तोऽपि स** रावणस्**तं** बाल**माश्वास्य** तत्करे तल्लिङ्गं **ददौ**।।२५।। **दत्तं लिङ्गं** येन स रावणः समुद्र**तीरे** संध्याभवां **क्रियां** वन्दनादि **कर्तुं ययौ** त्वां **त्रिराहूयापि** त्वयि न प्राप्ते लिङ्गं भुवि **स्थापयामीत्युक्त्वा**।।२६।। **स्वः** स्वर्गे **तं** रावणं **हरिं** विष्णुं।।२७।। **स** रावणो**ऽप्या**गत्या**ऽर्भं** बालं **ऐच्छत्** इषुगमियमां च्छ इति छकारः **क्ष्मा** भूमिस्**तेनो**द्धरणेन **तत्तु** लिङ्ग**मचलं** जातमिति शेषः।।२८।। **तल्लिङ्गं महाबलेश्वर इति संज्ञितं** बलादुद्धरणेन **गोकर्णवज्जातं** यत्र लिङ्गं स्थापितं तत्**स्थलं** च **तत्संज्ञितं** च गोकर्णसंज्ञितं जातं।।२९।। **अयं** भूमौ **साक्षात्कैलासो यत्र** स**परिवार ईशो जागर्ति** भक्तेष्टपूरणे न स्वपिति अतो हेतोः।।३०।। **यत्र** गोकर्णे **यतो** गोकर्णा**दन्यत्पावनं सत्स्थलं न** विद्य-ते।।३१।। एवं प्रतिज्ञातं विघ्नोपहतत्वमुपन्यस्य महापापवतोऽपि श्रद्धाभक्तियुतस्येश्वरप्रवणस्य प्रतिबन्धपापनिरासपूर्वकं सद्गतित्वं दर्शयति **शृणु किञ्चिदि**ति श्रोतुं समाधानार्थमुक्तं

शृणु किञ्चिद्वसिष्ठेन शप्तोऽज्ञानकृतागसः। राक्षसत्वं द्वादशाब्दं प्राप मित्रसहो नृपः ।।३२।।

तदाहनद् द्विजं तत्स्त्रीः शापान्ते नृप पूर्ववत् । भूत्वाप्येष्यसि मच्छापाद्रतेऽन्तमिति तं जगौ ।।३३।।

अथैष पूर्ववद्भूत्वा स्वं राज्यं प्राप्य दुःखितः । स्मरातुरायै महिष्यै साध्वीशापं शशंस राट् ।।३४।।

ततः खिन्नावुभौ तीर्थ-यात्रासक्तौ यदृच्छया । आयान्तं गौतमं दृष्ट्वा सर्वं तस्मै शशंसतुः ।।३५।।

गौतमोऽप्याह भो मा भीर्गोकर्णेऽघौघहारिणि । कामिकल्पद्रुमे क्षेत्रे किं भवेद्ब्रह्महत्यया ।।३६।।

तीर्थानि सर्व तोयानि शैवलिङ्गानि ताः शिलाः । लिङ्गतीर्थमये तत्र दिव्ये किं दुर्लभं नृणाम् ।।३७।।

शृणु तत्र मया दृष्टा चण्डाल्येका मृता तु ताम् । शिवदूता विमानेन कैलासं नेतुमागताः ।।३८।।

मया पृष्टास्तु ते प्रोचुः प्राग्वृत्तं शृणु गौतम। प्राग्भवे विप्रकन्येयं बाल्येऽभूद्विधवा विधेः ।।३९।।

तन्वी कामपरा नित्यं युवसौन्दर्यमोहिता । वृत्वा कान्तं विशं भेजे सौपपत्यं रहोऽपि तत् ।।४०।।

अज्ञानकृतापराधनिमित्ताद्**वसिष्ठेन शप्तो मित्रसहो नृपो द्वादशाब्दं राक्षसत्वं प्राप** । अत्र हि किल स्मर्यते एकदा राज्ञा राक्षसो हतस्तद्बन्धुः कापट्येन राजसेवको भूत्वा नित्यं राजसन्निधिं तस्थौ। एकदा गृहागतं वसिष्ठमातिथ्येन निमन्त्र्य राजा कार्यान्तरसक्तोऽभूत्तत्र वसिष्ठरूपधरो राक्षसो गत्वा मृगमांसपाकं देहीत्यवदद्राजाऽपि तथा चकार परिवेषणकाले ऋषये कपटसेवकेन नरमांसं दत्तं तेन कुपितो वसिष्ठो भूपं शशाप। त्वया याचितं तन्मया दत्तं व्यर्थोऽयं शापो दत्तोऽहं त्वां शपिष्यामीत्युक्त्वा राजा जलमादाय तं शप्तुमुद्युक्तस्तं निवार्य तन्महिषी वसिष्ठं प्रार्थितवती वसिष्ठोऽपि ध्यानेन सर्वं राक्षसकृतं ज्ञात्वा प्राह मद्वचो मृषा मा स्यादतोऽयं द्वादशाब्दं ब्रह्मराक्षसो भूत्वा पुनः राजा भविष्यतीत्याह तदा राजा तच्छापजलं तत्याज तत्पादयोः पतितं तेन कल्माषपादनामको राक्षसोऽभूदिति।।३२।। **तदा** राक्षस्यावस्थायां वनमार्गाच्चलितयोर्दम्पत्योर्मध्ये ब्राह्मण्या पुनःपुनः प्रार्थितोऽपि **द्विजं** भक्षणार्थमहनत् हत्वा च भक्षितवान् तदा पश्चात्तदस्थीन्यादायानुगन्तुं प्रवृत्ता **त**स्य ब्राह्मणस्य **स्त्रीः** प्राह हे **नृप** त्वं **शापान्ते पूर्ववन्**नृपो **भूत्वा रते** मैथुने कृते**ऽन्तं** नाश**मेष्यसीति** शापवचनं **तम**ब्रवीत्।।३३।। **अथ** द्वादशाब्देष्वतीतेषु एष राजा वीतराक्षसभावः **पूर्ववद्भूत्वा** राज्ञः कर्म प्रजापालनात्मकं **प्राप्य** ब्रह्महत्यया वृतो ब्राह्मणीशापेन **दुःखित**श्च **कामा-तुरायै** स्वपत्न्यै ब्राह्मणीदत्त**शापं** कथयामास **राट्** राजा।।३४।। **उभौ** दम्पती मार्गे **यदृच्छया** स्वेच्छया **तस्मै** गौतमाय।।३५।। **भो** राजन् **मा भीर्**ब्रह्महत्त्याया इति शेषः कामिनां कल्पवृक्षे **गोकर्णे** विद्यमाने **ब्रह्मत्यया किं भवेन्**न किमपीति भावः।।३६।। तत्रत्यानि **सर्वतोयानि तीर्थान्ये**व तीर्यन्ते महापापिन एभ्य इति तीर्थानि तत्रत्याः सर्वाः **शिलाः शैव-लिङ्गानि** भजनीयानि **तीर्थलिङ्गमये** तीर्थलिङ्गप्रचुरे प्राचुर्यार्थे मयट् **दिव्ये**ऽलौकिके द्योतनात्मके वा **नृणां दुर्लभं किं** अपि तु सर्वं सुलभमेव तीर्थदर्शनस्पर्शनपानादिनाऽन्तःक-रणशुद्धौ जातायां लिङ्गार्चनवन्दनादिना च शिवप्रसादादैकाग्र्येऽपि जाते च मोक्षोऽपि सुलभ इति भावः।।३७।। भवत्वेवमधिकारिणामनधिकारिणां का गतिरिति चेन्नात्राधिकारिका-रणमिति सदृष्टान्तमाह शृण्विति दृष्टेत्यनेन नायमार्थवाद इति सूचयति। ननु '*नान्यः पन्था अयनाय विद्यत* ' इति श्रुतेर्ज्ञानादेव मोक्ष इति श्रवणात् कथं क्षेत्रप्रभावान्मोक्षः तज्ज्ञानम-धिकारं विना न लभ्यमधिकारोऽपि क्षेत्रप्रभावादाप्यते तत्पूर्वं मरणेऽपि सालोक्यादिलब्ध्या पुनरोङ्कारमात्रोपासकवज्जन्मान्तरे मोक्ष इत्यनवद्यम्।।३८।। **विधेर्**दैवात्।।३९।। **तन्वी**

जातं लोकप्रसिद्धं हि मलो नाच्छाद्यतेऽपि कैः। सम्बन्धिनस्तु तां त्यक्त्वा प्रायश्चित्तं तदाऽभजन् ।।४१।।
ततो रेमेऽपशङ्कं सा पानासक्ता मदोद्धता । विशः कुटुम्बिनी भूत्वा कन्दर्पहतचेतना ।।४२।।
प्रमत्ता सैकदा वत्सं मेषभ्रान्त्या निहत्य कम् । स्थापयित्वाऽत्तुमन्येद्युः शेषं पक्त्वा चखाद ह ।।४३।।
ज्ञात्वाऽथ गोशिरो जार-भीत्या निक्षिप्य तद्भुवि । व्याघ्रेणापहृतो वत्सः शिवेत्थं पर्यदेवयत् ।।४४।।
इत्याद्यवाच्यपापानि कृत्वा प्रेत्य स्वकैः समम् । दारुणां दुर्गतिं भुक्त्वा जातेदृश्यघशेषतः।।४५।।
जन्मतोऽस्या गलत्कुष्ठ आन्ध्ये सत्यपि रक्षिता । पितृभ्यां तावपि मृतौ ततोऽनाथा रुरोद सा ।।४६।।
संगत्य यात्रिकैः सत्रा माघे दैवादिहागता । क्षुधिता शिवरात्रौ सा ययाचेऽन्नं सुदुःखिता ।।४७।।
जनैस्तदाशनाभावात्प्रसारितकरेऽर्पितम् । बिल्वमाघ्राय तत्याज मत्वाऽभक्ष्यं सुदुःखिता ।।४८।।
लिङ्गे त्यक्तं तु तत्पूजा श्रुतमह्नीशकीर्तनम् । उपवासोऽशनाभावाद् दुःखाज्जागरणं निशि ।।४९।।
एवं साङ्गं व्रतं चीर्णं तेन भूत्वा सुनिर्मला। मृताऽद्यात्र शिवाज्ञप्ताः स्म आनेतुमिमां द्रुतम् ।।५०।।
तैरित्युक्त्वाऽमृतं सिक्त्वा विमानाग्र्ये निधाय ताम् । जग्मुः कैलासं सहोत्थ-क्रियागतिरियं त्विह ।।५१।।
विदुषस्तु फलाधिक्यं ज्ञात्वेदं गच्छ मुच्यसे । तच्छ्रुत्वा द्राङ् नृपो गत्वा क्षणान्मुक्तो बभूव ह ।।५२।।

मनोहरा कृशाङ्गी वा वोतो गुणवचनादिति ङीप् **काम**व्याप्ता तरुणपुरुष**सौन्दर्ये**न **मोहिता** कमनीयं वैश्यं जारत्वेन **वृत्वा** जारकर्म सिषेवे तद्रहःकृतमपि।।४०।। **लोकप्रसिद्धं जातं हि** यतः **मलः** पापं **कैरपि नाच्छाद्यते**ऽथवा जलैर्जलमध्ये विष्टाच्छाद्यते किं नेति तद्वदिदमपीत्यर्थः **अभजन्**सांसर्गदोषनिवृत्तिं चक्रुः।।४१।। **अपशङ्कं** निःशङ्कं मद्य**पानासक्ता विशो** वैश्यस्य काम**हत**मतिः ।।४२।। **सा एकदा मेष**भ्रमेण गो**वत्सं** हत्वा**ऽन्येद्यु**रत्तुं तस्य **कं** शीर्षं **स्थापयित्वा**ऽवशिष्टं **पक्त्वा** भक्षवती।।४३।। अपरेहनि **गोशिरो ज्ञात्वा तद्**भूमौ **निक्षिप्य व्याघ्रेण वत्सोऽपहृतः शिव** शिवे**त्थमि**ति इदमस्थमुरिति स्थमुप्रत्ययः मृषा विलापं चकार।।४४।। **इत्यादी**नि वक्तुमनर्हाणि **स्वकैः** पूर्वजैः सह पाप**शेषादीदृशी** चण्डाली।।४५।। जारकर्मरतत्वा**दस्या जन्मतो गलत्कुष्ठं** मेषबुद्ध्या गोवत्सहननात्तद्भक्षणाच्चा**न्धत्वं** पतितत्वं च **तौ** पितरा**वपि अनाथा** दीना।।४६।। **यात्रिकैः** सह **संगत्येह** गोकर्णे **दैवाद्**वत्सहननजन्यानुतापेन शिवेत्युच्चारणरूपात्प्राक्तनपुण्यात् ।।४७।।शिवरात्रिव्रतत्वाद**शनाभावात् अभक्ष्यं** भक्षणानर्हं।।४८।। **लिङ्गे त्यक्तं** बिल्वं सैव **पूजाऽह्नि** दिवसे।।४९।। **साङ्गं** पूजाश्रवणजागरणोपोषणसहितं **इमां** कैलास**मानेतुं** वयं **शिवेनाज्ञप्ताः स्मः**।।५०।। **तैर्**दूतैः **तां** मृतां लिङ्गशरीरलक्षणां न तु पाञ्चभौतिकदेहभूतां देहस्य जडत्वात् **सहोत्थक्रियागतिः** कर्मज्ञानाभावेऽपि संजातायाः व्रतरूपक्रियायाः गतिः पर्यवसानमीदृशं **इह** गोकर्णे ईश्वरसान्निध्यात् न हि वस्तुशक्तिर्बुद्धिमपेक्षते अज्ञातस्याप्यग्नेर्दाहशक्तिरिव।।५१।। इदं सामान्यफलं **विदुषस्तु** ततोऽप्यधिकतरं मोक्षपर्यवसायीत्याह विदुष इति तर्हि ज्ञानकर्मसमुच्चयान्मोक्ष इति चेन्न '*कर्मणा पितृलोको*

गोकर्णमीदृशं क्षेत्रं सत्तमं सज्जनाश्रयम् । अतस्तत्रैव तस्थौ हि श्रीपादः साधुजीवनः ।।५३।।

मोचयित्वा सतोऽब्दांस्त्रींस्तत्रोषित्वा गतागतात् । कृष्णातटे कुरुपुरं प्राप्याद‍ृश्योऽभवत्स तु ।।५४।।

।।इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे गोकर्णवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

विद्यया देवलोक ' इति भिन्नश्रवणात् सहैवैकेनानुष्ठातुमशक्यत्वातदत्र क्रियाविषयकज्ञानेन सहितं कर्मानुष्ठानमभ्युपगन्तव्यं नाद्वितीयात्मज्ञानपूर्वकं कर्मानुष्ठानं संभवति ' *विद्यां चाविद्यां..*' श्रुतेः अमृतं आपेक्षिकं मृतं मृतिर्नपुंसके भावः क्तः तन्न विद्यते यस्माद्देवत्वमिति यावत् न तु मोक्षः तस्य ज्ञानैकसाध्यत्वादकृतत्वाच्चेति दिक् मुक्तो दोषमुक्तः ज्ञानाधिकारीति यावत्।।५२।। **सतः** साधून् **गतागतात्**संसारात् **स** श्रीपादो**ऽदृश्यो** गुप्तः।।५३।।५४।।

।।टीकायां षष्ठः।।

सप्तमोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

साधूनुद्धर्तुकामोऽथ कुतो लीलाविहार्यभूत्। अदृश्यो भगवांस्तत्तु श्रोतुमिच्छामि सादरम् ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

अतीन्द्रियोऽपि दृश्योऽत्र भूत्वा लीलात्मना पुनः । अवतारप्रसङ्गेन जातोऽदृश्य इदं शृणु ।।२।।

तत्राभूच्छान्दसः कश्चिदम्बिका नाम तद्वधूः । कुपुत्रं सुषुवे दैवात्स्तब्धं हीनमतिं जडम् ।।३।।

वर्णधर्मोपनीतं तं सावित्र्युच्चारणाक्षमम् । ताडयन्तं निवार्याह स्वपतिं वैदिकं वधूः ।।४।।

भो जडोऽर्भोऽश्मवद्योनेरेवालं खेदहेतुना । ताडनेन त्यजाम्यस्मिंस्ताडितेऽसून्सुधीरिति ।।५।।

सोऽप्यजाकण्ठकुचवत्तं मत्वाश्रुत्य तद्वचः । तूष्णीं तस्थौ ततो विप्रः कालेनाल्पीयसा मृतः ।।६।।

तत्र पुत्रान्विता माता जीवनं याच्ञयाऽकरोत् । काले याते कियत्येवं निन्दां चक्रुर्द्विजोत्तमाः ।।७।।

सूर्यर्च्यजैषा वृत्तिस्ते गर्ह्याऽस्माकं न रोचते । इतो व्रज त्यजासून्वा तैरित्युक्तो नदीं ययौ ।।८।।

कृष्णाविष्टं समं मात्रा मर्तुकामं विलोक्य तौ । निषिध्योचेऽनुकम्पार्द्रः श्रीपादस्तीरवास्यसौ ।।९।।

।।श्रीगणेशाय नमः।। अथ सप्तमोऽध्यायः।। पूर्वाध्यायान्ते गतागतात्सतो मोचयित्वेत्युक्तं तत्केन प्रकारेणेत्याकाङ्क्षायां मन्दाधिकारिणो ज्ञानान्तरङ्गभूतभक्तियोगेनेत्यस्मिन्नध्याये प्रदर्श्यते **साधूनुद्धर्तुं कामो** यस्य तु काममनसोरपीति मकारलोपः **कुतो** हेतो**रदृश्योऽभू**दिति कथासंगत्यनुसारिप्रश्नः।।१।। *सप्तमे ब्राह्मणीदुःखं परिहृत्य हतं द्विजं। जीवयामास चोरघ्नो गुप्तः कुरुपुरेऽभवत्।।१।।* उत्तरमाह सूत्रेण इन्द्रियाण्यतीतो**ऽतीन्द्रियः** अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया इन्द्रियगोचरोऽपि लीलाविग्रहेण **दृश्यो भूत्वाऽपि पुनरवतारप्रसंगेनादृश्यो जातः इदं** तत्कथनरूपं चरितं।।२।। **तत्र** कुरुपुरे **छांदसो** वैदिकब्राह्मणः **स्तब्ध**त्वाद्धी**नमतित्वाज्जड**त्वाच्च **कुपुत्रः**।।३।। ब्राह्मण**वर्णो**क्तक्रमेण '*अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्* ' इत्याद्युक्तेन कृतोपनयनं गायित्र्**युच्चारणा**समर्थं **तं** पुत्रं **ताडयन्तं स्वपतिं** तस्य **वधूर्निवार्य** प्राह।।४।। **भो** नाथायम**र्भः योनेरेव** उत्पत्तित एव पाषाणवज्**जडः खेदहेतुना ताडनेनालं** इतःपरं भो **सुधीः अस्मिन् बाले ताडिते** सत्य**सून्**प्राणांस्**त्यजामि**।।५।। **स** ब्राह्मणो**ऽपि** मेषकण्ठस्तनवत् निरर्थकं **तं मत्वा** तस्या **वचो**ऽङ्गीकृत्य **अल्पीयसा**ऽत्यल्पेन **कालेन**।।६।। **निन्दां चक्रुः** शिक्षार्थमिति शेषः।।७।। सूरिभिः पण्डितैरर्चितुं योग्याद्ब्राह्मणाज्जातः **सूर्यर्च्यजस्**तत्संबुद्धौ मातृयाचितान्नभक्षणरूपा तव **वृत्तिर्**जीवनं **गर्ह्या** निन्द्या**ऽस्माकं न रोचत इतो व्रज** प्राणान्वा **त्यज इति तैरुक्तः** स निर्विण्णः सन् मर्तुं कृष्णां ययौ तज्ज्ञात्वा पश्चान्मातापि ययावित्युत्तरेण ज्ञाप्यते **निषिध्य** निवार्य कृपया क्लिन्नः सन्**नूचे**।।८-९।। **भवे भवे** जन्मनि जन्मनि **अतो** हेतोः **संप्राप्त**कष्ट**सहनं वरं** ब्राह्मणस्य बुद्ध्या देहत्यागे आत्महत्यायाः ब्राह्मणहत्यायाश्च स्मरणात् '

साहसं मा कुरु ब्रह्मन्नात्महत्या हि दुर्वहा । भवे भवेऽप्यतोऽत्रैव सम्प्राप्तसहनं वरम् ।।१०।।

।। ब्राह्मण्युवाच ।।

प्राज्ञोद्भूतकुपुत्रत्व-हेतुनैवाखिला हि माम् । धिक्कुर्वन्त्यपि नेक्षन्ति तत्किं कार्यमतःपरम् ।।११।।

।। श्रीपाद उवाच ।।

हत्यया लिप्स्यसेऽग्रेऽतो दुःखं निस्तीर्य दैविकम् । शिवतोषात्सुपुत्रस्ते भविष्यति भवान्तरे ।।१२।।

।। ब्राह्मण्युवाच ।।

त्वयोक्तं साध्वहं कुर्यां तथैव तु कथं भवेत् । शिवतोषः पुरा केन कृतः श्रावय विस्तरात् ।।१३।।

।। श्रीपाद उवाच ।।

उज्जयिन्यां पुरा चन्द्र-सेनराजसखोऽलभत् । मणिभद्रः शिवाच्छैवश्चिन्तामणिमभीष्टदम् ।।१४।।

तं ज्ञात्वार्घादिनाऽलभ्यं युद्धायाभ्यागतान्नृपान् । श्रुत्वाऽप्येकाग्रचित्तोऽसौ प्रदोषेऽपूजयच्छिवम् ।।१५।।

मन्दानङ्गप्रदोषे तं मणिं भूपं तथाविधम् । दृष्ट्वा गोपसुतास्तद्वत्स्वाङ्गणे चक्रुरर्चनम् ।।१६।।

गोप्यो निवार्य पत्राद्यैर्लिङ्गकल्पनयोपलम् । भजतो निन्युरत्तुं तांस्तस्थौ तत्रैकबालकः ।।१७।।

प्रसह्याप्युद्धृतोऽर्चां स मात्रोद्वास्यापतद्भुवि । शम्भुपूजाभङ्गभिया निर्विण्णो मर्तुमुद्यतः ।।१८।।

असुर्या नाम ' इति श्रुतेरन्धतमःश्रवणाच्च मैवं कुरु।।१०।। पुत्रेणोत्तरं किमप्यदत्तमतो मातोवाच **मां धिक्कुर्वन्ति** नावलोकयन्ति च न मर्तव्यं तर्हि **अतः परं किं कार्यं**।।११।। **अग्रे** जन्मनि जन्मनि **दैविकं** दैवादागतं **निस्तीर्य** शिवाराधनं कुरु **शिवतोषाद्भवान्तरे** जन्मान्तरे सत्पुत्रो **भविष्यत्य**न्यथाऽन्धं तमो यास्यसि।।१२।। **त्वया साधूक्तं तथाहं कुर्यामेव** परं **तु शिवतोषः** केन प्रकारेण **भवेत्** पूर्वं तादृशः शिवतोषः **केन कृतश्**चेत्तर्हि विश्वासार्थं भक्तिदार्ढ्यार्थं च **विस्तरे**ण मे **श्रावय** अहमपि तथा करिष्यामीति भावः।।१३।। चन्द्रसेनराजस्य सखा **चन्द्रसेनराजसखः** राजाहःसखिभ्यष्टच् **शैवः** शिवभक्तः **मणिभद्रस्**तन्नामकः **अभीष्टा**र्थप्र**दं चिन्तामणिं** प्रसन्नाच्**छिवाल्**लेभे।।१४।। **तं** श्रुत्वा नृपैरर्घादिर्याचितोऽपि तेन कस्मैचिन्न दत्तः एव**मर्घादिनाऽलभ्यं ज्ञात्वा युद्धार्थमभित आगतान्नृपाञ्छ्रुत्वाऽपि शिवमपूजयत** ।।१५।। शनि**प्रदोषे मणिं** मणिभद्रं चन्द्रसेन**भूपं** च **तथाविधं** प्रदोषे शिवार्चकं **दृष्ट्वा गोप**कुमारकाः **स्वाङ्गणे** शिवार्**चनं चक्रुः**।।१६।। **लिङ्गकल्पनया उपलं** पाषाणं **पत्रादि**भिरुपचारै**र्भजतः** कुमारान्पूजनतो **निवार्य** तन्मातरो **गोप्यः अत्तुं** कुमारान्भोजयितुं यद्वा तैः कुमारैः सह वा **अत्तुं** भोक्तुमिति लाक्षणिकोऽर्थः गृहान्**निन्युः** अकथितं चेति नयतेर्द्विकर्मकत्वं सर्वेषु बालेषु यातेष्वपि पूर्वसंस्कारादेकान्तभक्तिसंपन्नोऽनन्यचित्त **एकबालकस्तत्र** पूजास्थाने **तस्थौ**।।१७।। **अर्चां** पूजामु**द्वास्य मात्रा प्रसह्य** बलादु**द्धृतोऽपि स** बालः **शम्भुपूजाभङ्ग**भयेन **निर्विण्णो मर्तुमुद्यतः** सन्**भुव्यपतत्**।।१८।। **भावं**

तद्भावं विश्वसाक्षीशो ज्ञात्वाऽविष्कृत्य शोभनम्। स्वं रूपं बालमाश्वास्य वरं वृण्विति तं जगौ ।।१९।।

बालोऽपि दिव्यरूपं तं नत्वोचे भुवनेश्वर । मात्रोत्सृष्टाऽत्र ते पूजा तन्मन्तुं क्षन्तुमर्हसि ।।२०।।

।। शिव उवाच ।।

भक्त्या सायुज्यभाङ्मेऽसि कृतं मात्रा त्वबोधतः। नायं मन्तुः सापि भूयाद्विष्णुमाताऽर्चनेक्षणात्।।२१।।

इत्युक्त्वान्तर्दधे सोऽभूद्भास्वल्लिंगं य आगताः । त ऊचुः पुण्यश्लोकार्थं दोषाऽप्यर्कोऽत्र तिष्ठति ।।२२।।

धन्येन सह योद्धव्यं नास्माभिरिति ते नृपाः । निश्चित्य स्निग्धभावेन तौ द्रष्टुं सर्व आययुः ।।२३।।

पूजां कृत्वापि राट् द्योत-हेतुं निश्चित्य तैः सह । नृपैर्गोपाङ्गणं गत्वा प्राप लिङ्गेक्षणान्मुदम्।।२४।।

श्रुत्वा गोपमुखात्सर्वं तुष्टास्तस्मै नृपाः श्रियम् । दत्वा गोपाधिपत्यं च स्वं स्वं स्थानं ययुर्मुदा।।२५।।

सा तु प्रेत्य यशोदाख्या गोपी भूत्वा हरिं सुतम्। प्रापेशतोषात्तस्मात्ते तथा भूयाच्छिवार्चनात्।।२६।।

।। ब्राह्मण्युवाच ।।

कष्टाद्दैवाच्छिवे तुष्टे फलं भाव्यधुनामुना । कष्टेनायुः कथं लङ्घ्यं मातृत्वेनाव मामतः ।।२७।।

इत्यशाठ्यं सकारुण्यं श्रुत्वा प्रीतो दयार्द्रधीः। ओमित्युक्त्वा दधौ पाणिं दुष्प्रापं मूर्खमूर्धनि।।२८।।

सहसा गीष्पतिसमो बभूव श्रुतिशास्त्रवित् । मातृभक्तौ विनीतं तं नियुज्याहाम्ब मे शृणु ।।२९।।

विस्मृत्याऽकमनेनेश-पूजयायुःक्षयं कुरु । पुत्रो भाविभवे मादृक्ते भविष्यति वा इति ।।३०।।

भक्तिं **आविष्कृत्य** प्रकटीकृत्य।।१९।। **तं** शिवं **नत्वा ऊचे तन्मन्तुं** मातुरपराधं।।२०।। **भक्त्या** कृत्वा **मे सायुज्यभागसि अबोधतो**ऽविवेकतोऽयं **मन्तु**रपराधः **न साऽपि** त्वन्माताऽपि पूजाविलोकनाद्**विष्णुमाता भूयात्**।।२१।। **स** शिवः बालेनार्चिता शिला तदेव **भास्वन्**महाकालाख्यं ज्योतिर्लिङ्गं **अभूत् ये आगता** नृपास्**ते ऊचुः** एतत्**पुण्यश्लोक**राजार्थं **दोषा** रात्रा**वपि अत्र** नगरे **अर्कस्तिष्ठति** यतोऽयं द्योतो दृश्यते।।२२।। **धन्येन** राज्ञा **सहास्माभिर्न योद्धव्यं तौ** चन्द्रसेनमणिभद्रौ **सर्वे** राजानः।।२३।। **राट्** चन्द्रसेनः प्रकाशकारणं।।२४।। **श्रियं** संपत्तिम्।।२५।। **सा** गोपमाता **तु** पूजावलोकनरूपेश्वरसंतोषात् **ते तथा भूयात्**।।२६।। **कष्टेन दैव**योगेन च **शिवे तुष्टे** सति **फलं भावि**जन्मान्तरे **अधुनाऽमुना कष्टेनायुर्**जीवितकालः **कथं** नेयो**ऽतो मातृ**भावनया त्वमेव **मामव** रक्ष।।२७।। **अशाठ्यं** निष्कपटं **ओमित्य**ङ्गीकारे।।२८।। **गीष्पतिसमो** बृहस्पतितुल्यः **मातृ**भजने विषये **विनीतं** नम्रं प्र**युज्य आह** भो **अम्ब**।।२९।। **अनेन** विदुषा पुत्रेण **अकं** दुःखं **विस्मृत्य** प्रदोषे ईश्वर**पूजया** जीवितकालक्षेपं **कुरु भाविभवे** एष्ये जन्मनि **मादृग्वै** निश्चयेन **ते भविष्यति**।।३०।। **सा** ब्राह्मणी **तदाज्ञया** श्रीपादानुज्ञया पुत्रेण **सह ग्रामं गत्वा विद्वद्भिर्मान्यो** यः **सुत**स्तेना**न्विता** सती शनिप्रदोष ईशमानर्च।।३१।। **मादृ-**

साऽप्यत्यर्थं प्रहृष्टा तदाज्ञया सहसूनुना । ग्रामं गत्वेशमानर्च विद्वन्मान्य सुतान्विता ।।३१।।

मादृङ्न्यो भवेयं चेन्नास्याः पुत्रो मृषा वचः । अतोऽवतीर्य तत्कुर्यामित्यमंस्ताज ईश्वरः ।।३२।।

कृतावतारसङ्कल्पः कार्यानन्त्यान्न सोऽत्यजत् । लीलाङ्गं तत्र भजतामदृश्योऽप्यस्ति कामदः ।।३३।।

।। नामधारक उवाच ।।

सङ्कल्पवान्कथं कार्येऽपूर्णेऽप्यन्योऽभवत्कथं । स्थित्वाद्यधाम्नाऽदृश्योऽपि भजतां कामदः कथम् ।।३४।।

।। सिद्ध उवाच ।।

कार्यानन्त्याद्विश्वबीजे सङ्कल्पानन्त्यमव्यये । नृणां कलिमलान्धानां स प्रत्यक्षोऽप्यदृश्यवत् ।।३५।।

प्राग्वृत्तं शृण्वदृष्टेऽस्मिन्द्विजः कश्चित्कुटुम्ब्यभूत् । धीमान्द्यात्स वणिग्वृत्तिः श्रीपादाङ्घ्र्यर्पितान्तरः।।३६।।

व्यापारे मेऽधिलाभश्चेद्भूयात्तदनुसारतः । कुर्यां कुरुपुरे विप्र-भोजनं श्रीशतुष्टये ।।३७।।

इत्युक्त्वाऽगात्स्मरञ्छ्रीशं व्यापारार्थं ततो धनम् । लेभे भूरि तदादाय ययौ संकल्पसिद्धये ।।३८।।

मार्ग एकाकिनं यान्तं तं सार्थं प्रेक्ष्य तस्कराः । सुहृत्तया तदनुगा भूत्वा तं विजनेऽहनन् ।।३९।।

तदैव सहसा तत्र श्रीपादः शूलपात्रधृक् । प्राप्य ताञ्छितधारेण त्रिशूलेन जघान सः ।।४०।।

एकस्तमेत्य शरणं प्रोचे चोरधिया तु नो । सङ्गीभूतोऽस्मि मां ज्ञात्वा यथेष्टं कुरु भो प्रभो ।।४१।।

गन्यः कोऽपि **न** अद्वितीयत्वात् **अस्याः पुत्रोऽहं न भवेयं चेन्**मम **वचः मृषा** स्यात् **अतो** विशुद्धसत्त्वेन स्वेच्छामयेन स्वरूपेणा**वतीर्य तन्**मादृक्पुत्रो भवेदित्यस्य सत्यत्वम**मंस्त** मन्यते स्म।।३२।। भक्तरक्षादिरूप**कार्या**णामा**नन्त्यात्कृतावतार**ग्रहण**संकल्पो**ऽपि **लीला**विग्रहं **नात्यजत् तत्र** मलिनसत्त्वाना**मदृश्योऽपि** भक्त**कामदो**ऽद्याप्य**स्ति** ननु ' *अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र* ' इत्यादिश्रुतेः ' *कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरेतत्सर्वं मन एव* ' इति श्रुतेश्च भगवतोऽमनस्कत्वात्संकल्पादेर्मनोरूपत्वात्कथं संकल्पवानिति चेत्परमेश्वरस्येक्षणवत्संकल्पनमनवद्यं वशमायत्वात्स्वतंत्र इति दिक्।।३३।। **कार्येऽपूर्णे** सत्यपि **कथम**वतारान्तरस्वीकरण**संकल्पवान् आद्यधाम्ना** रूपेण **स्थित्वा**ऽपि **कथमन्योऽभवत्**तत्रा**दृश्योऽपि भजतां कथं कामदः**।।३४।। प्रश्नत्रयोत्तररूपं सूत्रं **कार्यानन्त्या**दिति तद्व्याख्यानरूपा यावदध्यायसमाप्ति श्लोकाः प्राग्वृत्तमित्याद्याः।।३५।। **प्राग्वृत्त**मितिहासं **अस्मिन्**छ्रीपादे बुद्धि**मांद्याद्वणिग्वृत्तिः** ' *स्ववृत्त्या जीवनाभावाद्गुर्वापद्यन्यवार्तया। जीवेतानिन्द्यया* ' इति वक्ष्यमाणत्वात्।।३६।। अधिकं फलं **भूयात्**तथा जातं **चेत्तदनुसारतः** लाभानुसारतः।।३७।। **अगाद**गच्छत् इणो गा लुङीति गादेशः ग्रामान्तरमिति शेषः **संकल्पसिद्धये** ब्राह्मणान्भोजयितुं।।३८।। **सार्थं** द्रव्येण सहितं **सुहृत्तया** साधुत्वेन तस्यानुचराः।।३९।। **शूल**कमण्डलुधरः तीक्ष्ण**धारेण** ।।४०।। इमे **चोरा** इति बुद्ध्या नैषां **संगीभूतः**।।४१।। **विमलान्तरं** निष्कपटं **तद्रक्षायै** ब्राह्मणरक्षार्थं।।४२।। **कबन्धे** अपमू-

श्रीपादोऽपि सकारुण्यां श्रुत्वोक्तिं विमलान्तरम् । ज्ञात्वा तं योजयामास तद्रक्षायै कृपार्द्रधीः ।।४२।।
कबन्धे तच्छिरः कृत्वा भस्माक्तं जलमन्त्रितम् । सजीवं तं द्विजं कृत्वा क्षणादन्तर्दधे स तु ।।४३।।
स सुप्तोत्थितवद्बुद्ध्वा दृष्ट्वा चोरान्मृतान् द्विजः । हतशेषमुखात्सर्वं श्रुत्वा खिन्नान्तरोऽभवत् ।।४४।।
कृत्वा तु मत्कृते कृच्छ्रं जातोऽयं चोरगोचरः। सर्वदाऽऽराधितो दैवान्नायं मे दृष्टिगोचरः ।।४५।।
इत्युक्त्वा धनमादाय गत्वा कुरुपुरं द्विजः । चतुःसहस्रसद्विप्र-भोजनं श्रद्धया व्यधात् ।।४६।।
ततः श्रीशप्रसादात्स सिद्धिं प्रापोभयीं द्विजः । इत्याद्या भूरिशो वृत्ताः सत्यदृश्येऽपि तत्कथाः ।।४७।।
प्रत्यक्षस्तु सतां तत्र कच्चराणां त्वगोचरः । सोऽप्यन्यत्रावतीर्यात्र स्वरूपेणेष्टकामदः ।।४८।।
वेदयज्ञतपोदान-प्रदिष्टफलतोऽधिकम् । श्रीपादाधिष्ठितस्थान-वासिनां द्राक्फलं लभेत् ।।४९।।
यत्र कुत्रापि ये केचिच्छ्रीपादाङ्घ्रिसरोरुहे । संस्मरन्त्यपि तेभ्यः स कामानिष्टान्ददात्यलम् ।।५०।।

।।इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे श्रीपादमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

र्धकलेवरे **भस्मनाऽक्तं** युक्तं **स तु** श्रीपादः।।४३।। श्रीपाददर्शनाऽलाभेन **खिन्नान्तरोऽभवत्**।।४४।। **कृच्छ्रं** कष्टं **गोचरो** विषयः।।४५।। **व्यधाद्**व्यकृणोत्।।४६।। **उभयी**मैहिकीमामुष्मिकीं च उभादुदात्तो नित्यमिति तयप्रत्ययस्यायजादेशः टिड्ढाणिति ङीप्।।४७।। **कच्चराणां** मलदूषितानां **इष्टे**भ्यः **कामान्** **द**दातीति तथा **इष्टान्कामान्द**दातीति वा।।४८।। **वेदे**ष्वध्ययनादिभिः **यज्ञे**ष्वनुष्ठानादिभिः **तपः**सु कायशोषणादिभिः **दाने**षु सत्पात्रार्पणादिभिः यत्**प्रदिष्टं** ततोऽप्य**धिकं** अविनाशी ध्रुवं मोक्षाख्यफलं **श्रीपादे**ना**धिष्ठितं** यत्कृष्णातटे **स्थानं** तन्नि**वासिनां** **द्राक्** शीघ्रं **लभेत्**। ननु श्रीपादस्वरूपेणावतीर्णस्येश्वरस्य जीववद्देहसंबन्धाविशेषात्कथं तदधिष्ठितस्थानवासिनां मोक्षलाभ इति चेज्जीवस्याविद्यया मिथ्याभूतषड्विकारिदेहसंबन्धः ईश्वरस्य तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभावत्वाद्योगमायया चिद्घनलीलाविग्रहाविर्भाव इति जीवापेक्षया महान्विशेषोऽस्त्यतः तदधिष्ठितपुण्यक्षेत्रनिवास-तोऽनायासेनैव भगवत्प्रियतमसद्भक्तसंगो भवति। प्रायेण भगवद्भक्ता भगवदधिष्ठितपुण्यक्षेत्र एव निवसन्ति तेभ्यः श्रवणकीर्तनाद्यपि भवति विघ्नबाहुल्येनान्यत्र ध्यानं न सिद्ध्येत् । साक्षाच्छ्रीपादनिवासेन विघ्नासंभवान्निर्विघ्नेन च ध्यानयोगादिसिद्धावयत्नत एव मोक्षः। ज्ञानैकसाध्यस्य मोक्षस्येश्वरानुग्रहेण ज्ञानसाधनेष्वनुकूलेष्वप्रतिबद्धज्ञानमत्र लभेदिति भावः।।४९।। तत्स्थानगमनासंभवे **यत्रकुत्रस्थाऽपि** ।।५०।।

इति श्रीगुरुचरिते टीकायां श्रीपादमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।

अष्टमोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

ब्रह्मन् कुत्रावऽतीर्यासौ किं चकारास्य चेष्टितम्। मायाश्रितस्याप्रमेयं ब्रूहि शुश्रूषवेऽर्थदम् ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

उदग्देशेऽवतीर्णस्य दीनानुद्धर्तुमीशितुः । वक्ष्येऽल्पकं साधुयोगि-दुर्विभाव्यं हि चेष्टितम् ।।२।।
या श्रीपादोपदेशेन प्रदोषेऽजमतोषयत् । सा प्रेत्योत्तरदेशे स्त्रीर्जाता ब्रह्मकुलेऽमले ।।३।।
धीरूपशीललक्ष्माढ्या सुसंस्कारा गुणान्विता । श्रीपादेन पुराम्बेति प्रोक्तत्वात्सा तदाह्वया ।।४।।
शिववृत्तिं माधवाख्यमनुरूपं द्विजं पिता । दृष्ट्वा तत्रैव तां तस्मै गृह्योक्तविधिना ददौ ।।५।।
सा पातिव्रत्यमास्थाय भेजे छायेव तं पतिम् । प्रदोषेऽपि शिवं पूर्व-संस्कारात् पत्यनुज्ञया ।।६।।
स्नेहोऽन्योन्याश्रयो भाव-बन्धोऽभूच्चक्रवाकवत् । तयोर्हर्षितयोरेवं गर्भमम्बा वरं दधौ ।।७।।
सा सुदोहदलक्ष्माथ तत्त्वज्ञानमुपादिशत् । द्विजोप्यनुक्रमाच्चक्रे क्रियाः पुंसवनादिकाः ।।८।।

।।श्रीगणेशाय नमः।। ।।अथाष्टमोऽध्यायः।। *अष्टमे नरहर्याख्यावतारो वर्ण्यते परः। बाललीला विचित्रात्र तुर्याश्रमपरिग्रहः।।१।।* श्रीभगवतो भक्ताननुग्रहीतुमवतारान्तरमाह पृच्छति ब्रह्मन्निति **शुश्रूषवे** श्रोतुमिच्छतेऽ**र्थदम**भीष्टार्थप्रदं।।१।। उत्तरं सूत्रेणाह **हि** यस्माद्भगवच्**चेष्टितं योगिदुर्विभाव्य**मतो**ऽल्पकं वक्ष्ये**।।२।। **या** ब्राह्मणी।।३।। **धीः** सारासारविवेक-वती बुद्धिः **शीलं** स्वभावः **लक्ष्माणि** सुचिह्नानि तैर्युक्ता शोभनाः **संस्काराः** व्यावहारिका यस्याः **गुणैः** शान्त्यादिभि**रन्विता तदाह्वया**ऽम्बेति नाम्ना प्रसिद्धाऽभूत्।।४।। **शिवे** तात्पर्येण **वृत्ति**रनुरक्तिर्यस्य तं **माधव**नामकं दुहितु**रनुरूपं दृष्ट्वा गृह्योक्तविधा**नेन **तस्मै** माधवाय **ताम**म्बां **ददौ तत्र** करञ्जनगरे।।५।। **सा**ऽम्बा पतिव्रताधर्मं स्वीकृत्य **छायेव** प्रतिबिम्बमिव **तं** पतिं सिषेवे **पूर्वसंस्कारेण** शनि**प्रदोषे शिवमपि भेजे पत्युरनुज्ञया** स्त्रीणां स्वातंत्र्याभावात्।।६।। **चक्रवाक**योरिव परस्परा**श्रयः** प्रेमलक्षणो **भावबन्धोऽभूत् वरं** श्रेष्ठं। एवं चक्रवाकवन्मिथः स्नेहबद्धयोरित्यनेनानन्दानुकूलत्वं सूचितं। **हर्षितयोः** संजातहर्षयोः सतो**रेवमंबा वरं गर्भं दधा**वित्यनेन परकीयावयवसंयोगरूपव्यापारजन्यानन्दरती श्रौते प्रतिपादते तथा कौषितकिनः '*प्रज्ञयोपस्थं समारुह्योपस्थेनानन्दं रतिं प्रजातिं चाप्नोति* ' इति, तैत्तिरीयाश्च '*प्रजापतिरमृतानन्द इत्युपस्थे* ' *प्रजातिः* प्रजोत्पादनं *अमृतं* स्त्रीक्रीडा *आनन्दो* गुह्येन्द्रियजन्यः ईशविभूतित्वादयं कामो न निन्द्यः '*धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि* ' इति स्मरणात् **दधा**वित्यनेन '*यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमाददे एवं तं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतव* ' इति मंत्रोक्तस्त्रीव्यापारधारण आधानशब्दप्रयोगो दर्शितः भक्ताधीनस्य भगवतो मायेयं।।७।। शोभनदोहदलक्षणा "लक्ष्माथ" इत्यत्र "लक्ष्मापि" इति पाठः आगतेभ्यो लोकेभ्य**स्तत्त्वज्ञानमुपादि**देश **क्रियाः** संस्कारान् '*पुंसवनमनवलोभनं च तृतीये गर्भमास इति चतुर्थे गर्भमासे सीमंतोन्नयनम्* ' इति सूत्रकृतः '*षष्टेऽष्टमे वा सीमंत* ' इति

अब्रघ्नगेष्टखगसूचितसिद्धिपूर्व-प्रव्रज्यके सुसमयेऽथ समोष्णशीते।
आत्मीयवाच्यपठनेन सतोऽनुगृह्णन्नोङ्कारवाच्यभगवान्स्वयमाविरासीत् ।।९।।
विश्वं तदाभूच्छुभशंसि लोका ॐकारमाकर्ण्य सुविस्मिताः स्युः ।
भावान्सुखेटान्गणकाः सुयोगान् दृष्ट्वा मुदं प्रापुरदृष्टपूर्वान् ।।१०।।
त ऊचुर्माधवेदं ते सुकृतद्रुफलं किल । श्रीसिद्धयोऽस्य दास्योऽङ्घ्री स्पर्शवन्निधयोऽनुगाः ।।११।।
नायं गृही जनोद्धर्ता दृष्ट्या पतितपावनः । वन्द्योऽस्यानुग्रहात्कोऽपि भवेन्नैवात्र संशयः ।।१२।।
इत्युक्त्वा तेन हृष्टेन पूजितास्ते गृहं ययुः । श्रुत्वाद्भुतं जनुर्द्रष्टुं प्राप्तैर्लोकैः स नेक्षितः ।।१३।।
तद्दृग्दोषभियैकान्ते गुरुः संस्थाप्य रक्षया । तं ररक्षार्भबुद्ध्येशं तन्मायामोहितो हरिम् ।।१४।।
भूयान्नरो हरिरिव नरतापाघदैन्यहृत् । अयमित्याख्यया चक्रे बालं नरहरिं द्विजः ।।१५।।
क्षुच्छान्तिर्नास्य मत्तोऽतो धात्री वाजा पयस्विनी । मृग्येत्युक्तेऽम्बयोरोजौ स्पृष्ट्वार्भोऽध्यदुहत्पयः।।१६।।

स्मृतेः।।८।। अथ '*दशमे मासि जायत* ' इति श्रुतेः **अब्रघ्नगा** अनस्तङ्गास्ते च ते खगा ग्रहास्तैः **सूचिता सिद्धिपूर्वा** प्रव्रज्या व्रजयोर्भाव इति क्यप् प्रव्रज्यैव **प्रव्रज्यका** सा यस्मिन्तस्मिञ्छोभने समये **आत्मीयवाच्यः** ॐकारः कलितो भीतान्**सतोऽनुगृह्णन्नोङ्कारवाच्यभगवान्** '*तस्य वाचकः प्रणवः* ' इति पातञ्जलोक्तेः '*एतदालम्बनं श्रेष्ठमतदालम्बनं परं। एतदालम्बनं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्* ' इति काठकोक्तेः ॐकारस्य परापरब्रह्मत्त्वाद्ब्रह्मप्रतीकत्वाद्ब्रह्मप्राप्त्युपायभूतानामालम्बनानां श्रेष्ठत्वाद्भगवानोङ्कारवाच्यः यथा प्रियनामग्रहणेन लोका हृष्यन्त्युपागच्छन्ति च तद्वदीश्वरप्रियाभिधेयमोङ्कार इति भावः। **स्वयमाविरासीन्**नास्मदादिवत्कर्मपारतंत्र्येण भौतिकदेहेन कर्मोपार्जितेन तस्य कर्मणोऽभावात् यथा श्रीकृष्णाद्यवतारसमये ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभिः सदा संपन्नस्त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां प्रकृतिं वशीकृत्याजोऽव्ययो भूतानामीश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽपि सन्स्वमायया देहवानिव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वन् लक्षितस्तद्वदेवायमधुना स्वप्रयोजनाभावेऽपि भूतानुजिघृक्षया वैदिकं धर्ममुपदेष्टुं स्वयमेवाविरासीत् प्रकटोऽभूत् यथा रामकृष्णाद्यवतारसमयेऽलौकिकदिव्यजन्मज्ञापनार्थं सालङ्कारः सचिह्नः षोडषवर्षात्मको देहः प्रकटीकृतस्तद्वदिहापि रुदितमकृत्वोत्पत्तित एव प्रणवः पठितः।।९।। **तदा** जन्मन्यग्निवायुप्रभृति **विश्वं शुभं शंस**तीति तथाभूतं **अभूत्** शोभनग्रहान् तन्वादि**भावान्**प्रव्रज्यादिशोभन**योगान्**।।१०।। **ते** गणका **अस्य** बालस्य **श्री**र्लक्ष्मीरणिमादि**सिद्धयश्च दास्यः स्पर्शवच्**चरणौ महापद्मादि**निधयो**ऽनुचराः।।११।। **अयं गृही न** भविष्यति **दृष्ट्या** ईक्षणेनैव।।१२।। **तेन** माधवेन **ते** गणका **अद्भुतं** जन्म जातमात्रत ॐकारोच्चारणं शोकादिराहित्यं चाश्चर्यकारकं **स** बालः।।१३।। तेषामागतानां **दृग्दोष**भयेन **गुरुः** पिता माधवो**ऽर्भकबुद्ध्या**ऽयं लौकिको बाल इति बुद्ध्या बालस्य बुद्धिरिव बुद्धिस्तया वा रक्षणे हेतुस्**तन्माय**या **मोहितः**।।१४।। **अयं नरो बालः नरतापाघदैन्य**हरो भूयात् **इति** हेतोः **आख्यया नरहरिं बालं चक्रे** हृञो हरणार्थे स्मरणात्।।१५।। **अस्य** बालस्य

तद्बालचेष्टितं चित्रं सद्दृग्दोषभियानया । स्फुटं नाकारि मात्रैवमन्यदप्यद्भुतास्पदम् ।।१७।।

बाल्यादिना मर्त्यलिङ्ग-भाजीहाज्ञानलक्ष्मणाम् । प्रतीतेर्ब्रह्मतारोपः साक्षात्कैः कल्प्यते कथम् ।।१८।।

जातस्त्रैवार्षिकोऽप्येष लीलयाभूत्सुमूकवत् । खिन्नाऽतस्तत्प्रतीकारानारेभेऽम्बा द्विजोदितान्।।१९।।

सौर्येऽह्न्यश्वत्थपत्रेऽन्न-भोजनैः कुलपार्चनैः। बालोक्तिपाठनैश्चान्यैः सूपायैर्नावदच्छिशुः ।।२०।।

वक्तुं श्रोतुं नायमज्ञो मूकश्चेत्कथमोङ्कृतिम् । श्रुत्वान्योक्तिं ब्रूत इति पितरौ मोहमापतुः ।।२१।।

मूकोऽयं नौ श्रमेणालं प्रदोषे शम्भुरर्चितः। दिष्ट्यैतत्फलं प्राप्तं संस्कार्योऽसौ कथं न्वतः ।।२२।।

ताभ्यामित्युदिते मौञ्ज्यां बद्धायां वक्ष्य इत्यसौ। संज्ञया दर्शयत्स्वर्णं व्यकृणोत्तन्मुदेऽयसः ।।२३।।

तदा सञ्जातविश्वासो विप्रानाहूय माधवः । मुदा संभृतसंभारः सुलग्नेऽमुमुपानयत् ।।२४।।

सुसंस्कृतः कृतस्वस्त्ययनो भुक्तोऽम्बया सह । गुरूपदिष्टां सावित्रीमुपनीतोऽयमाददे ।।२५।।

गुर्वाश्रितब्रह्मचारि-धर्मो भिक्षां स मातरम्। याचयित्वा जगौ वेदान्न चित्रं वेदवाच्यदः ।।२६।।

क्षुधाशांतिर्मत्तो भवत्यतो धात्री उपमाताऽथवा **पयस्विनी अजा** छागी **मृग्या इत्यम्बया उक्ते** भाषितेऽ**र्भको** बालः **उरोजौ** मातुः स्तनौ करेण **स्पृष्ट्वाऽधि**कं यथा तथा **पयोऽदुहत्**।।१६।। **चित्रमा**श्चर्यकरं **तद्बालचेष्टितं सत्**साधुदृष्टिभयेन **स्फुटं** प्रसिद्धं **नाकारि एवमन्यदप्या**श्चर्यास्पदं **मात्रा स्फुटं नाकारि** एतेन लीलानन्त्यं द्योत्यते।।१७।। मर्त्यलिङ्गं भजतीति **मर्त्यलिङ्गभाक्** *भजो ण्विः* तस्मिन्**निह** भगवति **अज्ञान**चिह्नानां **प्रतीतेः साक्षाद**यं **ब्रह्म**रूप इत्या**रोपः कथं कैः कल्प्यते** न कथमपि।।१८।। **त्रैवार्षिकोऽप्येष** बालः **लीलया सु**तरां **मूकवत्** न तु मूकः।।१९।। **प्रतीकारान्**निदर्शति **सौर्येह्नि** मन्दवारे रविवारे वाऽ**श्वत्थपत्रे** निहिता**मन्ना**नां **भोजनैः कुल**देवता**र्चनैः बाल**भाषण**पाठनैः अन्यैः** शोभनो**पायैः** ब्राह्मीवचादिसेवनोपायैः उक्तानुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः तैरपि **शिशुर्नावदत्**।।२०।। **वक्तुं श्रोतुं** चा**यं नाज्ञोऽयं मूकश्चेदन्योक्तिं** संबोधनरूपां **श्रुत्वो**ङ्कारं **कथं ब्रूते इति** प्रकारेण **पितरौ** मातापितरौ **मोहं** प्राप**तुः**।।२१।। **अयं मूकः** यस्मान्न ब्रूतेऽतः **नौ** आवयोः **श्रमेणालं तत्फलं** शंभोरर्चनफलं **एतत्**पुत्रप्राप्तिरूपं **प्राप्तं** तद्**दिष्ट्या** शोभनं तथापि दैववशान्मूकत्वादयं बालो**ऽतः** परं **कथ**मुपनयानादिना **संस्कार्यः**।।२२।। **इति ताभ्यां** मातापितृभ्या**मुदिते** सति **मौञ्ज्यां बद्धायां** सत्यां अहं **वक्ष्ये इति** हस्त**संज्ञयाऽसौ** बालो**ऽदर्शयत् तन्मुदे** लोहस्य **स्वर्णं** अकरोत् स्पर्श इव।।२३।। **तदा** तस्मिन्काले सर्वैकान्यकिमिति दाप्रत्ययः अयं मौञ्ज्यां बद्धायां वक्ष्यतीति **संजातो विश्वासो** यस्य स माधवः **मुदा**ऽऽनन्देन **संभृताः संभाराः** येन स शोभने **लग्ने** द्वादशाष्टमशुद्धिसहिते खलग्रहचन्द्ररहिते स्वोच्चर्क्षांशेषु केन्द्रत्रिकोणेषु च सौम्येषु सत्सु **अमुं** पुत्र**मुपानयत्** उपनयनं नामाचार्यसमीपनयनाङ्गको गायित्र्युपदेशप्रधानकः कर्मविशेषः उपनयनपदस्य योगरूढत्वात्।।२४।। सुष्ठु **संस्कृतः कृतं स्वस्त्ययनं** यस्य स बटु**रम्बया सह भुक्तो** गुरुमुपेत्योपसंगृह्य च **उपनीतः** कृतोपनयनः द्वितीयजन्मद्योतकवस्त्रोपवीतधारणादिनान्वितः **गुरुणोपदिष्टां** पच्छोर्धर्चशः सर्वां **सावित्रीं** गायित्री**माददे** स्वीकृतवानुवाचेत्यर्थः।।२५।। **गुरोः** सकाशादा**श्रुता** अवधृता अङ्गीकृता वा ब्रह्मचारिधर्माः *'ब्रह्मचार्यस्यपोऽशान कर्म कुरु दिवा मा स्वाप्सीराचार्याधीनो वेदमधीष्व सायं प्रातर्भिक्षेत सायं प्रातः समिधमादध्यादप्रत्या-*

प्रणम्य पितरौ प्राह विरक्तः प्रव्रजामि भोः। अनित्याद्द्राक्शरीरस्य तदाज्ञां दातुमर्हथः ।।२७।।

प्रत्यवायाभिक्रमान्तो नैव धीमति धीस्त्वियम्। मम प्राग्दैहिकाक्षय्या भविष्यन्त्यात्मजा हि वाम्।।२८।।

इत्युक्तेऽम्बा विषीदन्ती तन्मायामोहिताऽब्रवीत् । एक एव सुतस्त्वं मे कथं यासि विहाय माम्।।२९।।

प्रव्रजेद्वेदविद्भुक्त-गार्हस्थ्योऽनुक्रमाद्वनात् । तत्त्वविद्वासनानाश-मनोभङ्गा अतः श्रुताः ।।३०।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

जैह्व्यौपस्थ्यसुखाक्तानां क्रमोऽयं नैव मादृशः। प्राक्संस्कारविरक्तस्य जोष्यैः किं मेऽकयोनिभिः।।३१।।

श्रुतश्रोतव्यनिर्वेदं यास्ये संन्यस्य भो ततः। संसिद्धिः सुलभा नातः परं कार्यं हि धीमता ।।३२।।

कलावायुः शतं स्वापाद्-ध्रियतेऽर्धं तु शेषकम् । बाल्ययौवनवृद्धत्वैः पराधीनतया च नुः ।।३३।।

ख्यायिनमग्रे भिक्षेताप्रत्याख्यायिनीं वा भवान् भिक्षां ददातु' इत्याद्या येन **स** बटुर्**मातरं भिक्षां** भवत्पूर्वां **याचयित्वा** ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् **वेदान् जगौ** यथा ऋक्शाखीयानां प्रथमोपाकरणोत्तरमुत्तरायणे मौञ्ज्युक्तकाले वेदारम्भनियमस्तथा न याजुषाणामतो वाजिसनेयिशाखेऽवतीर्णस्य भगवतः सद्यो वेदारम्भो नावद्यः वेदा वाग्यस्य तस्मिन्**वेदवाचि** भगवतीदं नाश्चर्यं *'अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद..'* इति श्रुतेः।।२६।। ततः **पितरौ प्रणम्या**सारात्संसाराद्**विरक्तो**ऽहं **प्रव्रजामि** सर्वं संन्यस्य गच्छामि श्रवणार्थं '*संन्यस्य श्रवणं कुर्यात्* ' इति विधानात् तर्हि गार्हस्थ्योत्तरं प्रव्रजेति चेन्न तथा युक्तं शरीरस्या**नित्य**त्वा**त्** तत्पातात्पूर्वं ज्ञानं जातं चेन्मोक्षो नान्यथा '*इह चेदशकद्बोद्धुम्* ' इति श्रुतेः अतो **द्राक्** शीघ्रं प्रव्रजामि अतो युवामनुज्ञां **दातुमर्हथः**।।२७।। ननु ब्रह्मचर्याश्रमे '*स्वाध्यायोऽध्येतव्य* ' इति श्रुतेः '*वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना* ' इति स्मरणाच्च स्वाध्यायपरित्याग आर्षर्णानपाकरणरूपप्रत्यवायः वैराग्याभावे चाभिक्रमस्य [रब्धस्य] संन्यासाश्रमस्य नाशश्च भवेत् '*प्रमादिनो हि बहवः पिशुनाः कलहोत्सुकाः। संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसंदूषिताशयाः*' इति वार्तिकोक्तेरिति चेदुच्यते। धीः सारासारविवेकनैपुण्यं तद्वति **धीमति** मयि वेदाध्ययनाकरणे प्रत्यवायोऽभिक्रमस्य संन्यासाश्रमस्य चा**न्तो** नाशो **न** भविष्यति ननु कुतो न्वियं धीरत आह **इयं धीर्**ब्रह्मविषया मतिः पूर्वदेहभवा पूर्वदेहजन्या क्षेतुमशक्या ननु त्वया परिव्राज्ये स्वीकृतेऽस्माकं का गतिरित्यत आह **वां** युवयोः **आत्मजाः** पुत्राः **भविष्यन्ति ही**ति निश्चितं।।२८।। **इति** पुत्रेणो**क्ते** भाषिते सति।।२९।। ब्रह्मचर्येण **वेदवित्** वेदार्थज्ञानवतः कर्माधिकारात् ततो **भुक्तं गृहस्था**श्रमसंबन्धी सुखं येन स ततो वानप्रस्थाश्रमादनुक्रमेण **प्रव्रजेत् अतः तत्त्व**ज्ञानं मनोभङ्गो **वासना**क्षयश्च **श्रुतः**।।३०।। **जैह्व्यसुखं** रसास्वादः **औपस्थ्य**सुखं स्त्रीसंभोगजं एतत्**सुखाक्तानामयं क्रमः प्राक्संस्कारविरक्तस्य** मम नायं क्रमः यतः विरक्तस्य **मे** भोगकालेऽपि स्पर्धासूयादिभिर्व्याप्तत्वाद**कस्य** दुःखस्य **योनयः** कारणभूतास्तैर्**जोष्यैर्**विषयैः किं प्रयोजनम् '*सर्वमेव दुःखं विवेकिनाम्* ' इति पातञ्जलात्।।३१।। अतः **संन्यस्य श्रुता**नां **श्रोतव्या**नां चार्थानां **निर्वेदं यास्ये** दुःखबुद्ध्या प्रयत्नशैथिल्यं निर्वेदः तेषामनुपादेयत्वेन जिज्ञासां न करिष्यामीति भावः **ततः** संन्यासात्**सिद्धि**र्मुक्तिः **सुलभा हि** यत उक्तादन्यद्**धीमता न कार्यं**।।३२।।किं च **कलावायुः शतं** तस्यार्धं निद्रया **ध्रियते शेष**मर्धं **तु बाल्ये**न **यौवने**न **वृद्धत्वे**न च ध्रियते तदपि **नुः** पुरुषस्य **पराधीनतया** ध्रियते उक्तं च गारुडे '*पितृमातृमयो बाल्ये यौवने वनितामयः। पुत्रपौत्रमयो वार्द्धक्ये मूढो नात्ममयः क्वचित्* ' इति।।३३।। संपत्त्या इष्टैर्जनैश्च युक्तः **संसारोऽज्ञाने**न विजृम्भितः **स्वप्नवन्**मृषा स्यात् **यौवन**मपि **पुष्पवत्**क्षणभंङ्गुरं **आयुश्**च विद्युल्लतेव चपलं ततो **बुधे** विवेकशीले **क्व धृतिर्**धैर्यं न क्वापीति

स्वप्नवत्सम्पदिष्टाढ्य-संसारोऽज्ञानकल्पितः । यौवनं पुष्प वच्छायुस्तडिद्वत् क्व धृतिर्बुधे ।।३४।।
कालो भ्रूणाब्धिशून्यूनो वृद्धानार्तान्सुखस्थितान् । मूढान् ग्रसत्यपि प्राज्ञान्निःशेषानमरानपि ।।३५।।
यदर्थं ममताप्येतज्जलबुद्बुदवद्वपुः । मांसास्थिरक्तवद्धिंस्त्र-वञ्चनार्थं त्वगावृतम् ।।३६।।
न भस्मविट्कीटरूप-परिणामं निजानुगम् । तदानुषङ्गिकाः स्त्र्याद्याः किमुतानर्थहेतवः ।।३७।।
देहोऽचित्सर्वगो जीवश्चिदंशोऽजोऽव्ययो ध्रुवः। स्वप्नवत्सुखदुःखादि-संबन्धोऽज्ञानजोऽस्य तु ।।३८।।
प्रसादात्सद्गुरोः शाब्द-परब्रह्मविदस्त्विदम् । छित्त्वाऽविद्रहनं ज्ञेय-ज्ञानास्त्रः स्वस्थ इद्भवेत् ।।३९।।

भावः।।३४।। किं च **भ्रूणान्**गर्भगतान्**निःशेषान्**सर्वान्देवा**नपि ग्रसति**।।३५।। **यदर्थं** देहार्थं **ममता** क्रियते **एतद**पि **वपुः जलबुद्बुदवद**शाश्वतं पुनश्च **मांसास्थिरक्तवज्**जुगुप्सितं सदपि **हिंस्त्रा**णां श्वकाकगृध्रादीनां **वञ्चनार्थं त्व**चा **आवृतं** यदुक्तमाचार्यैः'*बाह्योऽस्थिस्नायुमज्जापलरुधिरवसाचर्ममेदोयुगन्तर्विण्मूत्रश्लेष्मपूर्णं स्वपरवपुरहो* ' इति न ह्येतादृशजुगुप्सितशरीरधारणादन्यद्विरागकारणमुपदेष्टुं शक्यते।।३६।। अन्यच्च '*कृमयो भस्म विष्ठा वावस्था वर्ष्मण ईदृशी* ' इति गारुडात् भस्मविष्ठा**कीटा**न्यतम**रूपपरिणामं** शरीरं निजरूपमनुगच्छतीति **निजानुगं** मरणोत्तरं स्वानुचरं **न** भवति यदुक्तं '*मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ। शुभाशुभं कृतं कर्म गृहीत्वाऽसौ प्रसर्पति १ गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानान्मित्रबान्धवाः। विमुखा यान्ति ते सर्वे दहत्यग्नि शरीरकं २ शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति ३* ' इति। तस्य शरीरस्या**नुषङ्गिकाः स्त्री**पुत्रप्रभृतयो**ऽनर्थहेतवस्**ते **किमुत**।।३७।। **देहः अचिज्**जडः भौतिकत्वाद्विकारित्वाद्दृश्यत्वाच्च घटवत् **जीवस्**तु **चिदंशो**ऽतएव न व्येती**त्यव्ययः** अविनाशी अतएव स्वेन चैतन्यरूपेण **ध्रुवः** '*ममैवांशो जीवलोक* ' इति स्मरणात्। अत एव सर्वगः आकाशवद्गुहाद्युपाधिना परिच्छिन्नत्वेन प्रतीतोऽपि न परमार्थतः अत एव न जायत **इत्यजो** '*न जायते म्रियते वा* ' इति श्रुतेः तथा चेत्परलोकेइहलोकादिसुखादि च कथं तस्येत्यत आह **सुखदुःखादिसंबद्धोऽस्य** जीवस्य **तु** अज्ञानाज्जातोऽतः **स्वप्नवत्** तुशब्देन '*अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि* ' इति श्रुत्युक्तसंकल्पितत्वं द्योतितं ननु न युक्तमिदमसंसारिणः सर्वज्ञस्य बुद्धिपूर्वकमनेकशतसहस्रानर्थाश्रयं देहमनुप्रविश्य दुःखमनुभविष्यामीति संकल्पनं स्वातंत्र्ये सत्यनुप्रवेशश्चेति। सत्यमेव न युक्तं स्यादिति(यदि) स्वेनाविकृतेन रूपेणानुप्रविशेयं दुःखमनुभवेयमिति च संकल्पितवान्न त्वेयं। तर्ह्यनुप्रवेशवचनस्य का गतिरिति चेज्जीवो ह्याभासमात्रं बुद्ध्यादिमात्रासंसर्गजनित आदर्श इव प्रविष्टः पुरुषप्रतिबिम्बः अचिन्त्यानन्तशक्तिमत आत्मनो बुद्ध्यादिसंबंधश्चैतन्यावभास आत्मस्वरूपविवेकाग्रहणनिमित्तः सुखी दुःखी मूढ इत्याद्यनेकविकल्पप्रत्ययहेतुश्छायामात्रेण जीवरूपेणानुप्रविष्टत्वात् स्वतः आत्मा न दैहिकैः सुखदुःखादिभिः संबध्यते यथा पुरुषादित्यादय आदर्शोदकादिछायामात्रेणानुप्रविष्टा आदर्शोदकदोषैर्न संबद्ध्यन्ते तद्वदात्माऽपि '*सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः..*' इति काठके '*ध्यायतीव लेलायतीव* ' इति वाजसनेयके च श्रवणात् ननु वाचारम्भणमात्रश्चेज्जीवो मृषैव प्राप्तस्तथा चेत्परलोकेहलोकादि च कथं तस्य नैष दोषः सदात्मना सत्त्वाभ्युपगमात्। सर्वं च नामरूपादि सदात्मनैव सत्यम् विकारजातं स्वतस्त्वनृतमेव '*वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्* ' इति श्रुतेः तथा जीवोऽपीति यक्षानुरूपो बलिरिति न्यायः प्रसिद्धः अतः शब्दा(सदा)त्मना सर्वव्यवहाराणां सर्वविकाराणां च सत्यत्वं सतोऽन्यत्वे चानृतत्वमिति न कश्चिद्दोषस्तार्किकैरिहानुवक्तुं शक्यः यथेतरेतरविरुद्धद्वैतवादाः स्वबुद्धिकल्पनामात्रा अतत्त्वनिष्ठा इति शक्यं वक्तुमिति पूर्वाचार्योक्तिरत्राभ्युपगन्तव्या।।३८।।भवतु नामाज्ञानजोऽस्य सुखदुःखादिसंबन्धः तदज्ञानं कस्मादपयाति यदपाये च कृतार्थः पुरुषोऽनपाये चाकृतार्थः स्यादित्यत आह **शाब्द**मौपनिषदमात्मविषयकं ज्ञानं **परब्रह्मा**त्मयाथात्म्यं तद्विदः श्रोत्रियाद्ब्रह्मनिष्ठात्**सद्गुरोः**

य उत्तमं ज्ञानपात्रं लब्ध्वा धामाग्रजातिजम् । नाचरत्यात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वञ्चितो ध्रुवम् ।।४०।।
तस्मान्नारब्धविघ्ना मे भव तेऽम्ब नमोऽपि ते । पुत्रो भविष्यति ध्यानाद् भवाब्धिं मे तरिष्यसि ।।४१।।
इत्युक्त्वाऽदर्शयत्तस्यै स्वं रूपं दिव्यमुत्तमम् । साप्यदभ्रदृशा दृष्ट्वा तद्वित्तत्प्राग्जनिर्जगौ ।।४२।।
नमस्ते भगवन्देव प्राग्दृष्टो मर्तुकामया । कुपुत्रया मया स त्वं श्रीपादो मेऽद्य गोचरः ।।४३।।
ब्रह्मापि वेत्ति नो रूप-गुणांस्तु मोहिता त्वहम्। मानुषी त्वां कथं जाने दिष्ट्याद्य ज्ञानमर्पितम्।।४४।।
कृतं मत्कुक्षिसंभूत इति लोकविडम्बनम् । अज ब्रह्माण्डकुक्षे न उभयं पावितं कुलम् ।।४५।।
सत्यसङ्कल्प ते विघ्नं माऽस्तु रूपं स्थिरीकुरु । मयीदं चात्र भो स्थेयं यावत्पुत्रो भविष्यति ।।४६।।
तथेत्युक्त्वेशबुद्ध्याऽसौ स्थित्वा ताभ्यां सुपूजितः। तत्र शिक्षितवाञ्छिष्यान्विदुषोऽप्येष वेदवाक् ।।४७।।
अम्बापि गर्भिणी भूत्वा कालेऽसूत सुतौ शुभौ। स त्रैमासिकयोः शिश्वोः प्राहाम्बां शृणु मेऽम्ब भोः।।४८।।

प्रसादाच्छ्रवणाद्युपदेशात् '*आचार्यवान्पुरुषो वेद*' इति श्रुतेः नन्वौपनिषदं ज्ञानं स्वत एवोपनिषद्विचारेण लब्धुं शक्यं पदवाक्यप्रमाणविदः किं पुनः शाब्दपरब्रह्मवित्सद्गुरुप्रयोजनं तत्रोच्यते श्रुत्या तथैवोपदिष्टत्वात् '*तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं*' अत्रेदं बोध्यं यथा स्वविषयेभ्यो गन्धारेभ्यः पुरुषस्तस्करैरभिनद्धाक्षोऽविवेको दिङ्मूढोऽशनपिपासादिमान्व्याघ्रतस्कराद्यनेकभयानर्थव्रातयुतमरण्यं प्राप्तो दुःखार्तो विक्रोशन्बन्धनेभ्यो मुमुक्षुस्तिष्ठति स कथंचित्कारुणिकेन केनचिन्मोक्षितस्तदुक्तदिग्दर्शनानुसारी गन्धारानेवापन्नो निवृत्तः सुख्यभूत् तथैवमेव सतो जगदात्मनः स्वरूपात्तेजोऽबन्नादिमयं देहारण्यं वातपित्तकफरुधिरमेदोमांसास्थिमज्जाशुक्रकृमिमूत्रपुरीषवच्छीतोष्णाद्यनेकद्वंद्वदुःखवच्चेदं मोहपटाभिनद्धाक्षो भार्यापुत्रपशुबंध्वादिदृष्टादृष्टानेकविषयतृष्णापाशबद्धः पुण्यापुण्यादिकर्मतस्करैः प्रवेशितोऽहममुष्य पुत्रो ममैते बांधवाः सुख्यहं दुःखी मूढः पंडितो धार्मिको बंधुमान्जातो मृतो जीर्णः पापी पुत्रो मे मृतो धनं मे नष्टं हा हतोऽस्मि कथं जीविष्यामि का मे गतिः किं मे त्राणमित्येवमनेकशतसहस्रानर्थजालवानिव कथंचिदिह पुण्यातिशयात्परमकारुणिकं शब्दपरब्रह्मविदं विमुक्तबंधनं सद्गुरुं यदासादयति तेन च कारुण्याद्दर्शितसंसारविषयदोषदर्शनमार्गो विरक्तः संसारविषयेभ्यः नासि त्वं संसार्यमुष्य पुत्रत्वादिधर्मवान् किं तर्हि सद्यत्तत्त्वमसीत्यविद्यामोहपटाभिहनान्मोक्षितस्त्विदमज्ञानगहनं **ज्ञेय**स्यानादिमत्परं ब्रह्मेत्यादिलक्षणस्य ज्ञानसाधनैः प्राप्यस्यात्मनो य**ज्ज्ञानं** ज्ञानसाधनममानित्वादि तदे**वास्त्रं** यस्य स **च्छित्वा स्वस्थो भवेन्**नान्यः।।३९।।४०।। यस्मादेवं **तस्मादि**ति स्पष्टं।।४१।। **अदभ्रदृशा** ज्ञानदृष्ट्या ज्ञात्वा पूर्व**जनि**र्या सा।।४२।। स्मारयति **प्रागि**ति।।४३।। तर्ह्युत्पत्तित एव त्वया कथं न ज्ञात इत्यत आह **ब्रह्मे**ति।।४४।। इदृग्विधोऽहं चेत्कथं त्वत्पुत्रो जात इत्यत आह कृतमिति **ब्रह्माण्डाः कुक्षौ** यस्य तत्संबुद्धौ मादृङ् नान्य इति संकल्पः संपादितः **उभयं** पितृकं भर्तृकं च उभादुदात्तो नित्यमिति यत्प्रत्ययः।।४५।। अतो हे **सत्यसंकल्प ते विघ्नं** विघ्नो **माऽस्तु**।।४६।। **तथेत्युक्त्वा ईशो**ऽयमिति **बुद्ध्या** पितृभ्यां सत्कृतो**ऽसौ स्थित्वा विदुषोऽपि** केवलं ज्ञातवेदानपि शासनार्हां विप्रा**ञ्छिक्षितवान्** पदवाक्यप्रमाणोत्थज्ञानमसंदिग्धं तेभ्य उपादिशदित्यर्थः यतोऽसौ वेदा वाग्यस्य स **वेदवाक्**।।४७।। **शिश्वो**र्मासत्रयात्मककालपरिच्छिन्नयोः सतोः।।४८।। अधुनेमौ **जातौ** विद्यतेऽतः परं **पुत्री पुत्रौ चे**ति त्रयोऽपि शोभना **भविष्यन्ति मे** मह्यं गन्तु**माज्ञां देही**त्युक्त्वा तया मात्रा

जातौ द्वौ ते भविष्यन्ति पुत्रौ पुत्री च सत्तमाः । देह्याज्ञां म इति प्रोक्त्वा तदाज्ञप्तः प्रचक्रमे ।।४९।।

रेजे शिरस्त्राणविशोभिमूर्धा सुपादुकामण्डितपादपद्मः।

काषायवस्त्रावृतपेशलाङ्गः कौपीनधृग्दण्डकरः स्मितास्यः ।।५०।।

क्षमस्वार्भबुद्ध्या मयाजापराद्धमिति व्याहरन्तीं सतीं त्रिंशताब्दैः ।

पुनर्दर्शनं मेऽस्तु सांनिध्यमम्ब स्मृतावित्थमुक्त्वा ययौ तां निवर्त्य ।।५१।।

नायं मर्त्योऽस्तीश एनं नताः स्म एवं सद्भिः स्तूयमानो मुनीनः।

योगीशोऽपि द्रागबदर्याश्रमं सद् द्रष्टुं काशीं प्राप वेषान्मुमुक्षोः ।।५२।।

स खेचरत्सहज्जिह्व उन्मन्यावस्थयाऽतपत्। तपः श्वासोच्छ्वासहीनः काश्यां वज्रासनस्थितः ।।५३।।

भागीरथ्यां त्रिषवणमथाप्लुत्य साष्टाङ्गयोगं युञ्जन्तं तं सकलमुनयः प्रेक्ष्य सिद्धासनस्थम्।

नत्वाष्टाङ्गैः परतरधिया खेचरीमुद्रयैक-कुम्भोद्युक्तं जगुरुपरता नादसिद्धोत्समाधिम् ।।५४।।

भवान्परात्मास्ति न मर्त्यबालः सद्धर्मगुप्त्यै विधृतावतारः।

प्राक्शंकराचार्यमतोऽपि लुप्तः संन्यास एनं वितनोतु तिष्ये ।।५५।।

आज्ञप्तः गन्तुं प्रचक्रमे **उपचक्रमे**।।४९।। **पेशलाङ्गः** कोमलाङ्गः।।५०।। हे **अज अर्भ**स्य **बुद्धि**रिव बुद्धिर्यस्यास्तस्याऽयं बाल इति बुद्ध्या वा **मया** मात्रा**ऽपराद्धं** निरोधनबंध-नाशनादानानुद्धरणसमयोचितक्षालनाद्यकरणैः तत्क्षमस्वे**ति** ब्रुवन्तीं **त्रिंशताब्दैः पुनर्दर्शनं मेऽस्तु** भवतु **स्मृतौ** स्मरणे कृते मे **सांनिध्यं अस्तु** हृदीति शेषः **इत्थं** इदमस्थमुप्रत्ययः **तां** मातरं **तान्** आगतान्वा **निवर्त्य** परावर्त्य।।५१।। **अयं** मरणधर्मा **न** किंत्वी**शोऽस्ति एनं** अस्मै **नताः स्म मुनीनो** मुनिश्रेष्ठः शीघ्रं **बदर्याश्रमं दृष्टुं** गच्छन्**मुमुक्षुवेषे**ण न तु मुमुक्षु-र्नित्यमुक्तत्वात् **काशीं प्राप**।।५२।। **खे** आज्ञाचक्रे **चर**न्ति **सहज्जिह्वा** यस्य स एतेन खेचरीमुद्रोक्ता। '*यो मनःसुस्थिरीभावः सैवावास्था मनोन्मनी* ' इत्युक्तलक्षणयावस्थयाऽतएव **श्वासोछ्वासहीनः** एतेन केवलकुम्भक उक्तः **वज्रासनस्थितः** सिद्धासनेनोपविष्टः '*एतत्सिद्धासनं प्रोक्तमन्ये वज्रासनं विदुः*' इत्युक्तेः जितासनो वा सः लोकशिक्षार्थं **तपो**ऽतपत् '*तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व* ' इति श्रुतेः।।५३।।**भागीरथ्यां** स्नात्वा **त्रिषवणं योगम्**प्रत्यगात्मपरमात्मैकत्वलक्षणध्यानं **युञ्जन्तं तं** अभ्यसन्तम् **परतरे धी**र्ययेदृश्या **खेचर्या**ख्य**मुद्रया एको** मुख्यः केवलाख्यः स चासौ **कुम्भः** '*न कुम्भः केवलोपम* ' इत्युक्तेः तस्मि**न्नुद्युक्तं नादे**नाभ्यस्तेनानाहतेन **सिद्ध उत्**कृष्ट**समाधि**र्निर्विकल्पाख्यो यस्य **परतरधिये**त्यत्रायं परतरः परमात्मेति या धीस्तया वा **अष्टाङ्गैर्नत्वा** साष्टाङ्गं प्रणम्य **सकलमुनय उपरताः** सन्तो वक्ष्यमाणं **जगुः** ऊचुरित्यर्थः।।५४।। तदाह भवानिति **सतां धर्म**स्य च **गुप्त्यै** कृता**वतारः** पूर्वं **शङ्कराचार्यमतोऽप्य**धुना **तिष्ये**ऽस्मिन्कलौ **लुप्तः संन्यास**मार्ग **एनं भवान्वि**शेषेण **तनोतु** ननु '*अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकं। देवराच्च सुतोत्पत्तिं*

कष्टोत्थाद्यन्तवत्स्पर्श-भूभोगसुरतात्मभिः । उच्छिन्नोऽध्यात्मसौख्याज्ञैरयं कलिहतात्मभिः ।।५६।।

भीरूग्रे सुलभक्षेमे कलौ संन्यासवर्त्मना । अध्यात्मपरमानन्दं भगवन्दातुमर्हसि ।।५७।।

इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यं वृत्वा कृष्णसरस्वतीम् । ततः संन्यास्यभून्नाम्ना स नृसिंहसरस्वती ।।५८।।

न्यस्तसूत्रशिखो रेजे न्यस्तसर्वैषणो वशी । संन्यस्ताखिलसङ्कल्पः संन्यासी निर्ममोऽद्वयः ।।५९।।

संन्यासपद्धतिं प्राह मुमुक्षुभ्यो जगद्गुरुः । विरजोमाञ्छुचिर्देवीं प्रविष्टो हापितैषणः ।।६०।।

संन्यस्तसकलोऽसूत्र-चूडो दण्डी गुरुं भजेत् । प्रज्ञानं ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म तत्त्वमसीति च ।।६१।।

अहं ब्रह्मास्मीति महा-वाक्यान्याप्त्वार्थतो वशी । पञ्चीकरणविल्लब्ध-संज्ञः शौची स्वधर्मवित् ।।६२।।

कलौ पञ्च विवर्जयेत् ' इति निषिद्धत्वात्कथं संन्यास एनं वितनोत्विति भवद्भिरुक्तमिति चेत् '*यावद्वेदः प्रवर्तेत यावद्वर्णः प्रदृश्यते। अग्निहोत्रं च संन्यासं तावत्कुर्यात्कलौ युगे* ' इति स्मृतत्वादुक्तमस्माभिः संन्यास एनं वितनोतु तिष्य इति।।५५।। ननु पूर्वसिद्धविषयसुखासक्तैः कुतोऽयं कष्टरूपः संन्यास आश्रयणीयो मोक्षसुखार्थमिति चेन्मोक्षसुखस्य नित्यत्वे निरुपाधिकत्वे निरतिशयत्वे च कथं तत्प्राप्तिकरः संन्यासमार्गस्तैरुच्छिन्न इत्यत आह स्त्रीपुरुषयोः परस्परप्रेमसंपादनादिलक्षणात्**कष्टादुत्थिता** आतश्चोपसर्गे इति कप्(कः) **आद्य-न्तवन्तो** ये स्पृश्यन्त इति **स्पर्शा**स्त एव **भू**रुद्भवस्थानं येषां ते च ते भुज्यन्त इति **भोगा** विषयसुखानि पारतन्त्र्यात्सोपाधिकानि क्षणभङ्गुरानि सातिशयानि च तेषु सुखबुद्ध्या **सु**तरां **रत आत्मा** मनो येषां तैः आत्मन्यधिकृत्य वर्तमानं **अध्यात्मं** तच्च तत्**सौख्यं** तन्न जानन्ति ते तथोक्तैः **कलि**दोष**हत**बुद्धिभिर**यमुच्छिन्नः**।।५६।। **भीरू**णामु**ग्रे सुलभं क्षेमं** यस्मिन् तस्मिन् **कलौ**।।५७।। **इति** तै**रुक्तमाश्रुत्या**ङ्गीकृत्या**चार्य**त्वेन **कृष्णसरस्वतीं वृत्वा ततः स नाम**तो **नृसिंहसरस्वती संन्यासी अभूत्**।।५८।। न केवलं नामतः क्रिया-तोऽपीत्याह **न्यस्ते सूत्रशिखे** येन **न्यस्ता**स्तिस्र **एषणा** येन **वशी** जितेन्द्रियः सम्यङ्**न्यस्ता अखिलसंकल्पा** येन स **मम**तारहितस्त्यक्तसुखदुःखादिद्वन्द्वसंबंध ईदृशः **संन्यासी** अभूत्। '*कोऽयं मुख्यं इति चेदयं मुख्य* ' इति परमहंसोपनिषदुक्तो मुख्यसंन्यासोऽयं '*यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः*' इति श्रुतेः।।५९।। ततो **जगद्गुरुर्मुमुक्षुभ्यः संन्यासपद्धतिं प्राह** प्रायश्चित्तेन **शुचिः** कृत**विरजा**होमः **देवीं** गायत्रीं **प्रविष्ट**स्त्यक्तै**षणः**।।६०।। श्ववांतवत्सम्यङ्**न्यस्तं** अखिलं ब्रह्मलोकपर्यन्तं भोगजातं येन स **सूत्र**शिखारहितः '*कौपीनं दण्डमा-च्छादनं च स्वशरीरभोगार्थाय लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहेत्* ' इत्युक्तं ज्ञापयितुं **दण्डी**त्युक्तं तेनायं पूर्वोक्तवन्न मुख्यः यतः संन्यासो द्विविधः विविदिषासंन्यासो विद्वत्संन्यासश्चेति तत्रायं विविदिषासंन्यासः **गुरुं भजेदि**ति उपसंहारात्। '*प्रज्ञानं ब्रह्म* ' इत्यृग्वेदवाक्यं १ '*अहं ब्रह्मास्मि* ' इति यजुषः २ '*तत्त्वमसि* ' इति साम्नः ३ ।।६१।। '*अयमात्मा ब्रह्म* ' इत्यथर्ववाक्यं नात्र पाठक्रमः एतानि सार्थानि ज्ञात्वा वाक्यानां त्वयमर्थः तावत्**प्रज्ञानं ब्रह्मे**त्यस्यार्थोऽयं '*आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्* ' इति वाक्येन ब्रह्मणो लक्षणमभिधाय '*स ईक्षत लोकान्नु सृजा* ' इत्युपक्रम्य '*तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ* ' इति दैनंदिनव्यवहारार्थं नेत्रकण्ठहृदयस्थानानि देहा-न्तरव्यवहारार्थं पितृशरीरमातृशरीरस्वशरीराणीत्यादिरूपं प्रपञ्चजाताध्यारोपणप्रकरणमभिधाय '*स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत्किमिहान्यं वावदिषत्* ' इति तस्यारोपितस्यापवादमभिधाय ' *स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यदिदमदर्शमितीञ्* ' इति प्रत्यगात्मनो ब्रह्मस्वरूपत्वमभिहितं पुनश्च '*पुरुषेहव* ' इत्यादिना ज्ञानसाधनवैराग्यजननाय गर्भवासादिदुःखं प्रदर्श्य प्रज्ञारू-पस्यात्मनो ब्रह्मरूपत्वं '*प्रज्ञानं ब्रह्म* ' इत्यनेन वाक्येन प्रदर्शितं अथ विद्यारण्यसंमतो वाक्यचतुष्टयार्थः '*येनेक्षिते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च। स्वाद्वस्वादू विजानाति तत्प्रज्ञान-*

दैवभावो योगपट्टी संन्यासी श्रेयसेऽर्हति । गतिज्ञो धारणाभ्यासाज्जीवन्मुच्येत्परात्मदृक् ।।६३।।

ब्रह्मीभूतस्य गव्यात्मा व्यसुः क्षेप्योऽप्क्रियादि नो। इत्युक्त्वा ग्राहयामास संन्यासं स्वधिकारिणः ।।६४।।

ततः प्रभृति संन्यासः संप्रवृत्तोऽमृतायनः । काश्यां पुमर्थवेदार्थान्प्रकाश्योत्तरवर्त्मना ।।६५।।

मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य पूतात्मापि सुशिष्ययुक् । तीर्थस्नातो ययौ गङ्गा-सागरं भक्तगुप्तये ।।६६।।

कारयित्वा बहिःस्पर्शान्बाह्यान्सोऽन्ते दृशं भ्रुवोः। प्राणापानौ च खे तुल्यौ यतिभ्यो योगमादिशत् ।।६७।।

प्रयागेऽथैत्य संन्यासं माधवब्रह्मणे ददौ । विभुस्तत्त्वोपदेशं च निजोद्भवभुवं ययौ ।।६८।।

मुदीरितं। चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु। चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ' १ इ.ऋ.वा.। 'परिपूर्णः *परात्मास्मिन्देहे विद्याधिकारिणि। बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते। स्वतःपूर्णः परात्मात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः। अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहं* ' २ इ.य.। '*एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितं। सृष्टेः पुराधुनाऽप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते। श्रोतुर्देहेन्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितं। एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयतां* ' ३ इ.सा.। 'स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतं। अहंकारादिदेहांतात्प्रत्यगात्मेति गीयते। दृश्यमानस्य सर्वस्य जगत्स्तत्त्वमीर्यते। ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम्' इति अथ.वा.। एवमेतैश्चतुर्भिर्वाक्यैरवान्तरवाक्यसहितैः परोक्षज्ञानं भवेत्।। ततो मननादिक्रमेण ब्रह्मपरोक्षज्ञानमसंदिग्धं भवेत्। यदुक्तं '*सर्वत्रैव महावाक्यविचारादपरोक्षधीः। ब्रह्मापरोक्षसिद्ध्यर्थं महावाक्यमितीरितम्। वाक्यवृत्तावतो ब्रह्मापरोक्ष्यविमतिर्न हि* ' इति। एवं सार्थानि ज्ञात्वा **पञ्चीकरण**ज्ञः **लब्धा संज्ञा** ज्ञानं नाम वा येन बाह्यान्तर**शौच**युक्तः **स्वधर्म**ज्ञः।।६२।। **दैवी**संपत्तीयुक्तः **योगपट्ट**युक्तश्चैवं **संन्यासी** मोक्षाय योग्यो भवति '*रश्म्यनुसारी अतश्चायनेऽपि हि दक्षिण* ' इति न्यायेनोत्तरायणादिकालविशेषमरणस्य विवक्षितत्वाद्दिनरात्र्यादिकालाभिमानिदेवताप्राप्यमार्गो गतिसंज्ञकः तं जानातीति वा **गतिज्ञः** सर्वेन्द्रियप्रत्याहारपूर्वकं नाभ्यादिदेशे चित्तस्य स्थिरीकरणं **धारणा** तद**भ्यासात्परे** ब्रह्मणि **आत्मनि** प्रत्यग्रूपे चाभेदेन **दृग्**यस्य स **जीवन्**नेवाविद्याकामकर्मादिभ्यो **मुच्यते**।।६३।। ईदृशस्य **ब्रह्मीभूतस्य व्यसुः** गतप्राण उपलक्षणमेतत्कलानां '*गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।। कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति* ' इति श्रुत्युक्तमनुसंधेयं। **व्यसु**रात्मा देहो **गवि** सति सम्भवे जलेऽन्यथा भुवि **क्षेप्यः** न दाह्यः गोशब्दस्य जले भुवि च स्मरणात् '*यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदु च न* ' इति भाष्यकृद्भिः शवकर्मैवंविदो नेति निषिद्धं **अप्क्रियादि** अञ्जलिदानपिण्डनिर्वापैकोद्दिष्टश्राद्धसपिण्डीकरणमासिकादिश्राद्धादि न कार्यं मुक्तत्वात्। पुत्रश्चेत्पार्वणश्राद्धं चरेत् तत्र ब्रह्मीभूतशब्देनानुष्ठानं इतरपितृदानार्थं पुत्रस्य पुत्रत्वसिद्ध्यर्थं च। **स्वधिकारण** इत्यनेनाधिकारं विना कृतः संन्यासः पातायेति ज्ञेयं।।६४।। **अमृतायनः** मोक्षमार्गभूतः **पुंसामर्था** धर्मादय एभ्यस्ते च ते **वेदार्थाः** '*वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्। पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वर* ' इत्युक्तेः तान् **प्रकाश्योत्तर**मार्गेण **मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य** स्वयं **पूतात्माऽपि तीर्थैः स्नातो भक्त**रक्षार्थं व्रजन् **गङ्गासागरं ययौ**।।६५।।६६।। **बाह्याः स्पर्शा** रूपरसादिविषयाश्चिन्तिताः सन्तोऽन्तः प्रविशन्ति तांस्तच्चिन्तात्यागेन **बहि**रेव **कारयित्वा** अत्यन्तनेत्रनिमीलने निद्रया मनो लीयते उन्मीलने च मनो बहिः प्रसरति तदुभयदोषपरिहारार्थमर्धनिमीलनेन **भ्रू**मध्ये दृष्टिं **कारयित्वो**छ्वासनिःश्वासरूपेण नासिकयोरभ्यन्तरे चरन्तौ **प्राणापाना**वूर्ध्वाधोगतिनिरोधनेन समौ कारयित्वा **खे** हार्दाकाशे यद्वा यथा प्राणो बहिर्न यात्यपानो नान्तः प्रविशति च किं तु नासामध्य एव द्वावपि चरतस्तथा मंदाभ्यामुछ्वासाभ्यां तुल्यौ कारयित्वा।।६७।। **माधव**शर्मणे ब्राह्मणाय **निजोद्भवभुवं** स्वजन्मभूमिम्।।६८।। **अस्य** श्रीगुरोः '*आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि। स्वयं चाचरते यस्मात्तेनाचार्यः स उच्यते* ' इत्येवंलक्षणैराचार्यैः **किं** प्रयोजनं **कोऽयमि**ति प्रश्नान्तरम्।।६९।। **अनेन** श्रीगुरुणाऽपि **तथा**।।७०।। **लीलया मानुष्यमासाद्य स तद्वद्वर्तते** विपक्षे बाधमाह तथा **न** वर्तेत **चेत्तदनुवर्ति**लोकतः

।। नामधारक उवाच ।।

यत्प्रसादान्नरा मुक्ता अद्वैतामृतवर्षिणः । भवन्त्यस्य किमाचार्यैः कोऽयं कृष्णसरस्वती ।।६९।।

।। सिद्ध उवाच ।।

सांदीपनिवसिष्ठाद्याः कृष्णरामादिभिर्वृताः। गुरवोऽपि तथाऽजेन वृतः कृष्णसरस्वती ।।७०।।

मानुष्यं लीलयासाद्य स तद्वद्वर्तते न चेत् । वर्तेत सङ्करो लोके भवेत्तदनुवर्तितः ।।७१।।

येनाध्यक्षेण मा सूते जगत्तेन न बद्ध्यते । असक्तोऽयमुदासीन-वत्स्थितः किमुतेतरैः ।।७२।।

शिष्यो विष्णुः पुरेशस्य विष्णोर्विधिरभूद्विधेः। वसिष्ठस्तस्य शाक्त्योऽस्य व्यासस्तस्य शुकोऽस्य तु ।।७३।।

गौडपादोऽस्य गोविन्दः शंकरस्तस्य तस्य तु । विश्वरूपस्तस्य बोध-ज्ञानः सिंहगिरिस्तथा ।।७४।।

तस्येश्वरो नृसिंहोऽस्य विद्यातीर्थं ततः शिवः । तस्य भागीरथीतीर्थं विद्यारण्योऽस्य तस्य तु ।।७५।।

शिष्योऽभून्मलयानन्दो देवतीर्थं सरस्वती । यादवेन्द्रोऽस्य तस्यायं शिष्यः कृष्णसरस्वती ।।७६।।

सर्वे स्वदीक्षाङ्कितारव्या जाताः कृष्णसरस्वती । पारंपर्योत्तमो ज्ञानी वृद्धोऽतोऽयं वृतोऽमुना ।।७७।।

।। इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे श्रीनृसिंहसरस्वत्यवतारकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ।।

लोके संकरो भवेत्।।७१।। तर्हि तेन स बध्येतेऽत्यत आह **अध्यक्षेणा**धिष्ठात्रा निमित्तभूतेन कर्त्रा **मा** माया प्रकृतिः **सूते तेन** सृष्ट्यादिकर्मणा **न बध्यते** कर्मासक्तिर्हि बंधहेतुः स चाप्तकामत्वादीश्वरस्य नास्ति यतोऽय**मसक्तः** तत्कर्मासक्तिरहितः तर्हि कर्तृत्वमित्यत आह **उदासीनवत्स्थितः** उदासीनत्वे कर्तृत्वानुपपत्तेः कर्तृत्वे चोदासीनत्वानुपपत्तेरतस्तद्वदित्युक्तं संनिधिमात्रेणाधिष्ठतृत्वात्कर्तृत्वमुदासीनत्वं चाविरुद्धं अत **इतरै**र्न बध्यत इति **किमु** वक्तव्यं।।७२।। द्वितीयमुत्तरं वक्तुं तावदादितो गुरुपरम्परामाह शिष्य इति **पुरा** प्रथमं **शाक्त्य** इत्यत्र वसिष्ठस्य शक्तिः शक्तेः शाक्त्यः पराशरः **अस्य व्यासः तस्य शुकः अस्य**।।७३।। **गौडपादः अस्य गोविन्दः तस्य** श्रीश**ङ्करा**चार्यः **तस्य विश्वरूपः तस्य बोधज्ञानः** तस्मात्**सिंहगिरिः**।।७४।। **तस्येश्वरः अस्य नृसिंहः** अस्य **विद्यातीर्थं ततः शिव**तीर्थं **तस्य भागीरथीतीर्थं** तस्य **विद्यारण्यं तस्य मलयानन्दशिष्योऽभूत्** तस्य **देवतीर्थं** तस्य **सरस्वतीयादवेन्द्रः** अस्यायं **शिष्यः कृष्णसरस्वती**।।७५।।७६।। एते **सर्वे स्वदीक्षाङ्किताख्या जाताः** अयं भावः तीर्थाश्रमादिदशोपपदानि उपदेशदण्डदानादिदीक्षयैव गुरुवच्छि-ष्यस्य भवन्ति नान्यथा अत्र त्वयं क्रमो ज्ञानोपदेशपरम्परयैव **अयं** तादृशपरम्परयो**त्तमो ज्ञानी वृद्धश्चातो** हेतोर**मुना** श्रीगुरुणाचार्यत्वेन **वृतः** '*आचार्यस्ते गतिं वक्ता* ' इति श्रुतिहार्दं दर्शयितुं।।७७।।

इति टीकायामष्टमः।।८।।

नवमोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

भगवानपि संन्यासं प्रगृह्य स्वजनुस्थलम् । कुतो यातोऽस्य शिष्याः स्युः के के किमकरोत्ततः ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

महीं प्रदक्षिणीकृत्य प्रतिज्ञातानुसार्यजः। मातरं द्रष्टुमाप्तो हि माता वन्द्या यतेरपि ।।२।।

शिष्या हि बहवो जाता बालः कृष्ण उपेन्द्रकः। ज्ञानज्योतिः सदानन्दो माधवोऽहं च सप्तमः ।।३।।

सरस्वत्यन्तसंज्ञाः स्युरेते मुख्यास्तु भूरिशः । आसन्नन्ये स तैः साकमाययौ स्वजनुस्थलम् ।।४।।

पितरौ प्रेक्ष्य बन्धूंश्च भगिनीमितरानपि। तत्राददे विश्वरूपः पूजां प्रत्यालयं क्षणात् ।।५।।

पित्रार्चितममुं दृष्ट्वा प्राक्स्मृत्याम्बाब्रवीत्प्रिय । मृत्यून्मुखीं कुपुत्रां मां योऽरक्षच्छ्रीपदस्त्वयम् ।।६।।

।।श्रीगणेशाय नमः।। अथ नवमाध्यायः।। *नवमे जन्मभूमिं स दृष्ट्वोदररुजार्दितं ।। द्विजं यवनभीतं च त्रात्वा तीर्थान्यवर्णयत् १* पूर्वाध्याये न्यस्तसूत्रशिखो रेजे न्यस्तसर्वैषणो वशीत्यादिना भगवतः संन्यासमुक्त्वाऽप्यध्यायान्ते *निजोद्भवभुवं यया*वित्युक्तं तत्संन्यासिनोनुचितं मन्वानो **नामधारक उवाच** समग्रज्ञानवैराग्यादिसंपन्नोऽपि लोकशिक्षार्थं **संन्यासा**श्रमं स्वीकृत्य स्वजन्मभूमिं प्रति **कुतो यातो** वद किंचा**स्य के के शिष्याः स्युः ततः** स्वजन्मस्थलागमनानन्तरं भगवान् **किमकरोत्**तद्वदस्व ।।१।। त्रिंशताब्दैः पूनर्दर्शनं मेऽस्त्विति प्रतिज्ञातानुसारेण संन्यसिनोऽपि वन्द्याया मातुर्दर्शनार्थं भगवत आगमनमित्युत्तरं दित्सुः **सिद्ध उवाच** महीमिति **प्र**गतो **दक्षिणं** तिष्ठद्गु.. चेत्यव्ययीभावः ततश्चिरप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं संपाद्यमानं कृत्वा **अज**शब्देनास्य लोके नृदेहविडम्बनमिति सूचितं 'तस्मादेवं विदुषा सत्यमेव वदितव्यं समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति' इति श्रुतेर्लोकसंग्रहार्थं प्रतिज्ञातमनुसरतीति **प्रतिज्ञातानुसारी मातरं द्रष्टुं** प्राप्तः **हि** यस्माद्**यतेरपि माता वंद्या** कुतो यात इत्यस्योत्तरमिदम्।।२।। के के शिष्या इत्यस्योत्तरमाह शिष्या हीति लोके ह्यायुष्कामतया ज्येष्ठापत्यस्य नाम्नोऽनुच्चार्यत्वात्पित्रादिर्बाल इति नाम्ना व्यवहरति तथा भगवतापि प्राथमिकस्य पुत्रस्थानीयस्यान्तेवासिनो **बाल**सरस्वतीति नाम निर्दिष्टं शिष्यस्यापि पुत्रवद्गौणात्मत्वात् यथा व्यवहारे प्रव्रजन् म्रियमाणो वा पिता *त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक* इति पुत्रमनुशास्ति सो*ऽनुशिष्टोऽहं ब्रह्माऽहं यज्ञोऽहं लोक* इति प्रतिवदति त्वयाधीतं ब्रह्माऽहं अहं ब्रह्म वेदमध्येष्याम्यध्यापयामि च त्वयाऽनुष्ठितो यज्ञोऽहं अहं यज्ञमनुतिष्ठामि त्वया संपादितो लोकोऽहं अहं स्वरादिलोकं संपादयामीति भावः। अतएवोक्तमैतरेये 'सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयत' इति एवमेव पारमार्थिके मार्गे परम्पराविच्छेदाय गुरुणाऽपि शिष्यः प्रतिधीयते शिष्यप्रशिष्यादिपरम्परायाः कुलत्वेन श्रुत्याभिहितत्वात् 'नास्या ब्रह्मवित्कुले भवति' इति मुण्डमाण्डूक्यादावुक्तत्वात् **अहं** सिद्धः।।३।। परमगुरोः कृष्णसरस्वत्या दक्षिणमठसंप्रदायानुसारेण श्रीगुरोर्नरसिंहसरस्वतीत्यभिधानं यथा प्राप्तं तथाऽस्मदादीनां तच्छिष्याणां **सरस्वती**ति प्रतिष्ठितनाम्नो**ऽन्ते संज्ञा** येषां ते सप्त **मुख्या अन्ये** तु बहुशस्तादृशा **आसन् तैः** शिष्यैः सह।।४।। माता**पितरौ** पूर्वाश्रमसंबन्धिनौ अवलोक्य **तत्र** करञ्जनगरे **विश्वरूपो** भूत्वा तत्रत्यानां भक्तिवशात्प्रतिगृहं गत्वा **पूजामाददे** स्वीकृतवान्।।५।। **पित्रा** माधवेन पूजितं **अमुं** श्रीगुरुं **दृष्ट्वा** तत्प्रसादलब्धया **प्राक् स्मृत्याऽम्बा** श्रीगुरुमाता स्वपतिम**ब्रवीत्** हे **प्रिय** पूर्वजन्मनि **मृत्यून्मुखीं कुपुत्रां मां योऽरक्षत्**सोऽयं **श्रीपादः**।।६।। **स्वसदृशाऽन्याभावात्प्रतिज्ञासिद्धये स्वयमेव** मे

मादृग्भवेत्सुत इति प्रतिज्ञातसुसिद्धये । स्वदृगन्यसुताभावात्स्वयमेवाभवत्सुतः ।।७।।

श्रीपाद मे त्वं न सुतोऽसि देव भवार्णवादुद्धर मा हरेऽज।

लोकानुसारी खलु वर्तसे चेत् सम्बन्धमेनं स्मर पुत्र मातुः ।।८।।

कालदैवक्रियेशात्म-द्रव्याङ्गास्वात्मवैकृताः । तत्संघातः प्रवाहोऽसौ त्वन्मायैतां निवारय ।।९।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

संन्यासी यत्कुले जातस्तरत्यपि तरिष्यति । कुलैकविंशतिः पित्रोर्दुर्गताप्यमृतं लभेत् ।।१०।।

जातोऽत्रायं हि संन्यासी भो मातस्तेऽथ किं वद । सम्पत्प्रजान्वितानां वः काश्यां मुक्तिर्भविष्यति ।।११।।

।। भगिन्युवाच ।।

गतिर्मे काग्रतः स्वामिन्भवसिन्धोर्बिभेम्यहम् । पापिष्ठां मोद्धर हरे सद्गुरुस्त्वं हि मे प्रभो ।।१२।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

पतिसेवनमेवैकं तारकं नापरं स्त्रियाः । पातिव्रत्यं भज ततो भवाब्धेः पारमेष्यसि ।।१३।।

दम्पत्योः प्राक्कृतं वैरं त्वया गौर्लत्तया हता । अतः पत्युर्यतित्वं ते कुष्ठं चाङ्गे भविष्यतः ।।१४।।

इति श्रुत्वातिखिन्नाभूत्तामाश्वास्याह सद्गुरुः । वार्धक्ये तूभयं तेऽस्तु नश्येन्मे दर्शनात्कुरुक् ।।१५।।

सुतोऽभवत्।।७।। इत्युक्त्वाऽम्बा श्रीगुरुं प्रति वदति **श्रीपादे**ति भो पुत्राहं तव पुत्र इति लोकानुसारी वर्तसे **चेन्मातुः संबन्धं स्मर** तत्किं नरकादुत्तारय पुंनामकनरकात्त्रायत इति पुत्र इति स्मरणात्।।८।। **कालः** क्षोभकः **क्रिया** कर्म निमित्तं तदेव फलाभिमुखमभिव्यक्तं **दैवं आत्मा** स्वभावस्तत्संस्कारः **ईशो** जीवस्तद्वान् **द्रव्यं** भूतसूक्ष्माणि **अङ्गं** शरीरं **असुः** प्राणः सूत्रं **आत्मा**ऽहंकारः **वैकृत** एकादशेन्द्रियाणि महाभूतानि चेति षोडशकः **तत्संघातो** लिङ्गदेहः **असौ प्रवाहः** देहाद्बीजरूपं कर्म ततोऽङ्कुररूपो देहस्ततः पुनरेवमिति प्रवाहः असौ इयं **त्वन्माया** मिथ्याभूताऽपि भावरूपा दुरत्यया अत एव त्वमेवै**तां निवारय**।।९।। **तरति** विद्यमाना **तरिष्यति** भव्या **कुलैकविंशतिः पित्रो**र्मातापित्रोः **दुर्गतां** नरकगतामपि **अमृतं** आपेक्षिकं।।१०।। **अत्र** भवत्कुले**ऽयम**हं परमात्मा **भो मातः किं ते**ऽवशिष्टं कृत्यं **वद** न किमप्यवशिष्टं तदेव दर्शयति ऐहिक**संपत्प्रजा**युक्तानां युष्माकं **काश्यां मुक्तिर्भविष्यति**।।११।। **अग्रतः** इतःपरं **मे** मम **का गतिः** भविष्यति तां वद यतो**ऽहं भवसिन्धोर्बिभेमि हि** यतस्**त्वं मे सद्गुरुः** अतः भो हरे **पापिष्ठां** मामु**द्धर**।।१२।। यतः **स्त्रियः पतिसेवनं** पातिव्रत्यमेव केवलं **तारकं** नापरं तारकं **ततस्**तस्मात् **भज** सेवय।।१३।। **प्राक्**पूर्वजन्मनि स्वगृहसमीस्थयोर्**दम्पत्योर्वैरं** परस्परं विद्वेषः **लत्तया** लत्ताप्रहारेण **हता** ताडिता **अतः** पापात् **यतित्वं** संन्यासित्वं दम्पतीवैरसंपादकरूपपापकर्मविपाकजं फलमिदं **ते** तवाङ्गे अङ्गान्यस्यास्तीत्यङ्गं अर्शआदित्वादच् तस्मि**न्नङ्गे** शरीरे श्वेत**कुष्ठं च भविष्यतः** कर्मफलस्यावश्यंभावित्वात् '*अवश्यमनुभोक्त..*'मिति स्मृतेः।।१४।। **इति श्रुत्वा** सा भयेना**तिखिन्नाऽभूत् तां** रत्नाख्यां भगिनीं मा भीरित्या**श्वास्य सद्गुरुस्**तमाह

इत्युक्त्वा तदनुज्ञातः सशिष्यो गौतमीं ययौ । याऽऽनीता गौतमेनेशाद् गोहत्याव्यपनुत्तये ।।१६।।

तामेत्याप्लुत्य भगवान्मुनिं माधवसंज्ञकम् । भक्तं गतानुगतान्मुक्त्वा स्तुतस्तेनाग्रतोऽगमत् ।।१७।।

सशिष्योऽग्रे व्रजन्दृष्ट्वा गङ्गायां मर्तुमुत्सुकम् । विप्रं गलशिलं कञ्चिदादिष्टैस्तं कृपानिधिः ।।१८।।

छात्रैरुद्धारितं दीनं शूलरोगाकुलं प्रभुः। दयनीयतमं प्राह विधत्से साहसं कुतः ।।१९।।

।। विप्र उवाच ।।

किं करिष्यसि मां पृष्ट्वा मरिष्ये शूलकातरः । कथं जीवामि रोगोऽन्न-वैर्ययं दुःसहः सदा ।।२०।।

प्राणोऽन्नं जीवनं चान्नं लयोऽन्नं जीवमन्नमुत् । उद्भवोऽन्नं कथं स्थेयमृतेऽन्नात्तन्मृतिर्वरम् ।।२१।।

भवान्तरेऽत्र वा नान्नं दत्तं पुण्यं न वा कृतम् । गोविप्रग्रासोऽपहृतो निन्दिताः पितरौ गुरुः ।।२२।।

नेशोऽर्चितो वातिथयो हापिता धिक्कृता द्विजाः। मिष्टान्नं पितरौ त्यक्त्वा साकं भुक्तं स्त्रिया मया।।२३।।

इति भात्यन्यथा नेदृक्कष्टं भो मय्युपस्थितम् । कृतो नान्योपकारो भूभारो मोघभवोऽभवम्।।२४।।

प्राह हे रत्ने(रत्नवति) **ते वार्धक्ये तूभयं** पत्युर्यतित्वं कुष्ठं चा**स्तु** भवतु तयोर्मध्ये एकं पत्युर्यतित्वं स्थास्यत्येव अपरं **कुरुक्** कुष्ठं **मम दर्शना**देव **नश्येत्**।।१५।। **इत्युक्त्वा** दक्षिणदिशं गन्तुकामः **सशिष्यो** भगवान् तैः भगिनाबान्धवमातापित्रादिभि**रनुज्ञातो गौतमीं** प्र**ययौ** का सा गौतमी **या गौतमेन** तपसा तोषिता**दीशाद्गोहत्याव्यपनुत्तये आनीता** स्वर्गात्सह्याद्रावुत्तारिता ऋषिभिः स्वार्थसिद्धये मायाविनिर्मिताया गोर्गौतमस्य करस्पर्शमात्रेण प्राणोत्क्रमणाद्गोहत्या जातेति कौर्मे सविस्तरमुक्तं।।१६।। **तां** गोदावरीमागत्य स्नात्वा **गतागतात्** द्वंद्वैक्यं जन्ममरणरूपात्संसारा**न्मुक्त्वा** मोचयित्वेत्यर्थः **तेन** माधवेन **स्तुतो** भगवान्।।१७।। **गङ्गायां** गोदावर्यां **मर्तुमु**द्युक्तं निमज्जनार्थं **गले** बद्धा **शिला** यस्य।।१८।। **आदिष्टै**राज्ञप्तै**श्छात्रैः** शिष्यै**रुद्धारितं दीनं दयनीयतमं शूलरोग**व्याप्तं विप्रं **प्राह** भो विप्र **कुतः साहसं विधत्से** करोषि हा कष्टं।।१९।। **मां पृष्ट्वा** दुःखनाशं **करिष्यसि किं अन्नवैरी अयं रोगः** सर्वदा **दुः**खेनापि सोढुमशक्यः तस्मात्**कथं** केन प्रकारेण **जीवामि** कथंचिदमपि जीवनप्रकारो न लक्ष्यतेऽतः शूलरोगत्रस्तो मरिष्ये।। '*बलासः प्रच्युतस्थाना-त्पित्तेन सह मूर्छितः।। वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने।। कुक्षौ जठरपार्श्वेषु नाभौ बस्तौ स्तनान्तरे।। पृष्ठमूलप्रदेशेषु सर्वेष्वेतेषु वा पुनः।। भुक्तमात्रेऽथवा वान्ते जीर्णान्ने च प्रशाम्यते।। षाष्टिकव्रीहिशालीनामोदनेन विवर्धते।। तत्परिणामजं शूलं दुर्विज्ञेयं महागदम्* ' इति वैद्यके उक्तत्वात्**सदा दुःसहः** इत्यनेन क्वचिच्छमाभासः।।२०।। यतो**ऽन्नं प्राणः** '*शुष्यते वै प्राण ऋतेऽन्नात्* ' इति हि श्रुतेः। **अन्नं जीवनं अन्नं लयः** निद्रारूपः **अन्नं जीवन**मौषधं। **अन्नं** रेतोरूपेण परिणतं **उद्भवः अन्नं** विना **कथं** स्थातुं योग्यं **तत्**तस्मान्**मृतिर्वरं** मनाक्प्रिया।।२१।। जन्मान्तरे**ऽत्र** जन्मनि **वा** क्षुधितेभ्यो**ऽन्नं न दत्तं**।।२२।। ईश्वरो **न** पूजितः **हापिता** बलान्निःसारिताः **स्त्रिया साकं** भार्यया सह।।२३।। **ईदृक्** शूलव्यथारूपं **मयि नोपस्थितं** न प्राप्तं **अन्योपकारः** परोपकारः **मोघो** निरर्थकः **भवो** जन्म यस्य।।२४।। **मा भी**स्ते भयं माऽस्तु **अहं भिषग्**वैद्यस्**तेऽन्नपथ्यं दिव्यमौषधम**नुग्रहरूपं **दास्ये**

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

मा भीर्दास्येऽन्नपथ्यं ते दिव्यौषधमहं भिषक् । इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्द्विज एकः समाययौ ।।२५।।

सायंदेवाभिधः काञ्ची-वासी कौंडिण्यगोत्रजः। सुदीनो यवनाधीनस्तमाह प्रणतं गुरुः ।।२६।।

मर्तुमिच्छति रुग्णोऽयं व्यथितो दिव्यमौषधम्। दद्म्यस्मै त्वमपि ब्रह्मन्पथ्यं स्वाद्वन्नमर्पय ।।२७।।

।। सायंदेव उवाच ।।

मासा पक्षेण वाल्पान्नं भुङ्क्ते आत्यन्तिकीं व्यथाम् । स तदाप्नोत्यन्नदानाद् भवेद्धत्येति भाति मे।।२८।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

भिषक्तमोऽस्मि नाशङ्क्यं सापूपं देहि माषयुक् । परमान्नं च पथ्यं मा भीर्जाने रुक्प्रतिक्रियाम् ।।२९।।

।। सायंदेव उवाच ।।

तथा कुर्यामपि भवान्सशिष्योऽङ्गीकरोतु मे । भिक्षां गृहेऽस्मि ते शिष्यः प्रपन्नं शाधि मां गुरो।।३०।।

इत्युक्तिं सौष्ठवौदार्य-रम्यां श्रुत्वा तथेति तम् । ऊचे ततः सशिष्यं तं द्विजो निन्ये निजालयम् ।।३१।।

चित्रितेऽलङ्कृते गेहे रंगवल्ल्यादि रञ्जिते । स्वासनेषूपवेश्यैतानुपतस्थेऽङ्गनान्वितः ।।३२।।

सूपचारैः प्रपूज्येशं रौद्रैर्मन्त्रैश्च पौरुषैः । नीराज्य श्रद्धया गीत-स्तोत्रादिभिरतोषयत् ।।३३।।

इत्युक्त्वेत्यादि सिद्धो वदति **तस्मिञ्**छ्रीगुरौ **विरते** तूष्णींभूते सति।।२५।। वृत्तिसंबंधेन **यवन**राजा**धीनः**।।२६।। **अस्मै** ब्राह्मणाय **दद्मि**।।२७।। यदा **मासा** मासेन **पक्षेण वाऽल्पान्नं भुङ्क्ते स** विप्रः **तदाऽऽत्यन्तिकीं** शूल**व्यथां** **प्राप्नोति** अतएव **अन्नदानात्** ब्रह्म**हत्या भवेदिति मे** मम **भाति**।।२८।। **भिषक्तम** ईश्वरत्वात् '*भिषक्तमं त्वा भिषजां श्रुणोमि* ' इति श्रुतेरुत्तमवैद्यः **मा भी**र्भयं माऽस्तु यतो **रुक्प्रतिक्रियां** रोगचिकित्सां **जाने**।।२९।। **शिष्यस**हितो **भवान्मे गृहे भिक्षामङ्गीकरोतु ते शिष्योऽस्मि** भवामि भो **गुरो प्रपन्नं मां शाधि** शिक्षय।।३०।। सुष्ठुभावेन उदारत्वेन च रमणीयां **श्रुत्वा तथेति तं ऊचे** श्रीगुरुरिति शेषः **द्विजः** सायंदेवः।।३१।। शोभने**ष्वासनेषु तानुपवेश्य** पत्न्या**न्वितः उपतस्थे** देवताबुद्ध्या पूजितवान् उपाद्देवता देवतापूजासंगतीकरणमैत्रीकरणेषु भौवादिक इति स्मरणात् अयं परमात्मेति ज्ञानाभावेऽपि वेदवित्त्वसंन्यासित्वलक्षणेनायं देव इति सायंदेवस्य बुद्धिरुत्पन्ना तथा च स्मृतिः '*ऊर्ध्वमूल...वेदवित्* ' इति ईदृशे वेदविदि सर्वा देवता वसंति श्रुतिश्च '*यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति तस्माद्ब्राह्मणेभ्यो वेदविद्भ्यो दिवे दिवे नमस्कुर्यान्नाश्लीलं कीर्तयेदेता एव देवताः प्रीणाति* ' इति। एषणात्रयोत्थानपूर्वकं दण्डादिग्रहणेन भैक्ष्याचरणं संन्यासित्वं तस्य संन्यासिनः साक्षाद्विष्णुरूपत्वमुक्तं स यद्गृहे भुङ्क्ते तत्र साक्षाद्विष्णुर्भुङ्क्तेऽतोऽस्य देवताबुद्ध्या पूजनं संवादिभ्रमः विभोर्ब्रह्मरूपत्वात्।।३२।। **सूपचारैः** शोभनोपचारैः **रौद्रैः** पुरुषसूक्तेन शतरुद्रीयेन वा **पौरुषैः** पुरुषदे-

गुरुपादोदकं तीर्थं भक्त्या संपूज्य मुक्तिदम् । पीत्वैनोहारि सस्त्रीकः शिष्यान्सर्वानपूजयत् ।।३४।।

अन्नं चतुर्विधं स्वादु सुरसं गव्यसंयुतम् । प्रादात्प्रकामं सर्वेभ्यो मधुरोक्त्यादरेण सः ।।३५।।

भुक्त्वान्नं गुरुपङ्क्त्यां स भेजे रुग्णोऽप्यनामयम्। नेदं चित्रं हि यद्भक्ता घ्नन्त्युद्भवमहारुजम् ।।३६।।

स ततोऽसारसंसार-निर्विण्णो गुरुदर्शनात् । भूत्वा क्षणादुदासीनः सर्वतोऽभजदच्युतम् ।।३७।।

द्विजोऽपि भुक्तानाचान्तान्सूपविष्टान्सुगन्धिभिः। पत्सैवनैश्चास्यवासैस्तोषयित्वाऽब्रवीद्गुरुम् ।।३८।।

अङ्घ्र्यब्जवन्दनात्तेऽद्य सफलं जन्मकर्म मे। पितरोनुग्रहान्मुक्तास्तत्कृतार्थोऽस्मि निर्मलः ।।३९।।

गङ्गा पापं विधुस्तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत् । वायुस्तूलमिवैतत्ते दर्शनं हरति त्रयम् ।।४०।।

साक्षी सर्वान्तरस्थस्त्वं परात्माऽधोक्षजोऽमलः । नृरूपेणावतीर्णोऽसि साधूंस्त्रातुमजोऽव्ययः ।।४१।।

देहि मे तेऽमलं दास्यं श्रद्धोपेतं कुलाय च । याचेऽदो भगवन्नेको ममाधिस्तन्निशामय ।।४२।।

यन्निघ्नोऽस्मि स वै हिंस्रो यवनो हन्ति भूसुरम् । प्रत्यब्दमाह्वयत्यद्य तदर्थमिति शुश्रुम ।।४३।।

वताकैः रुद्रदेवताकैः च।।३३।। **एनोहारी** पापहरं *'शोषणं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसः। गुरोः पादोदकं तीर्थम्'* इत्यादिस्मरणात्।।३४।।**स्वादु** मधुरप्रायम् यदुक्तं वैद्यके '*भोजनं मधुरप्रायम्* ' इति तस्य सात्त्विकत्वात् '*रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रिया* ' इति स्मृतेः षड्**रसा**न्वितं **गव्यै**र्दुग्धाज्यदधिनवनीतैः समन्वितं **चतुर्विधं** भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यरूप**मन्नं** तत्र यद्दन्तैरवखण्ड्यावखण्ड्य भक्ष्यतेऽपूपादि तद्*भक्ष्यं* १ यत्केवलं जिह्वयालोड्य निगीर्यते पायसादि तद्*भोज्यं* २ जिह्वायां निक्षिप्य रसास्वादेन क्रमशः निगीर्यते द्रवीभूतं गुडादि *तल्लेह्यं* ३ यद्दंष्ट्राभिर्निष्पीड्य रसांशं निगीर्यावशिष्टांशं त्यज्यते इक्षुदण्डादि *तच्चोष्यं* ४ एवं चतुर्विधं **प्रकामं** यथेष्टं प्रार्थनारूप**मधुर**भाषणेना**दरेण** च।।३५।। **गुरुपङ्क्त्यां** एकस्यापि गुरोः शिष्यपङ्क्तिसंबंधाच्छत्रिन्यायेन गुरुपङ्क्तिरुक्ताऽथवा गुरुस्थानापन्नाः संन्यासिनस्तेषां पङ्क्तिः गुरुपङ्क्तिभोजनसूचनेन रुग्णद्विजस्य शिष्यत्वं लक्ष्यते स द्विजो**ऽनामयमा**रोग्यं **इदं चित्र**माश्चर्यं **न हि** यतो **यद्भक्ता** जन्ममरणरूपं **महारोगं घ्नन्ति**।।३६।। कदलीस्तम्भवन्निः**सारात्संसाराद्**विरक्तः **स** रोगमुक्तो ब्राह्मणो **गुरुदर्शनादे**व गृहादौ **क्षणादुदासीनो भूत्वाऽच्युत**मप्रच्युतचिदानन्दस्वरूपं गुरुम**भजत्**।।३७।। **द्विजोऽपि** सायंदेवोऽपि **आचान्तान्**कृताचमनान्**सु**खेनो**पविष्टान्सुगन्धिभिः** करोद्वर्तनैः गन्धस्येत्यादिनेत्वं **आस्यवासै**र्मुखवासैः संन्यासिनस्ताम्बूलनिषेधेऽपि *'एलां वाऽपि लवङ्गां वा भोजनान्ते तु भक्षयेत्* ' इति प्रकारान्तरस्य विद्यमानत्वादास्यवासशब्दोऽत्र शोभनः।।३८।। **अद्य ते** पादकमल**वन्दनान्मे जन्म कर्म** च **सफलं** यस्मात्**पितरो**ऽपि ते**ऽनुग्रहान्मुक्ता**स्तस्मान्**निर्मलो** ज्ञानप्रतिबन्धपापरहितः सन्**कृतार्थोऽस्मि**।।३९।। **विधुश्**चन्द्रः **दैन्यं** दारिद्र्यं **तूलं** कार्पासं **ते** तव **दर्शनं** पापतापदैन्य**त्रयं हरति** अत्र वायुतूलदृष्टान्तेन त्रितयस्य हरणमकिञ्चित्करं सूचितम्।।४०।। **साक्षी** द्रष्टा साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायामितीनिः अन्तर्यामित्वेन **सर्वान्तरस्थः** निरुपाधिकरूपेण **परमात्माऽमलो** रागादिमलनिवर्तकः।।४१।। **अमलं** अव्यभिचारी **मे** मत्**कुलाय च देही**त्य**दो याचे आधि**र्मानसी व्यथा **निशामया**वधारय।।४२।। **यन्निघ्नो** यदधीनः **हिंस्रो** घातुकः नमिकम्पीत्यदिना रप्रत्ययः **भूसुरं** ब्राह्मणं **तदर्थं** मारणार्थं **शुश्रुम** श्रुतवन्तो वयं सपरिवाराः।।४३।। **मा भी**र्भयं

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

मा भीः क्रूरमपीदानीं यवनं याह्यसंशयम् । मुदैष्यस्यर्चितस्तेन तावत्तिष्ठामि मा शुचः ।।४४।।

इत्याकर्ण्यापशङ्कं स ययौ यवनमञ्जसा । शस्त्रैर्विप्रश्छिनत्तीति भ्रान्तोऽरं यवनस्तदा ।।४५।।

तं तुष्ट्वा वस्त्रभूषार्थैः प्राह गच्छ सुखं द्विज । सायंदेवोऽपि वीताधिर्हृष्टः श्रीगुरुमाययौ ।।४६।।

सर्पोऽप्यद्याद्विराजोऽर्भं हरेर्वेभो गुरुप्रियम् । न क्षमोऽप्यन्तको द्रष्टुं यवनः किमुताल्पकः ।।४७।।

दासोऽसीष्टं लभेत्ते मे द्व्यष्टाब्दैर्दर्शनं भवेत् । द्विजेत्युक्त्वा वैद्यनाथं गत्वान्तर्दध ईश्वरः ।।४८।।

ईदृश्योऽलौकिका लीलाः कृता भक्तिविधित्सया। भजेयुर्मां कथमपि लोका इत्याशयोऽस्य तु ।।४९।।

लोके प्रत्युपकारित्वं समीक्ष्य भगवान्विभुः। लौकिकानन्दजनकां चमत्कृतिमिहाकरोत् ।।५०।।

हेतुनानेन तल्लोका भजन्ति भगवत्पदम्। भजनादेव निर्धूत-मला यान्ति मुमुक्षुताम् ।।५१।।

ततोऽभ्यासाच्च वैराग्यात्तं ध्यायन्त उपासते । महाप्रसादोऽनेनैव लभन्ते सद्गुरोर्नताः ।।५२।।

ऐक्यज्ञानं तदा लब्ध्वा महावाक्येन चात्मनोः। शान्तिं विनिहिताविद्यास्तत्संस्थां यान्ति ते ध्रुवाम् ।।५३।।

माऽस्तु **क्रूरं** निर्दयं **तेन** यवनेना**र्चितः** सत्कृतः **मुदा** आनन्देन **मा शुचः** शोकं मा कार्षीः।।४४।। **इति** गुरुवाक्य**माकर्ण्य** श्रुत्वा **तदा** सायंदेवागमनकाले **शस्त्रैर्विप्रो** मां **छिनत्तीति अर**मत्यर्थं **भ्रान्तो यवनस्तं** सायंदेवं।।४५।। हे **द्विज** सायंदेव **सुखं** यथा तथा **गच्छ** स्वगृहं प्रति **वीताधि**र्विगतमरणभयः।।४६।। **विराजो** गरुड**स्यार्भं** बालं **सर्पोऽद्यादपि** भक्षयेत् किं **हरेः** सिंहस्य **वा**ऽर्भं **इभो** गजः **गुरुभक्तं द्रष्टुमन्तकोऽपि न क्षमः किमुताल्पको यवनः**।।४७।। श्रीगुरुरागतं सायंदेवमनुगन्तुमुत्सुकं च ज्ञात्वा प्राह त्वं मम **दासोऽसि इष्टम**भीष्टं **ते लभेत्** अधुना मा याहि **द्व्यष्टाब्दैः** षोडषवर्षैः**र्मे दर्शनं भवेत् वैद्यनाथं** पर्यलीस्थं ज्योतिर्लिङ्गं।।४८।। **ईदृश्यो** भक्तानुग्रहलक्षणाः **अलौकिका** दिव्याः लीलाकरणे हेतुः **लोका मां कथमपि** स्नेहेन वा लोभेन वा **भजेयुरिति तु अस्य** श्रीगुरो**राशयः**।।४९।। भजनं विना मोक्षाधिकाराभावाल्लोकानां भजनारुचिदर्शनाच्च दयालु**र्भगवान्लोके प्रत्युपकारित्वं समीक्ष्य** तद्द्वारेणैव भजने प्रवर्तयितुं **लौकिकानन्दजनकं चम**त्कारं पूर्वोक्तव**दिह**लोके**ऽकरोत्**।।५०।। **अनेन हेतुना लोका भगवत्पदं** सगुणं रूपं **भजन्ति** अर्चनवन्दनादिना **मुमुक्षुतां** मोक्षाधिकारित्वम्।।५१।। **तं** भगवंतं **ध्यायन्त**श्चिन्तयन्त **उपासते** उपासना नाम नैरन्तर्येण तात्पर्यपुरःसरव्यवहारः अहं गच्छामि ममायन्देहो ममेदं गृहमिति निरन्तरमादरेण व्यवहारे जाते तदेवाध्यासेन दार्ढ्यं यथा भवति तथैवाहं ब्रह्मास्मीत्युपासनेन देहात्मज्ञानबाधकं देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं सुलभमेतेनोपासनेन **नता** लीना भक्ताः।।५२।। **सद्गुरोर्महाप्रसाद**मविद्यानिवर्तकं ज्ञानमिति यावत् '*यस्य देवे परा भक्तिः*' इति श्रुतेः **महावाक्येन** तत्त्वमसीत्यनेन लक्षणया लक्षितेन प्रतीचः परस्य चै**क्यज्ञानं** अखण्डैकरसत्वेन **लब्ध्वा** निदिध्यासनेनात्मानमभेदेनापरोक्षीकृत्येति यावत् **विशेषेण** नितरां **हताऽविद्या** सकार्या यैस्**ते ध्रुवां** पुनरावृत्तिरहितां **शांतिं** निर्वाणलक्षणां **यान्ति**।।५३।।

प्रसन्नात्मानः प्रशान्ता निर्बन्धा द्वैतवर्जिताः। स्वात्मारामाश्चरन्त्यत्र जडोन्मत्तपिशाचवत् ।।५४।।
स्पर्शेक्षाकीर्तनादीनां सद्गुरोर्महिमा त्वियान् । स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि धत्ते यत्र मनोऽचलम् ।।५५।।
तत्सारूप्यं स पेशस्कृद्ध्यानात्कीट इवैत्यरम् । इत्याद्या मार्गणोपाया हरेः स्युः सुलभा नृणाम्।।५६।।
मृग्योऽसौ पुरुषेणैव बुद्ध्यादिगुणहेतुभिः । नानुमानैरतो युक्त आत्मैवात्मगुरुः किल।।५७।।

।। नामधारक उवाच ।।

भूतेशोऽन्तर्दधे कस्मात्तेजस्वी भक्तवत्सलः । शिष्यास्तस्थुस्तदा कुत्र तच्छ्रोतुं सादरोऽस्म्यहम् ।।५८।।

।। सिद्ध उवाच ।।

सर्वे शिष्या भविष्याम इति मत्वात्र यान्त्यतः । मत्वा स्थेयं रह इति छात्रान्सद्गुरुरब्रवीत् ।।५९।।

निर्वाणलक्षणशांत्या **द्वैत**स्फूर्ति**वर्जिता** अत एव **निर्**गता **बन्धा** घृणालज्जाभयशङ्काजुगुप्साकुलशीलजातिरूपाः पाशा येषां ते **प्रसन्न आत्मा**ऽन्तःकरणं येषां ते हृद्ग्रन्थिभेदपूर्वकं संशयछेदनं प्रसन्नत्वे कारणं अतएव **प्रशांता** रागाद्यभावेनोपशांताः **स्वात्मारामाः** '*न केचन जगद्भावास्तत्त्वज्ञं रञ्जयन्त्यमी। नागरं नागरीकान्तं कुग्रामललना इव* ' इति वासिष्ठोक्तेर्ज्ञानिनः स्वातिरिक्तान्यरमणीयाभावात्ते **स्वात्मारामा** एव सप्तमभूमिकारूढाः श्रुतिश्च '*आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठ* ' इति। योगभूमयो हि '*योगभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता। विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा। सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यादसंसक्तिस्तु पञ्चमी। पदार्थाभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यका स्मृता। आद्यत्रयं जागरितं साधकस्य प्रकीर्तितम्। तुर्या स्वप्नः साधकोऽत्र प्राज्ञैर्ब्रह्मविदुच्यते। निद्रा तु पञ्चमी ब्रह्मविद्वरोऽत्र उच्यते। षष्ठी तु गाढनिद्रा स्याद्वरीयानत्र स स्मृतः। ज्ञेयं परत उत्थानमस्य भावितचेतसः। अन्त्या तुरीयात्र ब्रह्मविद्वरिष्ठो महामतिः। स्वतो वा परतो वाऽस्य व्युत्थानं नैव कर्हिचित्* ' इति '*अपि शीतरुचावर्के उष्णे पीयूषमण्डले। अप्यधःप्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विस्मयी* ' इति वासिष्ठोक्तिर्विस्मयाभावात्ते **जडोन्मत्तपिशाचवत् द्वैतवर्जिता** इत्यनेन यथापूर्वं व्यवहाराभावादवगतब्रह्मत्वं स्फुटमुक्तम् तथा च पूर्वाचार्याः '*नावगतब्रह्मात्मभावस्य यथापूर्वं संसारित्वं यस्य तु यथापूर्वं संसारित्वं नासावगतब्रह्मभाव* ' इति। अतएवैकत्वं '*अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्। न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम* ' इत्याचार्योक्तेः। एवं सति तेषां लौकिकवैदिकक्रियालोपेन प्रत्यवाय इति चेन्न '*यत्पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्मैवाहमस्मीति कृतकृत्यो भवति* ' इति परमहंसोपनिषदुक्तेः कृतकृत्यत्वश्रवणात् '*सन्धिं समाधावात्मन्याचरेत्* ' इति तत्रैवोक्तत्वात्परमात्माऽत्मनोरेकत्वज्ञानेन तयोर्भेद एव भग्नः सा सन्ध्येति श्रुतेरभिप्रायः स्मृतिश्च '*यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यत* ' इति।।५४।। **इयाने**तावान् **सद्गुरोः स्पर्श**नादीनां **महिमा** यत्र कृष्णाद्यवतारे **स्नेहाद्**बल्लव्य इव **द्वेषाच्**चैद्यादिरिव **भयात्**कंसादिरिव यः कोऽपि न तु जात्यादिविशिष्ट इति नियमः निश्चलं **मनो धत्ते**ऽभ्यासवैराग्याभ्यां।।५५।। **स पेशस्कृद्ध्यानात्कीट इव तत्सारूप्यं** ध्येयसारूप्य**मेति अरं** शीघ्रं **इत्याद्या हरेर्मार्गणोपायाः सुलभाः** सन्ति।।५६।। **पुरुषेणैव** नरेणैव **बुद्ध्यादिगुणहेतुभिर्मृग्यो नानुमानैः** देहव्यतिरिक्तत्वंपदार्थशुद्धिमात्रस्यैवानुमानेनैव विवक्षितत्वात् अतो हेतोः **आत्मैव आत्म**नो **गुरुर्युक्तः किले**ति संभावनायां।।५७।। **तेजस्वि**नो **भक्तवत्सलस्यान्तर्धानं** कथमिति प्रश्नः।।५८।। आङ् लुप्तः आ**यान्ति** केवलं

लब्ध्वा द्विजत्वं संस्कारैर्ब्रह्मचारी पठन्त्रयीम् । द्वादशाब्दं कृती सूत्र-मेखलाजिनदण्डधृक् ।।६०।।
सायं प्रातः स कर्माग्नि-कार्यं भिक्षां चरन्गुरुम् । भजन्भक्त्याऽस्वपन्नह्नि याचितां गुरवेऽर्पयन्।।६१।।
तद्दत्तभुग्लब्धविद्यः स्नायाद्दत्वा वरं व्रती । अनाश्रमी न तिष्ठेत भवेत्स प्रत्यवाय्यतः ।।६२।।
स्नातकस्तूद्वहेद् भार्यां गृह्यं परिचरेद् गृही । पोष्यभृद्यज्ञकृद्वेद-शास्त्रधर्मपरो भवेत् ।।६३।।
पुत्रार्पितश्रीर्भार्यायुगग्राम्यविषयो वने । यतात्माऽकृष्टपच्याशी यावच्छुद्ध्यन्तरं वसेत् ।।६४।।
स्वारोपिताग्निः स वान-प्रस्थो भार्याज्ञयाऽममः । प्रव्रजेद्यतिधर्मज्ञो विरक्तस्तु कुतोऽपि हि ।।६५।।
त्रिकालस्नायी संन्यासी न्यस्तसूत्रशिखैषणः । जपभिक्षाटनध्यान-शौचार्चनरतो वशी ।।६६।।
स्त्रीकथालौल्ययानाहः-स्वापखट्वाऽस्पृगात्मदृक् । सद्वेणुमृद्दार्वलाबु-मयभाजनदण्डधृक् ।।६७।।
सकृदह्न्याप्तसद्भिक्षा-भुक्शान्तस्तत्त्वचिन्तकः । तीर्थान्यटन्नृते वर्षास्त्र्यहमेकस्थले वसन् ।।६८।।
स्थिरीकृतमनाः क्वापि ततस्तिष्ठन्सुखी भवेत् । अशक्तस्तु महाक्षेत्रे हरिं ध्यायन्वसेत्सदा ।।६९।।

स्वभजनेनैवोद्धर्तुं शक्तोऽपि भगवान्परंपरागोपनाय शिष्यपरीक्षणाय चान्तर्हित इवाभूदित्युत्तरं ददन् **सिद्ध उवाच रह** एकान्ते **छात्रान्** शिष्यान्।।५९।। कर्मकाण्डे वक्ष्यमाणैः **संस्कारैः द्विजा**तित्**वं** ब्रह्म वेदस्तच्चरतीति **ब्रह्मचारी त्रयीं** श्रुतिं वेदत्रयं वा '*स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी* 'त्यभिधानात् **कृती** कुशलः **सूत्र**मुपवीतम्।।६०।। **कर्म** संध्यावंदनादि **अग्निकार्यं** समिदाधानं च **चरन्ना**चरन् **भिक्षां चरन्**भक्षयन्**नह्नि** दिवसे**ऽस्वपन्** वर्णक्रमैरादिमध्यान्तभवच्छब्दपूर्व**याचितां** भिक्षां।।६१।। गुरु**दत्तभुक् वरं** गुरुदक्षिणां **स्नायात्**समावर्तनं कुर्यात्।।६२।। विद्यास्नातो व्रतस्नात उभयस्नातो वा **स्नातकः तु**शब्दः गृहस्थाश्रमस्यैच्छिकत्वद्योतकः '*शक्तश्चेन्नैष्ठिको भूयात्* ' इति स्मरणात् **गृही** गृहस्थः' *पाणिग्रहणादिगृह्यं परिचरेत्* ' इति सूत्रोक्तेः **गृह्यं परिचरेत्** उपलक्षणमिदं श्रौताधानस्यापि यदुक्तं मुण्डके '*यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमनाग्रयणमचातुर्मास्यमतिथिवर्जितं च अहुतम-वैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांतस्य लोकान् हिनस्ति* ' इति एतदभिप्रायेण **पोष्यभृद्यज्ञकृदि**त्युक्तं। एतत्कर्मकाण्डे स्फुटीभविष्यति।।६३।। **पुत्रा**या अर्पिता **श्री**र्येन स **भार्यायुक्** केवलो वा त्यक्त**ग्राम्यविषयः** कृष्युद्भवेतरभक्षकोऽन्तःकरणशुद्धिपर्यंतं वने वसेत्।।६४।। स्व**भार्याज्ञया** तां संतोष्य **मम**तारहितो वनस्थः **स्वा**त्मन्या**रोपिता अग्न**यो येनेदृशः सन् **प्रव्रजेत्**संन्यसेत् वैराग्याभावेऽयं क्रमः **यति**र्विनिर्जितेन्द्रियग्रामः तद्**धर्मज्ञो विरक्तस्तु कुतोऽपि** '*ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्* ' इति श्रुतेः आचार्यादे-स्तादृक्प्रसिद्धिरिति द्योतयितुं **ही**त्युक्तं।।६५।। **त्रिकालस्नायी**ति कुटीचकबहूदकविषयः यदुक्तं '*स्नानं त्रिषवणं प्रोक्तं कुटीचकबहूदकयोः। हंसे तु सकृदेव स्यात्परहंसे न विद्यत*'इति। विविदिषासंन्यासो विद्वत्संन्यास इति संन्यासो द्वेधा तत्र विदिषः कृतकृत्यत्वात्त्यक्तै**षणस्य** विविदिषोर्धर्मानाह प्रणव**जप** ईश्वरा**र्चन वशी** जितेन्द्रियः।।६६।। **लौल्य**मिन्द्रियचापल्यं **यानं** शिबिकाश्वादि **अहःस्वापो** दिवाशयनं आत्माविचारः '*विद्या दिनं प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते। विद्याभ्यासे प्रमादो यो दिवास्वापः स उच्यत* ' इत्यभियुक्तोक्तेः। स्त्रीकथादि**स्पर्श**रहितः चतुर्णां मध्ये एकतमपात्रधृक् **दण्डधृक्** च।।६७।। एकवारं दिवसे आप्तां माधूकरोपपन्नतात्कालिकायाचितान्यतम**सद्भिक्षां** भुनक्तीति तथा **वर्षा**कालं विना

तस्मात्कृध्वं स्वाश्रमार्हं कृत्यं पातोऽन्यथा भवेत् । इत्युक्त्वान्यान्प्रेरयित्वा गृहेभ्योऽजोऽब्रवीद्यतीन् ।।७०।।
काशी प्रयागो गया च श्रीरङ्गः पुरुषोत्तमः । श्रीशैलो नैमिषारण्यं कुरुक्षेत्रं बदर्यपि ।।७१।।
गोकर्णः शङ्खकर्णश्च काञ्च्ययोध्या च गोकुलम् । मथुरा द्वार्वती मायावंतिका करवीरपूः ।।७२।।
गन्धर्वपूर्हरिहर-क्षेत्रं सद्देवकन्यका । गुहाश्रमः सेतुबन्ध इत्यादिक्षेत्रविस्तरः ।।७३।।
गङ्गासरस्वत्यर्कोत्था विपाट्पौष्णी मरुद्वृधा । वितस्तासिक्न्यनेकास्या चन्द्रभागा पयस्विनी ।।७४।।
शरावती मधुमती रेवा गोदामरोद्भवा । सरयू कौशिकी पूर्णा भीमा कृष्णा मलापहा ।।७५।।
कावेरी प्रवरा तुङ्गा क्षिप्रा तापी च वेदिका । चर्मण्वती गण्डकीति पूर्वा नद्यो नदा अपि ।।७६।।
तत्संगमा अप्यघघ्नास्तीर्थान्यन्यान्यनेकशः । तीर्थानि गुरुसंचाराच्छश्वद्द्वादशसिन्धुषु ।।७७।।
प्रचरन्ति सदा तास्तु स्वर्णदीस्नानपुण्यदाः । कृध्वं स्नानादि विधिवत्सर्वत्रात्र सरःस्वपि ।।७८।।
ग्रीष्मे रजस्वला नद्यो यद्दिनेऽम्बु नवं तदा । दशाहं नर्ते तीरस्थैः स्नानं मुख्यासु तु त्र्यहम् ।।७९।।

तीर्थानि पर्य**टन्** **त्रिदिनमेकस्थले वसे**त्।।६८।। **स्थिरीकृतमनाः** लक्षणया निर्बीजयोगः सन्यत्र **क्वापि तिष्ठन् सुखी** बुद्धिग्राह्यातीन्द्रियसुखमयो भवेत् **महाक्षेत्रे** काश्यादौ।।६९।। यस्मादेवं **तस्मात्पातः** प्रत्यवायेनाधःपतनं कामोकार्षीदिति तृतीयाध्यायोक्तमनुसंधेयं अतउक्तं पात इति अतएव स्मर्यते '*अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्। प्रसज्जंश्चेन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति* ' इति तत्र संन्यासाश्रमभ्रंशे प्रयत्नादामुष्मिकी शुद्धिः कथंचिदामुष्मिकशुद्धिसद्भावेऽपि प्रायश्चित्तादर्शनादैहिकशुद्ध्यभावाच्छिष्टैरेव न व्यवहार्यः '*बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च* ' इति न्यायात् एवं नैष्ठिकस्यापि '*आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते पुनः। प्रायश्चित्तं न पश्यामो येन शुद्ध्येत्स आत्महा* ' इति स्मृतेः। यथाकथंचिदामुष्मिकी शुद्धिः '*न चाधिकारकमपि पतनानुमानात्तदयोगात्* ' इति न्यायात् अत्र चाश्रमाणामारोहणवदवरोहणाभावः रागतस्तावदवरोहणेच्छा चेद्रागो मिथ्याज्ञानमूलत्वान्निषिद्धः '*तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमातद्रूपाभावेभ्य* ' इति न्यायात् **यतीन्** यतनशीलान्।।७०।।७१।। **द्वार्वती** द्वारिका **माया** हरिद्वारं **अवन्तिको**ज्जयिनी **करवीरं** कोल्हापुरं।।७२।। **देवकन्यका** कन्याकुमारी **गुहाश्रमः** कार्तिकस्वामी **आदि**शब्दात्प्रभाससिद्धपुरादि।।७३।। **अर्कोत्था** यमुना।।७४।। **अमरोद्भवा**मरजा **तुङ्गा** तुङ्गभद्रा।।७५।। **इति पूर्वा** इत्याद्याः शोणभद्रादि**नदा अपि अन्यानि तीर्थानि** पुष्करमानसबिन्दुसरोवरादीनि।।७६।। यदा **गुरुसंचाराद्द्वादश**महानदीषु **तीर्थानि प्रचरन्ति तदा ताः** गङ्गास्नानाधिकफलदा सिंहस्थे गुरौ गोदा कन्यास्थे कृष्णा तुलास्थे मलापहेत्यादि।।७७।। **अत्र सर्वत्र** नदीषु **सरःसु** च **विधिवत्** विद्ध्यर्हं यथाविधीत्यर्थः तदर्हमिति वतिः **आदि**शब्देन श्राद्धदानब्राह्मणभोजनानि ग्राह्याणि महानदीषु महाक्षेत्रेषु च क्षौरं न सर्वत्र।।७८।। **यद्दिने** यस्मिन्नह्नि नूतनोदकपूरस्तद्दिने **नदी**नां **रजस्वला**त्वं **ग्रीष्म** इत्युपलक्षणमाषाढस्य तीरस्थान्विना नदीनां **मुख्यानां त्र्यहम्** इतरासां दशानामह्नां समाहारो **दशाहः** तद्धितार्थ इति समासः रात्राह्नाहा इति पुंस्त्वं कालाध्वन इति द्वितीया एवं रजस्वलात्वम्। **तदा** काले सर्वैकान्य-

द्युरात्रमपि कूपादौ चरित्वैवं ततोऽखिलाः । श्रीशैलं बहुधान्येऽब्दे यात यास्याम्यहं ह्यपि ।।८०।।
इत्युक्त्वा प्रेरयामास यात्राया अपि ते ययुः । तत्रैव सद्गुरुपद-पद्मालिरभवं त्वहम् ।।८१।।
(क्षेपकौ)**यद्वज्जुनाभ्यां विद्योगौ प्राहैष प्राग्यथा तथा। गुह्यौ मे प्राह ते शिष्य विनीत कथयामि ते।।८२।।**
इत्युक्त्वा प्रणतायोचे सिद्धः शिष्याय सत्तमः । याभ्यां परं पुमान्याति स्वानन्दो वैष्णवं पदम् ।।८३।।

।। इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे तीर्थयात्रोद्देशो नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

सप्ताहपारायणे द्वितीयः। अन्ते रसज्ञा वशा..स्तोत्रम् पठनीयम्।अन्यदिने आरम्भे गुरुस्तुतिः।

किंयत्तदः काल इति दाप्रत्ययः **स्नाना**दि **ने**ति न कार्यमित्यर्थः।।७९।। **कूपादौ** वापीकूपतडागादौ **द्युरात्रं** अहोरात्रं रात्राह्नाहा इति पुंस्त्वं कालाध्वन इति द्वितीया पूर्ववत् कैश्चिन्महानदीनां रजस्वलात्वं नेत्युक्तम्। **बहुधान्येऽब्दे** संवत्सरे **श्रीशैलं यात** गच्छत **अहमपि यास्यामि**।।८०।।८१।। क्षेपकौ स्फुटार्थौ।।८२।।८३।। यद्यपि '*उत्तमा सहजा पूजा मध्यमा योगधारणा। अधमा प्रतिमापूजा तीर्थयात्राऽधमाधमा।* ' इत्युक्तम् तथापि महापापवतां प्रायश्चित्तादिना पापक्षये सति ज्ञानमुत्पद्यते '*ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः। यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यन्तात्मानमात्मनि* ' इति स्मरणाद्योगयागानुष्ठानासमर्थानां मुमुक्षूणां ज्ञानप्रतिबंधकपापक्षयार्थं विवेकिदृष्ट्याऽधमत्वेनोक्ताया अपि तीर्थयात्रायाः कथनं समुचितं पुरुषसंस्कारत्वात्संस्कृतस्य हि विशुद्धसत्त्वस्यात्मज्ञानमञ्जसैवोत्पद्यते उदिते च ज्ञाने '*अभयं प्रतिष्ठां विन्दते* ', '*न बिभेति कुतश्चन* ', '*किमहं साधु नाकरवं* ' इत्येवमादिना कर्मनैष्किञ्चन्यं श्रुत्या दर्शितमतः पूर्वोपचितदुरितक्षयद्वारेण विद्योत्पत्त्यर्थानि कर्माणि। ननु तानि च यज्ञदानतपोरूपाणि '*यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन* ' इति श्रुतेः अत्र तु तीर्थयात्रा कथमुक्तेति चेत् तरन्त्यनेन तीर्यतेऽनेनेति वेति तीर्थं गङ्गागोदावर्याद्यृषिजुष्टजले रूढोऽयं तीर्थशब्दस्तत्स्नानादिना कर्मानुष्ठानवदुपात्तदुरितक्षयः '*आपमापामपः सर्वा अस्मादस्मादितोमुतेति आपोअद्यान्विदमाप* ' इत्यादिमन्त्रैः कर्मस्वपि तत्प्रार्थनीयत्वादिति दिक्। वासिष्ठेऽपि भौमयज्ञाङ्गीकारार्थं भरद्वाजाय श्रीरामस्य तीर्थयात्रोपवर्णिता। ।।इति श्रीगुरुचरिते टीकायां नवमोऽध्यायः।।

दशमोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

शिष्यांस्तु तीर्थयात्रायै प्रेरयित्वा स्वयं कुह। उवास भगवान्ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि सादरम् ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

संवत्सरं वैद्यनाथ-समीपमकरोद्विभुः । निवासमहमप्येतत्पादाब्जभ्रमरोऽभवम् ।।२।।

तत्रैत्यैको द्विजो मन्दो नमस्कृत्याब्रवीद्गुरुम् । प्रपद्ये भगवंस्त्वां मे मोक्षोपायमुपादिश ।।३।।

मया तु सिद्धये कष्टं भूर्यकारि तथापि मे । नाप्ता सिद्धिर्नोपलब्धः सन्मार्गप्रापको गुरुः ।।४।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

कथं गुरुं विना वत्स सिद्धये केन योजितः । कस्याज्ञया कृतं कष्टमित्याकर्ण्य द्विजोऽब्रवीत् ।।५।।

सिद्ध्यै मया गुरुः कश्चिच्छ्रितश्चण्डः स तु प्रभो । सेवार्थी पीडयामास ततस्त्यक्तः स वै मया ।।६।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

हन्तासाधु कृतं धिक्त्वां गच्छेतः सत्वरं यतः । गुरुद्रोह्यास्यावलोको न भद्राय कथंचन ।।७।।

प्रणिपातपरिप्रश्न-सेवाधर्मपराङ्मुखे । कुतो गुरुकृपालेशस्तद्वत्येव प्रसन्नता ।।८।।

श्रीगणेशाय नमः।।अथ दशमोऽध्यायः।। *दशमेऽप्यज्ञविप्राय धौम्यशिष्यकथां गुरुः। प्रोक्त्वास्मा अनुतप्ताय ददौ वरमितीर्यते।।१।।* आचार्याद्विदिता विद्या साधिष्ठं प्रापयतीति श्रुतिहार्दं वक्तुं उत्तरत्वेन **सिद्ध उवाच**।।१।। **एत**स्य श्रीगुरोः **पादा**वेवा**ब्जे** तयो**र्भ्रमर** इव सेवमानो**ऽभवं**।।२।। भो **भगवन् त्वां** प्रपन्नोऽस्मि **मोक्षोपायं** कथय।।३।। **सिद्धये** मोक्षसिद्धये तपआदिरूपं **कष्टं भूरि** प्रभूतं **नाप्ता** न प्राप्ता यतः शोभन**मार्गप्र**दर्शको **गुरुर्नोपलब्धः**।।४।। रे **वत्स गुरुं विना केनो**पदेष्ट्रा **कथं** केन प्रकारेण **सिद्धये योजितः** यत्कष्टं कृतमिति ब्रूषे तदपि **कस्याज्ञया कृतं इत्य**मुना प्रकारेण गुरुप्रश्न**माकर्ण्य द्विजोऽब्रवीत्**।।५।। **चण्डो**ऽत्यन्तकोपनः **स** गुरुः।।६।। **हन्ते**ति खेदे '*य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ। स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन* ' इति स्मृते**रसाध्व**शोभनं **कृतं** अत**स्त्वां धिक् इतो**ऽस्मत्सकाशाद्दूरं **गच्छ** हि **यतः गुरुद्रोहि**णो मुखस्या**वलोकनं** कदापि **भद्राय** भवति किं पुनर्भाषणादिना।।७।। ननु '*गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथं प्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनं* ' इत्युक्तेः कथं तादृशस्य त्यागेन दर्शनानर्होऽहं जातो यत उक्तं गच्छेत्यत आह प्रणिपातेति गुरोरपीत्यत्रापिशब्देन द्योतितो दोषत्रयदुष्टस्य परित्यागः कैमुतिकन्यायेनेतरनिषेधकः न गुरुत्यागविधायकः अन्यथा '*अपि वा मातरं गच्छेन्न तु गङ्गाप्रतिग्रहः। पुत्रमांसं वरं भोक्तुं न तु राजप्रतिग्रह* ' इत्यादिवचनानां मातृगमनपुत्रमांसभक्षणादिचोदकत्वं स्यात्ततोऽनर्थ एव तेन '*चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म* ' इति न्यायो हीयेतात-

।। द्विज उवाच ।।

कथं ज्ञेयः कथं सेव्यो गुरुस्तन्मे वदाखिलम् । अजानता गुरुद्रोहः कृतोऽतो मोद्धर प्रभो ।।९।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

गुरुर्निरुपमः साक्षाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । सोऽज्ञेयस्त्वादृशैरन्धैस्तद्वत्सेवापि सद्गुरोः ।।१०।।

एतदर्थं पुरा वृत्तं शृणु धौम्याभिधो मुनिः । द्वापरेऽभूत् त्रयश्छात्रा आसन्तस्याङ्ग तत्पराः ।।११।।

बैदारुणोपमन्व्याख्याः सेवाधर्मसुशिक्षिताः । तेषां परीक्षितुं भावं गुरुः प्राह दयार्द्रधीः ।।१२।।

मच्छालेयेऽम्ब्वभावोऽस्ति जीवेत्सस्यमतः कुतः । गत्वा वः कोपि यत्नेन क्षेत्रमम्ब्वानयत्वरम् ।।१३।।

श्रुत्वैवमरुणोऽह्नाय गत्वा क्षेत्रसमीपतः । जलमानीय यत्नेन पल्वलात्क्षेत्रमुन्नतम् ।।१४।।

दृष्ट्वाऽकरोत्क्षेत्रतुल्यं वारिवारणमाशु तत् । जलप्रवाहः सहसा क्षेत्रादन्यत्र निर्ययौ ।।१५।।

न्यस्तोऽपि पाषाणचयः स्थातुं तत्र शशाक नो । मन्ये क्षेत्रे जलाभावाद् गुरुर्मां धिक्करिष्यति ।।१६।।

गुर्वर्थमत्र मर्तव्यमिति मत्वोभयत्र सः । स्वाङ्गं निधायोपरिष्टाज्ज़लैः क्षेत्रमपूरयत् ।।१७।।

स्तादृशस्यापि त्यागोऽन्याय्यः किं पुनरुपकारकस्य गुरोः अत्र तु सेवार्थी पीडयामासेत्यनेन सेवायाः पीडारूपदर्शकेनालसेन त्वया परित्यागः कृतः शिष्यस्य योग्यत्वार्थं विद्ध्युक्त**प्रणिपातपरिप्रश्नसेवाधर्म**प्रवर्तकस्यावलेपादिदोषत्रयरहितस्य गुरोः परित्यागः कृतोऽतस्तादृशस्यावलोको न भद्रायेत्युक्तं **तद्वति** प्रणिपातपरिप्रश्नसेवाधर्मवति **प्रसन्नता** गुरोरिति शेषः।।८।। एवं श्रीगुरुवाक्यं श्रुत्वा मत्वा च स्वापराधं दूरीकर्तुं गुरुज्ञानं तत्सेवाप्रकारं च पृच्छति यत इदं गुरुसेवातत्त्व**मजानता** मया **गुरुद्रोहः कृतः अतो** हे **प्रभो** द्रोहरूपात्पापान्**मा** माम**ुद्धर** स्वरूपतो **गुरुः कथं ज्ञेयः** ज्ञातश्च केन प्रकारेण **सेव्यः तन्मे वद**स्व।।९।। **गुरोर्निरुपमत्व**मुक्तं भगवत्पूज्यपादैः '*दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारं। न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्ये स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वाऽलौकिकोऽपि* ' इति। अतएव **ब्रह्मविष्णुशिव**रूपः।।१०।। **छात्राः** शिष्याः **अङ्ग** हे विप्र।।११।।।।१२।। **शालेये** शाल्युद्भवोचिते क्षेत्रे व्रीहीशाल्योर्ढक् जला**ऽभावोऽस्ति सस्यं** क्षेत्रगतमपक्वं अतः **वो** युष्माकं मध्ये **कोऽपि** कतमोऽपि **अरं** शीघ्रं।।१३।। एवं गुरोर्वचः **श्रुत्वा** तेषां मध्ये**ऽरुणोऽह्नाय** शीघ्रं **गत्वा पल्वलाद**ल्पसरसो **जलं** कुल्यानिर्माणादियत्नेना**नीय** किञ्चिदु**न्नतं क्षेत्रं दृष्ट्वा**।।१४।। **क्षेत्रतुल्यं वारिवारणं** पाषाणादिना**ऽकरोत्त**दा **जलप्रवाहो**ऽकस्माद**न्यत्र निर्ययौ**।।१५।। तत्र **न्यस्तोऽपि पाषाणचयः** प्रवाहवेगेन **स्थातुं** समर्थो न बभूव तदा शिष्यो वदति स्वगतं **क्षेत्रे जलाभावान्**निमित्ता**द्गुरुर्मान्धिक्करिष्यति** इति **मन्ये**।।१६।। तस्मा**द्गुर्वर्थमत्र** मया **मर्तव्यं** मरणप्रायकष्टेनापि जलानयनोद्योगः कर्तव्यः **इति मत्वा उभयत्र** कुल्यायाः पूर्वपरतटे देहस्थापनक्षमे **स्वाङ्गं निधाय** तदु**परिष्टाद्**गतै**र्जलैः क्षेत्रमपूरयत्**।।१७।।

धौम्योऽपि क्षेत्रमेत्याम्बु-पूर्णं शालेयमीक्ष्य सः । खिन्नः शिष्यमदृष्ट्वैहि वत्सेत्यावाहयन्मुदा ।।१८।।
प्रत्युत्तरं जलाक्तान्त-रङ्गो दातुं स न क्षमः । किञ्चिद्ध्वनिं चकारासौ तच्छ्रुत्वैत्य ददर्श तम् ।।१९।।
कृपया परयोत्थाप्य भक्तिं ज्ञात्वा स तत्क्षणम् । तस्मिन्प्रसन्नः सम्भूय स्वीयं साम्यं व्यधान्मुनिः ।।२०।।
विद्याविनयसंपन्नो भूत्वा संतोष्य सद्गुरुम् । तदाज्ञया ययौ धाम स्वमर्च्योऽभवदत्र सः ।।२१।।
ततो बैदं गुरुः प्राह सस्यं मे शिष्य सर्वतः । रक्षयित्वानु धान्यं तद्यत्नात्सर्वं समानय ।।२२।।
आज्ञा प्रमाणमित्युक्त्वा पशुपक्षिनिवारणैः । सस्यं ररक्ष पश्चात्तच्छित्वा धान्यं स निर्ममे ।।२३।।
शशंस गुरवे न्यस्तो धान्यराशिर्मया गुरो । क्षेत्रेऽत्रानेतुमेकं मे शकटं देहि सर्षभम् ।।२४।।
तच्छ्रुत्वा शकटं तस्मै स लुलायेन योजितम् । प्रददौ स तमादाय नीत्वा विन्यस्य चाखिलान् ।।२५।।
शालीनाहरदर्धाध्वं तत्र पङ्के सकासरः । संलग्नोऽभूत्स्वयं सोऽथ स्वकण्ठेऽयोजयद्युगम् ।।२६।।
सलुलायः स शिष्यस्तु तत्र भारातिरेकतः । पपात तत्र सहसा धौम्यः प्राप यदृच्छया ।।२७।।
तत्कर्म प्रेक्ष्य घोरं तं मोचयित्वा प्रसन्नधीः । वरं तस्मै ददौ येन स परत्रात्र चोत्तमः ।।२८।।
अथोपमन्युमाहैष गाश्चारय सदेत्यथ । कतिकालं तदा चक्रे स्वल्पभुक्क्षुधितोऽभवत् ।।२९।।

ईक्ष्य वीक्ष्य हे **वत्सा ३ एहीत्यावाहयत्**।।१८। **जलेनाक्तं** क्लिन्न**मन्तरङ्गं** यस्य स **प्रत्युत्तरं दातु**मपि समर्थो **ना**भूत् **किञ्चिद्ध्वनिं चकार असौ** धौम्यस्**तद्**ध्वनिरूपमुत्तरं **श्रुत्वा** आगत्य **तं ददर्श**।।१९।। तमु**त्थाप्यास्य भक्तिं ज्ञात्वा तत्क्षणं** कालाध्वन इति द्वितीया **प्रसन्नो** भूत्वा **तस्मिन्स्वकीयं साम्यं** विद्याविनयादिलक्षणं कृतवान्।।२०।। दक्षिणासमर्पणेन **संतोष्य** कृतसमावर्तनोऽनुशिष्ट**स्तदाज्ञया स्वा**लयं **ययौ स** शिष्यो गुरुप्रसादाद्विद्वान्सन्न**त्रा**स्मिन्लोके**ऽर्च्यः** पूज्यो**ऽभवत्**।।२१।। **सस्यं** क्षेत्रगतं धान्यं यदुक्तं '*सस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुषं धान्यमुच्यते। वितुषास्तण्डुलाः प्रोक्ताः पक्वमन्नं प्रकीर्तितम्*' इति **अनु** पश्चात्।।२२।। भवता**माज्ञा प्रमाणमित्या**ज्ञां शिरसा धृत्वा **निवारणै**र्निवारणोपायैः **सस्यं ररक्ष पश्चात्तच्छित्वा** मर्दनेन **धान्यं निर्ममे** संपादितवान् पलालं धान्यं च पृथक् चकार।।२३।। भो **गुरो मया क्षेत्रे धान्यराशिर्न्यस्त** इति **शशंस** कथयामास कथयित्वात्र गृहं प्रति धान्य**मानेतुं ऋषभा**भ्यां बलीवर्दाभ्यां **स**हितं **शकटं देही**ति ययाचे।।२४।। **तस्मै** शिष्याय **स** गुरुः **लुलायेन** महिषेण **योजितं** धान्यानयनार्थं **शकटं प्रददौ स** शिष्यः **अखिलान्**छालीन् **विन्यस्ये**ति संबन्धः **आहरदा**नयत् **सकासरः** महिषसहितः शकटः **पङ्के संलग्नोऽभूत्** तदा **स्वयं स्वकण्ठे युगं** यानाङ्गमयोजयत्।।२५।।२६।। **यदृच्छया** स्वेच्छया।।२७।। **घोरं** शकटवाहनरूपं **कर्म तं** शिष्यं **स** शिष्यो **येन** गुरुदत्तेन वरेणा**त्रा**स्मिन्लोके विद्यादिभिः **परत्र** दिव्यभोगैर्युक्तः **उत्तमः** श्रेष्ठो बभूव इति शेषः।।२८।। **एष** धौम्यः गुरुगृहे स्वल्पं भुनक्तीति **स्वल्पभुक् क्षुधितोऽभवत्**।।२९।। **स्वं** देहं अन्नरसपरिणामतः स्थौल्यं पुष्टिः

वने विप्रालयान्प्रेक्ष्य स्वं पुपोषान्नयाच्ञया । पुष्टोऽसि कथमित्युक्तो गुरुणा तन्न्यवेदयत् ।।३०।।
तन्मे देहीति गुरुणा भाषितः स तथाकरोत् । स पश्चाद्याच्ञयारक्षत्स्वं तद्वेदापि वै मुनिः ।।३१।।
द्विवारमर्पयेत्यूचे सच्छिष्योऽपि तथाकरोत् । पीत्वा ररक्ष गा दुग्धं वत्सपीतावशेषकम् ।।३२।।
तज्ज्ञात्वा धीभ्रंशभिया वारितो गुरुणा वने । अर्कक्षीरं दधौ पातुं तत्तस्याक्ष्णोः पपात ह ।।३३।।
स पपातान्धवद् गावो ययुर्गेहं गुरुस्तदा । अन्वेष्य तं तथा दृष्ट्वा तं प्राह स्तुहि रेऽश्विनौ ।।३४।।
सोऽश्विस्तवाद्दृष्टिमाप गुरुणा तदुपर्यपि । कृपा कृता तेन सोऽपि कृतकृत्योऽभवद्द्रुतम् ।।३५।।
तच्छिष्या अपि तत्तुल्या बभूवुः शृणु सादरम् । उद्दालकोऽस्य शिष्यः सन्सत्रेऽहीनदहद्बहून् ।।३६।।
जनमेजयतोषार्थं स्वर्गाच्छक्रं समानयत् । अयं गुरुप्रसादस्तत्-तोषात्प्राप्यो न चान्यथा ।।३७।।
अतस्तमेव शरणं सर्वभावेन गच्छ भोः । तत्प्रसादात्परां शान्तिं मोक्षं प्राप्स्यसि दुर्लभम् ।।३८।।

।। विप्र उवाच ।।

युज्यते भिन्नधात्वैक्यं न मुक्तायास्तथा हृदः । तद्बुद्धिन्नं न यास्येऽतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः ।।३९।।
इति तन्निश्चयं ज्ञात्वा के विन्यस्य करं गुरुः । तापदग्धाशुभस्यास्य प्राहाङ्ग स्वगुरुं स्मर ।।४०।।

तद्भिक्षाशनरूपं कर्म।।३०।। **तद्**याचितकमन्नं मह्यं **देहीति भाषितः** उक्तः **तथाऽकरोद्**भिक्षित्वाऽदात् **पश्चात्**पुनरन्न**याच्ञया स्वं** देहरूपमात्मानमरक्षत्।।३१।। **द्विवारं** याचितां भिक्षां **मेऽर्पयेति** प्राह **वत्सपीतावशेषक**मुच्छिष्टं अञ्जलावादाय **पीत्वा गा ररक्ष**।।३२।। **तद**पि ज्ञानदृष्ट्या गुरुणा ज्ञात्वा बुद्धि**भ्रंश**भयेन **गुरुणा** मा पिबेति **वारितः** ततो **वने** केनचिदाहता**दर्का**द्गलितं **क्षीरं** दृष्ट्वा इदमनुच्छिष्टमिति मत्वा तत्**पातुं** करे **दधौ तद्**धृतं क्षीरं पानसमये **तस्याक्ष्णोः पपात**।।३३।। तेन संजातनेत्रव्यथो**ऽन्धवद्**भूत्वा गर्ते **पपात गावः गेहं ययुः तदा**ऽनागतं शिष्यं वने इतस्ततो**ऽन्वेष्य** तत्परिवेदनश्रवणे चागत्य तं तथाविधं **दृष्ट्वा रे** शिष्या**श्विनौ** तन्मंत्रेण **स्तुही**ति प्राह।।३४।। **स** शिष्यः।।३५।। श्रोतुः समाधानार्थं शृण्विति अत्रोत्तङ्काख्योऽस्य शिष्य इति सम्यग्भाति **अस्यो**त्तङ्काख्यः **शिष्यः** सर्प**सत्रे** आहुतीरूपान्**बहूनहीनदहत्**।।३६।। **तत्तोषाद्**गुरुसंतोषात्प्राप्तुं योग्यः **न चान्यथा** स्वबुद्ध्यभ्यूहेन '*नैषा तर्केण मतिरापनेया* ' इति श्रुतेः।।३७।। ज्ञानप्राप्तिरूपात्**प्रसादात्परां शांतिमाप्स्यसि** '*ज्ञानं लब्ध्वा परां* ' इति स्मृतेः गुरुप्रसादा**द्दुर्लभम**पि **मोक्षं प्राप्स्यसि**।।३८।। **भिन्ना**नां स्वर्णादि**धातु**मयपात्रभूषादीनां द्रुतीकरणादिना **ऐक्यं युज्यते** यथा **तथा** न मौक्तिकस्य भिन्नस्यैक्यं युज्यते तथैव **हृदो** मनसः **त**स्य गुरो**र्हन्**मनः।।३९।। अनुतापेन **दग्धमशुभं** यस्य तस्य **के** मूर्ध्नि **प्राह** श्रीगुरुरिति शेषः।।४०।। स्वगुरु**स्वरूपमिव**

द्विजोऽपि स्वगुरुं स्मृत्वा तत्स्वरूपमिव प्रभुम् । ददर्श श्रीगुरुं प्रेम्णा तुष्टाव स मुदश्रुयुक् ।।४१।।
तमाह प्राञ्जलिं विप्रं श्रीगुरुस्त्वं यथाक्रमम् । लघु निस्तीर्य कर्मौघं परां संसिद्धिमाप्स्यसि ।।४२।।
त्वया व्यालोकि रूपं मे यत्तद्भक्त्या स्मरन्क्रियाः । मदर्थ इत्सदासक्तः कुर्वन्सिद्धिमुपैष्यसि ।।४३।।
इति द्विजं तं निजरूपदर्शनात् सुदुर्लभस्वात्मसुखान्वितं प्रभुः।
विधाय चैकं द्विजपुत्रमागतं समुद्दधारच्छितजिह्वमप्यरम् ।।४४।।
(क्षेपकः)**ये केचन श्रीगुरुमीशबुद्ध्या सन्तापदग्धैनस आव्रजन्ति।**
प्रच्छिद्य ते मोहसमूहमाशु स्वानन्दसौख्यं द्विजवत्प्रयान्ति ।।१।।

।। इति श्रीगुरुचरिते गुरुभक्त्यनुशासनं नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

श्रीगुरुं ददर्श मुदश्रुयुक्प्रेमाश्रुक्लिन्नः।।४१।। क्रममनतिक्रम्येति **यथाक्रमं** यथा सादृश्य इत्यव्ययीभावः सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखमित्यनुक्रमेणागतं सुखदुःखफलरूपं **कर्मौघं लघु** क्षिप्रं **निस्तीर्य** भोगेन क्षपयित्वा **परां** निर्वाणलक्षणां सम्यक् **सिद्धिमाप्स्यसि**।।४२।। ननु '*अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि-शतैरपि* ' इति श्रुतेः(?स्मृतेः) संचितेष्वनेकेषु सत्सु क्रियमाणेषु च विद्यमानेषु कथं कर्मौघस्य लघुनिस्तरणमित्यत आह **यत्त्वया मे** मम स्व**रूपं** दृष्टं **तद्भक्त्या स्मरन्**यथा देवे तथा गुरावित्यैक्यलक्षणया ध्यायन् **क्रिया** नित्यनैमित्तिककर्माणि **मदर्थ** एव **कुर्वन्** क्रियाचरणकालेऽपि सर्वदा**ऽसक्तः** कर्मासक्तिरहितः ईदृग्वर्तमानस्त्वं अंतःकरणशुद्ध्योपलब्धेन ज्ञानेन द्वैतस्फूर्तिरहितां सं**सिद्धिं** मुक्तिं **उपैष्यसि**।।४३।। **सु**तरां **दुर्लभां** यत्**स्व**स्य प्रतीचः **आत्मनः** परब्रह्मणश्च यत्**सुखं** स्वरूपं अभेदलक्षणं तेना**न्वित**मखण्डैकरसं **विधाय** कृत्वैत्य कृष्णां **द्विजपुत्रमागतमि**ति पाठः साधुः कथासंदर्भार्थः।।४४।। ये केचनेति क्षेपकः स्फुटः।।१।।

।। इति श्रीगुरुचरिते गुरुभक्त्यनुशासनं नाम टीकायां दशमोऽध्यायः।।१०।।

अथैकादशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

क आगतश्छातजिह्वः कथं भगवतोद्धृतः । तत्कथामृतमास्वाद्य तृष्णा मेऽतीव वर्धते ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

करवीरे सुधीपुत्रो जातोऽज्ञस्तं जगुर्बुधाः । विपुच्छशृङ्गो गौस्त्वं गोभाग्यं नात्तं तृणं तु यत् ।।२।।

विद्यानिधिर्हर्त्रलभ्यः स शिष्यार्पित एधते । श्रेष्ठेष्वर्च्यं करोत्यूनं क्वाप्यस्वं च धनान्वितम् ।।३।।

सुखे स्त्रीवावनेऽम्बेव सखेव क्वापि तातवत् । हिते बोधे च गुरुवद्विद्या धिक्त्वामविद्य रे ।।४।।

इति निर्भर्त्सितस्त्रस्तो भिल्लवाटीं ययौ स तु । प्रायोपविष्टोऽनशन आनर्च भुवनेश्वरीम् ।।५।।

दत्वाऽलब्धप्रसादोऽस्यै जिह्वां छेत्तुं कमुद्यतः । स्वप्ने देव्याह तं दण्डी कृष्णातीरेऽस्ति तं भज ।।६।।

इति श्रुत्वा दुःखितोऽपि धृत्यागत्य स सद्गुरुम् । ननामाश्रूत्तगात्रस्तन्मूर्ध्न्यधाच्छ्रीगुरुः करम् ।।७।।

श्रीगणेशाय नमः।।अथैकादशोऽध्यायः।। *आश्वास्यैकादशे छिन्नजिह्वं विप्रं च दुर्विधं।। गङ्गानुजेष्टकृत्कृष्णातीरे स्वाश्रममादधौ १* यद्यपि गुरूपसत्त्या सम्यक्प्रत्ययैकविषयं निर्गुणात्मतत्त्वं निर्दिष्टं तथापि मन्दबुद्धीनां गुणवत्त्वस्येष्टत्वाद्गुणवत्त्वं वक्तव्यं यद्यपि ब्रह्मविदां स्त्र्यादिविषयेभ्यः स्वयमुपरमो भवति तथाप्यनेकजन्मविषयसेवाभ्यासजनिता विषयविषया तृष्णा न सहसा निवर्तयितुं शक्यतेऽतस्तन्निवृत्तय ईश्वराभिन्नश्रीगुरुसेवा विधातव्येत्येतदर्थं सफलगुरुसेवातीताध्याये निरूपिता अथाधुना तद्दृढीकरणायेतरोपासनादीश्वराभिन्नगुरूपासने- नैहिकामुष्मिकसुखलाभोऽप्यनायासेन भवतीति प्रदर्शयितुमध्याय आरभ्यते छिन्नजिह्वमप्यरमुद्दधारेत्युक्तः स कश्छिन्नजिह्व इत्यादि पृच्छति क इति **अतीव वर्धते** श्रवणेच्छा शान्ता न भवति अनौपम्यश्रवणात्।।१।। **करवीरे** श्रीक्षेत्रे **सुधीपुत्रः** प्राज्ञपुत्रः दैवा**दज्ञो** मूढो **जातः तं** विद्याभ्यासपराङ्मुखं अभ्यासे प्रवर्तयितुं तद्गृहसमीपवर्तिनः संबन्धिनो वा **बुधास्तं** प्रोचुः **पुच्छशृङ्ग**रहितो **गौः** पशुस्**त्वं** यथा पशुराहारविहारमात्रतुष्टस्तथैव त्वमित्यभिप्रायः **यद्**धि **तृणं नात्तं** न भक्षितं तत्**तु** गवां **भाग्य**मेव।।२।। तर्हि विद्यायाः किं महत्त्वमित्यत आह द्वाभ्यां **विद्या निधि**रेव तर्हि तस्करोपहरतीति चेन्न **हर्तुरलभ्य** उत च स्वयं **शिष्यायार्पित**श्चे**देधते** वर्धते **ऊनं** कनिष्ठं **अर्च्यं** पूज्यं **अस्वं** निर्धनं।।३।। **अवने** रक्षणे मातेव **हिते** पितेव **क्वापि** परदेशेऽपि **रे अविद्य त्वां धिक्**।।४।। तै**र्निभर्त्सितो**ऽत**स्त्रस्तः** प्रायोपवेशेनानशनत्वे सिद्धेऽपि पुनरुक्तिर्दार्ढ्यार्थं।।५।। भुवनेश्वर्या **अलब्धप्रसादः अस्यै** भुवनेश्वर्यै **जिह्वां** छित्वा दत्वापि पुनः **कं** शिर**श्छेत्तुमुद्युक्तो**ऽभूत् तदैव दैवयोगान्निद्रा आगता तदा **स्वप्ने तं देवी** भुवनेश्वरी **दण्डी** परिव्राट् इतोऽदूरे उत्तरे **कृष्णा**नदीतीरे विद्यते **तं** स्वार्थसिद्ध्यै **भज**।।६।। **इति** देवीवाक्यं स्वप्ने **श्रुत्वा** प्रबुद्ध्य जिह्वाछेदेन **दुःखितोऽपि धृत्या** सात्त्विकेन धैर्येणोत्तरकूलमागत्य **स** छिन्नजिह्वः **सद्गुरुं ननाम** कथंभूतः **अश्रुभिरुत्तं** सांद्रं **गात्रं** शरीरं यस्य स छिन्नजिह्वः तदा तस्य **मूर्ध्नि श्रीगुरुः** स्व**करं अधात्** निदधौ।।७।। **यथा स्पर्शे** संलग्न**मयोऽपि हेम** भवति **काकोऽपि मानसे सरसि**

स्पर्शेऽयोऽपि यथा हेम हंसः काकोऽपि मानसे । यथा विद्वांस्तथाभूत्स सुजिह्वः स्पर्शनाद्विभोः ।।८।।

वज्राङ्कुशध्वजाब्जाङ्कं ध्यायन्त्यङ्घ्र्यब्जमस्य ये । अपैति तत्प्रसादाद्धी-जाड्याद्यं नात्र चित्रमित् ।।९।।

गुर्वाज्ञया गृहं गत्वा सिद्धिं प्रापोभयीं द्विजः । भगवांस्तत उत्थाय दक्षिणाभिमुखो ययौ ।।१०।।

कृष्णावेणीपञ्चनदी-संगमं सुमनोहरम् । अष्टतीर्थान्वितं पुण्यं दृष्ट्वा तस्थौ परे तटे ।।११।।

सरस्वती शिवा भद्रा कुम्भी भोगवतीत्यमूः । कृष्णावेण्योः संगतास्तत्संगमस्तूत्तमोत्तमः ।।१२।।

स्थलं कुरुपुराख्यं तत्कुरुक्षेत्राधिपुण्यदम् । साक्षात्प्रयागोऽयमग्रे काश्याः श्रेष्ठं महास्थलम् ।।१३।।

तत्रोदुम्बरकल्पद्रुर्विश्वेट्तुल्योऽमरेश्वरः । योगिन्योऽपि चतुःषष्टिर्नरोऽप्यत्रामरो भवेत् ।।१४।।

स्वर्याति ना तपःस्नायी संगतेऽत्र सितासिते । तीर्थान्यवाक्प्रवाहेऽत्र महाघघ्नानि कोटिशः ।।१५।।

मुमुक्ष्वाश्वासनं कामि-हितं सत्तमरञ्जनम् । दृष्ट्वाश्रमं मूर्तिमत्स्वं परात्मोदुम्बरे व्यधात् ।।१६।।

प्रविष्टो **हंसो** यथा भवति **तथा विभोः** कर**स्पर्शना**देव **स** छिन्नजिह्वोऽपि शोभना **जिह्वा** अतिशयेन शोभनभाषिणी मधुरालापा च यस्य स उपलक्षणमेतत्संजातात्मज्ञानयोग्यकार्यकारणसंघातः **विज्ञानं** व्यवहारिकं पारमार्थिकं चास्यास्तीति **विद्वानभूत्**।।८।। कैमुतिकन्यायेन नेदं **चित्रं वज्राद्या अङ्का** यस्मिन्तादृशं **अस्य** श्रीगुरो**रङ्घ्रि**कमलं **ये ध्यायन्ति** तेषां **प्रसादा**न्नृणां बुद्धि**जाड्यादि अपैति** विनश्यति किं पुनस्तस्मिन्भगवति श्रीगुरौ प्रसन्ने धीजाड्याद्यपैतीति वक्तव्यं **अतोऽत्र** प्रकृते **चित्र**माश्चर्यं **नैव**।।९।। तदा श्री**गुरोराज्ञया गृहं गत्वा** गृहस्थाश्रममास्थायानासक्त्येश्वरप्रीत्यर्थं लोकसंग्रहार्थं च नित्यनैमित्तिककर्माणि कुर्वन् ऐहिकीं इहलोक उपभोग्यां स्त्रीपुत्रादिरूपां आमुष्मिकीं निरतिशयानन्दब्रह्मानुभवरूपामेव**मुभयीं सिद्धिं प्राप**।।१०।। **य**था**ष्ट**प्रकृत्या**न्विते** देहे चिच्छक्तिजीवशक्त्योर्योगे **पञ्चनदीसंगमा**ख्य आज्ञाचक्रे **सु**तरां **मनोहरं** स्थलं **दृष्ट्वा** योगी **ततः परे तटे** ब्रह्मरंध्रे गतिनिवृत्तिं कुरुते तट इति जगज्जन्मादितटस्थलक्षणे अथवा **परे** सर्वोत्कृष्टे **अतटे** स्वरूपे सच्चिदानन्दाख्ये तादृशमेवा**ष्टतीर्थान्वितं** '*कृष्णा विष्णुतनुः साक्षाद्वेण्या देवो महेश्वर* ' इत्युक्त्वात्**कृष्णा**सहिताया **वेण्या** भेदरहितहरिहररूपायाः **पञ्चनद्या** सह **संगमं सुमनोहरं दृष्ट्वा** तस्याः पश्चिमे **तटे** उदुम्बरमूले भगवान् **तस्थौ**।।११।। **सरस्वत्या**दिपञ्चनद्य एकीभूय **कृष्णावेण्योः संगताः तत्संगमस्तूत्तमे**षु गङ्गायमुनादिसंगमेष्वप्यु**त्तमः**।।१२।। **तत्स्थलं कुरुपुराख्यं** '*त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते। अर्धतस्तु कुरुक्षेत्रमर्धतस्तु पृथूदकम्* ' इति विशिष्टतरोक्तात्कुरुपुरादधिकपुण्यदम्। **अयं** संगमः **साक्षात्प्रयागः** इतो**ऽग्रे** पूर्वतः **काश्याः श्रेष्ठं** युगालयाख्यं **महास्थलं**।।१३।। **अत्र** भगवन्निवासस्थाने कृष्णायाः परे तटे **उदुम्बर** एव **कल्पद्रुः** कल्पद्रुमः काशीस्थेन **विश्वे**श्वरेण **तुल्योऽमरेश्वरो**ऽस्ति **चतुःषष्टियोगिन्योऽप्यत्र** वसन्ति रागादियुक्तो **नरोऽप्यत्र** निवासेना**मरः** शमादिसंपन्नो **भवेत्**।।१४।। **अत्र सितासिते संगते अत्र तपःस्नायी** माघस्नायी **ना** पुरुषः स्त्रीर्वा **स्वर्गं याति** '*सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति* ' इति श्रुतेः **अवाक्प्रवाहे** दक्षिणाभिमुखे प्रवाहे शुक्लतीर्थमारभ्य संगमपर्यन्तं **कोटिशस्तीर्थानि** '*स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबँश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरँस्तैः*' इति ते श्रुत्युक्ताः पञ्च महापापिनस्तैः कृतानि महान्त्यघानि निघ्नन्तीति **महाघघ्नानि**।।१५।। **मुमुक्षू**णामा**श्वासन**भूतं **कामि**नां कामपूरण-

सद्विद्याढ्यामरपुरं प्राङ्निरीक्ष्यैत्य तत्र सः । स्वाचारं वैदिकं दीनं प्रभुर्भिक्षां स्म याचते ।।१७।।
भिक्षावृत्तेस्तदा साध्वी सात्त्विकस्य कुटुम्बिनी । अन्नाभावाद्ददौ शाकमातिथेयी तु भिक्षवे ।।१८।।
भक्त्यार्पितमपि प्राश्य शाकं संतृप्त ईश्वरः । तत्र शाकलतां दृष्ट्वा तामुत्पाट्याश्रमं ययौ ।।१९।।
तदा स्त्रीर्दुःखिता प्राह योगक्षेमकरी कुतः । उन्मूलिता लता नैव भिक्षाशाठ्यं मया कृतम् ।।२०।।
तां भर्तोचे मौनमेहि न कोऽपि सुखदुःखदः । लोकाः स्वकर्मसूत्रोता वृथाहङ्कारसंश्रिताः ।।२१।।
ईशाधीनं जगत्सर्वं येनाप्तव्यं तु यत्ततः । कोऽपि नेशोऽन्यथा कर्तुमायुश्चान्नं स यच्छति ।।२२।।
विश्वोद्भवलयत्राण-निदानस्यास्य चैकदृक् । प्राज्ञेऽज्ञे राज्ञि रङ्केऽपि मा शुचस्तारकोऽस्त्ययम् ।।२३।।
इत्याश्वास्य वधूं विप्रो मूलमुत्खाय तत्र सः । अर्थपूर्णं घटं लेभे सद्गुरोः संप्रसादतः ।।२४।।
सभार्योऽथ द्विजो गत्वा शशंस गुरवे तु तत् । स प्राह दम्पती गोप्यमिदं श्रीर्नान्यथा ध्रुवा ।।२५।।
ऐश्वर्यपुत्रपौत्राढ्यौ संभूयात्र निरामयौ । मोक्षं गमिष्यथो नूनं गन्तव्यं सुखमालयम् ।।२६।।

रूपं हितकरं **सत्तमा**नां परमाह्लादप्रदत्वेन **रञ्ज**यतीति तथाभूत**माश्रमं दृष्ट्वा परात्मा** श्रीगुरु**मूर्तिमत्स्वं** स्वरूपं **विशेषेणाधात्**।।१६।। उदुम्बरस्याधोभागे शोभना विद्या पराख्या येषां ते **सद्विद्या** ब्राह्मणास्तै**राढ्यं** युक्तं **अमरापुरं प्राक्**पूर्वतो **निरीक्ष्य तत्र** पुरे कस्यचिद्द्विजस्य गृहमेत्य शोभना**चारं वैदिकं** विप्रं प्रति स्वयं **प्रभु**रपि **भिक्षां याचते स्म** लट् स्मे इति भतार्थे लट्।।१७।। यायावरसंज्ञिता **भिक्षैव वृत्ति**र्जीवनं यस्य तस्य **सात्त्विकस्य** विप्रस्य **कुटुम्बिनी** पत्नी **साध्वी** पतिव्रता स्वय**मातिथेयी** अतिथिषु साधुरपि पत्थ्यतिथीति ढञ् टिढ्ढाणञिति ङीप् तद्दिने**ऽन्नाभावाद्धे**तोरन्नादाने च प्रत्यवायभीता सती तस्मै **भिक्षवे** भिक्षुरूपाय प्रभवे शृतं **शाकं ददौ**।।१८।। तया **भक्त्यार्पितं शाकमपि प्राश्य** भुक्त्वा **संतुष्ट ईश्वरो** गच्छन् **तत्रा**ङ्गणे **शाकलतां** कुटुम्बजीवनभूतां **दृष्ट्वा** धनं दातुमिच्छु**स्तां** लता**मुत्पाट्यमाश्रमं** गतः।।१९।। **तदा दुःखिता** ब्राह्मणी पतिं **प्राह** नाथ पश्याद्य **योग-क्षेमकरी लता कुत** उत्पाटिता शाकदाननिमित्तोत्थितेन कोपेनेति चेन्**मया भिक्षाशाठ्यं** भिक्षाकापट्यं **नैव कृतम्**।।२०।। दोषकर्तुर्या गतिः सैव वक्तुरित्यर्थात्सिद्धमुपदिशति तामिति **तां** दुःखितां भार्यां **भर्तो**वाच **मौनमेहि** तूष्णीं तिष्ठ परदोषाविष्करणं मा कुर्विति भावः यतो '*वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्* ' इति विधिना चोदितोऽहं भर्तापि दुःखितो नाभवं त्वं तु भर्तुं योग्या भार्यैवंभूताऽपि सती कुतः शोचसि यतः **कोऽपि सुखदुःखदो न लोका**स्तु **स्वकर्मसूत्र**ग्रथिता न स्वतन्त्रास्तथापि **वृथाहङ्कार**मा**श्रिताः**।।२१।। यत **ईश्वराधीनं सर्वं जगत् येन यदाप्तव्यं** सुखदुःखादि तद**न्यथाकर्तुं कोऽपि न** समर्थः ये**नायु**र्दत्तं सो**ऽन्न**मपि दास्यति '*फलमत उपपत्तेः*' इति न्यायात्।।२२।। **विश्वो**त्पत्त्यादिकारणस्येश्वरस्य **प्राज्ञा**दौ न विषमदृष्टिः किन्त्वे**कैव मा शुचः** शोकं मा कार्षीः शोको नामेष्टादिवियोगनिमित्तो मानसः सन्तापः **अयं** न**स्तारकोऽस्ति**।।२३।। **अर्थपूर्णं** स्वर्णद्रव्यपूर्णं **संप्रसादो**ऽयं कथं यतो धननिमित्तोऽनर्थः स्मर्यते सत्यं शुचीनां भगवन्निष्ठानां तु धनलाभे यज्ञादिचित्तशोधकं कर्म भवति नैतरेषां विषयभोगनिष्ठानां कदर्याणां वा अत उक्तं **संप्रसादत** इति।।२४।। **स** गुरुः **प्राह** हे **दम्पती इदं गोप**नीयं **अन्यथा श्रीर्ध्रुवा न** स्यात्।।२५।। **ऐश्वर्या**दियुक्तौ **निरामयौ** च भूत्वै-

।। नामधारक उवाच ।।

भिक्षावृत्तिः प्रभोः कस्मात्कल्पद्रुम उदुंबरः । सति पूज्यतमेऽश्वत्थे कुतो भगवता श्रितः ।।२७।।

।। सिद्ध उवाच ।।

पक्वान्नभिक्षुको भिक्षुरिति श्रुतमतं प्रभुः । भिक्षुः सन्लीलया भेजे शम्भुवृत्तिरियं पुनः ।।२८।।

नखा नृसिंहावतारे विषार्ता दैत्यदारणात् । शान्ता औदुम्बरैः सोऽथ प्रीत्यानेन सदाश्रितः ।।२९।।

यत्र क्वाप्येष कल्पद्रुर्भूयात्तापाघदैन्यहृत् । कामदोऽहं श्रियात्रासमिति तस्मै वरोऽर्पितः ।।३०।।

विश्वात्मा यत्र तत्रैव वेदतीर्थामरा अपि । सन्त्युदुम्बर एवात्र कल्पद्रुर्भुवि नापरः ।।३१।।

तस्मादुदुम्बरतले भिक्षां कुत्रापि विश्वभृत् । अकृत्वा कामरूपाभिर्योगिनीभिः स्थितोऽर्चितः ।।३२।।

अज्ञानावृतविप्रास्तदज्ञात्वोचुः परस्परम् । कथं जीवत्यकृत्वायं भिक्षां मृग्यं तदद्य हि ।।३३।।

इत्थं विचार्य तस्थुस्ते मध्याह्ने योगिमायया । त्रस्ता ग्रामं ययुः कोऽपि ज्ञातुं शक्योऽस्य चेष्टितम् ।।३४।।

हिकं सुखमत्रानुभूय मत्प्रसादा**न्नूनं मोक्षं गमिष्यथः** भवत्सेवार्थमत्रैव स्थास्याव इत्यत आह **सुखं** यथा तथा युवाभ्यां स्वा**लयं गन्तव्यं** इति श्रीगुरुणा प्रस्थापितौ तौ दम्पती गृहं गत्वा तथैव बभूवतुः आलय इति मूलम्।।२६।। ऐश्वर्यदातुः प्रभोः स्वोदरभरणार्थं कुतो भिक्षाटनमिति पृच्छति **प्रभोः** समर्थस्यापि **कस्मा**द्धेतो**र्भिक्षावृत्तिः** प्रश्नान्तरमाह '*अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्* ' इति स्मृतेर्भगवद्विभूतिरूपे**ऽश्वत्थे पूज्यतमे सति भगवता कुत उदुम्बरः श्रितः**।।२७।। उत्तरमाह **भिक्षुः** परिव्राट् **पक्वान्नभिक्षुकः** '*यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्न-स्वामिनावुभौ* ' इति स्मरणात् इतीत्थं **श्रुत**स्य **मतं** मतिबुद्धीति वर्तमाने क्तः क्तस्य च वर्तमान इति षष्ठी '*पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति* ' इति **श्रुतिमतं** वा स्वयं **प्रभु**रपि सन् **लीलया** जगद्रक्षार्थं **भिक्षुः सन्लो**कशिक्षार्थं तन्मतं **भेजे पुनश्चेयं शम्भुवृत्तिः** श्यति दुःखं तनूकरोतीति शं सुखं तद्भवत्यस्या इति **शंभुः** सा चासौ वृत्तिश्च '*भिक्षाहारी निराहारी भिक्षा नैव प्रतिग्रहः। भिक्षाहारी प्रकुरुते सोमपानं दिने दिने* ' इति स्मरणात्। **शम्भोः** शंकरस्य **वृत्ति**र्वे**यम्**।।२८।। द्वितीयस्योत्तरमाह **नृसिंहावतारे**ऽस्य विभोर्हिरण्यकशिपु**दैत्य**कोष्ठवि**दारणात्** तदन्तर्गत**विषे**ण तापकेन **नखा आर्ता**स्तप्ता अभूवन् नखोस्त्री नखरोस्त्रियामपि पुंस्त्वमपि तदा लक्ष्म्याऽऽनीतै**रौदुम्बरै**श्चिकित्सितास्ते नखाः **शान्ता** जाता **अथा**नन्तरं **स** उदुम्बरः **प्रीत्याऽनेन** भगवता **सदाऽऽश्रितः**।।२९।। **यत्र क्वापि** खेटे ग्रामे तीर्थे वा भक्त**कामदोऽहं** भगवान् **श्रिया** सहात्रोदुम्बरे **आस**मित्येवं **तस्मै वरोऽर्पितो**ऽत**एव** तत्र तिष्ठति।।३०।। **यत्रो**दुम्बरवृक्षेऽतएव भुव्यु**दुम्बर एव कल्प**वृक्षः **नापरः**।।३१।। **तस्माद्धे**तोः यद्वा यद्दिने ग्रामे शाकभिक्षा कृता **तस्माद्दि**नादारभ्य कुत्रापि भिक्षामकृत्वा **कामरूपाभिर्योगिनीभि**र्भिक्षादाना**दर्चितो विश्वभृत् उदुम्बरतल** एव **स्थितः**।।३२।। **तद्**विभोश्चेष्टितम**ज्ञात्वा पर-स्परमूचुः** ग्रामे **भिक्षामकृत्वाऽयं कथं जीवति** तज्जीवनसाधनमद्यास्माभि**र्मृग्यं**।।३३।। विलीय **तस्थुः मध्याह्ने योगि**न ईश्वरस्य **मायया** मोमुह्यमाना**स्त्रस्ता** द्वितीयाभिनिवेशादी-

श्रीगुरुं द्रष्टुमागत्य भाविको भक्तिभावनम् । गङ्गानुजाख्यभक्तोऽत्र दृष्टवान् चित्रमेकदा ।।३५।।
जलपूर्णाऽपि कृष्णादान्मार्गं तेनागमत्प्रभुः । ददर्शान्वेत्य भक्तोऽपि पुरीं दिव्यामिवान्तरे ।।३६।।
नीराजितो योगिनीभी रत्नसिंहासनस्थितः । स्वर्चितः प्रेक्ष्य तं देवः प्राह कोऽस्यागतः कुतः ।।३७।।

।। गङ्गानुज उवाच ।।

गङ्गानुजाभिधोऽहं त्वामत्रत्यो द्रष्टुमन्वगाम् । भवान्परात्मा सर्वेशो दैवान्मेऽद्यात्र गोचरः ।।३८।।
त्वन्मायामोहितात्मानस् त्वां विदुः केवलं नरम्। संसारसागरेऽपारे तेऽतो मज्जन्ति नेतरे ।।३९।।
इति प्रेम्णा स्तुतस्तस्मै हृद्यं दत्वेश्वरोऽब्रवीत् । मयि सत्यत्र यद्दृष्टं नाख्येयं कस्यचित्त्वया।।४०।।
इत्युक्तो गुरुणा हृष्टो भक्तः क्षेत्रं स्वमेत्य सः । लेभेऽसम्भाव्यसस्यर्धिं लोके श्रैष्ठ्यं च संविदम्।।४१।।
स एत्य नित्यमानर्च गुरुं प्राहैकदा गुरो । काश्यां तु त्रिस्थलीयात्रा वरेत्याहुर्न वेद्ॎमि ताम् ।।४२।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

प्रयागः संगमः काशीयं गया करवीरपूः । दर्शयामीदमेतद्वत् त्रिस्थलं ते द्रुतं परम् ।।४३।।
इत्युक्त्वा धारयित्वा स्वपादुके त्रिस्थलीं त्विमाम् । प्रयागकाश्यौ गयां च दर्शयित्वागमत्क्षणात् ।।४४।।

श्वरादेव भीताः।।३४।। **चित्र**माश्चर्यं।।३५।। **जलेन पूर्णा**ऽगाधजला**ऽपि कृष्णा** भगवते **मार्गमदात् तेन प्रभु**र्द्वीपे कृतमाश्रमम**गात्** गङ्गानुजो **भक्तोऽप्यनु** पश्चादागत्या**न्तरे** द्वीपे **दिव्या**ममरावतीमिव **पुरीं ददर्श**।।३६।। **देवः** श्रीगुरुः **तम**न्वागतं **प्रेक्ष्य कोऽसि** त्वं **कुतो** हेतो**रागतो**ऽसीति तं **प्राह**।।३७।। **अत्रत्यो**ऽत्र ग्रामे भवो**ऽहं त्वां द्रष्टुमन्वगां** यतो **भवान्परात्मा** तर्हि कथं त्वया दृष्टोऽत आह **दैवादि**ति पूर्वोपचितपुण्यपाकवशात्संजातयाऽनन्यभक्त्या**ऽद्य** भवान्**गोचरो** दर्शनविषयो जातः '*पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्य-स्त्वनन्यया* ' इति स्मृतेः।।३८।। यथा त्वयाऽहं परात्मेति ज्ञातस्तथाऽन्येऽपि कथं न जानन्तीत्यत आह **त्वन्मायामोहित आत्मा**ऽन्तःकरणं येषां ते **त्वां केवलं** प्राकृतं **नरं विदुः अतो**ऽज्ञाना**दपारे**ऽनेकशतकोटिजन्मभिरपि **पारं** ब्रह्माख्यं गन्तुमशक्ये **संसारे**ऽब्धाविव **ते मज्जन्ति इतरे** त्वदुपासकास्त्वत्स्वरूपज्ञाः **न** मज्जन्ति।।३९।। **इति** तेन **प्रेम्णा स्तुत ईश्वरस्तस्मै हृद्यं वरं दत्वाऽब्रवीत्**। **अत्र मयि सति** विद्यमाने **त्वया यद्दृष्टं** तत्**कस्यचिन्नाख्येयं** यावदनेन रूपेणात्र स्थास्ये तावदिदं कस्मैचिन्न वाच्यं पश्चात्कथने तु न प्रतिबन्धः इत्यर्थात्सूचितं।।४०।। **असंभाव्यसस्यर्धिं** अपरिमितसस्यं **लोके** सन्मानादि**श्रैष्ठ्यं** आत्मानात्मविवेकक्षमां **संविदं** ज्ञानं **च लेभे**।।४१।। **आनर्च** पूजयामास **वरा** श्रेष्ठाऽघौघहरा यद्यपि **काश्यां त्रिस्थलीयात्रा** नास्ति तथापि **न वेद्मीति** वाक्येनाज्ञानत एवमुक्तं लक्षणया तथापि न दोषः।।४२।। अयं कृष्णापञ्चनदी**संगमः प्रयागः** यद्युगालयाख्यं कृष्णायां तीर्थ**मियमे**व **काशी करवीरपुरं गया इदन्ते दर्शयामि** पुनश्चै**तद्वदे**तेन तुल्यं अ**परं** प्रयागकाशीगयाख्यं **त्रिस्थलं ते द्रुतं** दर्शयामि।।४३।। **इमां** संगमयुगालयकरवीराख्यां **त्रिस्थलीं**

तमाह त्रिस्थली त्वेषा दर्शितान्यापि तादृशी । साम्यं ज्ञात्वोभयोरत्र स्वाचारान्मुक्तिमेष्यसि ।।४५।।
इति योगीशवाक्यं स श्रुत्वा ज्ञात्वाऽस्य चेष्टितम् । तद्ध्यानात्कर्मबन्धं द्राक् छित्वा मुक्तो बभूव ह।।४६।।
वृद्धोऽत्र महिमा सन्त आयास्यन्तीतरेऽप्यतः । गन्तव्यं क्वापि न स्थेयं साक्षादत्रेत्यमंस्त सः ।।४७।।
नो हित्वाद्य क्व यासीति विलपन्तीः स योगिनीः ।आश्वास्योचेऽत्र तिष्ठामि लोकदृष्ट्या गमिष्य इत् ।।४८।।
अमरेशोऽन्नपूर्णात्र विघ्नेशो युष्मदादयः । भक्तेष्टदा मयाऽप्यत्र स्थेयं वस्तुष्टये सदा ।।४९।।
इतः प्रभृत्यदः क्षेत्रं सुप्रसिद्धं भविष्यति । बहुलोकनिवासोऽत्र यास्यन्त्यत्र जनाः सुखम् ।।५०।।
सन्निपाताक्षिरुङ्मेह-कुष्ठश्लेष्मक्षयज्वरान् । वातपैत्तिकगुल्माद्यान् देशाद्युत्थान्हरेदिदम् ।।५१।।
पुत्रं वन्ध्याऽभयं त्रस्तो निःस्वः स्वं रोग्यनामयम् । मुमुक्षुः सद्गतिं यद्यद्यस्येष्टं स लभेत्सदा ।।५२।।
सहस्रगोदानफलं पर्वक्रान्तिग्रहाप्लुतौ । नुः कोटिफलमत्राल्प-जपहोमसुरार्चनैः ।।५३।।

दर्शयित्वा योगगत्या तं नीत्वा **प्रयागं काशीं गयां च** दर्शयित्वा **क्षण**मात्रत एव पुनः स्वाश्रम**मागमत्**।।४४।। **तं** गङ्गानुज**माह** श्रीगुरुरिति शेषः स्नानदानश्राद्धाद्याचरणेन **मुक्तिं** मोक्षं **स्वाचार**शब्दान्निष्कामानुष्ठानेनेति सूचितं।।४५।। **योगीशवाक्यं** श्रीगुरुवाक्यं **अस्य** गुरो**श्चेष्टित**मलौकिकं कर्म **तद्ध्याना**च्छ्रीगुरुध्यानाद्**द्राक्** शीघ्रं **कर्म**रूपं **बन्धम्**।।४६।। **संतः** साधव **इतरे**ऽसाधवो**ऽपि** ननु '*एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान्* ' इति श्रुतेः कथं **वृद्धोऽत्र महिमे**त्युक्तं नैष दोषः सच्चिदान-न्दात्मनो ब्रह्मणः कर्मणा न वृद्धिर्नापि क्षयः सगुणब्रह्मणस्तु लोकानां यथायथानुभवस्तथा तथा माहात्म्यं वस्तुतस्तु एष नित्य इत्युक्तं समञ्जसमेव इतोऽन्यत्र **क्वापि गन्तव्यं अत्र** तु **साक्षाद**नेन रूपेण मया **न स्थेयं इत्यमंस्त** मन्यते स्म।।४७।। न इत्यारंभेऽसमञ्जसं तदा **नो**ऽस्मान् **हित्वाद्य क्व यासीति विलपन्तीः** परिदेवनं कुर्वन्ती**र्योगिनीराश्वास्य स** श्रीगुरु**रूचे** भो योगिन्योऽह**मत्र** न तिष्ठामीति न अपि तु **तिष्ठाम्ये**व विभोर्मे गमनासंभवात् तथाप्यवतारानुसारेण मानुषभावमाश्रित्य **लोकदृष्ट्यै**वेतो **गमिष्ये** न तत्त्वतः **इदे**वार्थे।।४८।। **अमरेशो**ऽमरेश्वरः **युष्मदादयो** योगिनीप्रमुखाः **भक्ता**नामि**ष्ट**कामदाः **वो** युष्माकं **तुष्ट्य**र्थं **मयाप्यत्र स्थेयं**।।४९।। **इतः-प्रभृत्यद** इदं **क्षेत्रं सु**तरां **प्रसिद्धं भविष्यति अत्र** विजने **बहुलोकनिवासो**ऽपि भविष्यति **अत्र जना** दुःखिता अपि **सुखं यास्यन्ति** यद्वैतत्स्थानप्रभावा**ज्जनाः सु**तरां **खं** परमा-नन्दं '*यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कं* ' इति श्रुतेः। अस्यार्थः *यदेव खं* आकाशं तदेव खेन विशेष्यमाणं *कं* एतेन विषयेन्द्रियसंयोगजात्सुखान्निर्वर्तितं नीलेनेव विशेष्यमाणं रक्तादिभ्यः *यदेव ख*माकाशं *तदेव कं* सुखं एवं सुखेन विशेष्यमाणं *खं* भौतिकादचेतनात्खान्निर्वर्तितमित्यादि *खं* ब्रह्मेति श्रुतेः।।५०।। **देशादुत्थान्**साङ्क्रमिकान् विषूच्यादीन् **इदं** क्षेत्रं **हरेद्**विना चिकित्सया पापक्षयादेव।।५१।। **पुत्रं वन्ध्या लभेदि**ति सर्वत्र सम्बद्ध्यते **निःस्वो** दरिद्रः **स्वं** धनं **रोगी अनामय**मारोग्यं **सद्गतिं** मोक्षं दर्शादि**पर्वा**णि मेषादिरविसं**क्रान्तयः ग्रहो** रविचन्द्रग्रहणं एषु कृताया**माप्लुतौ** स्नाने **सहस्रगोदानफलं** अत्राचीर्णै**र्जपाद्यैर्नुः** पुरुषस्य **कोटि**गुणितं **फलं**।।५२-५३।। **दुर्गता** नरकगता

प्रदक्षिणाऽश्वमेधादि-फलदा नुः पदे पदे । दुर्गताः पितरोऽप्यत्र श्राद्धाद्यान्ति परां गतिम् ।।५४।।

इत्याश्वास्य स योगिनीः परतरः कल्पद्रुमूलेऽमले ।
संस्थाप्य स्वसुपादुके नर इह स्नात्वार्चयेदष्टसु ।।
तीर्थेष्वीश्वरयोगिनीसुरयुते मत्पादुके द्राग्लभेत् ।
सोऽभीष्टं त्विति ताः प्रभाष्य स ययौ भीमातटं योगिराट् ।।५५।।

इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे कृष्णापञ्चनदीसङ्गमोत्कर्षकथनं नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

अपि।।५४।। **परतरो योगिराट् स** श्रीगुरुः **स्वी**ये शोभने **पादुके संस्थाप्य** प्राह यो **नर इहाष्टतीर्थेषु स्नात्वा**ऽमरे**श्वरा**दि**युते मत्पादुकेऽर्चयेत्स** नरः **द्रागभीष्टं लभेत् इति ताः** योगिनीः **भीमातटं** गन्धर्वपुरं।।५५।।

।।इति टीकायां एकादशोऽध्यायः।।

द्वादशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

गतेऽपि भगवत्यङ्ग कृष्णावेणीतटाश्रमात् । तस्मात्तत्रैव भजतां कार्यसिद्धिः कुतो वद ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

गतिस्थित्यासनस्वप्ना न कदापि चिदात्मनि । लीलेयं मानुषी तस्य नरानुकृतिकारणः ।।२।।

भाव्यतेऽजो भावनया यद्वत्तद्वद्विभात्यसौ । एवं यद्भावनात्रेदृक् तादृग्जागर्ति तत्र सः ।।३।।

योगिनीवरदानादि यैर्यैर्गङ्गानुजाच्छ्रुतम् । ते ते भक्त्याभजंस्तत्र तं स तत्कामदोऽभवत् ।।४।।

शृण्वेवं सति तत्रत्या मृतापत्यत्वदुःखिता । काचिद् द्विजसती विप्रान्स्वस्त्यर्थं शरणं ययौ ।।५।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ द्वादशोऽध्यायः।। *परिहृत्य प्रेतदोषं ब्राह्मण्यै पुत्रदोऽभवत्। द्वादशेऽपि मृतं पुत्रं जीवयामास सद्गुरुः।।१।।* एवं गुर्वनुगृहीतानां विषयतृष्णावतामपि श्रीगुरुप्रसादादैहिकामुष्मिकसिद्धिरुक्ता अथ तस्याविष्कृतगुणमयस्वरूपस्य श्रीगुरोर्भक्तवात्सल्यं प्रदर्शयति भजनरुच्युत्पादनार्थं **अङ्ग** हे सिद्ध **भगवति** गन्धर्वपुरं **गते** सत्य**पि तत्रैव भजतां** भक्तानां **कस्माद्दे**वतान्तरा**त्कार्य**स्य कर्तुं योग्यस्य यज्ञदानतपोजपरूपस्य कर्मणः **सिद्धि**रभिमतफलप्राप्तिः। यदि भगवान् गुरुर्गतस्तर्हि भक्तानां भजनानुसारेण कस्तत्र फलदाताऽभूदिति प्रश्नार्थः **कुत** इति ल्यब्लोपे पञ्चमी कं कालमारभ्य कस्माद्भजतां तत्रैव कार्यसिद्धिर्जातेति वदेति संबन्धः।।१।। उत्तरं सोदाहरणमाह(उदाहरणं नामैकदेशप्रसिद्ध्याशेषप्रसिद्ध्यर्थमुदाहियते) **गति**र्देशाद्देशान्तरगमनं **स्थिति**र्गतिनिवृत्तिः **आसन**मुपवेशनं **स्वप्नः** शयनं एतेऽनात्मधर्मा विभौ **चिदात्मनि** श्रीगुरौ **न** संभवन्ति। ननु निर्गुणे न सम्भवन्तु सगुणे कुतो नेत्यत आह **कदापी**ति नित्यमलुप्तभगतया सत्यज्ञानानन्तानन्दैकरसेनात्मनावतीर्णस्य श्रीगुरोर्देहाद्युपाधिसम्पर्काभावात् तर्हि भीमातटं ययाविति कथमुक्तमित्यत आह स्वेच्छया **नरानुकृतिकारिणः** श्रीगुरोरियं **मानुषी** मनुष्यावतारसम्बन्धिनी **लीला** गमनादिरूपा यथा निर्गुणं ब्रह्म स्वयमेकमेव चलनादिरहितमपि स्वयं तिष्ठत्सद्धावतोऽन्यानन्तःकरणसहितेन्द्रियगणानत्येत्येवमेव सगुणब्रह्मरूपोऽपि श्रीगुरुः श्रुतिश्च '*अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति* ' इति। ब्रह्मानन्दकृतेशावास्यभाष्यरहस्ये तदेजतीत्यस्य व्याख्याने '*तदेजति परं ब्रह्म ब्रह्मविष्णुशिवात्मकं। साकारं मायया भाति निराकारं तु वास्तवं।। उपाधिचलनेनैव चलनन्तु विभाव्यते।। तन्नैजति परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्*' इत्यत्र योज्यम्।।२।। **अजः** श्रीगुरुर्यया **भावनया** यत्र **यद्वद्भाव्यते तद्वदसौ भाति एवमत्रेदृश**ः फलदाता साक्षादीश्वरो विद्यत इति यद्भावनोत्पद्यते **तत्र** भगवान् श्रीगुरुः **तादृक्** भावनानुसारी **जागर्ति** अभिमतफलं दातुं सदोन्मुखीभवति एवं भावनया यस्य यस्य यादृशं ज्ञानं तस्य व्यवहारे परमार्थे वा तादृशमेव फलं श्रुतिश्च '*असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः*' इति। भाष्यं(सूत्रस्थं पदमादाय पदैः सूत्रानुसारिभिः। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः)- यो नास्ति ब्रह्मेति मन्यते स सर्वस्यैव सन्मार्गस्य वर्णाश्रमादिव्यवस्थालक्षणस्याश्रद्दधानतया नास्तित्वं प्रतिपद्यतेऽब्रह्मप्रतिपत्त्यर्थत्वात्तस्य अतो नास्तिकः सोऽसन्नसाधुरुच्यते लोके तद्विपरीतः सन्योऽस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद स तद्ब्रह्मप्रतिपत्तिहेतुं वर्णाश्रमादिव्यवस्थालक्षणं श्रद्दधानतया यथावत्प्रतिपद्यते यस्मात्ततस्तस्मात्सन्तं साधुमार्गस्थमेनं विदुः साधवः।।३।। काम्यत इति कामो वरः कर्मार्थे घञ् कामं ददातीति **कामदः**।।४।।५।।

प्रपन्नां प्रेक्ष्य तां दीनां निजभक्तिविधित्सया । देवप्रेरितधीः कश्चित्तद्दैवं भूसुरोऽब्रवीत् ।।६।।

मृतापत्यत्वदोषांस्तु शृणु साध्वि पुरार्जितान् । मृतापत्यत्वादिदोषाः प्रायशः प्रेतहेतवः ।।७।।

ब्रह्महा भ्रूणहा वाऽपि गोघ्नोऽश्वघ्नोऽपरार्थहृत् । ब्रह्मस्वात्स्वर्णहा पापी लभेज्जन्मान्तरे त्विदम् ।।८।।

लोहाश्मदारुचूर्णानि प्रयत्नाज्जरयेत्पुमान् । ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः कथं जरयिष्यति ।।९।।

हृतस्वार्थाभिलाषेण चेन्मृतो ब्राह्मणः स तु । गत्वा पिशाचतां स्वार्थी सदा स्याद्धर्तृवंशहा ।।१०।।

त्वया भवान्तरे साध्वि हृतं शौनकगोत्रिणः । द्रव्यं विप्रस्य सोऽर्भांस्ते भूत्वा प्रेतो निहन्त्युत ।।११।।

भोगादेव क्षयः साध्वि नान्यथारब्धकर्मणः । तस्मात्प्रारब्धजफलं भुङ्क्ष्व कोऽत्र निवारकः ।।१२।।

तच्छ्रुत्वा कर्णशूलाभं त्रस्तचित्ताऽब्रवीद् द्विजम् । भो ब्रह्मन्मानुगृह्णीष्व मुक्त्युपायमुपादिश ।।१३।।

।। विप्र उवाच ।।

प्रेतौर्ध्वदेहिकं कर्म प्रायश्चित्तपुरःसरम् । कारयित्वाङ्ग भर्त्रा त्वं मासमात्रं व्रतं चर ।।१४।।

कृष्णापञ्चनदीयोगे स्नात्वा श्रीगुरुपादुकाम् । उदुम्बरं चाष्टतीर्थस्नानपूर्वं समर्चय ।।१५।।

स्वभक्तिप्रवृत्तये **देवे**न श्रीगुरुणा **प्रेरिता** तद्दैवप्रकाशनविषये चोदिता बुद्धिर्यस्य स **कश्चिद्**विप्रस्**तस्या** ब्राह्मण्या **दैवं** प्राक्तनकर्मा**ब्रवीत्** न तु ज्योतिःशास्त्राद्याधारेण।।६।। तत्र तावत्सामान्यतोऽनपत्यत्वादिहेतुमाह हे **साध्वि पुरा** पूर्वजन्म**न्यर्जितान्**कर्मणा सम्पादितान्।।६।। ब्रह्माणं हतवानिति **ब्रह्महा** ब्रह्मभ्रूणेति क्विप एवं स्त्रैणगर्भं अर्भकं वा हतवानिति **भ्रूणहा अपरार्थहृत्** परद्रव्यापहारी ब्राह्मणस्य स्वं द्रव्यमत्तीति **ब्रह्मस्वात्** बलात्कारेण चौर्येण वा ब्राह्मणद्रव्योपभोक्ता **स्वर्ण**स्तेयी चैषामन्यतमः **पापी जन्मान्तरे इदं** मृतापत्यत्वान-पत्यत्वादिलक्षणं पापफलं **लभेद**नुभवेत् **तु**शब्दादत्युत्कटपापफलमिहाप्यनुभवेदिति सूचितं यदाहुः '*अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुत* ' इति।।८।। सर्वदोषेभ्यो ब्राह्मणस्वहरण-दोषो गरीयानित्याह **लोहा**श्मसारः **अश्मा** पाषाणः **दारु** काष्ठं चैषां **चूर्णानि** भक्षितानि पुरुषः **प्रयत्नो**ऽपि **जरयेत्** परन्तु **ब्रह्मस्वं कः कथं जरयिष्यति** न कथंचिदपि।।९।। अप**हतो** यस्य **स्वस्यार्थो** द्रव्यं तस्या**भिलाषेण ब्राह्मणो मृतश्चेत्स स्वार्थी** स्वार्थाभिलाषी सन्**पिशाचतां** प्राप्य **सर्वदा हर्तुर्वंशहा स्याद्**भवेत्।।१०।। एवं सामान्यतोऽभिधाय विशेषतोऽभिदधाति **त्वये**ति **प्रेतो भूत्वा** तवार्भका**न्निहन्ति**।।११।।१२।। **कर्णशूल**तुल्यं **तद्**वाक्यं **श्रुत्वा** तत**स्त्रस्तं चित्तं** यस्याः सा ब्राह्मणी **मा** मां **अनुगृह्णीश्व** येनानुग्रहेणोक्तदो-षान्मुक्तिर्भवेत्तं **मुक्त्युपायमुपादिश** कथय।।१३।। **प्रेत**स्य प्रेत्य पिशाचभावं गतस्यौ**र्ध्वदेहिकं** तन्मुक्त्यर्थं शास्त्रोक्तपिण्डदानादि **कर्म प्रायश्चित्त**पूर्वकं नारायणबल्याद्यनुष्ठानसहित-मिति यावत् **भर्त्रा कारयित्वा** णिजन्तः स्वातंत्र्यव्यावर्तकः हे **अङ्ग** साध्वि **त्वं** वक्ष्यमाणं **व्रतं मासमात्र**माचर कारयित्वेति णिजन्तेन भर्तृद्वारा प्राधान्येन स्त्रियाः कर्तृत्वं दर्शित-मिति न मन्तव्यं कदाचित्क्वचिदपि त्रिवर्गे स्त्रियाः स्वातंत्र्याभावात् अत्र तु स्त्रिया पृष्टत्वात् भर्त्रा कारयित्वेत्युक्तं एवं भर्त्रे कथयेति विवक्षितार्थः।।१४।। **योगे** संगमे प्रथमं **स्नात्वा** ततो**ऽष्टतीर्थस्नानपूर्व**कं **गुरुपादुकां** पादुके **उदुम्बरं च** पूजय।।१५।। अथ मासातिक्रमानन्तरं शक्त्या **ब्राह्मणान्भोजयित्वा शत**संख्याकरौप्यमुद्रारूपं **द्रव्यं शौनकगोत्र**जाय कस्मै-

ब्राह्मणान्भोजयित्वाथ शतद्रव्यं द्विजातये । देहि शौनकगोत्राय शुद्धिस्तेनैव ते सति ।।१६।।

।। ब्राह्मण्युवाच ।।

शतद्रव्यं कुतो लभ्यं मासमात्रं करोम्यहम् । सद्गुरोरर्चनं भक्त्या स मां पायाद्भयाद्धरिः ।।१७।।

इति निश्चित्य सा पत्या यथानिर्दिष्टमाचरत् । दिनत्रयान्तरे स्वप्ने तस्या विप्रपिशाचकः ।।१८।।

ब्राह्मणीं भीषयित्वा तां ययाचे द्रव्यमात्मनः । भीतोदुम्बरमूले सा ददर्श श्रीगुरुं हरिम् ।।१९।।

तां च तं तादृशं दृष्ट्वा पिशाचं प्राह सद्गुरुः । कस्त्वं पिशाचरूपेण सतीं खेदयसेऽधम ।।२०।।

।। पिशाच उवाच ।।

यतीन्द्र त्वय्यनर्होऽयं पक्षपातोऽहमात्मनः । अनयाऽपहृतं द्रव्यं याचितुं हीदृशोऽभवम् ।।२१।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

अनेन ते कथं मोक्षो बह्वमङ्गलयोनितः । येनाप्यते सद्गतिस्तच्छ्रुणु तेन हितं भवेत् ।।२२।।

योन्यन्तरे हृतार्थोऽस्ति किंत्वत्र फलभागिनी । प्राप्ता दरिद्रवंशेऽसौ लभ्यतेऽतः कुतो धनम् ।।२३।।

अतस्तया कारयित्वा शक्त्या कर्मौर्ध्वदेहिकम् । त्वद्गोत्राय यथालभ्यं दापयित्वा धनं खलु ।।२४।।

विप्राय प्रेत कस्मैचित्ततो मोक्षं ददामि ते । नेदं त्वां रोचते चेत्तां रक्षामि स्वेच्छयाचर ।।२५।।

चिद्ब्राह्मणाय प्रेतोद्देशेन **देहि** हे **सति तेनैव ते शुद्धिः** पापनिष्कृतिर्भविष्यति।।१६।। **कुतो लब्धं** लब्धुं योग्यं दीनत्वात् वर्तमानसामीप्यात्**करोमीति** अधुनैव करिष्यामीति भावः।।१७।। **पत्या** सह ब्राह्मणेन **यथानिर्दिष्टं** तथा**ऽऽचरत् दिनत्रयान्तरे** दिनत्रयपरिच्छिन्नेऽवधौ **तस्याः स्वप्ने विप्र**जातीयः **पिशाचकः** ।।१८।। **तां ब्राह्मणीं भीषयित्वाऽऽत्मनो द्रव्यं** पूर्वजन्मन्यपहृतं **ययाचे सा** तस्मा**द्भीता उदुम्बरमूले श्रीगुरुं ददर्श**।।१९।। **तां** भीतां भीषयन्तं **तादृशं** ब्राह्मणं **पिशाचं दृष्ट्वा सद्गुरुः प्राह** रे**ऽधम** यस्त्वं **पिशाचरूपेण सतीं खेदयसे** स **कस्त्वं**।।२०।। **अयं पक्षपातः त्वयि** अयोग्यः यतित्वात् **अनया** जन्मान्तरे**ऽपहृतं द्रव्यं याचितुमीदृशोऽभवमं हि** यतः अतो मम दोषो न वासनापारतंत्र्यात्।।२१।। **अनेन** भीषणेनापत्यहननेन च **बहून्यमङ्गला**नि दुःखानि यस्या तस्याः **योनेः** सकाशात्**ते कथं** मुक्तिः **येन** साधनेन ते **सद्गति**र्भवेत्**तत्**साधनं **शृणु तेन** तव **हितं** इतो मोक्षरूपं **भवेत्**।।२२।। **योन्यन्तरे**ऽनयापहृ**तोऽर्थो** द्रव्यं नेहा**स्ति किं तु अत्र** तत्**फलभागिनी**यमस्ति फलभागिनी चेत्तर्हीहापि देयमिति चे**दसौ दरिद्रवंशे** प्राप्ता दरिद्रेण विप्रेणोद्वाहिता**ऽतो** हेतोः **कुतो धनं लभ्यते**।।२३।। यतस्ते द्रव्यं न लभ्यते**ऽतः तयौर्ध्वदेहिकं कर्म शक्त्या** शक्त्यनुसारेण **कारयित्वा त्वत्**समान**गोत्राय यथालभ्यं धनं दापयित्वा खलु** निश्चयेन।।२४।। **ततस्ते मोक्षं ददामि इदं त्वां न रोचते चेत्**त्वं यत्कर्तव्यं त**दाचर** अहं त्वत्तो भीतां **तां** ब्राह्मणीं **रक्षामि**।।२५।।

।। पिशाच उवाच ।।

देवदेव कृतार्थोऽस्मि त्वत्पादाब्जविलोचनात् । ममाद्य निष्कृतिर्जाता यथेच्छसि तथा कुरु ।।२६।।

एवं तन्निश्चयं ज्ञात्वा ब्राह्मणीं प्राह सद्गुरुः । संवादो नौ श्रुतः साध्वि तथा निर्व्याजमाचर ।।२७।।

तेनासौ सद्गतिं यायाद्वंशवृद्धिश्च ते भवेत् । उक्त्वैवं ध्यानगम्योऽभूद्धरिर्बुद्धाऽभवत्सती ।।२८।।

पत्ये शशंस तत्सर्वं तथैवाचीकरत्क्रियाम् । तया प्रेतो गतिं लेभे साप्यपापा बभूव ह ।।२९।।

अपरेऽहनि तत्स्वप्ने फले विन्यस्य चांशुके । तामाह भोजयित्वाऽजो विप्रान्भुङ्क्ष्व फलेत्विति।।३०।।

प्रबुद्धापि फले दृष्ट्वा भोजयित्वा द्विजान् फले । कान्तेन साकं बुभुजे ततोऽभूद्गर्भिणी सती ।।३१।।

काले दत्तप्रसादेन सूर्याचन्द्रमसाविव । पुत्रावसूत विप्रोऽपि जातकर्मादिकं व्यधात् ।।३२।।

ततोऽष्टमेऽब्दे ज्येष्ठस्य व्रतबन्धं चिकीर्षुणा । सम्भाराः संभृताः पित्रा तदाद्भुतमिवाभवत् ।।३३।।

अकस्मात्सन्निपातेन ज्येष्ठपुत्रो ममार हि । उच्चै रुरोद तन्माता कोरस्ताडनपूर्वकम् ।।३४।।

निष्कृतिर्दुष्कर्मनिवृत्ति**र्जाता**।।२६।। **एव**मुक्तप्रकारेण **त**स्य पिशाचस्य **निश्चयं ज्ञात्वा सद्गुरुर्ब्राह्मणीं** वक्ष्यमाणं **प्राह** हे **साध्वि नौ** आवयोः पिशाचस्य मम च **संवाद**स्त्वयाऽधुना यथा **श्रुतस्तथा** तस्यौर्ध्वदेहिकं कर्म **निर्व्याजं** निष्कपटं यथातथा**ऽऽचर**।।२७।। **तेना**चीर्णेनौर्ध्वदेहिककर्मणा**ऽसौ** पिशाचभावं गतो विप्रः **सद्गतिं** गच्छेत् तत**स्ते वंशवृद्धि**रपि **भवेत्** पीडकाभावात् **ध्यानगम्यो**ऽदृश्यः **बुद्धा** गतस्वप्ना।।२८।। **तत्सर्वं** स्वप्नदृष्टं **तया** आचरितया क्रियया **प्रेत**भावं प्राप्तो विप्रो **गतिं** प्रेतत्वनिवृत्त्योत्तमलोकप्राप्तिं **लेभे अपापा** गतदोषा।।२९।। एतेनोपवर्णनेन '*प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये....नायमस्तीति चैके* ' इति केषांचिन्मतं तदपध्वस्तं '*योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः*' इत्यादि श्रुतेः। **अपरेऽहनि** **तस्याः स्वप्ने फले** नारिकेलफले **अंशुके** परिहितवस्त्रपल्लवे **विन्यस्याजः** श्रीगुरु**स्तां** प्राह ब्राह्मणान्**भोजयित्वे**मे **फले भुंक्ष्वे**ति।।३०।। एवं स्वप्ने दृष्ट्वा **प्रबुद्धाऽपि** ते **फले** पत्ये विज्ञाप्य ब्राह्मणा**न्भोजयित्वा** पत्या सह फले **बुभुजे ततः** फलरूपप्रसादा**त्सती** सा **गर्भिणी अभूत्**।।३१।। **काले** दशमे मासि **सूर्याचन्द्रमसा**वित्यत्र देवताद्वन्द्वे आनङ् **व्यधाद्**व्यकृणोत्।।३२।। **ज्येष्ठस्य** ज्येष्ठपुत्रस्य यमयोर्मध्ये पश्चाज्जातस्य **व्रतबन्धं** उपनयनं कर्तुमिच्छुना **पित्रा** पूर्वेद्युः सर्वे **सम्भाराः सम्भृतास्तदाद्भुतमिवाभवत्**।।३३।। तदेवाह सहसा **सन्निपातेन** '*त्रयः प्रकुपिता दोषा उरस्त्रोतोऽनुगामिनः। आमातिवृद्ध्या ग्रथिता बुद्धीन्द्रियमनोगताः। जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं दृढं। श्रुतौ नेत्रे प्रसुप्तिः स्यान्न चेष्टां काञ्चिदीहते। न च दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने। न घ्राणं न च स्पर्शं शब्दं वा नैव बुद्ध्यते। शिरो लोठयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति।। कूजति तुद्यते चैव परिवर्तनमीहते। अल्पं प्रभाषते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते। प्रत्याख्यातः स भूयिष्ठं* ' इति। अभिन्यास इत्यत्र चरकः '*कामशोकभयक्रोधैरभिषिक्तस्य यो ज्वरः। सोऽभिषङ्गज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषङ्गज* ' इति। सन्निपातेन **ज्येष्ठपुत्रो ममार** प्रयतो '*वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्* ' इति श्रुत्युक्तप्रकारेण हस्तपादादीन्विक्षिप्य मर्मस्थानानि निकृन्तत इव प्राणानुसृजन्क्रमेणोपसंहृतकरणो ममार **ही**ति विषादे हि विस्मयविषादयोरित्यभिधानात् **कं** शिरः **उरः** वक्षःस्थलं त**त्ताडनपूर्वकं रुरोद**।।३४।। रुदती सुतं

।। ब्राह्मण्युवाच ।।

हा पुत्र क्व गतोसि त्वं पयो मे स्रवते वृथा । कति शेषेऽचिरं वत्स बुद्ध्यस्वेदं पयः पिब ।।३५।।
भोजनावसरोऽयं ते भुक्त्वा रन्तुं चराङ्गणे । वयस्या आह्वयन्ति त्वामुत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा स्वप ।।३६।।
त्वं नोत्तिष्ठसि चेत्प्राणांस्त्यक्ष्याम्यग्रे तवाधुना । जाता ये पञ्चपुत्रा मे तेषां त्वं प्राणवन्मम ।।३७।।
मृते त्वयि मरिष्ये मे यतः प्राणोऽसि केवलम् । रे दोहदप्रभृत्यद्य यावद्दुःखं न दापितम् ।।३८।।
गर्भे नष्टास्त्रयोऽर्भास्तद्दुःखं त्वन्मुखवीक्षणात् । मया विस्मृतमद्याक-सिन्धौ त्यक्त्वा क्व यास्यसि ।।३९।।
धर्मोऽयं ते न वार्धक्ये त्राता नौ पुत्र को वद। एवं तद्रुदितं श्रुत्वा तत्रत्या ऊचुरेत्य ताम् ।।४०।।
किं शोचसि वृथा भीरु मृत्युर्देवर्षिदानवान् । न विस्मरति कालेऽपि मनुष्याणां तु का कथा ।।४१।।
अवतारा येऽवतीर्णास्तेऽपि कालवशं गताः । एवं सति वृथा शोकं त्वं मा कुरु विचारय ।।४२।।

।। सोवाच ।।

अहो बत पिशाचोत्थं दूरीकृत्य भयं हि मे । येन देवेन यद्दत्तं फलं तद्विफलं कथम् ।।४३।।
यदि तस्य मृषा वाक्यं तं भजन्ति कुतोऽपरे । बिभीषणध्रुवमुखैर्मन्तव्यं तदृतं कथम् ।।४४।।

प्राह **हा** इति खेदे उत्सङ्गस्थस्यापि **क्व गत** इति पृच्छा मरणनिमित्ता किं **शेषे** एतर्हि बहुकालात्ययो जातोऽत उत्तिष्ठ **कति**कालं शेषे हे **वत्सा** ३ **अचिरं** शीघ्रमेव **बुद्ध्य-स्वेदं पयः पिब**।।३५।। **अयं** तव **भोजन**समयः **वयस्यास्त्वां रंतुमाह्वयन्त्य**तो **भुक्त्वाऽङ्गणे** रन्तुं गच्छ स्वापं **मा** कार्षीः आक्रोशाद्द्विरुक्तिः **उत्तिष्ठोत्तिष्ठे**ति।।३६।। **अधुना त्वं नोत्तिष्ठसि चेत्तवाग्र**तः **प्राणांस्त्यक्ष्यामि ये मे पञ्च पुत्रा जातास्तेषां** मध्ये **त्वं मम**।।३७।। **प्राण**तुल्योऽसि **त्वयि मृते** सत्यहमपि **मरिष्ये यतस्**त्वं **केवलं** मम **प्राणोऽसि**।।३८।। **अर्भा** अर्भका**स्तन्म**रणनिमित्तजनित**दुःखं त्वन्मुखवीक्षणेन मया विस्मृतं** स त्व**मद्य** मां दुःखसमुद्रे **त्यक्त्वा क्व** गन्तुमिच्छसि।।३९।। अस्मत्परित्यागरूपो**ऽयं ते** तव पुत्रस्य **न धर्मः** यतो हे **पुत्र नौ** आवयोस्तव मातापित्रो**र्वार्धक्ये** त्वत्तोऽन्यः **कस्त्राता** न कोऽपीति मन्ये कोऽपि भविष्यतीति चे**द्वद** पुत्रं विनेहामुत्र च न कोऽपि त्राता '*शश्वत्पुत्रेण पितरोत्यायन्बहुलं तमः। ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्* ' इति श्रुतेः **तत्रत्या**स्तत्र ग्रामे भवा जनाः।।४०।। हे **भीरु** भयशीले ऊङुत इत्यूङ् **वृथा कि**मर्थं **शोचसि काले देवा**दीनामपि **न विस्मरति** पुनर्मर्त्यलोकनिवासिनां **मनुष्याणां तु का कथा**।।४१।। **अवतारा** रामकृष्णादय**स्तेऽपि** नष्टाः **विचारय** देहात्मनयोर्विचारं कुरु।।४२।। **पिशाचा**दुत्पन्नं **भयं दूरीकृत्य यद्दत्तं तद्विफलं** पुत्ररूपं **फलं** नष्टप्रायं **कथं** जातम्।।४३।। **मृषा** मिथ्याभूतं **अपरे**ऽतोऽन्ये यथाऽहं भक्ता तथैव **बिभीषणाद्याः** ममेदृशी गतिर्जाता चेत्तैस्तद्वरदानं **कथमृतं** सत्यमबाधं मन्तव्यं।।४४।। यत एवमतो **लोकान्तरे** स्वर्गादौ पुत्रेण **सह तत्कीर्तिं नयामि संस्कर्तुं**

लोकान्तरे नयाम्येतां तत्कीर्तिं सूनुना सह । एवं रुदित्वा संस्कर्तुं न ददौ शवमङ्गना ।।४५।।

ग्रामे तु भोजनाभावाल्लोकास्त्रस्तास्तदैत्य हि । यदृच्छयाऽब्रवीद्वाग्मी जटिलस्तापसः सतीम् ।।४६।।

।। तापस उवाच ।।

किं शोचसि मुधा साध्वि शोकस्याविषयं सुतम् । सुतस्तवैष देहो वा जीवो वा ब्रूहि सारतः ।।४७।।

त्वग्रक्तमांसास्थिमयो देहोऽयं पुरतस्तव । जीवोऽजः सर्वगोऽनन्तः कोत्र शुग्विषयो वद ।।४८।।

कालकर्मगुणोत्पन्नं जगन्मायामयं त्विदम् । कथं ध्रुवं हि मन्तव्यं यथा कर्मैन्द्रजालिकम् ।।४९।।

कालकर्मगुणाद्युत्थ-देहिनः स्वत्वकल्पना । पुत्रादिरूपा मिथ्यैषा नद्यां काष्ठौघवच्चला ।।५०।।

त्वया ध्रुवा मतेयं चेद्वद पूर्वापरोद्भवे । कस्य त्वं जननी स्त्रीर्वा के वा सम्बन्धिनस्तव ।।५१।।

जन्ममृत्यू कालवशादलङ्घ्यौ दिनरात्रिवत् । शरीरिणोऽङ्गे बाल्यादि यथा देहान्तरं तथा ।।५२।।

दग्धुं।।४५।। **वाग्मी** युक्तिपटुः वाचो ग्मिनिरितीनिप्रत्ययः तद्रूपो भगवान्।।४६।। **सुतस्य शोकाविषय**त्वमाह यः सुतो ममेति त्वया मतः स **तव सुत एष** संनिकृष्टो **देहो वा** तद्व्यतिरिक्तो **जीवो वा सारतः** सारभूतं न्याय्यं **ब्रूहि**।।४७।। देह इति चे**त्त्वग्रक्तमांसास्थि**विकारः षाट्कौशिकोऽयमचेतनो **देह**स्ते पुरोभागे विद्यते तदर्थं कुतः शोचसि तर्हि जीवा-पेतात्षाट्कौशिकाद्देहाद्विलक्षणो जीवो येनायं सङ्घातोऽचेतनोऽपि सचेतन इवाभाति स **जीवः** सुत इति चेत्स परमात्मांशो जन्मादिवर्जितः**सर्वगः** आत्मत्वाद्ब्रह्मरूपः यत आत्मा द्विविधो व्यवहारविशिष्टः केवलश्च व्यवहारोऽपि त्रिविधः सुषुप्तिः स्वप्नो जागृतिश्च सुषुप्त्यवस्थामयं जीवः स्वोपाधिविलये सति परमानन्दरूपं ब्रह्माप्नोति '*सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति* ' इति श्रुतेराप्नोत्यात्मेत्येकं निर्वचनं १ यदा वागादिकरणोपशान्तिरूपं स्वप्नं प्राप्नोति तदा गिरिनदीसमुद्रमनुष्यपश्वादिसर्वपदार्थोपेतस्य लोकस्य तत्तत्पदार्थतोपच्छिद्य वासनारूपं लेशमादाय जागरणाभिमानं स्वयमेव विनाश्य जगद्रूपं स्वयं निर्माय जगदाकारेण स्वकीयेनान्तःकरणेन स्वचैतन्योपकल्पितपदार्थावभासकेन जाग्रद्वा-सना आदत्त इत्यात्मेति द्वितीयं निर्वचनं श्रुतिश्च '*स यत्र प्रस्वपितस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपिति* ' इति २ जागरणावस्थायां चक्षुरादीन्द्रियैर्बाह्यविषयानत्ति भुङ्क्त इत्यात्मेति तृतीयं निर्वचनं तथा च श्रुतिः '*स्त्र्यन्नपानादिविचित्रभोगैः स एव जाग्रत्परितृप्तमेति*' इति ३ एवमुपाधिविशिष्टस्य स्थानत्रयोपजीव्यं निर्वचनं केवलस्य तु अतति सातत्येन गच्छतीत्यात्मेति चतुर्थं निर्वचनं तथा च श्रुतिः '*सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म*' इति अस्मिन्वाक्येऽनन्तपदेन देशकालवस्तुपरिच्छेद-रहितलक्षणमानन्त्यमभिहितं तदेव चात्र जीवो**ऽनन्त** इति सामानाधिकरण्यात्सर्वगतत्वमजत्वं च युक्तमेवातो हेतो**रत्र** देहजीवयोर्मध्ये शोक**विषयः क** इति **वद** विचार्यमाणे कोऽपि शुग्विषयो नास्तीति भावः।।४८।। **कालः** क्षोभकः **कर्मा**णि त्रिविधानि **गुणाः** सत्त्वादयः एभ्यः उत्पन्नं।।४९।। **कालो** गुणक्षोभकः **कर्म** जन्मनिमित्तं **गुणा** उपादानं एत एव **आदयो** हेतवस्तेभ्यः **उत्थि**तः स चासौ देहश्च तदुत्पन्नत्वात् कालकर्मगुणाधीन इत्यर्थतः सिद्धं कालकर्मगुणानां विभागे च नाशवानेवंभूतो देहो यस्यास्तीतीदृशस्य देहाभिमानवतो जीवस्यायं ममेति **पुत्रादिरूपा स्वत्वकल्पनाचला**ऽध्रुवाऽतए**वैषा मिथ्या**।।५०।। **पूर्वापरोद्भवे** पूर्वापरजन्मनि।।५१।। ननु नात्मानं जीवं शोचामि तस्य जन्ममृत्युनिमित्तदुःखं पर्या-लोच्य शोको जायते इति चेत्तत्राह **जन्ममृत्यू** इति **शरीरिणो** देहाभिमानिनो जीवस्या**ङ्गे** देहे देहनिबन्धनमेव **बाल्यादि यथा तथा देहान्तरं** योऽल्पवयस्कोऽशक्तो बालोऽहं स एवे-

गुरुप्रसादाद्यततो भ्रमोऽयं लीयतेऽचिरात् । तेनर्ते मृत्यवे कल्प्यो जातो वै जनुषे मृतः ।।५३।।

नार्यतोऽपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि । मृतः शुचा पुनर्नैति नाप्युपायान्तरायुतैः ।।५४।।

।। सोवाच ।।

न वेदान्तार्थतत्त्वादि रोचते येन मेऽर्पितम् । सुफलं तत्कुतो यातं विश्वस्तव्यः स कैर्भुवि ।।५५।।

।। साधुरुवाच ।।

यत्र त्वया वरो लब्धस्तत्र गत्वा सविस्तरम् । वरदं परिपृच्छेदं यास्येऽलं विस्तरेण भोः ।।५६।।

तच्छ्रुत्वा शवमादाय सद्गुरोराश्रमं ययौ । तत्र पादुकयोः शीर्षं ताडयामास भामिनी ।।५७।।

एवं निशीथादासायं शुशोच न ददौ शवम् । संस्कर्तुं स्वालयं विप्रा जग्मुस्तत्रैव दम्पती ।।५८।।

ततो निशीथे सुष्वाप साध्वी स्वप्ने ददर्श सा । श्रीगुरुं प्राह सोऽप्येनां किं मयापकृतं हि ते ।।५९।।

प्राणो नामैष वायुः स बहिर्यातो मुहुर्मया । आनीय पूर्ववन्न्यस्तस्त्यजातः शुचमङ्गने ।।६०।।

दानीं प्रौढतरो बलिष्ठोऽभवमिति प्रत्यभिज्ञानं तथा देहान्तरे पूर्वदेहादेरत्यन्तविस्मृतौ सत्यां पूर्वाभ्यासेन जातमात्रस्य स्तन्यादौ प्रवृत्तिदर्शनात्तस्मादविवेकिनामयं भ्रम एव।।५२।। तर्ह्यस्य कथं लय इत्यत आह **गुर्विति** **यततो** यतनशीलस्य ' *आप्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम्* ' इति न्यायादामृत्यूपासने यत्न आस्थेयः **तेनर्ते** गुरुप्रसादं विना **जातो मृत्यवे कल्प्यः वै** निश्चयेन **मृतो जनुषे** कल्प्यः तर्हि जन्मनोऽवश्यंभावित्वेऽस्मिन्जन्मनि **भ्रमो** न नष्टश्चेद्भाविजन्मनि नश्येद्यतो जन्मान्तरस्यावश्यंभावित्वादिति चेदनेकेषु भोग्यकर्मसु सत्सु अधोऽनन्तकोटियोनिषूर्ध्वं देवादियोनिषु भ्रमतो जीवस्य कदाचिन्मनुष्यदेहो लभ्येत्स तु पुण्यातिशयत्वे सर्वेन्द्रिययुक्तो भविष्यति उक्तं गारुडे ' *सर्वेन्द्रियनिधानन्तद्बहुपुण्यैरेवाप्यत* ' इति अन्यथा पङ्ग्वन्धादिदेहलाभे कैवर्तभिल्लयवनम्लेच्छादिवंशीयदेहलाभे परमार्थगन्धोऽपि न लभ्येत अधिकारिब्राह्मणदेहलाभेऽपि हि कष्टं मातुः कुक्षौ मूत्रपुरीषवातपित्तश्लेष्मादिपूर्णे तदनुलिप्तस्य गर्भस्य जरायुत्वाशुचिपूयावृतस्य लोहितरेतोऽशुचिबीजस्य मातुरशितपीतरसानुप्रवेशेन विवर्धमानस्य निरुद्धशक्तिबलवीर्यतेजःप्रज्ञाचेष्टस्य शयनं ततो योनिद्वारेण पीड्यमानस्य कष्टतरा निःसृतिर्जन्मेति जुगुप्सितं मुहूर्तमप्यसह्यं कथं दशमासानतिदीर्घकालमन्ततः शयनमतः पुत्रादिवियोगनिमित्तजशोकं विहाय ज्ञानार्थं यतितव्यं।।५३।। हे **नारि अतो** हेतोः **अपरिहार्ये** कथमपि परिहारानर्हे।।५४।।५५।। **भोः** साध्वि **अलं विस्तरेण** ग्राहकाभावात् अहं यास्ये इत्युक्त्वा स गतः।।५६।। **भामिनी** कोपवती।।५७।। **संस्कर्तुं शवं न ददौ** तदा **विप्राः स्वालयं जग्मुः तत्रैव दम्पती** तस्थुरिति शेषः।।५८।। **सा स्वप्ने श्रीगुरुं ददर्श स** श्रीगुरु**रप्येनां** दृष्ट्वा **प्राह कि**मित्यादि।।५९।। **स** परोक्षत्वेन श्रुत्या निर्दिष्टः सर्वज्ञत्वादिलक्षणोऽन्तर्यामी सर्वोत्पत्त्यादिहेतुरीश्वरो **वायु**र्वायुशब्दवाच्यः ' *वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्* ' इति श्रुतेश्चैष स्वयंप्रकाशत्वापरोक्षत्वादिलक्षणः प्रत्यगात्मा **प्राणो** नामात्मैव नन्वन चेष्टायामित्यस्माद्धातोश्चेष्टाविशेषगुणकः प्राण एव स कथमात्मेति चेच्छान्दोग्ये नामोपक्रम्याशान्तं कार्यकारणत्वेन निमित्तनैमित्तिकत्वेन चोत्तरोत्तरभूयस्तयोपन्यस्यान्ते प्राणो वा आशाया भूयानिति सदृष्टान्तं भूयस्त्वं प्रतिपाद्य सर्वं क्रियाकारकफलभेदजातं प्राण एवेति वक्तुं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता

इति दृष्ट्वा विनिद्राऽभूद् ददर्शोत्थितमात्मजम् । हर्षशोकान्विता साध्वी प्रेम्णा भर्तारमाह्वयत् ।।६१।।

सोऽप्युत्थायात्मजं दृष्ट्वा रुदन्तं क्षुत्तृडाकुलम् । मन्त्रवत् त्रिरवघ्राय मूर्ध्न्यस्तौषीत्परात्परम् ।।६२।।

अत्रान्तरे प्रातरभूद् दग्धुं प्रापुः शवं द्विजाः । ते जीवन्तं सुतं दृष्ट्वा सर्वं श्रुत्वाऽस्तुवन्हरिम् ।।६३।।

दम्पती तु ततः स्नात्वा प्रपूज्येशं सुविस्तरात् । नीराज्याभ्यर्च्य भूदेवान्जग्मतुर्निजमन्दिरम् ।।६४।।

विद्याविनयसंपन्नश्चिरजीवी स भाग्यभाक् । बभूवाप्येवमेवान्य आसन्पूर्णमनोरथाः ।।६५।।

तत्राऽश्रान्तं स जागर्ति श्रीनृसिंहसरस्वती । अद्य कालान्तरेऽप्येवं न निद्रात्यन्यवत्कलौ ।।६६।।

तत्रेशमाद्यं दृढभक्तियुक्ता भजन्ति ये केऽपि सदुक्तिसक्ताः
ते प्राप्नुवन्ति द्रुतमिष्टकामान्निदर्शनं त्वत्र सती सुकामा ।।१।।

इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे प्रेतसंजीवनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्य इति प्राणाद्बहिर्भूतं किञ्चिदपि नास्तीति प्रपञ्च्य सति प्राणे पित्रादिशब्दप्रयोग उत्क्रान्तेच तस्मिन्प्रयोगाभाव इति वक्तुं पित्रादीनां तदननुरूपमिव किञ्चिद्दुर्वचनवक्तारमन्यो ब्रूते ' *पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्रह्महा वै त्वमसि इति*' प्राणयोगेनैवंभूतत्वं तदुत्क्रान्तौ च ' *अथ यद्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन संमासं व्यतिसंदेन्नैवं ब्रूयुः पितृहासि* ' इत्यादिना प्राणस्यैवात्मत्वं निर्णीय ' *प्राणो ह्येवैतानि भवति स वा एषं एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति*' इत्युपसंहारात्। ननु प्राणशब्देनात्मोच्यते तर्हि ' *नायाति प्रत्यगात्मा प्रजननकाले नैव यात्यन्तकाले। यत्सोऽखण्डोऽस्ति*' इत्युक्तेः प्रत्यगात्मनो बहिर्गमनं कथमिति चेत् ' *अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्*' इति श्रुतेरस्मिन्लिङ्गसङ्घातरूपे प्रज्ञात्मनि दैहिके मुख्ये परा देवता नामरूपव्याकरणायादर्शादौ प्रतिबिम्बवज्जीवेनात्मनानुप्रविष्टा तस्य जीवस्य तदभिन्नत्वात् ' *जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत*' इति जीववियोगस्यैव मरणत्वेन विवक्षितत्वाज्जीवगमनस्य प्राणात्मन्यारोप्य **बहिर्यातः स मया आनीय पूर्ववन्न्यस्तः** सुबन्धोरिव तद्भ्रात्राऽतएवायं न मृतोऽतः **शुचन्त्यज** यतः प्राणं विना न कोऽपि जीवति वागाद्यभावे जीवत्येव तथा च कौषीतकीश्रुतिः ' *जीवति वागपेतो मूकान् हि पश्यामो जीवति चक्षुरपेतोऽन्धान् हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान् हि पश्यामो जीवति मनोऽपेतो बालान् हि पश्यामो जीवति बाहुछिन्नो जीवत्यूरुभिन्न*' इति।।६०।। **मूर्ध्नि मंत्रवत्**समंत्रकं ' *अङ्गादङ्गात्*' इत्यादिना**ऽवघ्राय**।।६१।।६२।। स्फुटः।।६३।। **भूदेवान्**ब्राह्मणा**नभ्यर्च** पूजयित्वा भोजयित्वा च।।६४।। **स** पुत्रः **अन्ये** भक्ता **अप्येमेव पूर्णमनोरथा आसन्**।।६५।। **तत्र** कृष्णातटे**ऽश्रान्तं** संततं **अद्या**धुना **जागर्ति कालान्तरे** घोरे **कलावपि** जागर्त्यन्ये देवास्तदा निद्रिता इव भवन्ति अयं त्व**न्यवन्न निद्राति**।।६६।। तत्रेति स्फुटः।।१।।।। इति टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

त्रयोदशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

आसाद्य भगवान्भीमां ततः किमकरोत्प्रभुः । श्रद्दधानाय मे शंस दुर्ग्रहं तस्य चेष्टितम् ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

गान्धर्वनगरे भीमामरजा संगमे शुभे । कृष्णापञ्चनदीयोग-तुल्ये तस्थौ जगत्प्रभुः ।।२।।

स्थित्वात्र गुप्तभावेन तत्रत्यब्राह्मणालयम् । गत्वा भिक्षां ययाचेऽसौ भक्तोद्धरणहेतवे ।।३।।

दीनभाविकसद्विप्र-दत्तभिक्षाप्रियं द्विजाः। श्रीविद्याढ्या हसन्ति स्म श्रीशं भक्तिप्रियं हरिम् ।।४।।

यथार्के प्रसरत्यभ्र-च्छन्नेऽपि द्योत इद्यथा । सम्पुटस्थितकस्तूरी-गन्धस्तद्वद्धरेर्गुणाः ।।५।।

एकदा दीनविप्रस्य गेहे च्युतरदां वशाम् । महिषीं प्रेक्ष्य स प्राह ब्राह्मणीं देहि मे पयः ।।६।।

सा प्राहेयं वशा भार-वाहिनी नासिकागुणा । योगक्षेममितोऽस्माकं जन्मतोऽपि लुलायवत् ।।७।।

मृषा मा वद तां दुग्ध्वा क्षीरं देहीति भाषिता । गुरुणापि वशां दुग्ध्वा काष्ठपात्रेऽलभत्पयः ।।८।।

विस्मिता सार्पयत्तस्मै कोष्णं कृत्वा पयो मुदा । पीत्वा क्षीरं ययौ प्रेम्णा श्रीगुरुः संगमं द्रुतम् ।।९।।

तत एत्य गृहेशोऽदः श्रुत्वा सस्त्रीक एत्य तम् । गुरुं संपूज्य लब्धेष्ट-वरो हृष्टोऽन्वगाद्गृहम् ।।१०।।

अन्येद्युर्भारवाहार्थं वशामाहर्तुमागताः । कृषीवलाः प्रेक्ष्य दोहं शशंसुर्द्राङ् नृपाय तत् ।।११।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः।। *त्रयोदशे वशां दुग्ध्वा महिषीं राजसेवितः।। रक्षसेऽदाद्गतिं विश्वरूपं च यतये प्रभुः।।१।।* एवं गताध्याये तत्त्वज्ञानोपदेशपूर्वकं श्रीगुरोर्भक्तवात्सल्यं प्रदर्श्याथेदानीं स्वाचरणप्रदर्शनेन रागादिरहितस्य जीवन्मुक्तस्य जगत्पावनत्वं रागद्वेषादियुक्तस्य संन्यासिनोऽप्यकृतार्थत्वं च दर्शयति। **आसाद्य** प्राप्य **प्रभु**र्नित्यमुक्तः श्रीगुरुः **किमकरोत्** कीदृशं चरितं कृतवान् मन्दबुद्धीनां **दुर्ग्रह**मपि **तस्य चेष्टितं श्रद्दधानाय** श्रद्धायुक्ताय **मे** मह्यं **शंस** कथय दुर्ग्रहमपि तस्य चेष्टितं श्रद्धया गृहीतुमुत्सहे।।१।।२।। **गुप्तभावेना**प्रकटितस्वभावेन।।३।। **दीनो भाविक**श्च यः **सद्विप्र**स्तेन **दत्ता भिक्षा प्रिया** यस्य तं **श्रीविद्याढ्या** इत्यनेन मदयुक्ताः सूचिताः।।४।।५।। **च्युतरदां** दन्तहीनां **वशां** वन्ध्यां।।६।। **नासिका**यां **गुणां** यस्याः सा **लुलायवत्**पालितेति शेषः।।७।। **वशां** महिषीं।।८।। **विस्मिता**ऽऽश्चर्यं गता कर्तरि क्तः पूतं शृतं मन्दो**ष्णं पयः कृत्वा**।।९।। **अद** इदं गुरुचेष्टितं।।१०।। **वशां** महिषीं **द्राक्** शीघ्रं।।११।। **विप्रादाकर्ण्य** विप्रमुखात्सर्वं श्रुत्वा **राजचिह्नानि** शिबिकाछत्रचामरादी-

नृपोऽप्याकर्ण्य विप्रात्तच्चतुरङ्गबलान्वितः । गुर्वर्थं राजचिह्नानि गृहीत्वा सङ्गमं ययौ ।।१२।।

तमेत्य प्रणिपत्योचे दण्डवद्गद्गदाक्षरः । पुलकाङ्कितदेहो राड् दीनं माम्पाहि किङ्करम् ।।१३।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

दण्डी वनचरोऽस्म्यङ्ग भिक्षुस्त्वं सेनया सह । राजन्कस्मादिहानन्द-संरम्भादागतोऽसि किम् ।।१४।।

।। राजोवाच ।।

भवान्मायानरो भिक्षुर्नैवास्ति परमेश्वर । हित्वारण्यविहारं भो पावनं कुरु मे पुरम् ।।१५।।

इत्थं श्रुत्वा सकारुण्यमुदारं वाक्यमच्युतः । तथेत्युक्त्वाऽऽययौ प्रेम्णा पुरं पावनपावनः ।।१६।।

भेजे छत्रप्रकीर्णौ राट् पादचारी सुखासने । उपवेश्य गुरुं विप्र-वाहिते तूर्यनिःस्वनैः ।।१७।।

वेदघोषं द्विजाश्चक्रुर्मागधाः स्तोत्रमुत्तमम् । जयघोषं तथाप्यन्य एवं गोपुरमागतः ।।१८।।

गुरुः प्रत्यक्पथं पुर्या एत्वाऽश्वत्थे भयङ्करम् । स ब्रह्मराक्षसं शक्रं ददर्शातीन्द्रियः प्रभुः ।।१९।।

तद्दर्शनान्नराद्भूत्वा प्रशान्तो ह्यवरुह्य सः । गुरुं नत्वोद्धर हरे कुयोनेर्मेत्युवाच तम् ।।२०।।

करस्तन्मूर्ध्नि विन्यस्तो गुरुणाथाभवन्नृवत् । तमाह संगमस्नानाच्छीघ्रं मुक्तो भविष्यसि ।।२१।।

नि।।१२। **तं** गुरुं **प्रणिपत्य** प्रणम्य उवाच **गद्गदाक्षरपुलको**द्गमादि भक्तिलक्षणं **दीनं किङ्करं मां पाहि** इत्यनेन दास्यं ज्ञापितं।।१३।। **अङ्ग** हे राजन् **कस्मा**द्धेतो**रागतोऽसि किमि**त्यनेन किं कार्यमिति सांकेतिकशब्दो लोकसिद्धः।।१४।। **मायानरो**ऽतएव भवान्**भिक्षुर्नैवास्ति भो** परमेश्वरा**रण्यविहार**मरण्यसञ्चारमरण्यक्रीडां वा।।१५।। **उदारं** प्रौढं **पावना**नां ' *अग्निः पवित्रमुच्यते वायुः पवित्रमुच्यते सोमः पवित्रमुच्यते सूर्यः पवित्रमुच्यत इन्द्रः पवित्रमुच्यत* ' इत्युक्तानामग्न्यादीनां पावनानामपि **पावनः**।।१६।। **छत्रे** च प्रकीर्णे **चामरे** च तैः **राट्** राजा **विप्रवाहिते सुखासने** शिबिकायां **तूर्यनिःस्वनै**र्मङ्गलवाद्यघोषैः।।१७।। **जयघोषं** जयजयकारशब्दं **गोपुरं** पुरद्वारं।।१८।। **पुर्याः** पश्चिममार्गमागत्य **शक्रं** घातुकं **अतीन्द्रिय**त्वेनातीन्द्रियविषयज्ञानसंपन्नता सूचिता **प्रभु**शब्देन निग्रहानुग्रहत्वमपि सूचितम्।।१९।। **तद्दर्शना**च्छ्रीगुरुदर्शनात् **नरा**द्राक्षसोऽश्वत्था**दवरुह्य स** राक्षसः **तं** गुरुं **नत्वा मा** मां **कुयोनेरुद्धरेत्युवाच**।।२०।। **तस्य** राक्षसस्य **मूर्ध्नि गुरुणा** स्व**करो विन्यस्तः अथ** करविन्यासानन्तरं **स** राक्षसः **नृवत्** मनुष्यसमानशरीरोऽभवत् **तं** राक्षसं प्राह श्रीगुरु-

१. **पुरं** नगरं अथवाऽभिमानत्वेन ममतास्पदं पुरमिव पुरं शरीरं सप्त शीर्षण्यानि नाभ्यादिसहार्वाञ्चि त्रीणि शिरस्येकमेवमेकादशद्वाद्वारं येषां पालका दिग्वातादयो द्वारपालाः त्वङ्मांसरुधिरमेदोमज्जास्थिस्नायवः प्राकारसदृशाः मूलाधाराद्याज्ञान्तान्यट्टालकसदृशानि सन्धयो यन्त्राणि रोमानि प्राकारपरिस्थितविशाखसदृशानि धातुभिः पूर्णं पुरं श्रुतिश्च '*पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः* ' इति स्मृतिश्च '*नवद्वारे पुरे देही* 'इति ईदृशं पुरं विण्मूत्रश्लेष्मपूर्णत्वादपवित्रमपि **पावनं कुरु** त्वज्ज्ञानसम्पादनक्षमं कुर्विति प्रार्थनाशयः तेन विना ज्ञानसाधनाभावात्।।

इति श्रुत्वा नमस्कृत्य गुरुं स्नात्वा स संगमे । विहाय भौतिकं कायं मुमुचे कर्मबन्धनात् ।।२२।।
दृष्ट्वेदं राडभिष्टूय तस्मा आम्रेडितोक्तिभिः । पुरं नीत्वा सुमठिकां निर्मायास्मा उपानयत् ।।२३।।
खेदं विनयते स्मेश-पूजारार्तिकगायनैः । घोरं सांसारिकं प्रेम्णा नित्यं तदनुगो नृपः ।।२४।।
आह्निकं संगमे भिक्षां ग्रामे निवसतिं मठे । स कृत्वा भक्तवात्सल्याद्राण्णिघ्नो भगवानभूत् ।।२५।।
श्रुत्वाऽऽश्रमानर्हचेष्टामस्यामंस्ताल्पधीर्यतिः । भ्रष्टोऽयं दाम्भिक इति तं त्रिविक्रमभारती ।।२६।।
तज्ज्ञात्वाशेषहृत्संस्थः सर्वसाक्षी जगत्प्रभुः । भूपं प्राहाद्य गन्तव्यं निन्दकार्दनहेतवे ।।२७।।
मन्निन्दकोऽस्ति कुमसी-ग्रामे भिक्षुस्त्रिविक्रमः । इति श्रुत्वा नृपो हृष्टो गमनायोपचक्रमे ।।२८।।
सुपालके तूपवेश्य नृपचिह्नैः परिष्कृतम् । श्रीगुरुं कुमसीग्रामं निन्ये राड् यत्र भारती ।।२९।।
नृसिंहध्याननिष्ठोऽपि स तदा योगिमायया । सम्भूय चञ्चलमना आजह्वे स्तोतुमीश्वरम् ।।३०।।
सुप्रसन्न नृसिंहेश दयाब्धे भक्तभावन । कस्मात्तेऽद्य न सामीप्यं ध्याने स्तोष्ये दयस्व भोः ।।३१।।

रिति शेषः त्वं भीमामरजासङ्गमस्नानाच्छ्रीघ्रं **मुक्तो भविष्यसि** कुयोनेः।।२१।। **इति** श्रीगुरुवाक्यं **श्रुत्वा** तं नत्वा **संगमे स्नात्वा भौतिकं** पञ्चमहाभूतविकारं देहं त्यक्त्वा **कर्मबन्धनात्**स्वयमेव **मुमुचे**।।२२।। **इदं** भगवच्चेष्टितं **दृष्ट्वा राट्** राजा **तस्मै** तादर्थ्ये चतुर्थी **आम्रेडितोक्तिभिः** द्विस्त्रिरुक्ताभिरुक्तिभिः स्तवरूपाभिः **अभिष्टूय** स्तुत्वा श्रीगुरुं **पुरं नीत्वा** शोभनां **मठिकां** अल्पो मठो मठिका अल्पीयसि कन् **निर्माय** विरचय्या**स्मै** श्रीगुरवे निवासार्थ**मुपानय**त्समर्पयत्।।२३।। **ईशस्य** गुरोः **पूजारार्तिकगायनैः सांसारिकं घोरं खेदं विनयते स्मा**पनीतवान् । कर्तृस्थे चाशरीर इत्यात्मनेपदं लट् स्मे इति भूतार्थे लट् गानैरिति वक्तव्ये गायनैरितिशब्दो लोकव्यवहारतः ' *उषसि मागधमङ्गलगायनैः* ' इत्यादिपूर्वाचार्यैरप्युक्तत्वात् यः स्फोटकादिवेदनावानपि गीताद्यासक्ततया तदेकमनाः सन् विद्यमानामपि वेदनां विस्मृत्य गीतादिजन्यमानन्दमनुभवति तथा विद्यमानपि घोरं सांसारिकं खेदमीश्वरपूजारार्तिकगानादिजानन्देनापनीतवान् अनेनैव न्यायेनेश्वरभजनप्रवृत्तानां रागादयो विलीयन्त एवेति ज्ञेयं **प्रेम्णा** स्नेहेन **नित्यं तस्य** श्रीगुरो**रनुगः** तमनुगच्छतीति तदनुगो **नृपो**ऽभूत्।।२४।। **आह्निकं** शौचस्नानदण्डतर्पणप्रणवजपभिक्षाध्यानादि नैत्यकं कर्म लोकसंग्रहार्थं विदुषाऽपि कार्यमिति सत्संप्रदायमनुस्मृत्य **निवसतिं** निवासं **भक्तवात्सल्याद्रा-ण्णिघ्नः** राजाधीनः।।२५।। **आश्रमायोग्यचेष्टां** राजोपचारसेवनरूपां **अयं** संन्यासी **दाम्भिको भ्रष्ट इत्यमंस्त** मन्यते स्म कुतो**ऽल्पधीः**।।२६।। तत्कृतनिन्दाज्ञानाय त्रीणि विशेष-णानि **निन्दकार्दनहेतवे** निन्दकशिक्षार्थं।।२७।। तर्ह्ययं निन्दकाय शिक्षां करिष्यामीति वदसि चेत्तवाधिकारो न यतो **मन्निन्दको भिक्षुः** न हि राजाभिर्भिक्षुर्दण्ड्योऽपराध्यपि।।२८।। **नृपचिह्नै**श्छत्रादिभिरलङ्कृतं **श्रीगुरुं राट्** राजा यत्र त्रिविक्रमभारती स्थितस्तं **कुमसीग्रामं निन्ये**।।२९।। नुर्जीवस्य सिमविद्यां हन्तीति **नृसिंहः** तस्य **ध्याने निष्ठा**ऽन्तःकरणस्थितिर्यस्येदृशो**ऽपि स तदा योगि**नः श्रीगुरो**र्मायया**ऽलब्धभूमिकं **चञ्चलं** विक्षिप्तं **मनं** यस्येदृशो भूत्वा **ईश्वरं** निजदैवतं नृसिंहं **स्तोतुमाजह्वे** आरेभे।।३०।। **ध्याने** ध्येयाकाराखण्डचित्तवृत्तौ **कस्मात्ते सामीप्यं न** भवति अपराधेनेति चे**द्भो** नृसिंह त्वां **स्तोष्ये दयस्व**।।३१।। **एवं स्तुत्वा स** त्रिविक्रमस्तं **नदीतीर**स्थं **ध्याने**न **ज्ञात्वा** सान्निध्याभा-

स्तुत्वैवं स नदीतीरे ध्यानाज्ज्ञात्वा स्थितं विभुम् । त्रस्तचित्तोऽभ्यगाद् द्रष्टुमचिन्त्याव्यक्तविग्रहम् ।।३२।।

तमाह दुर्निरीक्ष्यं मे रूपं दिव्यदृशापि ते । दर्शितं ध्यानहृष्टेन धामाथो पश्य लौकिकम् ।।४३।।

ततः प्रशान्तसंन्यासि-रूपेणावस्थितं हरिम् । दृष्ट्वा प्रकृतिगः प्राह भगवन्तं त्रिविक्रमः ।।४४।।

कायेन मनसा वाचा केवलैरिन्द्रियैरपि । असत्कृतोऽसि विश्वात्मन्मया त्वां क्षामयेऽद्य तत् ।।४५।।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतकार्योऽस्मि दर्शनात् । रूपं पुराऽर्जुनायेदं दर्शितं मेऽद्य तत्पुनः ।।४६।।

हरेऽविद्याप्रवाहे मां मज्जन्तं ज्ञाननौकया । कृपामरुत्संगतया स्वात्मरूपतटं नय ।।४७।।

तीर्त्वाऽविद्यानदीं ज्ञान-प्लवेन परमं पदम् । द्राग्यास्यत्रैव तिष्ठेति तमुक्त्वा श्रीगुरुर्ययौ ।।४८।।

क्षणात्ससैन्यभूपेन साकमेत्य मठं प्रभुः । कर्ममार्गं ततानेशश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।।४९।।

इति श्रीगुरुचरिते ज्ञानयोगे भीमामरजासंगमनिवासो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

ज्ञानमयेन **विशेषेणेक्षितु**मीदृशमिति विषयीकर्तुं **न शशाक** समर्थो न बभूव।।४२।। दुःखेन योगादिकष्टेनापि निरीक्षितुमशक्यं **मे रूपं दिव्यदृशा** ज्ञानदृष्ट्या**ऽपि दुर्निरीक्ष्यं ध्यान-हृष्टेन** मया **ते** प्र**दर्शितं अथो लौकिकं धाम पश्य**।।४३।। इत्युक्त्वाऽस्मै दर्शयामास **ततः प्रशान्तं** शमाद्युपेतं य**त्संन्यासिन** इव **रूपं** तेन स्वाग्रे**ऽवस्थितं** प्रभुं **दृष्ट्वा स्वप्रकृ-तिगस्त्रिविक्रमो भगवन्तं प्राह**।।४४।। **कायेन** करकृततर्जनविकृताननादिना अतिविदूयता **मनसा** धिक्काररूपिण्या **वाचा कैवलैरपीन्द्रियैरसत्कृतोऽसि मया तद**पराधजातं मन-स्यानीयानुतप्तः सन्**त्वामद्य क्षामये**।।४५।।४६।। त्रिविधदुःखं हरतीति **हरिः** तत्सम्बुद्धौ **अविद्या**रूपे **प्रवाहे मज्जन्तं मां** त्वत्**कृपै**वानुकूल**मरुत्** तेन **संगतया ज्ञानं** आत्मयाथात्म्यं तदेव **नौका** तया **स्व**स्य प्रतीच **आत्म**नः परमात्मनश्चाखण्डैकरसं **रूपं** तदेव **तटं** नद्यादेः पर कूलमिव रूपकालङ्कारोऽयं **नय** प्रापय।।४७।। एवमुपसन्नं योग्यं शिष्यं दृष्ट्वो-वाच **श्रीगुरुः ज्ञानं** तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यं लक्षणया लक्षितं तदेव **प्लव**स्तेन **अविद्यै**व **नदी** दुर्विगाह्यत्वात् तां **तीर्त्वा** श्रवणादिना भानावरणरूपां चिदन्वयदृष्ट्या प्रारब्धभोगेन विक्षेपरूपां चाविद्यां प्रतिहायेति यावत् **परमं** देशाद्यनवच्छिन्नं सजातीयादिभेदरहितं **पदं** पद्यते योगिभिर्गम्यते तत्पदं प्रत्यगभिन्नपरमात्मस्वरूपं **यासि** अस्मिन्नेव जन्मनि ते मोक्षः न क्रमत इति वक्तुं यासीत्युक्तं **अत्र** नृसिंहध्यानपूर्वकं तत्त्वज्ञानविवेचन एव **तिष्ठ** स्था गतिनिवृत्तावित्यस्माद्धातोः मनोगतिनिवृत्तिं कुरु अत्रैवेत्यवधारणेनानात्मनि देहेऽहं दण्डी संन्यासी मयेदमाह्निकं शौचाचारजपादिरूपं करणीयं ये संन्यासिनो नानुतिष्ठन्ति ते निन्द्या ये चानुतिष्ठन्ति ते वन्द्या इत्यादिरूपं दुराग्रहं सर्वथैव परित्यज्य ईशावास्येति श्रुत्यनुशास-नात् यद्यपि '*कुर्वन्नेवेह कर्माणि* ' '*विद्यां चाविद्यां च* ' इति श्रुत्यनुशासनं त्यक्तैषणस्याधिकारिणस्तव तदनुष्ठानं नोचितं चित्तविक्षेपेण ज्ञानस्यासम्भवात् अन्यस्य तु विमुखस्य जिजीविषोः साधनविकलस्य स्वाश्रमोचिताननुष्ठाने प्रत्यवायादुभयतोऽपि भ्रंश एवेति सूचितं **इति तमुक्त्वा श्रीगुरुर्ययौ** मठमिति शेषः।।४८।। **क्षणा**द्योगगत्येत्यर्थः ईश्वरेण मया परित्यक्ते स्वाश्रमोचितकर्मणि लोका अपि तथैव त्यक्षन्ति तेन चानर्थ एवातएव स्वयमनुष्ठेयो धर्मोऽन्यतोऽनुष्ठातव्य इति **लोकसंग्रहं चिकीर्षुः**।।४९।।।।

इति टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

।।चतुर्दशोऽध्यायः।।

।। नामधारक उवाच ।।

ज्ञानयोग इयानुक्तः सिद्धयै संन्याससत्पथः। कुतो भगवता पश्चात्कर्मयोगः प्रकाशितः ।।१।।

अविद्याघातकं कर्म तदुत्थं कथमित्यमुम्। छिन्धि मे संशयग्रन्थिम् भगवच्चरितासिना ।।२।।

।। सिद्ध उवाच ।।

कर्कटीं तद्भवा घ्नन्ति यथा मृत्क्षालनं मृदा । तथाऽविद्या च कर्मापि कर्मणैव विलीयते ।।३।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ चतुर्दशोऽध्यायः।। *एवं त्रयोदशाध्यायैर्ज्ञानकाण्डः समर्थितः।। शुद्धान्तःकरणोऽनेन मुच्यते कर्मबन्धनात्।।१।। येऽशुद्धमानसास्तेषां पापकर्मक्षयाय हि।। वैराग्योत्पत्तये चेयं पञ्चाध्यायी वितन्यते।।२।। मत्तद्विजाभ्यामाभाष्य वेदतत्त्वं चतुर्दशे।। ज्ञानं दत्वान्त्यजायाशु प्रभुर्विप्रावशिक्षयत्।।३।। 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ', ' नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ', ' ब्रह्मविदाप्नोति परं '* इत्यादिश्रुतिभ्यः कर्मन्यासपूर्वकश्रवणादिजन्यज्ञानेनैव मोक्षश्रवणात् ' *कर्मणा बध्यते जन्तुः* ' इति कर्मणो बन्धकत्वस्मरणात् च किमर्थोऽयं पुनः कर्मकाण्ड इति **नामधारकः** पृच्छति। द्वाभ्यां **संन्यास** एव शोभनः **पन्था** यस्येदृश **इयान्ज्ञानयोगो** मोक्षसिद्ध्या **उक्तः कुतः** कारणा**त्पश्चाद्भगवता कर्मयोगो**ऽयं **प्रकाशितः**।।१।। ननु नवमाध्याये ' *तस्मात्कृध्वं स्वाश्रमार्हं कृत्यं पातोऽन्यथा भवेत्* ' इति श्रीगुरुणैवोक्तत्वात्कुतो न्वियमाशंकेत्यत आहाविद्येति **तदुत्थं** अविद्योत्थं अविद्ययाऽविवेकोऽविवेकाद्देहाद्यभिमानोऽभिमानाद्रागादि रागादेः कर्म चैवं परम्परयाऽविद्योत्थं **कर्माविद्याघातकमित्यमुं मे संशयग्रन्थिं भगवच्चरित**रूपा**सिना छिन्धि**।।२।। एवं प्रश्नं श्रुत्वा ज्ञानं फले मोक्षे नैरपेक्ष्यं ' *अतएव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा* ' इति न्यायात् स्वनिर्वर्त्यनिर्वर्तनेऽन्यानपेक्षमपि स्वोत्पत्तौ कर्मादिसापेक्षं ' *सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेः* ' इति न्यायात् ज्ञानकाण्डस्य कर्मकाण्डेन सह साध्यसाधनभावसम्बन्धः ज्ञानं साध्यं कर्माणि तु संस्कारत्वेन वा विविदिषोत्पादनेन वा ज्ञानसाधनानि संस्कारत्वमेवं स्मर्यते ' *यस्यैते चत्वारिंशत्संस्काराः स ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां जयति* ' इति ते च संस्काराः गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामकर्मान्नप्राशनं चौलमुपनयनं प्राजापत्यसोम्याग्नेयवैश्वदेवाख्यानि चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मिणीसंयोगः देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्मयज्ञो मनुष्ययज्ञ इति पञ्चमहायज्ञा अष्टकान्वष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजाख्यसप्तपाकयज्ञा अग्न्याधानाग्निहोत्रदर्शपूर्णमासाग्रयणचातुर्मास्यनिरूढपशुबन्धसौत्रामण्याख्यसप्तहविर्यज्ञा अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोळशी वाजपेयोऽतिरात्राप्तोऽर्याम इति सप्त सोमयज्ञा एवं चत्वारिंशत्संस्काराः कैश्चिदष्टात्मसंस्कारसहिता अष्टाचत्वारिंशत्संस्कारा उक्ता एतैः पुरुषस्य चित्तं संस्क्रियते ज्ञानयोग्यतामापद्यते ' *तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन* ' इति श्रुतेर्विविदिषोत्पादनं श्रूयते ' *विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि* ' इति न्यायाद्विद्याहेतुभिरेवाश्रमसिद्धिः ' *महापापवतां नृणां ज्ञानयज्ञो न रोचते।। प्रत्युत ज्ञानयज्ञस्तु प्रद्वेष्यो भासते स्वत* ' इति स्मरणाच्च ज्ञानप्रतिबन्धके पापे परमेश्वरार्पितकर्मभिर्नाशिते सति श्रवणादौ रुचिरुत्पद्यते सैव विविदिषा पारम्पर्यलभ्या उक्तं च वार्तिकसारे ' *रुचिद्वारोपकुर्वन्ति कर्माण्यात्मविमुक्तये। अज्ञानस्याविरोधित्वान्न साक्षादात्मबोधवत्। अविद्याया न चोच्छित्तौ ज्ञानादन्यदपेक्षते। ज्ञानोत्पत्तौ तु नैवान्यच्छमादिभ्यो ह्यपेक्षते। शमाद्युत्पत्तये नान्यद्बुद्धिशुद्धेरपेक्षते।* बुद्धिशुद्धौ *च नित्यादिकर्मभ्यो नान्यादिष्यते। पारम्पर्येण कर्मैवं ज्ञानायैवोपयुज्यत* ' इति। अपि च साधनं कर्म तेनैतत्साध्यं ब्रह्मात्मज्ञानमित्यभिप्रेत्य ज्ञानकर्मकाण्डयोः साध्यसाधनभावसम्बन्ध इत्युत्तरं दातुं **सिद्ध उवाच** कर्कटीमिति। अविद्याघातकं कर्मेत्यस्य तावदुत्तरमाह **तद्भवाः** कर्कटीपोताः क्षुरधारावत्तीक्ष्णप्रपदाग्रैर्गर्भाशयस्था अपि मृदुलतरोदरां स्वमातरमपि कर्कटीं घ्नन्ति तस्मात्तदुत्पन्नं तद्घातकं नैति नात्र नियमः किं तु यद्यस्य विरोधी तत्तस्य घातकं अपि च

साधनावधि तत्कार्य-मुपात्तपरसाधनः । ततः संन्यस्य शमवान्भवेन्नैष्कर्म्यसिद्धिभाक् ।।४।।

प्रकृत्युत्थगुणैः कोऽपि जात्वकर्मा न तत्फले । सक्तोऽज्ञोऽसक्त इद्विद्वानस्येदं लोकसंग्रहे ।।५।।

अहं यथानुतिष्ठामि लोकस्तदनुगो भवेत् । नेदं साध्विति मत्वाऽजः कर्मयोगं जगौ प्रभुः ।।६।।

कर्मयोगमयं तस्य चेष्टितं शृणु सादरम् । यच्छ्रुत्वा भवसम्बन्धं छित्वा याति परं पदम् ।।७।।

ब्रह्मध्रुग्यवनो राजा कश्चिद्धिंस्त्रोऽभवत्खलः । सदस्याहूय विप्रान्स स्वाग्रे वेदानपाठयत् ।।८।।

वेदान्पठन्ति ये सार्थास्तेभ्यो दास्ये धनं बहु । इत्याकर्ण्य तदुक्तं ये रैलुब्धास्ते तथाऽभजन् ।।९।।

श्रुत्वा खलोऽपि वेदार्थं द्विजाग्रे ब्राह्मणाञ्छ्रुतीः । अकुत्सयद्गवाशेन मिथ्याचारो मतोऽखिलः ।।१०।।

एवं सत्येकदा विप्रौ वैदिकावेत्य दुर्विधौ । मत्तौ तमूचतू राजन् वेदशास्त्रविदौ स्व इत् ।।११।।

यथा भाण्डादौ नितान्तसंलग्न**मृत्क्षालनं** सजातीयया **मृदा** भवति **तथाऽविद्या** कर्मजननी तज्जं जन्मान्तरप्रापकं **कर्म चे**श्वराराधनबुद्ध्या संगफलाभिसंधिवर्जितेन पुरुषेणानुष्ठितेन **कर्मणैव** योगसंज्ञितेनैव **विलीयते** तथाविधानुष्ठानाभावे '*वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुत्सादयते*' इत्यादिश्रुतेः प्रत्यवायोत्पत्त्या ज्ञानवार्तापि दुर्लभेति भावः स्मृतिश्च '*तस्माद्योगाय...*', '*कर्मजं बुद्धियुक्ता...*', '*जन्मबन्ध...त्यनामयम्*' इति।।३।। तर्हि '*कुर्वन्नेवे......समाः*', '*यावज्जीव अग्निहोत्रं जुहोति*', '*तं यज्ञपात्रैर्दहन्ति*' इत्यादिश्रुतिभ्यो नृणां सर्वायुषः कर्मभिर्व्याप्तत्वात् '*संन्यस्य श्रवणं कुर्यात्*' इति चोदनया सहानुष्ठानासंभवाज्ज्ञानोत्पादनकालाभावे मोक्षोऽपि न स्यादितित्यत आह **तन्नि**ष्कामतया नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानं शमादि**साधनावधि कार्य**मनुष्ठेयं पूर्वमन्तःकरणशुद्धये साधनं बहिरङ्गं कर्म तत्साध्याः शमादयोऽन्तरङ्गभूताः तत्साध्यं ज्ञान अत **उपात्तपरसाधनः** शमादिसंपन्न**स्ततः** कर्मं **संन्यस्य शमवान्नैष्कर्म्यसिद्धिभाग्भवेत्** '*नैष्कर्म्यसिद्धिं...ति*' इति स्मृतेः। कर्मत्यागवदारूढस्य शमत्यागप्राप्तौ तच्छङ्कापनुत्यै शमवान्भवेदित्युक्तं '*आरुरुक्षोर्मु..च्यते*' इति स्मृतेः अयं भावः '*कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा*' इति वचनाच्छमाद्यसंपत्तौ संन्यासः पातित्याय तत्संपत्तौ तु '*यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्*' इति श्रुतेर्ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा संन्यासोऽन्यथा यावज्जीवश्रुत्या कर्मानुष्ठेयं एवं सति पूर्वापरकाण्डश्रुत्यविरोधः अन्यच्च।।४।। **कोऽपि जातु** कस्यांचिदवस्थायां **प्रकृति**जै**र्गुणैरकर्मा न** भवति तर्हि ज्ञोऽपि करोतीति चेज्ज्ञाज्ञयोः को विशेष इत्यत आह सक्त इति **विद्वाना**त्मतत्त्वमिति शेषः विदेः शतुर्वसुरिति वस्वादेशः **न** लोकाव्ययेति षष्ठीनिषेधः **अज्ञः फल**बुद्ध्या कर्म**सक्तः** फलनिरपेक्षो **ज्ञ**स्तु कर्माना**सक्तः** इति शेषः तर्हि फलरूपप्रयोजनाभावे '*प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तत*' इति वचनाज्ज्ञस्य कुतः कर्मणि प्रवृत्तिरित्यत आह अस्येदमिति।।५।। ज्ञस्य तु लोकसंग्रहार्थं युक्तमेव श्रीगुरोः किमर्थमिति चेत्तन्मतमेवानुवदति **अह**मिति **यथाऽनुतिष्ठामि** तुर्याश्रमविरुद्धतया राजभक्तिवशाच्छिबिकारोहणादि करोमि **लोकः** स्वाश्रमवर्ती **तदनुगः** तदनुसारी **न साधु** संकरपर्यवसायित्वात्।।६।। **कर्मयोग**प्रचुरं **तस्य** श्रीगुरोः।।७।। **ब्रह्म**द्वेष्टा **कश्चिद्**ब्राह्मणघातुको **यवन**जातीयो **राजा**।।८।। **अर्थ**सहितान् **वेदान् पठन्ति** वर्तमानसामीप्यात् पठिष्यन्ति **रैलुब्धाः** द्रव्यलम्पटाः **तथाऽभजन्** तदग्रे सार्थान् वेदान् पठन्।।९।। **खलो** राजा **ब्राह्मणान्** यज्ञशेषामिषभक्षकान् **श्रुतीः** स्वर्गाद्यर्थप्रतिपादकाः अद्वैतात्मतत्त्वप्रतिपादकाश्च गर्हयामास **गवाशेना**कालपक्वमांसभक्षकेना**खिलो** मुखाद्यवयवैर्देहसाम्ये वर्णाश्रमादिरूपोऽचेतनोपलादौ अन्यत्राश्वत्थादौ वा देवताकल्पनरूपश्च।।१०।। **दुर्विधौ** दरिद्रौ **मत्तौ** विद्यामदमोहितौ **तं** यवनराजं **वेदशास्त्रा**भिज्ञौ आवां **स्वः**

अस्मत्तुल्यौ न कौ क्वापि त्वन्निघ्नाश्चेदिहानय । श्रुत्वेदं स्वाश्रितेभ्यो राट् शशंसोचुः खलं हि ते ।।१२।।

न यान्ति संमुखे केऽपि तयोस्तत्तौ समर्चय । राजाप्यानर्च तौ विप्रौ गजावारोह्य भूषितौ ।।१३।।

जैह्व्यौपस्थ्यसुखासक्ति-निदानेनेदृशी स्थितिः । वेदज्ञानामधःपात-शङ्कावर्जितचेतसाम् ।।१४।।

।। विप्रावूचतुः ।।

विद्यापरिश्रमो वादं विना न सफलोऽस्ति नौ । तदाज्ञापय गच्छावो गां जेतुं विदुषो द्विजान् ।।१५।।

स तथाप्यादिशद्विप्र-पराभवपरो नृपः । जयपत्रं द्विजान्जित्वा गृह्णन्तौ चेरतुर्भुवम् ।।१६।।

वावदूकतया मिथ्या द्विजांस्तर्जयतोः सदा। विवादं त्याजितैः प्राज्ञैर्जयोऽभूद्विशदस्तयोः ।।१७।।

त्रिविक्रमं त्रयीज्ञं तौ श्रुत्वागत्योचतुः कुरु । चेद्वेदज्ञोऽसि वादं नौ देहि वा जयपत्रमित् ।।१८।।

।। त्रिविक्रम उवाच ।।

वेदज्ञास्त्वादृशाः पूज्या द्विजौ नाहं तथाविधः । यतौ जयाजयसमे जिते किं वां भवेदिह ।।१९।।

पश्येमान्यमितानि त्वं पत्रं देहीति भाषितः । ताभ्यां दास्ये गुरोरग्र इत्युक्त्वा श्रीगुरुं ययौ ।।२०।।

तौ मत्तौ स्वासनारूढौ मूढौ तमनुजग्मतुः । मठे श्रीगुरुमासाद्य तमस्तौषीत् त्रिविक्रमः ।।२१।।

नम ॐकाररूपाय निर्गुणाय गुणात्मने । जगद्गुरो परानन्द-मूर्ते जय जयाच्युत ।।२२।।

इदेवार्थः।।११।। **त्वन्निघ्ना**स्तवाधीनाः सन्ति **चेत्तानिह** वां प्रत्या**नय इदं** मत्तविप्रवचः **राड्**राजा **शशंस** कथयामास **ते** आश्रिताः **खलं** राजान**मूचुः**।।१२।। तयोः **संमुखं न यान्ति** न यास्यन्तीति भावः **तत्त**स्मात् **आनर्च** पूजयामास।।१३।। **जैह्व्यसुखं** रसास्वादः **औपस्थ्यं सुखं** स्त्रीलम्पटताऽनयो**रासक्ति**रेव **निदानं** वेदविक्रयस्यादिकारणं तेना**धःपातशङ्कावर्जितचेतसां** मृत्युगोचराणां नास्तिकानां ' *अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनःपुनर्वशमापद्यते मे* ' इति यमोक्तेः।।१४।। **गां** भूतलं।।१५।। **स** नृपः।।१६।। **वावदूकतया**ऽतिवक्तृत्वेन **मिथ्या** छद्मना **द्विजांस्तर्जयतोः** तर्जिभत्स्योरनुवादात्तत्वेऽपि चक्षिङो ङित्करणात्वात्परस्मैपदमिति वामनः **प्राज्ञैर्विवादं त्याजितै**स्त्यजेर्ण्यन्ताद्विकर्मकादप्रधाने कर्मणि क्तः **तयोः विशदः** स्फुटः उल्बणं विशदं स्फुटमिति यादवात् **अभूत्**।।१७।। तमा**गत्योचतुः वेदज्ञोऽसि चेद्वादं कुरु वा** अथवा **जयपत्र**मेव **देहि नौ** आवाभ्यां।।१८।। **वेदज्ञा** इति सोपहासवचनं ' *न ह्यनद्ध्यात्मविद्वेदं ज्ञातुं शक्नोति तत्त्वतः। न ह्यनद्ध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुत* ' इति।।१९।। **इमानि** जयपत्राणि तथा **त्वं देहीति ताभ्यां भाषितः गुरोरग्रे दास्या**मीत्यु**क्त्वा गुरुं ययौ**।।२०।। **स्वासनारूढौ** पादचारिणं तं यति**मनुजग्मतु**रतो **मूढौ आसाद्य** प्राप्य।।२१।। हे भगवन्यतस्त्वं मायागुणविलसितसंसारबन्धरहितः सहजसुखनिमग्नो द्वैताद्वैतसंगशून्यस्त्रिविधपरिच्छेदरहितः सजातीयविजातीयादिभेदविधुरस्तुल्यनिन्दास्तुतिः शत्रौ मित्रे चैकरूपः भवाब्धिपति-

नाज्ञानान्धः परं वेत्ति यं घूक इव भास्करम् । स त्वं भो मत्तविप्रद्विड्-द्विजौ शासितुमर्हसि ।।२३।।

स्तुत्वैवमादितः सर्वं शशंसागमकारणम् । तौ प्राह गुरुरप्याप्तौ साध्यमेतेन किं द्विजौ ।।२४।।

।। विप्रावूचतुः ।।

राज्ञाज्ञप्तौ द्विजान्जेतुमावां विद्वत्तमौ भुवि । अत्रानीतावनेनोभौ भिक्षू किं वेदपारगौ ।।२५।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

गर्वेणैव प्रणष्टाः स्यू राक्षसा असुरा द्विजौ । अनादीन्कृत्स्नशोऽनन्तान्कोऽपि वेदान्न वेद रे ।।२६।।

ब्रह्मचर्याश्रमे वेदान्पठितुं प्राक्तपोऽतपत् । भरद्वाजो विधिः प्रीतस्तस्मै वेदानदर्शयत् ।।२७।।

दृष्ट्वा भास्वद्वेदराशीन् शङ्कितोऽभूदृषिर्ददौ । त्रीन्मुष्टीनृषयेऽद्यापि पठ्यमानो न पारगः ।।२८।।

पैलो वैशम्पायनश्च जैमिनिश्च सुमन्तुकः । ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या अशिक्षन्त श्रुतीः क्रमात् ।।२९।।

गुरुर्व्यासो हरिः साक्षात्ततोऽत्र प्रसृता श्रुतिः । पठिताः कतिचिद्वेदा आयुष्मद्भिर्युगान्तरे ।।३०।।

तजनतारणनौकाभूतः प्रसन्नेन्द्रियकलापः प्रहसितवदनो निश्चिन्तः कृतार्थः सच्चिदानन्दब्रह्मरूपेणावस्थितः अत एव ॐकाररूपोऽसि तस्मै ते **ॐकाररूपाय नमः** किं सगुणेन नमस्करोषि न **निर्गुणाय** निर्गुणत्वे कथं शब्दगोचरत्वमत आह **गुणात्मने** भक्तानुग्रहार्थं स्वीकृतगुणात्मदेहाय ते नमः **जगतां गुरु**स्तत्सम्बुद्धौ **परमानन्दो** निरुपाधिको निरतिशयः स एव **मूर्ति**र्यस्य नास्मादिवत्कर्मोपात्तमूर्तिस्तत्सम्बुद्धौ भक्तानामावरणशक्तिरूपमायानिवारणेन **जयो**त्कर्षमाविष्कुरु द्विरुक्तिरादरार्था ईदृक्सम्पादनसामर्थ्यद्योतनाया**च्युते**ति सम्बुद्धिः अवतीर्णस्यापि तव सर्वज्ञत्वसर्वेश्वरत्वसर्वशक्तित्वादेरप्रच्युतत्वात्त्वं परमेश्वर इति भावः **जयानन्तकृपाब्धे भक्तवत्सल** इति पाठे स्फुटार्थ एव।।२२।। तर्हीदृशं मां लोकः कुतो न जानात्यत आह कार्यकारणेभ्यः **परं** ज्योतिरूपं **यं अज्ञानान्धो भास्करं घूको** दिवान्ध **इव न वेत्ति स त्वं** ज्ञानप्रदीपोऽसि भवतु नाम तथा किमर्थं तवागमनं तत्राह इमौ **मत्तौ** विद्यामदगर्वितौ अतो **विप्रद्विषौ द्विजौ शासितुं** योग्यो**ऽसि**।।२३।। **आप्तौ** प्राप्तावपि **तौ प्राह** हे **द्विजौ एतेन** ब्रह्मद्वेषेण **किं साध्यम्**।।२४।। **अनेन** त्रिविक्रमेण **उभौ** युवां **भिक्षू वेदपारंगतौ किमि**ति गर्वोक्तिः।।२५।। हे **द्विजौ असुरा** बलिबाणप्रभृतयः **राक्षसाः** रावणादयः **रे** इत्याक्षेपसम्बोधनं अपौरुषेयत्वा**दनादीन्** ननु '*त्रयो वेदस्य कर्तारो मुनिभाण्डनिशाचरा* ' इत्युक्त्वात्कथं तेषामनादित्वमिति चेत्तन्मतस्य शास्त्रबाह्यत्वात् ' *अरेऽस्य निःश्वसितमेवैतद्यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस* ' इति श्रुतेरनादित्वं **अनन्तान्** '*अनन्ता वै वेदा* ' इति श्रवणात् **कोऽपि** ब्रह्माऽपि।।२६।।'*मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते* ' इति मरुद्भिर्जन्मन्युक्तत्वा**द्भरद्वाज**नामा ऋषिः।।२७।। **भास्व**तो **वेदराशीन्** ब्रह्मणा दर्शिता**न्दृष्ट्वा** कदाऽहं पारं गमिष्यामीति **शङ्कितोऽभू**त्तदा ब्रह्मा स्व**मुष्टि**त्रयपरिमितान्पुस्तकरूपान्वेदा**नृषये** भरद्वाजाय **ददौ** सो**ऽप्या**युष्मान्मेधावी तान्**पठ्यमानो**ऽप्य**द्यापि न पारग** इतरेषां तु का कथा इतिहासस्यास्य नार्थवादत्वं वैदिकत्वात्।।२८।। **पैला**दयोऽनुक्रमेण **ऋगा**दिसंज्ञकाः **श्रुतीरशिक्षन्ता**भ्यस्तवन्तः गुरोरिति शेषः आख्यातोपयोग इति पञ्चमी सापेक्षत्वात्।।२९।। यतो**ऽत्रा**स्मिन्काले **श्रुतिः प्रसृता** स **साक्षाद्धरिर्व्यास**स्तेषां **गुरुः युगान्तरे** कृतादिषु **आयुष्मद्भिः कतिचिद्वेदा** अधीताः।।३०।। **अत्र** तु कलौ **मन्दा**

शाखयैवाल्पायुषोऽत्र मन्दा वेदज्ञमानिनः। प्रतिग्रहपरान्नस्त्री-सक्ताः सिद्धिविवर्जिताः ।।३१।।

व्यासेनोक्ताश्चतुर्वेदाः शाखाङ्गोपाङ्गसंयुताः । आयुर्वेदस्ततो रुग्हृदृग्वेदस्योपवेद उत् ।।३२।।

स्वर्णोऽत्रिगोत्रजो गायत्रच्छन्दो ब्राह्मदैवतः । द्व्यरत्निमात्रो दीर्घाक्ष ऋग्वेदो व्यक्तकन्धरः ।।३३।।

शाकला बाष्कला तस्याः सांख्यायन्याश्वलायनि । माण्डूक्येत्थं पञ्च शाखा अष्टौ विकृतयस्त्वृचः।।३४।।

निरुक्तं व्याकृतिर्ज्योतिश्छन्दः शिक्षा च कल्पकः । अस्येमानि षडङ्गानि वेत्तीमं कोऽद्य कृत्स्नशः ।।३५।।

पञ्चारत्निमितोऽर्काभः कपाली कृशदीर्घकः । यजुर्वेदो धनुर्वेदः क्षत्रेष्टोऽस्योपवेद उत् ।।३६।।

त्रिष्टुप्छन्दो भरद्वाज-गोत्रजो विष्णुदैवतः । षडशीतिभिदोऽङ्गानि प्राग्वदाष्टादशास्य तु ।।३७।।

परिशिष्टान्युपाङ्गानि षडेवैष इयान् ततः । क्षमी दान्तः शुचिः स्त्रग्वी चर्मी दण्डी तृतीयकः ।।३८।।

षडरत्निमितोऽस्योप-वेदो गान्धर्वसंज्ञकः । रुद्राधिदेवो जगतीच्छन्दः काश्यपगोत्रजः ।।३९।।

हता नष्टाश्चापि शिष्टा नवाष्टौ च भिदोऽस्य तु । सामाङ्गोपाङ्गभेदेन कः पुमान्वेदितुं क्षमः ।।४०।।

चण्डस्तीक्ष्णोऽसितः काम-रूपी क्षुद्रक्रियोऽशुभः। स्वदारातुष्टोऽथर्वाख्यः शस्त्रास्त्रोपाङ्गवेद उत् ।।४१।।

दुर्मेधसोऽल्पायुषोऽपि एक**यैव शाखा**याधीतया **वेदज्ञमानिन**स्तथापि दु**ष्प्रतिग्रहपरान्नस्त्रीसक्ताः** अतएव मन्त्रसिद्धिविवर्जिताः।।३१।। **शाखा** आश्वलायन्यादयो**ऽङ्गानि** शिक्षाप्रभृतीनि अन्यान्यु**पाङगानि** च तैः **सहिताः ऋग्वेदस्योपवेद आयुर्वेदः** रुजं हरतीति **रुग्हृत्त**द्विशेषणं **ततो** विस्तृतः न तु संकोचितः **उत्** उत्कृष्ट आयुर्वर्धकत्वात्।।३२।। शोभना **अर्णा** अक्षराण्यस्य स परिमिताक्षरगायत्र्यादिछंदोभिर्ऋक्शः शोभमानत्वात् सुवर्णसदृशवर्णो वा **द्व्यरत्निमात्र** इति ध्यानार्थं रूपकल्पना मूर्तिध्यानार्षछंदोदेवतानुस्मरणं चोपासनाङ्गमिति गम्यते।।३३।। ऋच **इत्थं शाखा अष्टौ** च **विकृतयः** ताश्च ' *जटा माला शिखा लेखा ध्वजो दण्डो रथो घन* ' इति।।३४।। **व्याकृति**र्व्याकरणं **ज्योति**र्ज्योतिःशास्त्रं **कल्पः** सूत्रं **अस्य** ऋग्वेदस्य **इमं** वेदं व्याकरणादीनि मूलान्येव।।३५।। **अर्काभः** सूर्यकान्तिः **कपाली** कपालहस्तः **कृशो दीर्घ**श्च **अस्य** यजुर्वेदस्य **क्षत्रेष्टः** क्षत्रियप्रियः **धनुर्वेद उपवेदः**।।३६।। **त्रिष्टुप् छंदो** यस्य **षडशीति भेदा** शाखा षड**ङ्गानि** पूर्ववत्।।३७।। **अस्य त्वष्टादश परिशिष्टानि षडुपाङ्गानि एष** यजुर्वेद **इयान्ततः** विस्तृतः **क्षमी**त्यादीनि साम्नः स्रङ्मालाऽस्यास्तीति **स्त्रग्वी** अस्मायेति विनिः।।३८।। अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिनेति लक्षणलक्षितमानेन **षडरत्नि**परि**मितः अस्य** साम्नः **गान्धर्वसंज्ञकः उपवेदः**।।३९।। केचनेन्द्रेण **हताः** केचन कालवशा**न्नष्टाः** एवं सत्यपि **नवाष्टौ चा**स्य भेदाः शाखाः।।४०।। चतुर्थमाह चण्डोऽभिचारादिप्रयोगप्रवर्तकत्वात् **चण्डस्तीक्ष्णः क्षुद्रक्रियः** वशीकरणाद्यैहिकफलदक्रियाप्रवर्तकत्वात् ईदृशश्चेत्पातायेत्यत आ**हाशुभः** ईश्वरोद्देशेन सेवितोऽसौ शुभदः अथवा प्रश्नमुण्डकमाण्डूक्याद्युपनिषद्भागेन मोक्षदत्वान्न विद्यते शुभो यस्मात् ' *अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा* ' इति श्रुतेः **शस्त्रास्त्र**शब्देन यन्त्राद्यत्र गृह्यते पूर्वं धनुर्वेदस्योक्तत्वा-

बैजानगोत्रजोऽनुष्टुप्छन्दा एषैन्द्रदैवतः । नवास्य भेदाः संपूर्णाः कल्पाः पञ्चात्र वेत्ति कः ।।४२।।

वर्षेऽद्य भारते कर्म-भ्रष्टा हीना द्विजातयः । वेदान्क्रीणन्त्यन्त्यजाग्रे सत्त्वहीना अतोऽभवन् ।।४३।।

उत्सृष्टोपाकृताभ्यस्त-गुप्तवेदमनुर्भुवि । किं न दास्यति विप्रेभ्यः प्रत्येकः कामधेनुवत् ।।४४।।

देवाधीनं जगन्मन्त्र-निघ्ना देवास्तु मन्त्रकाः । ब्रह्माधीना ब्राह्मणा मे देवता विष्णुरब्रवीत् ।।४५।।

सर्वस्वदक्षिणा भूपैर्दत्तापि ब्राह्मणैः पुरा । नात्ता कृतोऽद्रिस्तृणवत् सुसत्त्वाच्चाद्रिवत्तृणम् ।।४६।।

वशसर्वामरास्तेऽपि तदा स्वल्पज्ञमानिनः । युवां भ्रष्टौ भ्रष्टमन्त्रौ स्वल्पज्ञौ प्राज्ञमानिनौ ।।४७।।

आत्मस्तुतिपरौ ब्रह्म-द्विषौ साध्वात्मवञ्चकौ । त्वत्तुल्या ये पुरा जाता जातास्ते ब्रह्मराक्षसाः ।।४८।।

।। विप्रावूचतुः ।।

नैतावच्छ्रोतुमाप्तौ स्वो विवादं कुरु चेन्न वाम् । तच्छक्तिर्जयपत्रं नौ युवाभ्यां दीयतामिति ।।४९।।

तथेत्युक्त्वोद्वीक्ष्य यान्तमानयित्वान्त्यजं प्रभुः । लेखा उल्लिख्य सप्ताभ्युत्क्रामयन्तमवाचयत् ।।५०।।

प्राचीनसप्तजन्मज्ञो रेखास्पर्शनतोऽभवत् । आद्यां गत्वास्मि बुरडो मातंग इति भाषितम् ।।५१।।

द्वितीयां तु किरातोत्थो रावणाख्य इतीरितम् । तृतीयां च नदीतीरस्थो गाङ्गेय इतीरितम् ।।५२।।

त्।।४१।। **सम्पूर्णाः** साङ्गाः **भेदाः** शाखाः अत्रेदृशान्वेदान्**को वेत्ति** न कोऽपि।।४२।। **कर्मभ्रष्टाः** स्वाचारहीनाः अतएव **हीनाः** अतो हेतोः **सत्त्वे**न मन्त्रवीर्येण **हीनाः** केवलाक्षरधारिणोऽभवन्।।४३।। सुतीर्थादागतं व्यक्तमित्यादिशिक्षयाऽ**भ्यस्तः** स्त्रीशूद्रादिश्रुत्यगोचरत्वेन भोजनादिनियमेनानध्यायादिपालनेन च **गुप्त उत्सृष्ट उपाकृत**श्चासौ अभ्यस्तगुप्त**वेदमनु**र्मन्त्रः सर्वमपि दास्यत्येकैकः किं पुनर्वेदः।।४४।। **जगद्देवाधीनं** अधिदैवतरूपेण ते **देवा मन्त्रा**धीनाः '*प्रनूनं ब्रह्मणस्पति...यस्मिन्निन्द्र..र*' इति श्रुते**र्मन्त्रा ब्रह्माधीना** ब्राह्मणाधीनास्तेषामधिकारित्वात्।।४५।। **भूपैः सर्वस्वदक्षिणा दत्ताऽपि ब्राह्मणैः पुरा नात्ता** न स्वीकृता प्रतिग्रहस्य तपस्तेजोयशोनाशकत्वात् **सुसत्त्वा**च्छोभनमन्त्रबलात् **अद्रिस्तृण**प्रायः **कृतः अद्रिवत्तृणं** कृतं।।४६।। **वशा** अधीनाः **सर्वेऽमरा** येषां ते '*यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति*' इति श्रुतेः आत्मानं **स्वल्पज्ञमानिनः** गर्वमत्सरहीनाः स्वज्ञातिभ्यो **भ्रष्टौ** म्लेच्छाग्रे वेदपाठात् **भ्रष्टमन्त्रौ** सुतराम**ल्पज्ञा**वपि आत्मानं **प्राज्ञमानिनौ**।।४७।। **आत्मस्तुति**प्रियौ अकुटिलस्वभावप्रत्य**गात्मवञ्चकौ** आत्मा हि सर्वजन्तूनां प्रत्यक्स्वसंवेद्यः **ब्रह्म**द्रोहिणौ।।४८।। **एतावन्**मात्रं **श्रोतुं न** प्राप्तौ अयं वा त्वं वा **विवादं कुरु वां** युवयोर्वाद**शक्तिर्न चेत्त**र्हि **युवाभ्यां जयपत्रं दीयतां** तद्वाक्यसमाप्त्यर्थ **इति**शब्दः।।४९।। **प्रभुः** समर्थः श्रीगुरु**स्तथेत्युक्त्वा** किञ्चिद्दूरतो **यान्तं** गच्छन्तं **अन्त्यजमुद्वीक्ष्य** तं स्वसमीप**मानीय सप्त लेखा** भुवि **उल्लिख्य** शब्दतः एकैकां लेखां **अभ्युत्क्रामयन्तमवाचयत्**।।५०।। वर्तमानसहितानि **प्राचीना**न्यतीतानि **सप्त जन्म**नि तेषां **ज्ञः** इगुपधेति कप्रत्ययः।।५१।। **द्वितीयां**

चतुर्थी वै कृषिपटुः शूद्रोऽस्मीत्यभिभाषितम् । पञ्चमीं सोमदत्ताख्यो वैश्योऽस्मीत्युदितं ततः ।।५३।।

षष्ठीं गोवर्धनाख्योऽहं क्षत्रः शूर इतीरितम् । सप्तमीं वेदशास्त्रज्ञो ब्राह्मणोऽस्मीति भाषितम् ।।५४।।

तदास्य मन्त्रितं भस्म क्षिप्त्वाङ्गे प्रभुराह तम् । चेद्वेदज्ञोऽसि विप्रौ द्राग्विवादेन पराजहि ।।५५।।

इति श्रुत्वेशवाक्यं तौ प्रत्याहितधियौ भिया । कम्पितौ श्रीगुरुं गत्वा विप्रौ शरणमूचतुः ।।५६।।

ब्रह्मद्विषौ स्वः पापिष्ठौ दुष्टसङ्गाहितभ्रमौ । मूढौ नौ दुर्गतिं यान्तौ समद्धर्तुं हरेऽर्हसि ।।५७।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

म्लेच्छाग्रे पठिता वेदा धिक्कृता ब्राह्मणा यतिः । तत्कर्मपरिपाकार्थं राक्षसौ द्राग्भविष्यथः ।।५८।।

सन्तप्तत्वाद्द्वादशाब्दानुषित्वा शान्तरूपतः । पठ्यमानानुवाकोप-देशाद्विप्राय वां गतिः ।।५९।।

इत्युक्तौ गुरुणा गत्वा भीमां स्नात्वा मृतावुभौ । राक्षसौ गुरुवाक्यात्तौ भूत्वा तत्रैव तस्थतुः ।।६०।।

तत्र यान्द्वादशाब्दान्ते द्विजो विस्मृतवान्मनुम् । तस्मै शशंसतुस्तं तौ तदा मुक्तौ स्वरीयतुः ।।६१।।

स्वधर्ममुत्सृज्य मदेन ये द्विजान् गुरून्द्विषन्तः खलु राक्षसा वने।
भवन्ति पापोऽपि यदानुतापितः कनिष्ठशिक्षो भवति द्विजाविव ।।६२।।

इति श्रीगुरुचरिते कर्मयोगे वेदोपदेशो नाम प्रथमोऽध्यायः ।।१।। आदितश्चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

सप्ताहपारायणे तृतीयः। अन्ते रसज्ञा वशा.. स्तोत्रं पठनीयम्। अन्यदिने आरंभे गुरुस्तुतिः।

गत्वेत्यध्याहर्तव्यमेवमग्रेऽपि।।५२।।५३।।५४।। **तदास्यान्त्यजस्याङ्गे पराजहि** पराभवं कुरु।।५५।। **ईशस्य** श्रीगुरो**र्वाक्यं श्रुत्वा** ततो **भिया** भयेन **प्रत्याहता** नष्टा **धी**र्ययोस्तौ सञ्जातकम्पौ।।५६।। **हितः** जनितः **भ्रमो** मिथ्यामतिर्ययोस्तावतएव **मूढौ पापिष्ठौ** इत ऊर्ध्वं **दुर्गतिं** नरकं गच्छन्तौ आवां **समुद्धर्तुं** योग्योऽसि।।५७।। ' *गोमांसभक्षको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते। सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयत* ' इत्युक्तलक्षणो **म्लेच्छः** त**दग्रे** ' *एते वै देवाः प्रत्यक्षं यद्ब्राह्मणा* ' इति श्रुतेर्ब्राह्मणधिक्कार एव देवधिक्कारः अतए-वोक्तं छान्दोग्ये ' *ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतं* ' इति। **यतिः** साक्षाद्गुरुः ' *गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रान्निर्जित्य वादतः। अरण्ये निर्जले देशे जायते ब्रह्मराक्षस* ' इति वचना**त्तत्कर्मपरिपाकार्थं** युवा शीघ्रं ब्रह्म**राक्षसौ भविष्यथः**।।५८।। **सन्तप्तत्वाद**नुतप्तत्वात्केनचिद्विप्रेण **पठ्यमानो** यो यजुःसम्बन्ध्य**नुवाको** मोहाद्विस्मृतिं प्राप्तस्य तस्यो**पदेशाद्यु**वाभ्यां ब्राह्मणाय शंसनात् **वां** युष्माकं स**द्गति**र्भविष्यति यद्यप्युपदेशस्याद्योच्चारणत्वं तथाप्यत्र लाक्षणिकेनार्थेन शंसनं ग्राह्यं।।५९।। **इति** गुरु**णोक्तौ भीमां गत्वा तत्रैव** भीमातीरे वृक्षोपरि।।६०।। **द्वादशा-ब्दान्ते तत्र यान्** गच्छन् कश्चिद्**द्विजः** मन्त्रं **विस्मृतवान् तं** मन्त्रं **तस्मै शशंसतुः स्वः** स्वर्गलोकं।।६१।। स्फुटार्थः।।६२।। इति टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः।

।। पञ्चदशोऽध्यायः ।।

।। नामधारक उवाच ।।

पतितस्य ततो जातं किमु हीनोऽप्यनुग्रहात्। श्रीमद्भगवतो वेद-शास्त्रज्ञोऽस्मीति योऽब्रवीत् ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

प्रसादात्सद्गुरोर्ज्ञानी भूत्वाह पतितो हरिम् । ब्राह्मणस्यापि मे कस्मादधःपातोऽभवद्धरे ।।२।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

कर्मणा भ्रममाणस्य यन्त्रवत्पुण्यपापतः । प्रकृत्यायत्तचेष्टस्य जन्तोरूर्ध्वमधोगती ।।३।।

गुरुमातापितृस्त्र्यर्भ-धर्माचारकुलेश्वरान् । यो जहाति मुधा सोऽपि जीवहिंस्रोऽनृतप्रियः ।।४।।

खलः कन्याश्वगोक्रेता गृहग्रामवनाग्निदः। त्यक्तश्राद्धः परान्नाशीः कालाप्तातिथिहापकः ।।५।।

सद्विप्रदेवतीर्थार्च्य-वेदशास्त्रादिनिन्दकः । तडागकूपारामाध्व-क्रतुध्वंसी व्रताहभुक् ।।६।।

श्राद्धार्च्याहाम्बुपर्वाह्नि-स्त्रीभुग्विश्वासघातकः । दत्तदानहरः स्वोक्त-व्यस्ताचारोऽन्यकर्मकृत् ।।७।।

स्वपुण्यपरपापास्यो दम्भाद्यैः सत्त्वदर्शकः । खलहिंस्रस्तेयिसङ्गी घातज्ञो जारणादिकृत् ।।८।।

ज्ञानं विना चिकित्साशी कर्मभ्रष्टोऽन्यतापकृत् । इत्याद्याः प्रेत्य नरकं भुक्त्वा चण्डालयोनिगाः ।।९।।

क्रोधी शूद्रीरतस्त्यक्तनित्यनैमित्तिकक्रियः । वृषगोवृषलीसक्तो रसगोवेदविक्रयी ।।१०।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ पञ्चदशोऽध्यायः।। *क्रियाविपाकोऽन्त्यजाय प्रायश्चित्तं च भिक्षवे।। प्राह पञ्चदशे भस्ममाहात्म्यं राक्षसोद्धृतिम् १* एवं कर्मकाण्डोपक्रमे '*अहं यथानुतिष्ठामि लोकस्तदनुगो भवेत्। नेदं साधु* ' इति श्रीगुरोश्चिकीर्षितं मतमनूद्य वेदावमानेन ब्राह्मणधिक्कारेण च द्विजयोरपि दुर्गतिं प्रदर्श्याधुना संवादमिषेण विकर्मतो दुर्गतिं प्रायश्चित्तेन संशुद्धिं च वक्ष्यति **हीनोऽपि श्रीमद्भगवतोऽनुग्रहात् वेदशास्त्रज्ञोऽस्मीति योऽब्रवी**त्तस्य **पतितस्य किं जातं**।।१।। हे **हरे कस्मात्**कर्मणा।।२।। पुण्ये**नोर्ध्वगतिः** पापे**नाधोगतिः**।।३।। तां प्रपञ्चयन्ति **अर्भः** पुत्रः **कुलेश्वरः** कुलदेवता **मुधा** निरपराधं त्यजति **अनृतप्रियो**ऽसत्यवक्ता।।४।। **काले** प्राप्तस्या**तिथेर्हापकः** तिरस्कर्ता।।५।। **सन्** साधुः **अर्च्यः** पूज्यः।।६।। **श्राद्धा**हे **अर्च्याहे व्रत**दिने **अम्बु**नि जले दर्शादि**पर्व**णि दिवा च **स्त्रीभुक्** मैथुनकर्ता **स्वोक्ताद्व्यस्तो**ऽन्यथा**चारो** यस्य **अन्यकर्मकृत्** हीनजातीयकर्मकर्ता।।७।। **स्वपुण्यं परपापं** च मुखे यस्य तदुच्चारणशीलः **दम्भादि**भिर्लोके **सत्त्व**स्य साधुत्वस्य **दर्शकः**।।८।। **ज्ञानं विना चिकित्साशी** रुक्प्रतिक्रियाकरणशीलः पर**ताप**करः।।९।। एवं सामान्यतः सर्वेषां पापफलमुक्त्वा ब्राह्मणानां विशेषत आह **वृष**मारुह्य **ग**मनकर्ता **रसा** लवणगुडमधुगोरसाद्या रसाः **गौः वेदः** प्रसिद्धः आपदि स्ववृत्त्या जीवनाभावे वैश्यवृत्त्या जीवेत तदा रसविक्रयो न

अदत्वेशं कपिलगोदुग्धपोऽतिनिषिद्धभुक् । प्रतिग्रही पराजीवजीवी सन्ध्याशयी कुवाक् ।।११।।

इत्याद्या ब्राह्मणास्तेऽपि पूर्ववत्संभवन्ति हि । जीवजातिमिताः सन्ति नरका एकविंशतिः ।।१२।।

तेषु श्रेष्ठा जीवपापविपाका अन्तकालये । तेष्वन्तकः क्षिपत्येतान्पापिनः पापभुक्तये ।।१३।।

त्यक्त्वा पुष्टमपीह वर्ष्म कलुषी यान्यातनाङ्गेन तृट्- । क्षुच्छीतोष्णसुपीडितो यमचरैर्बद्धोऽयने दुर्गमे ।।

मूर्छन् तर्जनताडनादिभिरसन्वै वैतरिण्यर्दितो । भुङ्क्ते याम्यमवाप्यराष्ट्रमवशस्तां यातनां नारकीम् ।।१४।।

ततो योन्यन्तरे याति भुक्तदुःखोऽप्यघांशतः । प्रायशो वासनाभूम्नो भूतप्रेतपिशाचताम् ।।१५।।

हुंतुंकाराद्गुरोर्विप्राभिभवाद्ब्रह्मराक्षसः । गर्दभो हीनसेवी स्यात् कुक्कुटोऽतिथिहापकः ।।१६।।

उष्ट्रोऽर्थहृद्वनचरः फलपत्रार्थहृद्भवेत् । मधु दंशः पलं गृध्रोऽन्नमाखुश्चातको जलम् ।।१७।।

गन्धान् छुच्छुन्दरी धान्यं शलभोऽलिर्विषं तथा । कृमिः कीटः पतङ्गः स्यात् स्वर्णं हृत्वा तृणं पशुः ।।१८।।

कार्य इति भावः।।१०।। **ईशमीश्वरायासमर्प्य कपिलगोदुग्धपः** कन्दर्पलशुनगृञ्जनाद्य**तिनिषिद्धभुक् कुवाग्**गालिप्रदः।।११।।१२।। **जीवजातिमिताः** ८४००००० **तेषु श्रेष्ठा जीवपाप**परि**पाक**शीला **एकविंशतिः**।।१३।। **इह** लोके **पुष्टमपि** शरीरं **त्यक्त्वा कलुषी** पापी **यातना**देहेन गच्छन्तृषादि**पीडितोऽयने** मार्गे**ऽसन्न**सभ्यः **वैतरिण्यां** '*दानं वितरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। इयं सा तीर्यते यस्मात्तस्माद्वैतरणीति सा* ' इत्युक्तलक्षणाया**मर्दितः याम्यं राष्ट्रमवाप्यावशः** पराधीनः **ता**मनिर्वाच्यां **यातनां** तीव्रवेदनां **भुङ्क्ते**ऽनुभवति।।१४।। **ततो** यमलोका**द्भुक्तदुःखोऽप्यघांशतो**ऽवशिष्टपापवशात् **योन्यन्तरे** देहभावं **याति** विरुद्धानेकयोन्युपभोगफलानां च कर्मणामेकैकस्य कर्मणोऽनेकजन्मारम्भकत्वस्मरणात्स्थावरादिप्राप्तानां चात्यन्तमूढानामुत्कर्षहेतोः कर्मण आरम्भकत्वासम्भवत्वात् गर्भभूतानां च स्रंसमानानां कर्मासम्भवे संसारानुपपत्तिः तस्मान्नैकस्मिन्जन्मनि सर्वेषां कर्मणामुपभोगः। यत्तु कैश्चिदुच्यते सर्वकर्माश्रयोपमर्देन कर्मणां जन्मानामारम्भकत्वं तत्र कानिचित्कर्माण्यारब्धकत्वेनैव तिष्ठन्ति कानिचिज्जन्मान्तरमारम्भत इति नोपपद्यते मरणस्य सर्वकर्माभिव्यञ्जकत्वात्स्वगोचराभिव्यञ्जकप्रदीपवदिति तदसत् सर्वस्य सर्वात्मकत्वाभ्युपगमात् न हि सर्वस्य सर्वात्मकत्वे देशकालनिमित्ताविरुद्धत्वात्सर्वात्मनोपमर्दः कस्यचित्क्वचिदभिव्यक्तिर्वा सर्वात्मनोपपद्यते तथा कर्मणामपि साश्रयाणामुपमर्दो भवेत् यथा च पूर्वानुभूतमनुष्यमयूरमर्कटादिजन्मभिः संस्कृताविरुद्धानेकवासना मर्कटत्वप्रापकेन कर्मणा मर्कटजन्मारभमाणेन नोपमृद्यन्ते तथा कर्माण्यप्यन्यजन्मप्राप्तानि नोपमृद्यन्त इति युक्तं यदि हि पूर्वाः पूर्वजन्मानुभववासना उपमृद्येरन् मर्काटादिजन्मनिमित्तेन कर्मणा मर्कटजन्मन्यारब्धे मर्कटस्य जातमात्रस्य शाखायाः शाखान्तरगमने मातुरुदरसंलग्नत्वादिकौशलं न प्राप्नोति इह जन्मन्यनभ्यस्तत्वात् न चातीतान्तरजन्मनि मर्कटत्वमेवासीत्तस्येति शक्यं वक्तुं ' *तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च* ' इति श्रुतेः तस्माद्वासनावन्नाशेषकर्मोपमर्द इति कर्मशेषसम्भवः यत एवं तस्माच्छेषेणोपयुक्तात्कर्मणो योन्यन्तरगमनरूप संसार उपपद्यते।।१५।। **विप्र**परा**भवात्**।।१६।। **अर्थो** द्रव्यं **मधु** हत्वा **दंशो** भवेत् एवमग्रेऽपि **पलं** मांसं **अन्नं** हत्वा **आखु**रुन्दुरः।।१७।। **विषं** हत्वा**ऽलि**र्वृश्चिकः **स्वर्ण**स्तेयिनः **कृमिकीटपतङ्ग**त्वं त्रैवर्णिकः **निर्मन्त्रभुक्** आपोशनाद्यकृत्वा भोजनकर्ता **काकः** मन्त्रो निमन्त्रणमामन्त्रणं वा तं विना परान्नभुग्वा **मित्र**द्रोही **गृध्रः**।।१८।। एवमन्यत्राप्यतिदिशति

काको निर्मन्त्रभुग्गृध्रो मित्रध्रुग्दाम्भिको बकः । इत्याद्या बहुशो योनीर्भुक्त्वा रुग्णा भवन्त्यथ ।।१९।।

हृद्रोगी परहृद्भेत्ता गुरुत्यागी महामयी । क्षयी तु ब्रह्महा कुष्ठी स्वर्णहृत्पुस्तकापहा ।।२०।।

जन्मान्धो विश्वासघाती वमी गण्डी गणार्थहृत् । अपुत्रोऽन्यार्थहृद्वस्त्र-हृच्छ्वित्री चानृती कुवाक् ।।२१।।

गुल्म्यन्नहृत्कुरुङ्मांस-भोक्ता क्वास्यस्तु तैलहृत् । पामी फलादिहृच्छ्वित्री कांस्यकार्पासलोहहृत् ।।२२।।

देवार्थहृत्पाण्डुरोगी रोगाः सर्वेऽत्र पापतः । परस्त्र्यालिङ्गनाज्जन्म शतं श्वा तद्भगेक्षकः ।।२३।।

अन्धो बन्ध्वङ्गनाभोगी गर्दभोऽहिश्च दुर्धिया । परस्त्र्यालिङ्गनान्नूनं हृद्रोगी ह्यष्टधा रतिः ।।२४।।

श्वामातुलसखिस्त्रीभुक् कृमिः स्यादौपपत्यतः । स्वैरिण्योऽपि स्त्रियः श्वादि-योनिं गत्वा व्यथन्त्यलम् ।।२५।।

इति संवादमाकर्ण्य गुरुं प्राह त्रिविक्रमः । ज्ञानाद्वाऽज्ञानतो जातं कथं पापं प्रणश्यति ।।२६।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

पश्चात्तापेन संशुद्धिः प्रायश्चित्तादिभिः पुनः । सदस्युच्चार्य पापं स्वं ब्रह्मदण्डं निधाय च ।।२७।।

सभ्याज्ञया क्षौरपूर्वं कृतपापानुसारतः । कृच्छ्राब्दादि चरेच्छक्त्याऽशक्तो गोऽर्घादिनाऽशठः ।।२८।।

स्वल्पं तीर्थे दशस्नानाद् द्विशतास्वायमैरघम् । स्वर्णदानात्प्रणश्येत सद्गुरोर्दर्शनान्महत् ।।२९।।

त्र्यहं दिवा त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् । नाद्यात् त्र्यहं कायकृच्छ्रोऽयुतगायत्रिकाजपात् ।।३०।।

इत्याद्या इति योनीनां बहुत्वाद्ग्रन्थविस्तारभिया संकोचः **अथा**नन्तरं मनुष्ययोनिगता अपि **रुग्णा भवन्ति**।।१९।। **पुस्तकापहा जन्मान्ध** इत्यग्रिमेणान्वयः।।२०।। **वमी** वान्तिशीलः **गणार्थो**ऽनेकैरेकत्र धर्माद्यर्थं संचितं धनं तस्यापहर्ता **गण्ड**मालारोगार्तः **अन्यार्थहृत्**परद्रव्यापहारको**ऽपुत्रः श्वित्री** श्वेतकुष्ठी।।२१।। **मांसभोक्ता कुरुग्ग**लत्कुष्ठार्तः **तैल**हर्ता कुत्सितमुखः **कांस्या**दिहृच्च **श्वित्री**।।२२।। **देव**द्रव्यापहारी **पाण्डुरोगी** एवमत्रोक्तानुक्ताः **सर्वे रोगाः पापत** एव।।२३।। स्त्रीयोनिवीक्षिको**ऽन्धः गर्दभोऽहिश्चे**ति जन्मद्वयं दुष्टबुद्ध्या **स्त्र्यालिङ्गने**नापि **हृद्रोगी** ननु केवलमालिङ्गनेनापि कथं दोष इत्यत आह **हि** यतो**ऽष्टधा रति**र्मैथुनं '*स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं। उत्साहोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।। एतदष्टाङ्गमिथुनं प्रवदन्ति मनीषिण* ' इत्यष्टधा रतिः।।२४।। स्त्री वा पुमान् वा जारकर्मतः **कृमिः स्यात्**।।२५।।२६।।२७।। गोवृषनिष्क्रयादिरूपं **ब्रह्मदण्डं** सभायां साधवः **सभ्याः** सभाया य इति यप्रत्ययः **कृच्छ्रा**द्यनुष्ठातु**मशक्त**श्चेद्गो**दानं तदर्घो** वा शक्त्या निष्कादिपरिमितं मूल्यं **अशठः** कपटरहितः।।२८।। **स्वल्पं** पञ्चमहापापातिरिक्तं **तीर्थे** यावत्केशशोषणं विरम्य **दशस्नानात् द्विशत**प्राणा**यामै**र्वा **महत्प**ञ्चमहापापाख्यं।।२९।। प्राजापत्यलक्षणमाह त्र्यहमिति तत्प्रत्याम्नायानाह **अयुत**संख्याक**गायत्रीजपात्**।।३०।।

सहस्रहवनाद्वापि द्वादशद्विजभोजनात् । गोदानाच्छक्तितोऽर्घाद्वा प्राजापत्यः प्रसिद्ध्यति ।।३१।।

द्वादशद्युः पञ्चदश-ग्रासा भोज्याः सदा निशि । मासाच्छुद्धिः स्वल्पभुज्या क्षीराज्याद्याशनैश्च वा ।।३२।।

बिल्वाश्वत्थाब्जदर्भाम्बु-पानात् तीर्थाटनादपि । वाराणसीस्नानमात्राल्-लीयन्ते पापकोटयः ।।३३।।

अन्यतीर्थे त्वनुष्ठानाद्रामेश्वरसमीपतः । अब्धिस्नानाद्ब्रह्महत्या-कृतघ्नाद्यघसंहृतिः ।।३४।।

लक्षसंख्याकगायत्री-जपान्मद्यपसंशुचिः । कोट्या ब्रह्मघ्नोऽष्टलक्षैर्गुरुतल्पगतस्य च ।।३५।।

सप्तलक्षात्स्वर्णहर्तुः पावमानीभिरप्युत । इन्द्रं मित्रं शुनःशेप-सूक्तं पौरुषशान्तिके ।।३६।।

त्रिसुपर्णं नाचिकेतमघमर्षणवैष्णवे । मासमात्रं जपेत्स्वल्पे षण्मासं च महत्यघे ।।३७।।

चान्द्रायणं चरेद्ग्रासानेकैकं वर्धयेत्सिते । पक्षेऽन्यके ह्रासयेत्तैः शुचिगव्याशनेन च ।।३८।।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दध्याज्यं सकुशोदकम् । मिलित्वा मन्त्रवद्धुत्वा पिबेत्सर्वाघशान्तये ।।३९।।

उभौ समं ह्यनन्तर-कृताघेणापि दम्पती । लिप्यते पापिसंसर्गी सोऽपि पापी भवेत्समः ।।४०।।

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि दुष्टं हरिपराङ्मुखम् । नदीव सौरभाण्डं न निष्पुनन्ति कथञ्चन ।।४१।।

इति त्रिविक्रमं प्रोक्त्वा पतितं प्राह सद्गुरुः । प्राङ्मातापितृसंत्यागाल्लब्धा चण्डालताऽत्र ते ।।४२।।

मासमात्रं नदीस्नानात् प्रेत्य विप्रो भविष्यसि । प्राहान्त्यजो योजय मां त्वद्दृक्पूतं द्विजातिषु ।।४३।।

गायत्र्या तिलाज्येन तिलेन वा **हवनाद्वा गोदाना**भावे **शक्तित**स्तद**र्घाद्वा प्राजापत्यः प्रसिद्ध्यति**।।३१।। **सदा मास**पर्यन्तं।।३२।।३३।। वाराणस्या **अन्य**त्रापि **तीर्थे तु** गायत्र्या**द्यनुष्ठाना**न्न स्नानमात्रतः **अघसंहृतिः** पापनाशः।।३४।। **मद्यप**स्य सम्यक् शुद्धिः **ब्रह्मघ्नो** ब्राह्मणहन्तुः।।३५।। स्वादिष्ठयेत्याद्याः क्षीरं सर्पिर्मधूदकमित्यन्ताः **पावमान्यः इन्द्रं मित्रं** एको मन्त्रः **शुनःशे**पमाश्वलायनशाखायांकस्य नूनमित्यारभ्यास्मेरयिं निधारयेत्यन्तं शं न इन्द्राग्नीति पञ्चदशर्चं **शान्तिकं पौरुषं** प्रसिद्धं।।३६।। **त्रिसुपर्णं** नारायणोपनिषदि **नाचिकेतं** काठके ऋतं चेत्य**घमर्षणं** अतो देवा इति षड्**वैष्णवं**।।३७।। **चान्द्रायण**माह **ग्रासाना**स्याविकारेण शिख्यण्डकुक्कुटाण्डार्द्रामलकान्यतमतुल्यान् ग्रासान्मासपर्यन्तं **चरेद्**भक्षयेत् संख्यामाह **सिते** शुक्ले **एकैकं वर्धयेत्**। **अन्यके ह्रासयेत्**। तच्च कृष्णे एकैकं पौर्णिमाद्यमान्तं पिपीलिकामध्यसंज्ञं शुक्लप्रतिपदादि यवमध्यसंज्ञं नियमेन सायंप्रातश्चतुरो वा प्रत्यहमेकदैवाष्टावष्टौ वा चत्वारिंशच्छतद्वयग्रासाऽशनाच्छिशुचान्द्रायणं यतिचान्द्रायणं च भवति **तैः शुचि**र्भवेत् **गव्यं** पञ्चगव्यं।।३८।। **मन्त्रवत्स**मन्त्रकं।।३९।। **उभ**योर्मध्ये **एकतरेण कृतेनाघेन दम्पती लिप्येते समः पापि**तुल्यो वर्षान्ते।।४०।। छन्नमुखं सुरापात्रं यथा गङ्गादि**नदी न निष्पुनाति** तद्वदभक्तिबद्धमुखं **प्रायश्चित्तानि न निष्पुनन्ति**।।४१।। **प्राग**तीतसप्तमे जन्मनि।।४२।। **नदी** अमरजा।।४३।। **पतिताद्भूत्वाऽपि** तत्रैव **वृद्धस्ते देहोऽशुचिः** संस्कारानधिकारत्वा-

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

भूत्वापि पतिताद्वृद्धो देहस्तेऽसंस्कृतोऽशुचिः । वदन्ति पतितं न त्वामन्यत्प्रोक्तं कथं त्वया ।।४४।।

विश्वामित्रः पुरा क्षत्रो देवर्षित्वं तपोबलात् । देवान्ययाचे प्रोक्तं तैर्वसिष्ठात्स्वीकुरुष्व तत् ।।४५।।

वसिष्ठेनापि हीनत्वान्न दत्तं तत्सुतान्छतम् । हत्वा तं हन्तुकामोऽभूच्छङ्कितो ब्रह्महत्यया ।।४६।।

तदाज्ञया तपस्तप्तं तत्तु मेनकया हृतम् । विश्वामित्रः पुनस्तप्त्वा दग्धाङ्गोऽभूदृषीश्वरः ।।४७।।

तस्माद्भवान्तरे तेऽस्तु ब्रह्मत्वं गच्छ तेऽस्तु शम् ।।४८।।

।। पतित उवाच ।।

जाते स्वर्णेऽयसः पश्चात्कुतोऽयस्तद्वदप्यहम् ।।४९।।

तच्छ्रुत्वा श्रीगुरुर्विप्र-भ्रान्त्या दूरात्स्त्रियं सुतान् । वारयन्तं वीक्ष्य शिष्यमाहामुं स्नापय द्रुतम् ।।५०।।

तदा लुब्धद्विजेनैष स्नापितः पतितः स्वकैः । सहागाद्विस्मृतप्राप्त-ज्ञानो हीनो निजालयम् ।।५१।।

।। त्रिविक्रम उवाच ।।

पतितोऽपि कृपादृष्ट्या पावितः स्नानमात्रतः । कथं स पूर्ववज्ज्ञातो भगवन्छिन्धि संशयम् ।।५२।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

क्षिप्तं भस्मार्पितं ज्ञानं विनष्टं क्षालनात्तु तत् । इयान् भस्मप्रभावः प्राग्वामदेवो महामुनिः ।।५३।।

वने चचार तं प्रात्तुमागतो ब्रह्मराक्षसः । स्पर्शमात्रात्प्रशान्तोऽभूज्ज्ञाताऽखिलनिजोद्भवः ।।५४।।

।। ब्रह्मराक्षस उवाच ।।

प्राक् श्रीमत्तोऽस्मि राट् कामी ब्राह्मणाद्यन्तजातिजाः ।भुक्ताः श्रेष्ठाः स्त्रियोऽल्पाश्च सहैकैकामनन्तशः ।।५५।।

त्।।४४।।४५।।४६।। **तदाज्ञया** वसिष्ठाज्ञया '*वसिष्ठस्य ह वै मित्रम्*' इति श्रुतेर्मित्रे चर्षेरित्यानङ्।।४७।। **शमस्तु** भावि जन्मनि।।४८।। **अयसः** स्पर्शयोगा**त्स्वर्णे जाते पुनः कुतोऽयो** लोहं **तद्वदहं** जातः।।४९।।५०।। द्रव्य**लुब्धेन द्विजेन** तत्करेण **स्नापितः विस्मृतं लब्धज्ञानं** येनातो **हीनः**।।५१।।५२।। श्रौतस्मार्तकर्मणि भस्मधारणस्यावश्यकत्वात्तद्वि-षये रुच्युत्पादनार्थमुत्तरत्वेन भस्ममहिमानं सेतिहासं वर्णयति **प्राक्**पूर्वं श्रुतिप्रसिद्धत्वान्महामुनिरित्युक्तम्।।५३।। **प्रकर्षेणात्तुं** भक्षयितुं राजजन्मारभ्य **ज्ञाता अखिला निजोद्भवाः**

हठाद्दानादिनानीय भुक्ता मद्राष्ट्रसंस्थिताः । नरा राष्ट्रान्तरं जग्मुः सस्त्रीका दोषकातराः ।।५६।।

ततो रुग्णस्य मे राज्यमाक्रान्तं शत्रुभिस्ततः । कृच्छ्रात्प्रेत्य मया भुक्ता पितृभिः सह दुर्गतिः ।।५७।।

प्रेतो व्याघ्रश्चाजगरः सालावृक उ सूकरः। शरठः श्वा क्रोष्टुमृगौ कुक्कुटः कपिचिल्लकौ ।।५८।।

नकुलः काक ऋक्षश्च कुक्कुटः खर ओतुकः । भेकः कूर्मो मत्स्य आखुर्घूको हस्तीह राक्षसः ।।५९।।

एता योनीर्मया भुक्ताः कृच्छ्रात्क्षुत्तृट्प्रपीडितः । त्वामत्तुमागमन् सद्यः शान्तो जातोऽस्म्यदः कथम्।।६०।।

।। वामदेव उवाच ।।

अङ्गे भस्मास्ति तत्स्पर्शाज्ज्ञानं जातं तवादितः । तन्माहात्म्यमिदं यत्तु सदा प्रीत्या शिवो दधौ।।६१।।

पुरैको द्राविडे विप्र औपपत्ये हतो बहिः । त्यक्तस्तत्रैव भस्माक्त-श्वस्पर्शाद्भस्मभूषितः ।।६२।।

असून्जहौ तदा प्राप्तान्याम्यान्दूतान्निवार्य तम् । भस्मदग्धमलं शैवा दूता निन्युः शिवान्तिकम् ।।६३।।

।। राक्षस उवाच ।।

एवं चेद्भस्ममाहात्म्यं तत्स्वीकर्तुं समुत्सहे । तन्निर्माणप्रकारं मे शंस धार्यं कथं च तत् ।।६४।।

प्राग्ब्रह्मभ्योऽर्पिता वार्ता वाप्याद्या निर्जलस्थले। रचितास्तत्फलं त्वेतत्पापान्ते तव दर्शनम् ।।६५।।

।। वामदेव उवाच ।।

त्र्यक्षं सायुधपङ्क्तिहस्तमहिसत्सूत्रं शिवं श्वेतभं,
पञ्चास्यं च कपर्दिनं स्मितमुखं वैय्याघ्रचर्माम्बरम् ।

स्वजन्मानि येन।।५४।। पूर्वं **श्रिया मत्तः ब्राह्मणाद**यश्चतुर्वर्णीयांश्चा**न्त्यजा**तयश्च तेभ्यो **जाता श्रेष्ठाः** वयोधिकाः **अल्पा**ऽनागतार्तवाः **एकैकां** सह एकवारं भुञ्जे न भूय एव**मनन्तशो**ऽपरिमिताः।।५५।। **दानादिना** वेति विकल्पो योज्यः **कातरा** जातिसङ्करदोषभीताः **कृच्छ्रा**त्कष्टेन **दुर्गति**र्नरकः।।५६-५७।। **प्रेतो** भूतविशेषः **उः** पादपूरणे **चिल्लो** घार इति प्रसिद्धः।।५८।। **ऋक्षो** भल्लूकः पुनः **कुक्कुटो** वन्यः **ओतु**र्बिडालः **भेको** मण्डूकः **घूको** दिवाभीतः **इहा**धुना ब्रह्म**राक्षसः**।।५९।। **अदः शान्त**त्वं **कथं** जातं।।६०।।६१।। **औपपत्ये** जारकर्मणि बलिना जारान्तरेण **हतः भस्म**लिप्त**श्वस्पर्शाद्भस्मभूषितो**ऽभून्न तु विधिना।।६२।। **असून्**प्राणान्।।६३।। **शंस** कथय।।६४।। **वार्ता** भूम्यादिरूपा जीविका **ब्रह्मभ्यो** विप्रेभ्यः।।६५।। **त्र्यक्षं** त्रिनेत्रं **पङ्क्तिहस्तं** दशकरं **अहिसत्सूत्रं** नागयज्ञोपवीतं **पञ्चास्यं** पञ्चमुखं **चार्वी** चासौ **अम्बा** च तया**न्वितं इन्दुर्भाले** यस्य तं **शिर**सि **गङ्गा** यस्य

चार्वम्बान्वितमिन्दुभालमु शिरो गङ्गं गणाद्यन्वितम्,
स्वस्थं प्रेक्ष्य सनत्कुमारमुनिराणनत्वाऽब्रवीत्प्राञ्जलिः ।।६६।।
जयेश्वरानन्त हराज शंभो जगन्निदानाल्पकसाधनं नः ।
मुक्त्यै शिवोपादिश दुष्कराणि प्रोक्तानि सर्वाणि तु साधनानि ।।६७।।

।। शिव उवाच ।।

दर्शनात्परिहृत्याघं भुक्त्वा शं विधिवद्धृतेः । भस्मनः पुरुषोऽह्नाय जीवन्मुक्तो भवत्यलम् ।।६८।।
यज्ञोत्थं वा करीषोत्थमग्निरित्यादिमन्त्रितम् । धार्यं त्र्यायुषमित्येतैरङ्गुलीभिः प्रतिस्थलम् ।।६९।।
त्रिपुण्ड्रा भ्रूसमा रेख्या वर्णादिस्मृतिपूर्वकम् । त्र्यर्णास्त्रिदेवास्त्रिगुणास्त्रिरात्मानस्त्रिशक्तयः ।।७०।।
त्रिछन्दसस्त्रिलोकास्त्रि-वेदास्त्रिषवणाः स्मृताः । सर्वाघहृत्सदा सर्वैर्धार्यं तद्विधिवन्नरैः ।।७१।।
भक्त्याज्ञेनापि तद्धार्यं तारकं नापरं ह्यतः । परस्त्रीगोनिन्दकोऽसन् क्षेत्रहृत्परपीडकः ।।७२।।
गृहदाही मृषावादी खलो वेदरसक्रयी । नीचाच्च दुष्प्रतिग्राही वृषलीविधवादिगः ।।७३।।
ज्ञानाज्ञानकृताऽघोपि मुक्तः स्याद्भस्मधारणात् । भस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षैः स्वः पूज्यो ना पुमर्थदैः ।।७४।।

तं।।६६।। भो **अनन्ता**परिच्छिन्न भो **जगन्निदान मुक्त्यै अल्पक**मत्यल्पं **साधनं नो**ऽस्मभ्य**मुपादिश** कथय भो **शिव** कल्पतन्त्रादौ **प्रोक्तानि साधनानि दुष्कराणि** अत्रा**जानन्ते**ति सम्बुद्धिभ्यामपरिच्छन्नत्वेनाविकारित्वेन च ब्रह्मत्वमुक्तं **जगन्निदाने**ति जगत्कारणत्वं तटस्थलक्षणं **ईश्वरे**तीशनशीलत्वेन स्थितिहेतुत्वं **शम्भो** इत्यनेन स्वरूपलक्षणं स्वीयानां सुखदा-तृत्वं **हरे**ति संहारहेतुत्वं **शिवे**ति मुक्तिहेतुत्वमतो युक्तेयं प्रार्थना।।६७।। **अघं** पापं **भस्मना विधिवद्धृते**र्धारणेन **शं** सुखं **भुक्त्वाऽह्नाय** शीघ्रं।।६८।। **करीषोत्थं** जाबालोक्तप्रकारेण शुष्कगोमयहवनसम्भवं **अग्निरिति** भस्मे**त्यादिमन्त्रितं प्रतिस्थलं** ललाटादिप्रदेशे।।६९।। अकारोकारमकारा**स्त्र्यर्णाः त्रिदेवाः** ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः **त्रिगुणाः** सत्त्वादयः।।७०।। विश्वतैजसप्राज्ञा**स्त्रिरात्मानः** इच्छाद्रव्यक्रिया**स्त्रिशक्तयः** गायत्रीत्रिष्टुब्जगत्य**स्त्री**णि **छन्दांसि** येषान्ते त्रिछन्दसस्त्रिपुंड्रा एवं सर्वत्र समासः **त्रिवेदाः** ऋग्यजुःसामाख्याः भूर्भुवःस्व**स्त्रिलोकाः** प्रातर्मध्यंदिनं सायमिति **त्रीणि सवनानि सदा** नित्यं **सर्वै**राश्रमिभिः वर्णैर्विधवादिभिश्च **तद्**भस्मं **विधिवद्धार्यं**।।७१।। **हि** यतः **अतः परं** सुलभं **तारकं** नास्ति तस्मा**दज्ञेन** समग्रक्रियाकलापज्ञानवर्जितेनापि **धार्यं** ज्ञानिना तु धार्यमिति पुनः किमु वक्तव्यं अत्रेदृशी भस्मनः शक्तिश्चेत्तर्हि ज्ञानस्य किं प्रयोजनं दृष्टं हि लोके हरीतकीं भक्षयतोस्तद्र-साभिज्ञेतरयोर्विरेचनं। नैवं दृष्टं हि लोके वणिक्शबरयोः पद्मरागादिमणिविक्रये वणिजो विज्ञानाधिक्यात्फलाधिक्यं श्रुतिश्च '*यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तद्वीर्यवत्तरं भवति* ' इति तस्माज्ज्ञात्वा कर्माणि कुर्वीतेति श्रवणाज्ज्ञानपूर्वकस्य फलोत्कर्षं एवं सर्वत्रोह्यं **सन्**धर्मतत्परः धर्मविषये साधुशब्दप्रयोगात् ' *साधुकारी साधुर्भवति* ' इति श्रुतेः

सहस्रप्राक्परोत्पत्ति-दोषघ्नं व्याधिनाशनम् । तीर्थाप्लुतिजपाधिक्य-फलदं भस्मधारकम् ।।७५।।

स्वरादिलोकं नीत्वान्ते शैवे स्थापयति ध्रुवम् । सनत्कुमार सुलभं तारकं भस्मधारणम् ।।७६।।

एवं सनत्कुमारेश-संवादस्ते मयोदितः । तस्मात्त्वं परिधत्स्वाङ्गे भस्मेत्युक्त्वा ददौ मुनिः ।।७७।।

राक्षसोऽपि तदादाय भस्माङ्गे विधिवद्दधौ । तदैव राक्षसीं हित्वा तनुं मुक्तोऽभवत्क्षणात् ।।७८।।

तदैवाप्तं विमानं स तेनागात्तत्क्षणाद्दिवम् । तस्मान्मुने भस्मशक्तिं ज्ञात्वाङ्गे धेहि मुच्यसे ।।७९।।

एवं गुरूक्तं ह्यभिगृह्य हृष्टो भक्त्योपसंगृह्य तमाज्ञयागात् ।
त्रिविक्रमोऽन्येऽपि हि तत्प्रमाणं मत्वोत्तमं चेरुरथो तथैव ।।८०।।

एवं क्रियाविपाकोऽयमीदृक्श्रुतिभयङ्करा । दण्डधृग्यातना तस्माच्छ्रेय एव सदाचरेत् ।।८१।।

इति श्रीगुरुचरिते कर्मयोगे कर्मविपाको नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

तद्विपरीतो**ऽसन्**।।७२-७३।। **अक्षै** रुद्राक्षैः **स्वः** स्वर्लोके **ना** पुरुषः **पूज्यः**।।७४।। पूर्वा**परसहस्र**जन्म**दोष**हरं **तीर्थाप्लुति**स्तीर्थस्नानं **भस्म** कर्तृ।।७५।। **शैवे** शिवलोके निरतिशयानन्दरूपे **ध्रुवं** पुनरावृत्तिरहितं यथा तथा हे **सनत्कुमारे**ति शंकरोक्तिः।।७६।। **एव**मित्यादि वामदेवोक्तिः **उदित** उक्तः हे राक्षस यस्मादेवं **तस्मात्त्वं**।।७७।। **विधिवत्स**मन्त्रकं।।७८।। **तदैव** स्वर्गलोका**द्विमानं** प्राप्तं **दिवं** स्वर्गं।।७९।। **एव**मुक्तप्रकारेण **गुरू**दितं **हि** यथावत् **अभिगृह्य** स्वीकृत्य धर्ममहिमश्रवणेन सम्यक् संतुष्ट**स्त्रिविक्रमः भक्त्या तं** श्रीगुरुं **अभिगृह्य** स्वीकृत्य **तदाज्ञया** कुमसी**मगात् अन्येऽपि** मिलितास्तत्रत्या ब्राह्मणाः **हि** निश्चयेन **तत्प्रमाणमुत्तमं मत्वा तथैव चेरुः**।।८०।। **एवं**भूतो**ऽयं क्रियाविपाकः दण्डधृग्यातना** यमयातना **ईदृगी**दृशी श्रोतुरपि **श्रुतिभयङ्करी** किं पुनर्भोक्तुर्भयङ्करेति वक्तव्यं यतः कर्मपक्तिर्विचित्रा तथा च श्रुतिः '*अथ य इह कपूयचरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्छ्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा* ' इति। यस्मादेवं **तस्मात्**सर्वदा **श्रेय एव** श्रुतिस्मृत्युदित**माचरेत्स**दाचारेण सद्गतिरेव तथा च श्रुतिः '*तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा* ' इति गारुडे च '*मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षैकसाधनं। द्वयोर्न साधत्येकं तेनात्मा वञ्चितो ध्रुवम्* ' इति।।८१।।

।।इति श्रीगुरुचरिते टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

षोडशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

नमस्ते ब्रूहि चरितं हरेरद्भुतकर्मणः । शृण्वतोऽपि न मे तृप्तिरमृतं पिबतो यथा ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

सत्पृष्टं वत्स धन्योऽसि भवाब्धिर्लीलया जितः । चित्तं ते चरितैर्विद्धं हरेस्तेनास्मि तोषितः ।।२।।

को ब्रूयाद्भगवल्लीलां कति चित्राणि वच्मि ते । मूको ब्रूते प्रेक्षतेऽन्धो मृतो जीवति यद्दृशा ।।३।।

शृण्वेको माहुरे विप्रो गोपीनाथो धनी मृताः । तत्पुत्रा बहवोऽथैको जीवितो दत्तसेवया ।।४।।

दत्तप्रसादाच्चिरजीवितं सुतं नाम्नाकरोद्दत्तमिति द्विजातिजः।
कान्तः सुलक्ष्मा मतिमान्सुसात्त्विकः पित्रोर्मृतार्भाकविनाश्यवर्धत ।।५।।

सुसंस्कृतस्यास्य विधेः सुरूपिणी लब्धा वधूर्धीगुणशीलशालिनी।
रतिः स्मरस्येव परस्परोत्थितमासीत्तयोः प्रेम रथाङ्गनामवत् ।।६।।

सरूपौ सुरूपौ स्वयोर्मन्यमानौ वियोगं कुयोगं क्षणं धर्मदक्षौ।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ षोडशोऽध्यायः।। *षोडशे मृतविप्रस्य भार्यायै प्राह सद्गुरुः।। स्त्रीधर्मांस्तत्पतिं क्षिप्रं दययाऽजीवयन्मृतं।।१।।* पूर्वाध्यायांते श्रेय एव सदाचरेदित्युक्तं तत्किं श्रेयः कथमाचरणीयमित्यपेक्षायां कठवल्लीषु '*अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषँ सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीत*' इत्युपक्रम्य '*दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता*' इति प्रेयशब्देनैहिकामुष्मिकभोगसाधनभूतमविद्यापरपर्यायनायकं कर्मोक्तं, श्रेयशब्देन निरतिशयानन्दास्पदविद्यापरपर्यायनामकं ज्ञानमुक्तं तच्च ज्ञानकाण्डे दर्शितं तच्चाविपक्वकषायाणां सहसा न स्फुरतीत्यतश्चित्तशुद्ध्येश्वरोद्देशेन निष्कामकर्म नित्यनैमित्तिकरूपं सविधानकं त्रिभिरध्यायैरुच्यते तत्र तावदध्या-यद्वयेन स्त्रीणां धर्मा उच्यन्ते। भो सिद्ध **ते नमः चरितं** श्रेयःसाधनभूतं।।१।। '*श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीत*' इत्युक्तं तदेव बुभुत्सितमतएव **सत्पृष्टं** नैतां सृंकां वित्तमयीमवा-प्तोऽत एव **धन्योऽसि** श्रेयोऽर्थित्वात् यतः **भवो** जन्ममरणरूपः संसारः स ए**वाब्धिर**पारत्वाद्दुस्तरत्वात्स त्वया **लीलया** श्रवणादृतया **जितः** क्तान्तेन जितप्रायस्यापि जितत्वमुक्तं ग्रामासन्नगतो ग्रामं गत इतिवत्।।२।। **भगवल्लीलां** कार्त्स्न्येन **को ब्रूयान्न** कोऽपि **चित्रा**ण्याश्चर्याणि भगवच्चरित्राणि चित्रत्वमाह **मूक** इत्यादि **यद्दृशा** यत्कृपावलोकनेन।।३।। **गोपीनाथ**नामकः **विप्र** आसीदिति शेषः **तत्पुत्रा बहवो मृताः**।।४।। **कान्तो** मनोहरः **सुलक्ष्मः** शोभनचिह्नः **पित्रो**र्मातापित्रोः पिता मात्रेत्येकशेषः तयो**र्मृता** ये**ऽर्भा**स्तन्निमित्तजं **अकं** दुःखं **विनाश**यतीति तथोक्तो**ऽवर्धत**।।५।। **अस्य** विप्रपुत्रस्य **विधे**र्दैवात् **वधूः** सहधर्मिणि **तयो**र्दम्पत्योः **परस्परोत्थितं प्रेम** चक्रवाकवत्सुदृढमासीत्।।६।। असपिण्डां यवीय-

उभौ तौ स्मरन्तौ सदाऽन्योऽन्यभद्रं न तन्द्रा न निद्रा पतिप्रेम्णि साध्व्याः ।।७।।

लेपोऽत्युष्ण इवानिलोऽनलसमः शीतांशुरुष्णांशुवच्छय्या वृश्चिकवत्सुमस्त्रगहिवद्भूषाः समाः कण्टकैः ।

वाङ्माधुर्यमपि प्रदीपनसदृक्स्वाद्वन्नमप्युत्कटु प्रेष्ठे त्वन्तरिते क्षणं दृढतरां साध्व्या अभूत्सर्वदा ।।८।।

एवं सतोश्चापरिहार्यशोषवान् भर्ता सुसाम्यासहनाद्विधेरभूत्।

क्षीणोऽरुचिः श्वासकफार्दितोऽनिशं दुःखोज्झितस्वापभुजिः सुमन्दवाक् ।।९।।

भुङ्क्ते यथान्नं स सती तथान्नं शेतेऽपि यावत्स सती तु तावत्।

कृशोऽपि यद्वत्स सती तु तद्वत् छायापरेवास्य पतिव्रताऽभूत् ।।१०।।

वैद्योऽन्तिके तस्य कुगन्धशङ्कया न याति साध्वी सुमना न तं जहौ।

भेजे पतिं स्नानसुगन्धिलेपनैः पादाङ्गसंवाहनभेषजार्पणैः ।।११।।

शान्त्यार्चनैर्होमजपैश्च भेषजैर्दानैर्न यक्ष्मा किमपि व्यहीयत।

श्यामामुखेन्दुं परिपूर्णमुद्रसन्मन्दस्मितज्योत्स्नमभूत्परो ग्रहः ।।१२।।

सीमिति स्मृतेः स्वापेक्षया वयसा वपुषा च न्यूना यवीयसी तादृशी उद्वाह्येति शास्त्रेण नियमितत्वेऽपि **सरूपा**वित्यत्रोक्तं लक्षणया तदनुरूपत्वं लक्ष्यं परस्परं **स्वयो**रात्मनोः **क्षणं वियोगं कुयोगं मन्यमानौ अन्योन्यभद्रं** परस्परक्षेम तयोर्मध्ये स्त्रिया विशेषमाह **पतिप्रेम्णि** निमग्नायाः **साध्व्यास्तन्द्रा**ऽलस्यं **न निद्रापि न**।।७।। **लेपो** यक्षकर्दमादिः **अनलो**ऽग्निः **सुमस्त्रक्**पुष्पमाला **भूषा** भूषणानि **प्रदीपनं** विषं **स्वादु** मधुर**मप्यन्नं उत्कटु** उत्कृष्टं कटु यथा मरीच्यादि मुखदाहकं तद्वत्**प्रेष्ठे** प्रियतमे पत्यौ **अन्तरिते तु**शब्देन प्रोषितस्य विरहेण ईदृशी दशा किमु वक्तव्यमन्यत् **दृढतरा**मित्यत्र च सुतरां इति समञ्जसं द्विवचनविभज्येति सुशब्दात्तरप् किमेत्तिङेत्यादिनाम्प्रत्ययः तद्धतश्चासर्वविभक्तिरित्व्ययम्।।८।। **एवं सतो**र्विद्यमानयोस्तयोः शोभन**साम्यासहनादिति** वर्तमानयुगमानेन **विधे**र्लोकानुसारेण दूषणं दत्तं अप्रतीकार्यक्षयरोगवा**नभूत अरुचिः** कान्तिरहितो रसरुचिरहितो वा **दुःखेन उज्झिते** निद्राभोजने येन सः चरके शिरःप्रतिपूरणं कासः श्वासः स्वरभेदश्लेष्मणश्छर्दनं शोणितष्टीवनं पार्श्वसंरोधनं अंसामर्दोज्वरोऽतिसारस्तथा रोचक इत्येकादशलक्ष्माण्युक्त्वा दुर्बलं त्वतिक्षीणमांसशोणितमल्पलिङ्गमप्यजातारिष्टमपि बहुलिङ्गमेव विद्यात् असहत्वाद्व्याध्यौषधबलस्य तं परिवर्जयेदित्युक्त्वा**दपरिहार्य** इत्युक्तं।।९।। **स** रुग्णो **यथा** स्तोकं स्तोक**मन्नं भुङ्क्ते यावत्**कालं स **शेते** शयनं करोति **सती** अपि **तावत्** क्षीणो धातुक्षयेण **कृशः अस्य** भर्तु**रपरा छायेव** साऽपि क्षयं विनैवा**ऽभूत्**।।१०।। **तस्य** रुग्णस्या**न्तिके** समीपे शोभनं मनो यस्याः सा **तं** पतिं **भेजे** सिषेवे।।११।। **शान्त्या** कर्मविपाकोत्तया यदुक्तं '*पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते। तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः*' इति नात्रैकैकेन शान्तिरुक्ता किन्तु समुच्चितैः तथैवात्राप्युक्तं ननु' *तं विद्याकर्मणी समन्वारेभेते पूर्वप्रज्ञा च* ' इति श्रुतेः क्रियमाणस्य कर्मणो जन्मान्तरे फलोपलब्धेः कथमत्रैवानुष्ठितस्यात्रैवारोग्यादिफलमिति चेत् '*अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलम्* ' इति वचनात्तच्छान्तिरित्यादिना च पूर्वकर्मणोऽप्युपशमप्रतिपादनाच्चारोग्यादिफलं निरवद्यं **श्यामा** षोडषाब्दा शीतकाल उष्णो-

द्विजं रुजार्तं च तथाविधां वधूं तयोर्न शेकुः पितरौ निरीक्षितुम्।
निवारिता तैरपि सा पतिव्रता न तं जहावर्यमणं प्रभा यथा ।।१३।।

।। विप्र उवाच ।।

प्राग्वैरतः कष्टमिदं मयार्पितं धृत्या पितः सात्त्विकयाम्ब जीवितुम्।
साध्वर्हथस्ते सति पूर्ववैर्यहं तन्मां विहायाशु पितुर्गृहं व्रज ।।१४।।

।। साध्व्युवाच ।।

नार्हास्म्यनन्यशरणा परिहापितुं ते नन्वर्धसुन्दरशरीरविभागिनीयं।
जीवोऽस्य साधुवपुषोऽस्ति भवान्वियुक्ते जीवे तनोर्ननु भवेत्खलु जीवहत्या ।।१५।।
सदा मदास्यं शशिशालि कालिमा कुतो यतो भैधत एवमेव ते।
अकी सुखी यत्र भवत्यवत्यघात् तमीशमीडे स तु देवदेवतः ।।१६।।
नमो नमो वां श्वशुरौ मया श्रुतो गुरुः स गन्धर्वपुरेऽस्ति तारकः।
असुप्रियोऽनामयमेति भाति मे सहामुना यास्य उ रोचतेऽपि वाम् ।।१७।।
तावूचतुः क्वापि तव श्रमेण सम्प्राज्ञि जीवेत स तत्र गच्छ।
श्रुत्वैवमाराच्छ्वशुरौ प्रणम्य तदाज्ञयाऽगात्सह तेन साध्वी ।।१८।।

ष्णकाले शीतला वा त**न्मुख**रूप**मिन्दुं** आल्हादकत्वाच्चन्द्रौपम्यं **मुखं परि**तः शोभया **पूर्णं** एतेन पूर्णचन्द्रेणोपमितमित्युच्यते तर्ह्याल्हादकत्वेनोपमित उपमेये मुखचन्द्रे का ज्योत्स्नेत्यत आह मर्यादया य**न्मन्दस्मितं** तदेव ज्योत्स्ना यस्य तत् **उद्ग्रसन् परो** राहुरिव **यक्ष्माऽभूत्**। उपमालङ्कारः पत्युः क्षयेण तस्या वदनं म्लानमभूदित्यर्थः।।१२।। **तयो**र्म्पत्योः।।१३।। भो **पितः** यथा च हे **अम्ब** मातः पूर्वजन्म**वैरतः साधु** सम्यक् **सात्त्विकया धृत्या** धैर्येण एवं पितरावुक्त्वा हे **सती**ति पत्नीं भाषते **आशु** शीघ्रं।।१४।। स्त्रीत्वा**दनन्यशरणा अर्धं** य**त्ते सुन्दरं शरीरं** तदेव **विभागो**स्त्यस्या '*अर्धो वा एष आत्मा पत्नीशरीरम्* ' इति श्रुतेः तादृशीयमहं मम **तनोः** सकाशा**ज्जीव**रूपे **भवति वियुक्ते** सति **इयं** मरिष्यति ततो भवतः **खल्वि**यं **हत्या** जीवच्छरीरघातो न **भवे**त्किं अपि तु भवेदेव **जीवे**ति सम्बोधनं वा।।१५।। **कुतः कालिमा** एष्यति **यतः भा** शोभा **एधते** वर्धते **यत्र** यस्मिन्भगवति तात्पर्येण स्थित इति शेषः **अकी** दुःखी **सुखी भवति सोऽघादवति तं देवते**ति पाठः साधुः देवात्तल्।।१६।। एवमुक्त्वा **श्वशुरौ** प्रार्थयते आदराद्द्विरुक्तिः **असुप्रियः** पति**रनामय**मारोग्य**मेत्ये**षतीति**मे भाति अमुना** पत्या **सह यास्ये** इदं **वां रोचतेऽपि** अपि प्रश्ने **उः** पादपूरणेऽनर्थकः।।१७।। **तव श्रमेण** यत्र **क्वापि जीवेत स** त्वत्पतिः **तत्र** तेन

सुखस्थितं मन्थरवाहवाहितं तमन्वगच्छत्पतिमङ्घ्रिचारिणी।
दधौ कराकृष्टधवा गमानत-क्षमेभिभामुत्कुचगण्डकर्शिता ।।१९।।
क्रान्तेऽयनेथो कतिचिच्छनैः शनैर्मृत्युं धवोऽगात्स तदैव दैवतः।
सा मर्तुमुत्कापि निवारितेतरैः शुक्तामसीम्लानमुखाम्बुजाऽवदत् ।।२०।।
कालात्ययं मा कुरु कुर्वथाह्निकमुत्तिष्ठ शेषे कति नाथ विप्रराट्।
कस्मान्न मे दास्यसि वल्लभोत्तरं प्रेष्ठं नु किं ते वचनं व्यलङ्घ्यम् ।।२१।।
प्राणाः क्व याताश्च मनः क्व ते गतं द्राक्तान्परावर्तय जीवितुं चिरम्।
लिप्तः स्वमातापितृदारहत्यया भविष्यसि त्वं न तथा करोषि चेत् ।।२२।।
उद्वाहितां क्वैषि विहाय मां प्रियां पुत्राननुत्पाद्य कथन्वृणोद्धृतिः।
स्थातव्यमीश क्व कथं न भाषितं कथं व्रजेयं सदनं गुरोश्च वः ।।२३।।

साकं त्वं **गच्छ सम्राज्ञी**त्यनेन वेदोक्ताशीः सूचिता सा च '*सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव। ननंदारि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु* ' इति **श्वशुरौ** श्वश्रूश्वशुरौ श्वशुरः श्वश्र्वेत्येकशेषः **तेन सह** भर्त्रा सह।।१८।। **सुखा**सने आंदोलिकायां **स्थितं** मन्दगामी**वाह**कै**र्वाहितं तं** पतिमन्वगच्छत् कथं स्वयं **अङ्घ्रिचारिणी** पादचारिणी **करे**णा**कृष्टो**ऽन्वारब्धो **धवा** यया **गम**नेना**ऽनता क्षमा** यया पातिव्रत्यप्रभावात्तद्गमनेन पृथ्वी स्वयमेवानता जातेति तात्पर्यं **उत्कुचा**वेव **गण्डौ** तेन **कर्शिता**ऽतएव **इभ्या** करेण्वाः भेव **भा** तामिति निदर्शनालङ्कारः इभीभेति वक्तव्ये छन्दोभङ्गभिया ह्रस्वत्वमुक्तं ' *अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दोभङ्गं न कारयेत्* ' इत्यनुशासनात्।।१९।। अथ पत्यासह कतिचिद्दिनैः **शनैरयने** गन्तव्यमार्गे **क्रान्ते** सति गन्धर्वपुरसमीपमागमे कृते सति **चिच्छनैःशनै**रिति पाठः **तदैव दैव**योगात्तस्य **धवः** रुग्णो **मृत्युमगात् मर्तुमुत्को**त्कण्ठितापि साऽन्यै**र्निवारिता शुक्**शोक एव **तामसी** रात्रिः अज्ञानान्धःकारहेतुत्वात्तया **म्लानं** मुकुलितं **मुखाम्बुजं** यस्याः **साऽवदत्** तामस्या हि कमलं मुकुलीभवतीति प्रसिद्धम्।।२०।। **कालात्ययं** सन्ध्याकालातिक्रमं **मा कुरु** प्रत्यवायश्रवणात् **आह्निकं** कर्म **कुरु** अतो हे **नाथोत्तिष्ठ विप्रराट्** इत्यनेन कर्मशीलत्वं सूचितं **प्रेष्ठं** प्रियतमं।।२१।। मनःपूर्वको हि वाग्व्यापारः '*यद्वै मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति* ' इति श्रुतेः वाच्युपसंहतायां मनोऽपि मननव्यापारेण केवलं वर्तते मनोऽपि यदोपसंह्रियते तदा मनः प्राणसंपन्नं भवतीत्यतः प्रत्युत्तरालाभे तदेव कारणं पृच्छति **प्राणाः क्व** गताः इतो लोकान्तरं गताः सति चेत् **द्राक्** शीघ्रं **तान्परावर्तय चिरं जीवितुं** यतस्त्वं विप्रराडसि एवं **न करोषि चेत्स्वमात्रा**दि**हत्यया लिप्तो भविष्यसि** त्वयि मृते तेऽपि मरिष्यन्तीति भावः।।२२।। कृतो**द्वाहां मां प्रियां विहाय क्व एषि** गच्छसि मयि **पुत्राननुत्पाद्य कथं नु** नाम तव पितॄणा**मृणा**दुद्धारः तत्तु तावदस्तु हे **ईश मया क्व** कुत्र **कथं स्थातव्यं** तत्र **भाषितं वो** युष्माकं **गुरोः** पितु**र्गृहं व्रजेयं**।।२३।। तत्कारणमाह **सर्वत्रे**ति **पूता** पवित्रा **मदास्यं** मम मुखमपि **व्रीडास**हित**नर्मोक्ति**श्च **सुतल्पं** च **हावयुक् ताम्बूललेप**श्चा**दि**र्यस्य तत्र

सर्वत्र पूता त्वयि जीवतीशितर्-मदास्यमप्यद्य न कोऽपि पश्यति।
सव्रीडनर्मोक्तिसुतल्पहावयुक्ताम्बूललेपादि कथं न ते हृदि **।।२४।।**
सुखं स्वपोरूत्कुचभारभङ्गभीभीतमध्यात्मसुतल्प ईश।
किं ते शिलाढ्ये शयनं कुपृष्ठे सुप्तः पृथङ्नर्तुमृतेऽद्य किं तत् **।।२५।।**
नक्रोऽप्सु यद्वत्तृषितं यथा द्रुः श्रान्तं यथा गां तृणगां च हिंस्रः।
प्रासाद ईशेक्षकमुन्निहन्ति जातं तथा मे गुरुदर्शनाप्तेः **।।२६।।**
जयेश्वरानन्त कथं त्वया कृतं भिया त्वयात्रापहृतोऽस्ति किं पतिः।
रुक्शान्तिशक्तिर्यदि ते न गम्यतामिति त्वयोक्ते कतमोऽर्दितुं क्षमः **।।२७।।**
त्वया कृतं साधु यशो दिवं ते वहामि भर्त्रा सह गौरिमातः।
क्वेता ह्यवैधव्यकदानशक्तिर्व्रतेश्वरीशे न कथं स्मृतिर्मे **।।२८।।**
माङ्गल्यतन्तुं च निशां च कुङ्कुमं हर्तुं महांश्चोर इहागतः कुतः।
सौभाग्यनौर्मे भवसिन्धुसंस्थिता सा कालमीनेन कथं नु चर्विता **।।२९।।**
एवं रुदित्वोरुकुचत्रुटत्पटा संस्मृत्य संस्मृत्य तदीयचेष्टितम्।

व्रीडा लज्जा **तल्पं** शय्या **हावः** श्रृङ्गारभावजा क्रिया यक्षकर्दम**लेप**श्च **आदि**शब्दादालिङ्गनादि कृतघ्नो मा भवेति भावः।।२४।। स्थूलोच्चस्तन**भार**पातभय**भीतो मध्यः** कटिप्रदेशो यस्य स स चासा**वात्मा** मदीय देहः स एव **सुतल्पं** तस्मिन्**सुखं** यथा तथा **स्वप** हे **ईश कुपृष्ठे** धरातले **कि**मर्थं **शयनं** यतो **ऋतु**कालीनचतुर्दिनं विना त्वं **पृथङ्न सुप्तः** अतस्तत्पृथक्शयनं किमर्थं यतो नारीणामशस्त्रवध एव पृथक्शय्या।।२५।। **यद्वन्नक्रोऽप्सु तृषितं** हन्ति **तृणगां गां हिंस्रो** व्याघ्रादिर्हन्ति **ईश्वर**दर्शनाकांक्षिणं **प्रासाद** उच्चैः पतित्वा **नि**तरां **हन्ति गुरुदर्शन**प्राप्ते**स्तथा मे** मम तथा जातमित्यभिप्रायः मार्ग एव पतिमरणात्।।२६।। **अत्र** मार्गेऽनामयसम्पदनभयेनायं **पतिरत्रापहृतोऽस्ति किं रुक्शान्ति**सामर्थ्यं **यदि ते न** चेद्भवद्भिः पश्चा**द्गम्यतामिति त्वयोक्ते** सति जीवयैनमिति त्वा**मर्दितुं** याचितुं कोऽपि न समर्थः अर्द याचने।।२७।। **साधू**त्तमं **भर्त्रा सह ते यशो दिवं** स्वर्गं **वहामि** भो **मातर्गौरि** तवा**वैधव्यकदानशक्तिः क्व** गता हे **व्रतेश्वरि** *'विवाहं भाग्यमारोग्यं पुत्रलाभं च देहि म '* इति प्रार्थितवत्या मम स्मरणं **कथं न** कृतम्।।२८।। **निशां** हरिद्रां **महान**परिहार्य**श्चोरः** कालरूप **इहा**भये गुरुसमीपे **चर्विता** भक्षिता।।२९।। स्थूलकुचाभ्यां **त्रुटत्पटः** कञ्चुकाख्यो यस्याः सा एतेन तारुण्यभरो द्योतितः।।३०।। ममायं पतिर्मृत इति

प्रत्यङ्गमालम्ब्य रुरोद मोहतः साध्वी तदा कश्चन साधुराययौ ।।३०।।
रुद्राक्षभूषो भसिताक्तदेहः शूली बभाषे जटिलः स साध्वीम्।
बाले शुचा नैति मृतः कुतस्त्वं मुधोच्चकै रोदिषि तिष्ठ तूष्णीम् ।।३१।।
मृत्युर्न केषां विषयोऽपि देवान्ग्रसत्यसौ चापरिहार्य एव।
द्रौ व्यैक्यमब्धौ च यथेन्धनैक्यं भवप्रवाहेऽपि तथा धवादिः ।।३२।।
सम्बन्ध एषां नियतो मतश्चेत् प्राग्जन्मनि त्वं वद कस्य का वा।
सम्बन्धिनः कस्य न केऽद्वयत्वाज्जीवश्चिदंशोऽखिलगोऽव्ययोऽजः ।।३३।।
पञ्चात्मकेऽस्मिन्खलु संगतेऽत्र भर्त्रादिबुद्धिर्न तु तत्त्वतोऽस्य।
काष्ठाग्निवत्तं तु पुमादिलिङ्ग-हीनं धवादिं प्रकृतिस्थमाहुः ।।३४।।
प्राप्तः प्रकृत्युत्थगुणानुगोऽसौ शरीरतादात्म्यमतोऽस्य वृद्धा।
द्वन्द्वप्रतीतिर्न तु सामलेऽजे द्वन्द्वोत्थकर्माश्रयिणो भवोऽस्ति ।।३५।।

मिथ्याज्ञानेन शोकसागरे निमग्नायां साध्व्यायास्तत्त्वज्ञानादन्यदुद्धरणमपश्य कृपया रूपान्तरेणागत्य तामुद्दिधारयिषुः **स साध्वीं बभाषे** हे **बाले** यः कश्चिन्मृतः स संबन्धिनकृतशोकेन पुनर्जीविष्यति तर्हि शोकमवश्यं कार्यः तथा न दृश्यते यतो **मृतः शुचा नैति** तस्मात्**कुत उच्चै**रुच्चकैः अव्ययसर्वनाम्नामित्यकच् **मुधा** व्यर्थं **रोदिषि** शुच आनर्थक्यात्**तूष्णीं तिष्ठ**।।३१।। मृत्युग्रस्तस्य पत्युर्विरहादयं शोक इति चे**न्मृत्युः केषां** देहधारिणां **न विषयो** गोचरः यतो **देवान**पि चिरकालेन **ग्रसत्य**तो**ऽसौ अपरिहार्य एव** सम्बन्धविरहदुःखनिमित्त शोकः कथं निवार्य इत्यत आह **द्रौ** वृक्षे रात्रौ **वी**णां पक्षिणा**मैक्यं** एकत्र निवास इति लक्षणया विवक्षितार्थो लक्ष्यते न त्वखण्डैकरसत्वं **अब्धौ इन्धनैक्यं** काष्ठसंयोगः **तथा भव**रूप**प्रवाहेऽपि** संगतो **धवादिः** प्रारब्धयोगात्क्षणभङ्गुरसम्बन्ध एषामिति भावः।।३२।। ध्रुवो नित्यः **सम्बन्धो मतश्चे**त्तवेति शेषः मतिबुद्धीति षष्ठ्या अपेक्षिततत्वात् **प्रागजन्मनि त्वं कस्य** जात्यादिपुरुषविशिष्टस्य **का वा** पत्नी माता वासीः '*एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म तत्त्वमसि* ' इत्यादिश्रुतेर्जीवस्या**द्वयत्वात्कस्य केऽपि सम्बन्धिनो न** यतो **जीवश्चिदंशः** '*ममैवांशो जीवलोक*' इति स्मृते**रखिलगः** व्यापकः प्रत्यक्त्वात् **अव्ययोऽज**श्च '*न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे* ' इति स्मृतेः।।३३।। तर्ह्ययं कथं व्यवहार इत्यत आह **पञ्चात्मके** पाञ्चभौतिके देहे**ऽस्मिन्**जीवे **संगते**ऽनुप्रविष्टे सति **अत्र** देहे **भर्त्रादिबुद्धि**र्मृषा नत्वागमप्रमाणजन्येत्याह **अस्या**नुशायिनो जीवस्य ममायं भर्तेत्यादिबुद्धि**र्न तु तत्त्वतः** '*अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्ट रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च* ' इति श्रुतेः **काष्ठाग्निवत्प्रकृतिस्थं पुरुषादिलिङ्ग**वि**हीनं धवादिं** मूढा वदन्ति ' *नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः। यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स लक्ष्यते* ' इति श्रुतेर्लिङ्गानुपपत्तेः।।३४।। तर्हि पुरुषोऽहमेषाहं स्त्रीति प्रतीतिः कथमित्यत आह **प्रकृत्युत्थगुणानुगोऽसौ** जीवः **शरीरतादात्म्यं** प्राप्तः '*कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।*

भवोद्भवः कर्मत एव कर्म भवोद्भवं तूभयमज्ञभावात्।
धीरेण येनोभयमेव कृत्तं तत्त्वासिना तस्य न वै भ्रमोऽयम् ।।३६।।
अस्यास्त्यविद्यैव घटादिवद्द्यो रुपाधिरात्मत्वमुपाध्यपाये।
मालाहिवत्कल्पित एति नाशं भ्रमोऽस्य सद्दर्शितत्त्वदीपात् ।।३७।।
तावद्भ्रमान्तौ नियतौ द्युरात्रिवज्जन्तोरतस्तत्त्वविचारवान्भवेत्।
त्वग्रक्तमांसास्थिमयात्मशोकतः स्वार्थः कुतः साध्वि समुद्भवेद्वद ।।३८।।
तस्माच्छुचं मुञ्च सति प्रसाधय स्वार्थं यथा येन भवं तरिष्यसि।
तत्काल एषैव यदा प्रमादतो याता नृयोनिस्तु पुनर्न तत्कथा ।।३९।।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्। कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ' इति स्मृतेः। अतो हेतो**रस्य** सुखदुःखादि**द्वन्द्वप्रतीति**रपि **वृद्धा अमले** प्रकृतिगुणरहिते**ऽजे न तु** विद्यते तर्हि जन्मादिप्रत्ययः कस्येत्यत आह **द्वन्द्वोत्थे**ति।।३५।। तर्हि देवदत्तो जातः स च शास्त्रीयेण संस्कारेन संस्कार्य इति लोकप्रसिद्धिः शास्त्रप्रवृत्तिश्च कथमित्यत आह भवतीति **भवः** देहस्तस्यो**द्भवो** जन्म जीवस्य प्राचीन**कर्मतः** पुनर्देहोपाधिना जातस्य देहद्वाराऽऽगामिजन्मार्थं क्रियमाणं **कर्म उभयन्तु** जन्म च मरणं चा**ज्ञभावात्** ' *चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात्* ', '*नाऽऽत्माश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्य* ' इत्यधिकरणन्यायात् स्थावरजङ्गमविषयो जन्ममरणशब्दः शरीरप्रादुर्भावतिरोभावित्वात् जातकर्मविधानमपि देहप्रादुर्भावापेक्षमेव जन्मव्यपदेशस्तु गौण इति प्रथमसूत्रार्थः। जीवात्मा नोत्पद्यते उत्पत्त्यश्रवणात् पुनश्च ताभ्यः श्रुतिभ्यो नित्यत्वश्रवणात् चकारादजत्वाविकारित्वश्रवणाच्च नोत्पद्यत इति द्वितीयसूत्रार्थः। यद्वो**भयमि**ति जन्म च कर्म चेति ते तथात्वेऽप्युपाधिजन्मनैव जन्म उपाधिनाशेनैव नाशो जीवात्मनो न तु स्वतः **येन धीरेण** विवेकिना **उभयं** जन्म च कर्म च **तत्त्व**ज्ञाना**सिना** छिन्नं **तस्यायं** जन्ममरणलक्षणो **भ्रमो नैव**।।३६।। येनोपाधिना जायते म्रियते च कोऽसावुपाधिरित्यत आह **द्यो**राकाशस्येव **घटादिवदस्य** जीवस्या**विद्योपाधिरस्ति** भावरूपत्वादस्तीत्युक्तं **उपाधि**नाशे **आत्मत्वं** निर्विकल्पं स्फुटमेव ' *एको देवः सर्वभूतेषु गूढः* ' इति श्रुतेरविद्योपाधिनिमित्तं त्वस्य प्रविभागप्रतिभानं ज्ञानमयो मनोमयः प्राणमय इत्यादितन्मयत्वं चास्य विविक्तस्वरूपानभिव्यक्त्या तदुपरक्तस्वरूपत्वं स्त्रीमयो जाल्म इत्याद्यर्थतः सिद्धं ' *प्रज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति* ' इति श्रुतेरुपाधिप्रलय एवाभ्युपेयो नात्मनः। अस्तु नाम तथात्वं अनादिकालप्रतीतभ्रमनाश कथमित्यत आह **माले**ति **सता** साधुना प्र**दर्शितः** य**स्तत्त्वदीप**स्तस्मात् यद्वाऽज्ञानोत्थमिथ्याप्रत्ययलक्षणमोहान्धकारनाशार्थं स्वभक्तान्तःकरणाशयस्थितेन **सता** सत्यज्ञानानन्तादिलक्षणेनेश्वरेण स्वानुकंपानिमित्तं स्वभक्ताय प्र**दर्शितो** यो ज्ञान**दीपो** विवेकप्रत्ययरूपो भक्तिप्रसादस्नेहाभिषिक्तो भगवद्भावनाभिनिवेशवातेरितः ब्रह्मचर्यादिसाधनसंस्कारवत्प्रज्ञावर्तिर्विरक्तान्तःकरणाधारः विषयव्यावृतचित्तरागद्वेषाकलुषितनिवातापवरकस्थितो नित्यप्रवृत्तैकाग्र्यध्यानजनितसम्यग्दर्शनभास्वानीदृशाद्दीपात् स्मृतिश्च '*तेषामेवानु०* '।।३७।। **द्युरात्रिव**ज्जन्मलक्षण**भ्रम** उपाधिवियोगलक्षणनाशश्च यावत्तत्त्वदीपो न दृष्ट**स्तावत्तौ नियतौ अतस्तत्त्वविचारवान् भवेत्** हे **साध्वि त्वगादिमय**देह**शोकतः कुतः स्वार्थो भवेत्** अपि तु नैव।।३८।। **स्वार्थः** सांपरायः **येन यथा भवं तरिष्यसि** तथाभूतं

।। साध्व्युवाच ।।

प्राप्ता धवानामयहेतुनाधुना दैवात्पथेऽस्मिन्दयितो मृतः पितः।
सम्बन्धिनोऽप्यन्तरितास्त्वमेव मे सर्वोऽसि मामुद्धर दुःखसागरात् ।।४०।।

।। साधुरुवाच ।।

भर्तैव तारकं साध्व्या नोपाया बहवो नृवत्। शृण्वगस्त्यसतीस्तोत्र-प्रसङ्गोक्तं वृषं सुरैः ।।४१।।
विन्ध्योत्कर्षभियैत्य तद्गुरुमगस्त्यं तद्वधूं निर्जरैः। साकं देवगुरुर्जगौ सति रमा सावित्र्युमारुन्धती ।।
इत्याद्या अपि साध्व्य उत्तमतमा तासां त्वमेवास्यहो । छायेवानिशमीशसेवनपरा त्वन्निर्घ्नमेतज्जगत् ।।४२।।
भक्त्या छायेव याश्रान्तं स्वभर्तृपरिचारिणी । पतिरेव व्रतं यस्या अखण्डं सा पतिव्रता ।।४३।।
पादाम्बु तीर्थमुच्छिष्टं प्रसादो देवतार्चनम् । तत्सेवा भूषणं तोषो धर्मोऽनुज्ञानुपालनम् ।।४४।।
वशानुवर्तनं देह-यात्रा श्वश्र्वादिगौरवम् । लोकयात्रेश्वरो भर्ता करणं पोष्यपोषणम् ।।४५।।
कार्यं नाज्ञां विना किञ्चिद् दूरात्स्थेयं स्थिते प्रिये । सुप्तोत्थितात्प्रागुत्थाय सेव्योऽश्रान्तं पतिर्मुदा ।।४६।।
तस्मै दत्वेष्टमाप्लुत्य गृहसंमार्जिनादिकम् । दत्वेशायेष्टसंभारा देयाः स्वादु च भोजनम् ।।४७।।
क्रुद्धश्चेत्प्रार्थनीयो न गन्तव्यं परसद्मनि । नाज्ञां विना गुरोर्गेहे न वक्तव्यं सदेतरैः ।।४८।।
मन्दं श्वश्र्वादिसामीप्ये वक्तव्यं सन्धयेशितुः । इष्टं देहीति नो वाच्यं वक्तव्यं परवक्त्रतः ।।४९।।

सांपरायाख्यं स्वार्थं **प्रसाधय त**त्समय **एष एव** छन्दानुरोधेन संधिलोपः सर्वेन्द्रियपाटवरूपं यावत्तारुण्यं तावदेव न तु पराधीने वार्धक्ये नापि योन्यन्तरे इत्याह यदेति **यदा** यर्हि।।३९।। **मामुद्धरे**त्यनेन गुरूपसदनमुक्तं।।४०।। **उपायाः** योगयागाद्याः देवै**रगस्त्य**पत्नीस्तुति**प्रसंगे**नो**क्तं वृषं** धर्मं। तारकमिति पाठे **तारकं** हृदयालम्बनं ब्रह्म।।४१।। **विन्ध्योत्कर्ष**भयेन देवैः **साकं गुरु**र्बृहस्पतिः **तस्य** विन्ध्यस्य **गुरु**मगस्त्यं **एत्या**गत्य **तद्वधूं** लोपामुद्रां वक्ष्यमाणं **जगौ जगत्त्वन्निघ्नं** त्वदधीनं।।४२।। **अश्रान्तं** श्रमरहितं निरन्तरं च।।४३।। पत्युः **पादाम्बु** पतिव्रताया**स्तीर्थं तोषः** संतोषो **भूषणं** पत्युरा**ज्ञापालन**मेव **धर्मः**।।४४।। **ईश्वरो** उपास्यो **भर्ता** उपासनं नाम यथाशास्त्रसमर्पितं किञ्चिदालम्बनमुपादाय तस्मिन्समावृत्तिसन्तानलक्षणसेवनं तद्विलक्षणप्रत्यानन्तरितं ' *तं यथायथोपासते तदेव भवति* ' इति श्रुतेः।।४५।। भर्तु**राज्ञां विना**।।४६।। **इष्टं** जलादि पूजाविधा**विष्टसंभाराः देयाः**।।४७।। **गुरोः** पितु**र्गेहे सदा** आवश्यकं विना।।४८।। **श्वश्र्वादिसामीप्ये मन्दं वक्तव्यं ईशितुः** पत्युः समीपे **संधया** मर्यादया वक्तव्यं **इष्टं** वस्तु **देहीति** पत्ये स्वयं न

स्वीकार्यं वस्त्रभूषादि भर्त्रा दत्तं यदृच्छया । न निन्द्यो दुर्भगो दीनो दुःशीलोऽपि शिवोपमः ।।५०।।
न कार्यं स्वैरिणीसख्यं स्वानां पार्थक्यमप्युत । धार्याः सौभाग्योपचारा न भूषाः प्रोषिते प्रिये ।।५१।।
दर्शितव्यं मुखं नर्तौ श्रोतव्यं नागमादिकम् । स्नात्वा चतुर्थेऽह्नि भर्ता प्रेक्ष्यो वाऽसम्भवे रविः ।।५२।।
प्रोषितेऽर्च्याज्ञया स्थेयं प्रत्युद्गन्तव्यमागते । सव्रीडहावरत्यङ्घ्रि-सेवाद्यैस्तोषणीय इत् ।।५३।।
सुप्तेऽस्मिन्च्छयनं कार्यं नोच्चार्यं पतिनाम च । भोक्तुं नान्यत्र गन्तव्यं याच्ञा कार्या न कुत्रचित् ।।५४।।
वैषम्येऽपि सुखं कल्प्यं कल्प्येशे दुःखिते न मुत् । त्याज्यमुच्चासनं लीला धवाद्यग्रे हसस्तथा ।।५५।।
प्रतिवादाच्छुनी भर्तुरुलूकी गुरुवर्जनात् । पतिं विना स्वादुभुक्त्या वराहोलूकयोनिगा ।।५६।।
मूका रोषोक्त्या व्याघ्री स्यात् कृतताडनभाषिणी । सपत्नीवैरतः स्त्री स्याद् दुर्भगा जारगा कृमिः ।।५७।।
पत्यौ मृतेऽनुगन्तव्यं स्थेयं वा विधवावृषे । शवाभावे गर्भिणीत्वेऽल्पेऽर्भे वैधव्यपालनम् ।।५८।।
शिरसो वपनं कार्यं भुवि शय्या सकृद्भुजिः । वर्ज्यास्ताम्बूलगन्धादि सुभोगा मंगलाप्लुतिः ।।५९।।
त्याज्याः सौभाग्योपचारा धार्यं गौरांशुकं सदा । राधमाघोर्जेषु कार्यं स्नानदानव्रतादिकम् ।।६०।।
शक्तौ चान्द्रायणं कार्यं भोज्यं वाज्यफलादिकम् । यत्प्रियं सति पत्यौ तद्देयं विप्राय भक्तितः ।।६१।।
मासव्रतं च कल्पोक्तं कार्यं यद्यत्तु वर्जितम् । देयं विप्राय चोष्णाम्बु तोषणीयस्तु तैर्थिकः ।।६२।।

वाच्यं यद्व्यवहारसम्बध्यावश्यकं **वक्तव्यं तत्परवक्त्रतो** वाचनीयं।।४९।। **यदृच्छया भर्त्रा दत्तं स्वीकार्यं** न स्वेच्छया **दीनो** दरिद्रः।।५०।। **स्वानां** स्वेषां देवरादिनां **पार्थक्यं** पृथग्भावो **न कार्यः उपचाराः** कुङ्कुमहरिद्राञ्जनसिन्दूरभूषाः **प्रिये** देशान्तरगते **भूषा न धार्याः**।।५१।। **ऋता**वार्तवे प्राप्ते **आगमो** वेदः **असम्भवे रविः प्रेक्ष्यः**।।५२।। **प्रोषिते** पत्यौ **अर्च्या**नां श्वशुरादीनां **आज्ञया** स्थातुं योग्यं पत्यौ प्रोष्या**गते** संमुखं **गन्तव्यं तोषणीयः** पतिरिति शेषः।।५३।। **अस्मिन्**पत्यौ **अन्यत्र** परगृहे।।५४।। दारिद्रादिना काल**वैषम्येऽपि सुखं कल्प्यं ईशे** पत्यौ **दुःखिते** स्वयं **मुत्** आनन्दः **न** कल्प्यः **हसो** हास्यं।।५५।। भर्तुः **प्रतिवादा**ज्जन्मान्तरे **शुनी** भविष्यति **गुरोः** श्वशुरादे**र्वर्जनादुलूकी पतिं** विहाय कृतेन **स्वादु**भोजनेन।।५६।। पतिं प्रति **रोषोक्त्या मूका** पत्याऽहं ताडितेति **भाषिणी व्याघ्री**।।५७।। **विधवावृषे** विधवाधर्मे **अर्भे** अल्पवयस्के **वैधव्यपालनं** मुख्यं।।५८।। तदाह **सकृद्भुजि**र्दिवैकवारं भोजनं **कार्यं मङ्गलस्**नानं **वर्ज्यं**।।५९।। **गौरं** श्वेतं रक्तं वा **राधो** वैशाखः **माघः** प्रसिद्धः **ऊर्जः** कार्तिकः।।६०।। **पत्यौ** विद्यमाने **यदा**त्मनः **प्रियं तद्विप्राय भक्त्या देयं**।।६१।। **उष्णाम्बु** स्नानाद्यर्थं **विप्राय देयं तैर्थिकः** तीर्थयात्रापरः।।६२।। **पुत्रे** विद्यमाने **तदाज्ञा** पालनीया **हरि**र्विष्णुः **कुभोजनं** कन्दर्प-

पुत्रे तदाज्ञया स्थेयं सम्पूज्यः पतिवद्धरिः । गुरुगोऽतिथिसद्विप्राः पूज्यास्त्याज्यं कुभोजनम् ।।६३।।

हरिलीलारतिः कार्याऽपुत्रया पितृतर्पणम् । गोप्यं शीलं स्वकैः सार्धं तद्वैगुण्यादधोगतिः ।।६४।।

एतद्धर्माश्रयात्साध्वी दुर्गतिस्थमपि प्रियम् । प्रसह्योद्धृत्य चिल्लीव सर्पं स्वर्विशति ध्रुवम् ।।६५।।

लोपामुद्रे त्वत्ततोऽसौ सतीधर्मोऽत्र तारकः । एवं जीवोक्तधर्मस्ते मयोक्तः स्वेच्छयाचर ।।६६।।

भेवार्कं पतिमन्वेहि रोचतेऽनुगमो यदि । स्वर्याति गौरवाद्येन प्रोद्धृत्येशं यमादपि ।।६७।।

प्रत्यङ्घ्र्यश्वक्रतुफलं कोट्यब्दं प्रतिरोमतः । स्वर्वासः सार्धत्रिकोटि-रोमहोमात्प्रियान्वितः ।।६८।।

रूपलावण्यसंपन्नाः स्त्रियः सन्ति गृहे गृहे । ताभिः किं कार्यमेकैव साध्वी त्रिकुलपावनी ।।६९।।

क्ष्मावातोऽर्कोऽग्निर्बिभेति स्वत्रासोऽस्या भवेदिति । तिष्ठन्ति प्रणता देवाः स्वपदच्युतिशङ्कया ।।७०।।

साध्व्या इयान्प्रभावोऽस्ति धन्यैषा पितृतारका । धिग्दुःशीलामधःशेते या चिरं त्रिकुलैः समम् ।।७१।।

।। साध्व्युवाच ।।

वैधव्यपालनं कष्टं तारुण्याद्यत्र घातकम् । प्रीतिर्धवानुगमने नूनं मे वर्धते गुरो ।।७२।।

।। साधुरुवाच ।।

साधु साध्वि तदिष्टं ते मा शुचो दैवमुन्नतम् । आयुष्मद्भीष्मपौलस्त्य-मुखाः कालवशं गताः ।।७३।।

कालोऽजय्योऽमरैश्चापि दुर्धरः सद्गुरुं विना । गुरुदर्शनकामाप्ता दूरात् तत् त्वं समाचर ।।७४।।

लशुनादिगर्हितभक्षणं **त्याज्यं** सुरापानसमत्वेनोक्तत्वात् यदाहुः ' *ब्रह्मोज्झं वेदनिन्दां च कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः। गर्हितान्नाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट्* ' इति।।६३।। **अपुत्रया** भर्त्रादि-त्रयीं पित्रादित्रयीं चोद्दिश्य **तर्पणं** कार्यं **शीलं** स्वभावः पालनीयः।।६४।। **दुर्गति**गतमपि **प्रियं** बला**दुद्धृत्य स्वर्विशति चिल्ली सर्पमिवे**त्युद्धृत्य गमने एव दृष्टान्तः।।६५।। हे **लोपामुद्रे त्वत्** त्वत्त**स्ततो**विस्तृतः एवमित्यादि साधुर्वदति। अपुत्राया अपि विधवायाः स्वर्गतिः स्मर्यते ' *मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यं व्यवस्थिता। स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिण* ' इति **स्वेच्छया** वैधव्यपालनं वाऽनुगमनं वा**ऽऽचर** नात्र ममाग्रहः।।६६।। **भा** प्रभा**ऽर्कमिवे**ति योग्यो दृष्टान्तः **येना**नुगमनेन **गौरवा**द्देवकृत गौरवपूर्वकं स्वर्याति।।६७।। **प्रत्यंघ्रि** स्वनिवासाछ्मशानान्तं प्रतिपादं **अश्वमेधफलं प्रतिरोमतः कोटि**वर्षपर्यन्तमेवं **सार्धकोटित्रयरोमहोमा**त्पत्या सह स्वर्वासः।।६८।।६९।। **अस्याः** साध्व्याः स्वकाठिण्यादित**स्त्रासो भवेदिति शङ्कया** तस्याः **क्ष्मा**दिर्बिभेति।।७०।।७१।।७२।। पुनर्धर्मपरीक्षार्थं तामुपदिशति **साधु साध्वी**ति।।७३।। **अमरैरप्यजय्यः कालः सद्गुरुं**

स्नात्वा पीताम्बरं धृत्वा प्रायश्चित्तपुरःसरम् । सौभाग्यवायनान्यङ्ग सपत्नीकद्विजेभ्य इत् ।।७५।।

दत्वा श्रुत्योर्गले चेमान् बध्वाक्षान्भस्म मस्तके । लिम्वाङ्गं गुरुपादाद्भिः प्रोक्ष्येशमनुयाह्ययि ।।७६।।

इत्युक्त्वा भस्मरुद्राक्षान् दत्वागात्सोऽपि सा द्विजान्। आहूयादात्सुसौभाग्य-दानानि बहुशो मुदा ।।७७।।

प्राहानुगान्यात गृहमुमेशौ पितरौ मम । यास्ये तत्रात्र हर्षात्स्वरिति वाच्यं गुरून्प्रति ।।७८।।

इत्युक्त्वा नीयमानस्य पत्युरग्निकराग्रतः । गच्छन्ती मन्थरोमेव रेजे मुद्रूपिणी सती ।।७९।।

भर्तृसौख्यानभिज्ञेयं षोडशाब्दातिसुंदरी । कुलोद्धर्त्री सुधन्येति स्तूयमाना जनैर्ययौ ।।८०।।

श्मशानमेत्य संस्कृत्य कुण्डेऽग्निं वायनादिभिः । सुवासिनीस्तोषयित्वा सस्मार गुरुभाषितम् ।।८१।।

लिम्वाङ्गे भस्म बध्वाक्षान् पत्युर्विप्राज्ञया गुरुम् । द्रष्टुकामा ययौ साध्वी संगमं तं स्तुवन्त्यजम् ।।८२।।

दाता सर्वेश्वरस्त्वं शरणमपि सतां त्र्यात्मको विश्वसर्ग-
स्थित्यन्तानां निदानं ततबिरुदचयः श्रीहरिस्त्वं दयाब्धिः ।
मत्तुल्यास्त्वत्कृपांशात्सुपतिसुतसुखाः सन्ति नार्योऽज यास्ये
स्वर्भूत्वा पूर्णकामा पतिसुतमुदिता कीर्तिमादाय तेऽद्य ।।८३।।

मृतो जीवितो रुग्ण आरोग्यमाप्तो गतः शर्म भीतोऽपि दीनोऽर्थयुक्तः।
गतः प्राज्ञतामज्ञ ईश प्रभावात्तवाहं धवाढ्याद्य सायुज्यमेष्ये ।।८४।।

विना दुःखेनापि धर्षयितुमशक्यः।।७४।। पीताम्बरं कौशेयविवक्षयोक्तं **अङ्ग** हे साध्वी।।७५।। **श्रुत्योः** कर्णयो**रक्षान्**रुद्राक्षान् **अयी**ति कोमलामन्त्रणे।।७६।। **स** साधु**रगात् अदाद्द**त्तवती **मुदा** न दुःखेन।।७७।। **अनुगान्स**हागतान्दासान् **अत्र** गुरुस्थाने आवां **हर्षेण स्वरिति गुरून्प्रति** श्वशुरपितॄन्प्रति **वाच्यं**।।७८।। श्मशाने **नीयमानस्य** पतिशवस्य **मन्थरा** मन्दगामिनी **उमेव रेजे** शुशुभे।।७९।।८०।।८१।। **तं** श्रीगुरुं।।८२।। **त्वं सतां अपि**शब्दाद्धर्मस्य च **शरणं** यत **ईश्वरः त्र्यात्मकः** ब्रह्मविष्णुहरस्वरूपोऽतः विश्वसर्ग**स्थिति**लयादिकारणं **ततो** विततो **बिरुदचयो** बिरुदावलिर्यस्य सः हे **अजाहं पूर्णकामा पतिसुतमुदिता** च **भूत्वा ते कीर्तिमादाय स्वर्ग यास्ये**।।८३।। **शर्म** सुखं अहं तु **धवाढ्या** पतिसहिता **तव सायुज्यमेष्ये**।।८४।। अञ्जनसहितैर्नेत्रोदकैर्व्याप्तौ **स्तना**वेव **स्वर्णघटौ** यस्याः सा **हठात्**बलात्**स्वां धवेन समं उद्धर्तुकामापि सा जवेनागत्य**

एवं स्तुवन्ती पथि साञ्जनाश्रुलीढस्तनस्वर्णघटा हठात्स्वाम्।
उद्धर्तुकामापि समं धवेन जवेन सागत्य हरिं ननाम ।।८५।।

आयान्तीं प्रणतां देवस्त्वं सौभाग्यवती भव । अष्टपुत्रा पुनश्चेति भगवान्प्रीत आह ताम् ।।८६।।

तच्छ्रुत्वा चकिता लोकाः शशंसुः सर्वमादितः । प्रभुः प्राह न मे वाक्यं मोघं शवमिहानय ।।८७।।

अत्रान्तरे द्विजा एत्य रौद्र्यानर्चुर्गुरुं तदा । आनीतं शवमुद्वीक्ष्य सुधादृष्ट्या स्वसंनिधौ ।।८८।।

स्थापयित्वा स तं रौद्र-मन्त्रिताद्भिस्तनुं समाम् । स्नापयामास सोऽकस्मात् सुप्तोत्थितवदुत्थितः ।।८९।।

तदा हर्षाश्रुपूर्णाक्षी लज्जितं विस्मितं पतिम् । प्रेम्णा शशंस तत्सर्वमूचतुः प्राञ्जली उभौ ।।९०।।

आवां स्वो दुर्धियौ पापौ भवत्स्मृतिपराङ्मुखौ । तथापि त्वं दयासिन्धो सच्चिदानन्द हंसि नो ।।९१।।

जगद्गुरो विश्वमूर्ते परमात्मन्त्राहि विश्वप । विश्वसाक्षिन्विश्वसंस्थ सर्वानन्दनिधे हरे ।।९२।।

कर्ताऽकर्ताऽन्यथाकर्ता त्वमेवासि पुमर्थदः । आवाभ्यामपराद्धं तत् क्षामये त्वाद्य कार्त्स्न्यतः ।।९३।।

एवं तौ बहुशो नत्वा प्रणतीश्चक्रतुर्मुदा । तच्चित्रं प्रेक्ष्य लोकोऽपि तुष्टाव परमेश्वरम् ।।९४।।

तत्रैको धूर्त आहेशं केऽस्ति ब्रह्मलिपिर्न वा । नाल्पो मृत्युर्महानेष सास्ति चेज्जीवितः कुतः ।।९५।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

धात्रात्र लिखितं त्रिंशदायुरेष्यभवे शतम् । याच्जयैष्यं शतं त्वत्र गृहीत्वा व्यस्तमाचरम् ।।९६।।

गुरुं ननाम।।८५।। सुभगस्य भावः सौभाग्यं हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य चेत्युभयपदवृद्धिः सौभाग्यमस्या अस्तीति **सौभाग्यवती**।।८६।।८७।। **आनीतं** विप्रशवममृत**दृष्ट्या वीक्ष्य तं स्वसंनिधौ स्थापयित्वा**।।८८।। रुद्रदेवतामन्त्रै**मंत्रिता**भिर**द्भिः** सर्वां **तनूं स्नापयामास** तदा मृतोऽपि विप्रो**ऽकस्मात्सुप्तोत्थितवदुत्थितः**।।८९।। **तदा लज्जितं विस्मितं पति**मभिवीक्ष्येति शेषः **शशंस** तस्मै सर्वं श्रीगुरुचरितं कथयामास तत **उभौ** दम्पती **प्राञ्जली** भूत्वा श्रीगुरु**मूचुतुः**।।९०।। **आवां भवत्स्म**रण**पराङ्मुखौ** अतएव **दुष्टधियौ पापौ** च हे **दयासिन्धो सच्चिदानन्द** तथाप्यावां **न हंसि**।।९१।।९२।। यदा**वाभ्यामपराद्धं** त**त्कार्त्स्येनाद्य त्वां क्षामये** एकवचनान्तक्रियादर्शनात्स्त्रिया स्वात्मनः पत्युश्चापराधक्षमापनं याचितमिति गम्यते।।९३।। **प्रणतीश्चक्रतुः** नमश्चक्रतुः **तन्मृ**तसंजीवनरूपमाश्चर्यं **प्रेक्ष्य** तत्र मिलितो **लोकोऽपि परमेश्वरं तुष्टाव**।।९४।। **तत्र** मिलितेषु लोकेषु कश्चि**द्धूर्त ईशं** गुरु**माह के** मस्तके **ब्रह्मलिपिरस्ति वा** न वा यतोऽयं **नाल्पो मृत्युः** क्षयेणागतो **महाने**व **सा** लिपि**रस्ति चे**न्मृतोऽपि कथं **जीवित**स्तद्वद।।९५।। **अत्रा**स्मिन्जन्मनि **धात्रा**

तच्छ्रुत्वा मिलिता लोका उच्चैश्चक्रुर्जयध्वनिम् । स्ववार्सिश्रोत्रविवर-विश्रान्तिमघमर्षणम् ।।९७।।

दम्पती प्राह भगवानायुष्मन्तौ निरामयौ । सुपुत्रधनकीर्त्याढ्यौ लोकवन्द्यौ भविष्यतः ।।९८।।

श्रुत्वा गुरोर्गां प्रमुदान्वितावुभौ स्नात्वा गुरोश्चक्रतुरर्चनं तदा।

अस्तं गतोऽर्कोऽप्यज आह्निकीं क्रियां कृत्वा मठं सर्वजनैः सहाययौ ।।९९।।

इति श्रीगुरुचरिते कर्मयोगे मृतसंजीवनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

आदितः षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

।। श्रीगुरुदत्तात्रेयार्पणमस्तु ।।

।। श्रीगुरुदेव दत्त ।।

त्रिंशद्वर्षात्मक**मायुर्लिखितं एष्य**जन्मनि **शतं** वर्षाणि **अत्र तु याच्ञया एष्यं शतं गृहीत्वा व्यस्तं** विपरीत**माचरं** ईश्वरस्याघटितघटनापाटवेऽपि परप्रसिद्ध्या परो बोधनीय इति न्यायेनेदमुक्तं।।९६।। **स्ववार्सिनां** देवानां **श्रोत्रविवराणि विश्रान्ति**र्यस्य तं **अघ**हरं **जयध्वनिं**।।९७।।९८।। **गुरोर्गां** वाचं **श्रुत्वा प्रमुदितान्वितौ** दम्पती **स्नात्वा गुरोरर्चनं चक्रतुः**।।९९।।

।। इति टीकायां षोडषोऽध्यायः ।।१६।।

सप्तदशोऽध्यायः

।। सिद्ध उवाच ।।

अन्येद्युराह साध्वीशं पूर्वेद्युः कश्चनैत्य सन् । तत्त्वज्ञानेन माश्वास्य भस्माक्षान्चतुरो ददौ ।।१।।

प्राह दृष्ट्वा गुरूं तीर्थैः पतिं प्रोक्ष्यानुयाहि तम्। इत्युक्त्वागात्स कस्तीर्थ-रुद्राक्षमहिमा कियान् ।।२।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

रूपान्तरेण ते भावो मयैवाङ्ग परीक्षितः । धन्यासि सुभगे साध्वि तीर्थाक्षमहिमा त्वियान् ।।३।।

तन्माहात्म्यं कोऽत्र वक्ति भूषेशस्यामृतत्वदा । नृणामेकादिवक्त्राक्षा गङ्गास्नानादिपुण्यदाः ।।४।।

वराः स्युर्धातुरत्नाढ्याः शिव एव सहस्रधृक् । नाक्षैर्विना पुण्यलब्धिः पापनाशोऽक्षधारणात् ।।५।।

ईशनामाक्षभस्माढ्यो दुर्धरो मरुतामपि । जपेऽक्षाः प्राज्यफलदा ना भस्माक्षैर्विना पशुः ।।६।।

दन्ताभ्राब्ध्यर्कनृपभू-क्ष्मार्काष्टाशोन्मिताक्षतः । कण्ठकश्रुतिदोश्चूडा-दृक्करोरांसि भूषयेत् ।।७।।

काश्मीरे भद्रसेनस्य सुतस्तन्मन्त्रिणोऽप्युभौ । भूषां मत्वाश्मवत्स्वक्षान् बाल्येऽपि दधतुर्मुदा ।।८।।

शाक्त्यो राजाग्रहात्प्राह तद्धेतुं शृणु भूपते । नन्दिग्रामे पुरा तन्वी वारमुख्येन्दुभा सती ।।९।।

गजाश्वधनदाराढ्या धर्मज्ञा दानतत्परा । तन्नाट्यमण्डपे त्वेतौ साक्षौ मर्कटकुक्कुटौ ।।१०।।

शिवोऽस्या वैश्यरूपेण पातिव्रत्यं परीक्षितुम् । धृत्वाप कङ्कणं लिङ्गं भास्वद्वेश्याऽब्रवीत्सखीम् ।।११।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ सप्तदशोऽध्यायः।। *रुद्राक्षभस्ममाहात्म्यं प्राह सप्तदशे स्त्रियाः। मन्त्रजाप्यानर्हतां च सोमवारव्रतं महत्।।१।।* सद्यः परुदित्यादिनोभे अप्यव्यये **ईशं** श्रीगुरुं **सन्**साधु**रेत्या**गत्य **मा** मां **आश्वास्य भस्म चतुरो** रुद्राक्षांश्च **चतुर** इति साधुविशेषणं वा।।१।। स **प्राह**।।२।। **अङ्ग** हे साध्वि।।३।। **ईशस्य भूषा** भूषणं।।४।।५।। **ईशनाम** नमः शिवायेति पञ्चाक्षरात्मकं तेना**ढ्यो** निरन्तरजापकः **अक्षा** रुद्राक्षास्तैरा**ढ्यः** वक्ष्यमाणसप्तमश्लोकोक्तप्रकारेण भस्मना**ढ्य**स्त्रिपुण्ड्रधरः **अक्षा** रुद्राक्षाः बहु**फलदाः ना** पुरुषः।।६।। **दन्ता**दिसङ्ख्याकैः **कण्ठा**दिस्थानानि **भूषयेत् दन्तै**र्द्वात्रिंशन्मितैः **कण्ठं अभ्राब्धि**भिश्चत्वारिंशता **कं** मस्तकं **अर्कै**र्द्वादशभिः **श्रुती** कर्णौ **नृपैः** षोडशभिर्भुजौ **भुवा** एकेन **चूडां** शिखां **क्ष्म**या एकेन **दृशं** मस्तकोपरि न्यस्तमालाग्रथितसूत्रालम्बितेन भ्रूमध्यगेन **अर्कै**र्द्वादशभिः **करौ** अष्टोत्तरशतेनो**र**श्चेति ।।७।। **भूष**णानि पाषाणव**न्मत्वा** शोभनरुद्राक्षान्।।८।। **शाक्त्यः** पराशरः **तद्धा**रण**हेतुं** कथयेति राज्ञा शश्वत्कृता**ग्रहात् सती** साध्वी।।९।। **एतौ** कुमारौ **साक्षौ** रुद्राक्षभूषितौ।।१०।। **अस्या** वेश्यायाः **धृत्वा** प्राप तं

परिपृच्छैनमर्घाञ्चेद् रत्या वा दास्यति त्र्यहम् । साध्वीत्वेन वधूर्भूत्वा रमयाम्यस्मि पद्मिनी ।।१२।।

श्रुत्वोचे स तथा पृष्टं स्वैरिण्यां सत्यता कुतः । युष्माकं कुलधर्मस्तु व्यभिचारो हि केवलम् ।।१३।।

।। वेश्योवाच ।।

न स्वैरिणीयं साध्व्येव लिङ्गं तत्र प्रमा खलु । अहं त्र्यहं सतीत्वेन भजे त्वां सर्वभावतः ।।१४।।

।।वैश्य उवाच।।

गृहाणेदं पुष्पवन्तौ साक्षिणावत्र मेऽसुवत् । स्ववाक्यं दृढभक्त्यैव विचारय पुनः पुनः ।।१५।।

इत्युक्त्वा तत्करे बध्वा कङ्कणं लिङ्गमर्पयत् । साध्वीत्वेनापि सा भेजे लिङ्गं संस्थाप्य मण्डपे ।।१६।।

सलिङ्गो मण्डपो दग्धोऽग्निनाकस्माद्रतिक्षणे । सकीशकुक्कुटो वैश्यो जुहावाग्नौ तनुं तदा ।।१७।।

वेश्याऽपि भर्तृनाशार्ता कुलाचारविरुद्धताम् । मा भजेति निषिद्धाऽपि स्वैः सिद्धानुगमेऽभवत् ।।१८।।

दत्वा दानानि नत्वार्कं ध्यात्वेशं वह्निमाविशत् । प्रादुर्भूतस्तदा त्र्यक्षः पञ्चास्यः प्राह पङ्क्तिदोः ।।१९।।

मायामुद्भाव्य ते सर्वं मयेशेन परीक्षितम् । वारमुख्यापि साध्वी त्वं प्रीतोऽस्मि वरयेप्सितम् ।।२०।।

जैह्व्यौपस्थ्यं सुखं क्वापि न काङ्क्षे मे स्वकैः समम् । सायुज्यं तेऽर्पयेत्यूचे सा शिवोऽपि तथाऽकरोत् ।।२१।।

तौ कीशकुक्कुटावेतौ पूर्वसंस्कारकारणात् । एतौ स्तोऽक्षप्रियौ शैवौ मताश्मसमभूषणौ ।।२२।।

तच्छ्रुत्वा भावि मे सूनोर्मुने शंसेति पृच्छते । राज्ञे तस्य मृतिर्नूनं सप्ताहादिति सोऽब्रवीत् ।।२३।।

मुहू राज्ञातिखिन्नेन प्रणतेनार्थितोऽब्रवीत् । पराशरऋषिर्मा भी राजन् रुद्रोऽस्ति तारकः ।।२४।।

तादृशं दृष्ट्वा **वेश्या सखीं** प्राह।।११।। **एनं** वैश्यं **अर्घा**न्मूल्येन **रति**दानेन **वा रमयामि** यावत्पुरानिपातयोरिति भविष्यदर्थे लट्।।१२।। तया पृष्टं **श्रुत्वा स** वैश्य **ऊचे**।।१३।। **इय**महं **साध्वी एवात्र** विषये **लिङ्गं प्रमाणं त्र्यहं** त्रिदिनपर्यन्तं **सतीत्वेन** पातिव्रत्येन।।१४।। **गृहाणे**त्यादि वैश्यवाक्यं **पुष्पवन्तौ** सूर्याचन्द्रमसौ **असुव**त्प्राणवत्।।१५।।१६।। **रतिक्षणे** मैथुनावसरे **सकीशकुक्कुटो मण्डपो दग्धः कीशो** मर्कटः।।१७।। स्वैरिणी**कुलाचारविरुद्धतां मा** कुर्विति स्वजनै**र्निषिद्धापि**।।१८।। **त्र्यक्ष**स्त्रिलोचनः **पञ्चास्यः** पञ्चमुखः **पङ्क्तिदो**र्दशभुजः शिवः **प्रादुर्भूतः**।।१९।। **मयेश्व**रेण **मायामुद्भाव्य** कल्पयित्वा **ते सर्वं** धर्मधैर्यादि।।२०।। **क्वापी**ह वा स्वर्गादौ वा मम स्वजनैः सह **ते** तव **सायुज्यं मे** मह्यं **अर्पय** देहि **सा** वेश्या **ऊचे तथाऽकरो**त्सायुज्यं दत्तवान्।।२१।। **एतौ** रुद्रा**क्षप्रियौ** शिवभक्तौ **स्तः** अतएव **मता**न्य**श्मसमा**नि **भूषणा**नि ययौस्तौ।।२२।। **तत्प**राशरोक्तं **श्रुत्वा मे सूनोः** पुत्रस्य शुभं वाऽशुभं वा **भावि** हे **मुने** मह्यं कथयेति **पृच्छते राज्ञे तस्य** राजपुत्रस्य **सप्ताहान्मृति**र्मृत्यु**रिति स** पराशरो**ऽब्रवीत्**।।२३।। **अर्थितः** प्रार्थितः

स्त्रष्ट्रा सृष्टौ जगद्वृद्ध्यै धर्माधर्मौ तयोः पती । इन्द्रान्तकौ तौ स्वरधो-नेतारौ धन्यपापिनाम् ।।२५।।

यमसारथयः काम-मुखा नानाघहेतवः । तत्सारथ्याद्यमो लोकान् पापान्क्षिपति दुर्गतौ ।।२६।।

बुद्धीन्द्रियमनःसंस्था अमी कामादयोऽबलाः । भीरून्निघ्नन्ति यमित-गोहृद्धीनामगोचराः ।।२७।।

वेदान्स्त्रष्टाऽसृजत्तत्र दक्षास्योत्थयजुःश्रुतेः । महारुद्रोऽघहृल्लब्धो मुनिभिः प्रसृतस्ततः ।।२८।।

विप्रा यत्र पठन्त्येतं कामाद्याः सकला न तम् । देशं शेकुरपि द्रष्टुं याम्यं शून्यमभूत्पुरम् ।।२९।।

यमः शशंस तद्धात्रे स्वपन्तिष्ठन्व्रजन्कुधीः । मत्तोऽभक्तिर्जपति चेत्स पापी शाधि तं भृशम् ।।३०।।

तद्भिन्नान्जापकान् रुग्णान्मा प्रेक्ष मृतिगानपि ।श्रीविदारोग्यादिभाजस्त इत्याह यमं विधिः ।।३१।।

तस्मान्मृत्युञ्जयस्त्राता मा भीः सद्ब्रह्मतः शिवे । अतिरुद्राभिषेकात्स भवेद्भूपायुतायुरित् ।।३२।।

तच्छ्रुत्वा द्राक्समाहूय सद्विप्रानृष्यनुज्ञया । राजानुष्ठानमारेभे श्रद्धाभक्त्या यथाविधि ।।३३।।

पाशदण्डधराः प्राप्ता सप्तमेऽह्नि यमानुगाः । गूढाङ्गा मूर्छितः पुत्रस्तदा तदुपरि द्विजैः ।।३४।।

प्रक्षिप्तरौद्राम्बुतीर्थ-मन्त्रिताक्षतसम्भवैः । रौद्रैर्दूताः पराभूता जग्मुस्तेऽथोत्थितः सुतः ।।३५।।

प्रीतो राजा तदा विप्रान् भोजयित्वाभ्यतोषयत् । सभां विरच्योपवेश्य स्वासने शाक्त्यमाभजत् ।।३६।।

रणद्वीणो हरिं गायन्तत्राप्तो नारदो नृपः । तं प्रत्युद्गम्य सम्पूज्य लोकोदन्तमपृच्छत ।।३७।।

पराशरो**ऽब्रवीत् राजन्रूद्रस्तारकोस्त्य**तो भयं माऽस्तु।।२४।। **स्त्रष्ट्रा** ब्रह्मणा **तयो**र्धर्माधर्मयोः पालकौ **इन्द्र**यमौ **धन्यान्**सुकृतिनान् इन्द्र ऊर्ध्वं नयति यमः **पापिनामधो** नयति।।२५।। **सारथयः** सहायभूता **नाना** पाप**हेतवः काम**क्रोधप्र**मुखास्त**त्कृतसहायाद्**यमः** पापकारिणो **लोकान्दुर्गतौ** नरके प्र**क्षिपति**।।२६।। **बुद्धीन्द्रियमनां**सि **संस्था** अधिष्ठानानि येषां '*इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते* ' इति स्मृतेः **अबला** अल्पबला अपि भयशीलानां **नि**तरां **घ्नन्ति** यतः **यमिताः** नियमिताः **गाव** इन्द्रियाणि **हृन्मन धी**र्बुद्धिश्च यैः तेषां यतीनां **अगोचराः** अविषयाः यमितगोहृद्धीनां कामादयोऽगोचरा इत्यर्थे काठकेऽप्युक्तं ' *इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था* ' इति मन्त्रद्वयेन यस्मादात्मनः सर्वपरत्वं तस्माद्बुद्ध्यादिनियमनं कुर्वतां यतीनां कामादिदर्शनमपि नैवेत्यर्थः।।२७।। तर्हि जितेन्द्रियतया कामजयाय योगोऽभ्यसनीयो नेत्याह वेदानिति ईश्वरेण हृद्याहितान्मुखातो**ऽसृज**त्प्रकटीचकार ' *यो ब्रह्माणं* ' इति श्रुतेः **ततो मुनि**भ्यः शिष्यादिद्वारा **प्रसृतः**।।२८।। **एतं** रुद्रं पापाभावा**च्छून्यं**।।२९।। **स्वपन्नि**त्यादि यममाह **कुधी**र्लोभग्रस्तमतिः।।३०।। **तेभ्यः** पापेभ्यो **भिन्नानि**तरान्।।३१।। मृत्युभयात्**त्राता सद्ब्रह्मतो** ब्राह्मणद्वारा रुद्रेण वा।।३२।।३३।। **गूढाङ्गाः** गुप्तदेहाः **ते** यमदूताः।।३४।।३५।। **शाक्त्यं** पराशरम्।।३६।। **तत्राप्तः** प्राप्तः **प्रत्युद्गम्य** संमुखं गत्वा।।३७।। **स** नारदः।।३८।। **क्व** कुतो हेतोः।।३९।। **ते** शिवदूताः **अद** इदं **स** यमः इयं किंवदन्ति न **दृष्टं**

स प्राहात्र महामृत्युस् त्वत्पुत्रं हर्तुमागतः । शिवदूतैः सदूतः स पराभूतो यमं ययौ ।।३८।।

यमोऽपि तैः सहैत्यैशान् दूतान्प्राहेश्वराज्ञया । नियतं कर्तुमुद्युक्ते मयि यूयं क्व विघ्नदाः ।।३९।।

ऊचुस्तेऽदश्चित्रगुप्तं पृष्ट्वा स्वस्थो भवान्तक । स पट्टे द्वादशाब्देऽल्पं मृत्युं तीर्त्वायुतायुरित् ।।४०।।

भविष्यतीति सम्प्रेक्ष्य भ्रान्तः शैवान्क्षमापयत् । दृष्टं मयेदं ते पुत्रस्त्रातः शाक्त्येन भूपते ।।४१।।

इत्युक्त्वा नारदोऽगात्स्वराशीर्भिरभिनन्द्य तौ । शाक्त्योऽप्यगात्स्वधामेयान्तीर्थाक्षमहिमा सति ।।४२।।

।। सावित्र्युवाच ।।

यत्त्वद्दृग्गोचरा साक्षाज्ज्ञाता धन्यतमा गुरो । उपादिश मनुं मे ते पादाब्जस्मृतिहेतवे ।।४३।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

नोपदेश्यो मनुः स्त्रीणां पतिभक्तिस्तु तारका । दत्तोऽप्यनुपयुक्तः स्याद्दातुर्हानिश्च शुक्रवत् ।।४४।।

शृणु साध्वि पुरा देव-दैत्ययुद्धमभून्महत् । काव्यो मन्त्रजपाद्वज्रि-हतान्दैत्यानजीवयत् ।।४५।।

गत्वेन्द्रः शरणं शम्भुं तच्छशंस शिवेन तु । आनयित्वा कविर्लीढः सोऽपि मूत्राद्बहिर्गतः ।।४६।।

दैत्यानेत्य पुनः शुक्रस्तान्मृतानप्यजीवयत् । त्रस्तस्तदेन्द्रो धीमन्नः पाहीति प्रार्थयद्गुरुम् ।।४७।।

स प्राह तन्मनौ व्याजाद्भ्रंशिते वो जयो ध्रुवः । त्रिलोककण्टकोत्कर्षान् मन्त्रसारहृतिर्वरम् ।।४८।।

इत्युक्त्वा स कचं प्राह स्वसुतं गच्छ रे कविम् । विद्यार्थित्वेन तं तुष्ट्वा मन्त्रसारं तिरस्कुरु ।।४९।।

तं नत्वापि कचो गत्वा शुक्रं प्राहास्मि ते गुरो । शिष्यो मां प्रणतं शाधि पक्षित्वं मा निधा मयि ।।५०।।

मया।।४०।।४१।। **स्वः** स्वर्गं **तौ** कुमारौ **स्वधाम** स्वाश्रमम्।।४२।। **मनुं** मन्त्रं।।४३।।४४।। तदर्थमितिहासमाह **काव्यः** शुक्रः **वज्रिहता**निन्द्रेण घातितान्।।४५।। **त**च्छुक्रकर्म **कविः** शुक्रः **लीढो** भक्षितो**ऽपि** उदर एव स्थित्वा **मूत्राद्बहिर्गतः**।।४६।। पूर्वं भार्गवोऽपि सन् शिवशुक्रसम्बन्धतः शुक्रसंज्ञो जात इति स्कान्दे प्रभासखण्डे द्रष्टव्यं तदनुस्मृत्यर्थमत्र **शुक्र** इत्युक्तं **गुरुं** बृहस्पतिं।।४७।। **स** बृहस्पतिः तन्मन्त्रे कपटा**द्भ्रंशिते** सति **वो** युष्माकं देवानां **ध्रुवो जयो** भविष्यति दैत्यो**त्कर्षान्मन्त्रसार**हरणं मनाक्प्रियं नेदमवद्यं भविष्यतीति भावः।।४८।। **तं** शुक्रं।।४९।। **कचोऽपि तं** गुरुं **नत्वा शुक्रं गत्वा पक्षित्वं** देवपक्षपातित्वशंकां **मयि मा निधाः** मा निधेहि निपूर्वाद्धाताङ्धातोर्लुङ् न

एवमुक्तवतस्तस्य रूपसौन्दर्यमोहिता । शुक्रं प्रियात्मजोचेऽमुं शिष्यत्वेनोररीकुरु ।।५१।।
तच्छ्रुत्वोशनसा सोऽपि तद्वात्सल्यादुरीकृतः । कचोऽपि सर्वभावेन शुक्रं गुरुमतोषयत् ।।५२।।
ज्ञात्वा तच्छाठ्यमसुराः समिदर्थं गतं वनम् । तं जघ्नुर्देवयान्याह शुक्रं नाप्तः कुतः प्रियः ।।५३।।
शुक्रोऽपि तं हतं ज्ञात्वा ध्यानान्मन्त्रप्रभावतः । जीवयित्वाऽऽनयद्गेहं कचं हृष्टाभवत्सुता ।।५४।।
मुहुर्दैत्या वने हत्वा हिंस्रेभ्यस्तत्पलं ददुः । तमदृष्ट्वैव शोचन्तीं कन्यामाश्वास्य भार्गवः ।।५५।।
ज्ञात्वा तं भक्षितं हिंस्रैस् तत्कुक्षेर्मन्त्रशक्तितः । कार्त्स्न्यान्निष्काश्य कृत्वैक्यं सजीवं पूर्ववद्व्यधात्।।५६।।
पुनर्दैत्याः कचं हुत्वा तद्भस्म मधुयोजितम् । ददुः शुक्राय प्रमादात् स पपौ दैत्यवत्सलः।।५७।।
पुनः कन्यातिखिन्नाऽभूच्छुक्रो ज्ञात्वोदरस्थितम् । दैत्यान्छशाप ब्रह्मघ्नान् कन्यामाह स नाप्यते ।।५८।।
दैत्यैः क्षिप्तः स मत्कुक्षौ तदानयनतो हि मे । मृत्युर्भवेन्न को वेद दिव्यं मन्त्रं हि मां विना ।।५९।।
कन्योचे तात मे मन्त्रमुपादिश च जीवय । तं त्वां यदेष्यति मृतिर्जीवयामि सुमन्त्रतः ।।६०।।
नोचेत्प्राणांस्त्यजामीति निर्विण्णास्यै स मोहतः । दत्वा मन्त्रं जपित्वा तं जीवयित्वा मृतिं ययौ ।।६१।।
विदार्य जठरं प्राप्तं कचं दृष्ट्वा मृतं कविम् । मन्त्रेण जीवयामास तदाऽतेजाऽभवन्मनुः ।।६२।।
कृतकृत्यः कचो नत्वा गुरुं प्राह तदासुराः । घ्नन्ति मां तद्व्रहं यास्ये मदर्थे भवतोऽप्यकम् ।।६३।।
सोऽपि गच्छेत्यादिदेश कन्योचे मत्पतिर्भव । मयैतदर्थमेव त्रिर्-जीवितोसि मृतोऽप्यहो ।।६४।।
कच ऊचे गुरोः कन्या स्वसाम्बास्वर्पणाच्च तत् । नोद्वाह्यातस्त्यजास्वर्ग्यं विरुद्धाग्रहमम्ब भोः ।।६५।।

माङ्योग इत्यडागमप्रतिषेधः।।५०।। **प्रियात्मजा** देवयानी **उररीकुर्व**ङ्गीकुरु।।५१।। **उशनसा** शुक्रेण।।५२।। **तच्छाठ्यं** कचकापट्यं **प्रियः** कचोऽद्यापि **कुतो न** प्राप्तः।।५३।।५४।। **तत्पलं** मांसं।।५५।। **तत्कुक्षे**र्हिंस्रोदरात् **मंत्र**बलतः **कार्त्स्न्या**त्संपूर्णत्वेन मांसादिरूपं तं **निष्काश्य ऐक्यं कृत्वा पूर्वव**द्देहं स **सजीवं व्यधा**द्व्यकरोत्।।५६।। **मधुयोजितं** मद्यमिश्रितं **स प्रमादाद**नवधाना**त्पपौ**।।५७।। **उदरस्थितं** कचं **ज्ञात्वा स** कचोऽतः परं **न** प्राप्यते।।५८।। **न वेद** न वेत्ति विदो लटो वेति लणादेशः।।५९।। **तं** कचं **मृति**र्मृत्युः।।६०।। **अस्यै** देवयान्यै।।६१।।६२।।६३।।६४।। **अस्वर्पणा**त्प्राणदाना**दम्बा** माता भवितुमर्हसि।।६५।। **एनं** कचं **स** कच**स्तां** देवयानीं।।६६।। यस्माच्छुक्रस्येदृशावस्था

सा विद्यां विस्मरेत्येनं शशापापि स तां नृपः । त्वां वरिष्यति मौर्ख्यात्ते नश्येन्मन्त्रो गुरोरिति ।।६६।।

मन्त्रोऽतेजास्तदैवाभूच्छुक्रो दीनत्वमापतत् । स्त्रियै मन्त्रस्ततोऽदेयः कार्यं गुर्वाज्ञया व्रतम् ।।६७।।

।। सावित्र्युवाच ।।

भगवन्सद्गुरो मन्त्रो यर्ह्यग्राह्यो हि योषिताम् । तर्ह्येकं व्रतमाख्याहि तारकं ते स्मृतिप्रदम् ।।६८।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

सुलभं तारकं साध्वि सोमवारमहाव्रतम् । व्रतोत्तमं सुधामेष्ट-दं केऽप्यस्याधिकारिणः ।।६९।।

सीमन्तिन्या यत्प्रभावान् नष्टोऽप्याप्तः पतिः शृणु। प्राक् चित्रवर्मार्यावर्ते राजा शूरो वशी कृती ।।७०।।

धीरूपशीललक्ष्माढ्यां पुत्रीं लेभेऽजसेवया । शान्त्याद्याढ्या सती भर्त्रायुताब्दं राज्यभोक्त्र्यसौ ।।७१।।

इत्यूचुर्गणकास्त्वेको बाल्ये वैधव्यमित्यपि । राजा हृष्टोऽपि खिन्नोऽभूद् ववृधे सा सितेन्दुवत् ।।७२।।

सा द्वादशाब्दिका श्रुत्वा वैधव्यं भावि दुःखिता। नत्वैकदाप्तां मैत्रेयीं साऽवैधव्यं स्म याचते ।।७३।।

तां साब्रवीत्सोमवार-व्रतात् त्रातास्ति शंकरः । प्रतीन्दुवारं संसेव्यो गोहृत्कायैः सदाशिवः ।।७४।।

उपोष्य नक्तं भुक्त्वा वा भक्त्यास्मिन्न क्षणं स्वपेत् । नश्येत्प्राप्तापि भीस्त्यक्ते व्रते कुप्येत शंकरः ।।७५।।

पापक्षयोऽस्याभिषेकात् साम्राज्यं पीठपूजनात् । गन्धादिदानात्सौभाग्यं सौगन्ध्यं धूपदानतः ।।७६।।

दीपात्कान्तिर्भोज्यदानाद्भुक्तिस्ताम्बूलतो रमा । नत्या पुमर्था ऐश्वर्यं जपाद्ब्राह्मणभोजनात् ।।७७।।

जाता **तत्त**स्मा**त्स्त्रियै मंत्रः अदेयः** दातुमयोग्यः यद्यपि गोधाघोषाविश्ववाराप्रभृतयो युगान्तरे ब्रह्मवादिन्यः श्रूयन्ते तथापि वर्तमाने युगेऽयं विशेषः तर्हि ' *स्त्रियो वैश्यास्तथा शुद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्* ' इति स्मृत्या मोक्षे स्त्रियोऽप्यभ्युपगमात्स्त्रीणां किं मोक्षसाधनमित्यत आह **व्रतं कार्यं** तच्च न स्वातंत्र्येण **गुर्वाज्ञया कार्यं** वितानकर्मणि स्त्रीणां मंत्रपाठे श्रवणे चाधिकार एव।।६७।। भव**त्स्मृतिप्रदं तारकं व्रत**मवश्यमेवाभ्युपेयं यतो व्रताद्भवद्व्यपाश्रयोऽवश्यं भवेत् तेन चास्माकमपि गतिरिति भावः ' *मां हि पार्थ* ' इति स्मृतेः।।६८।। उमाऽध्यात्मविद्या हैमवती वा तया सहितः **सोमः** शिवस्तस्य **वार** आनंदवर्धको दिवसः प्रेष्ठः यद्दिने कर्तव्यं **यन्महाव्रतं** नित्यकाम्यभेदेनोभयात्मकत्वान्महत्वं पूज्यतमत्वं वा **सुष्ठु धाम** प्रभावो यस्य **केऽपि** धर्मबाह्या यवनादिरहिताः सर्वे वर्णा आश्रमिणस्तत्स्त्रियाश्चा**स्य अधिकारिणः**।।६९।। **आप्तो** लब्धः।।७०।।७१।। **वैधव्यमित्यपि** उवाच।।७२।। **आप्तां** हितोपदेष्ट्रीं ब्रह्मवादिनीत्वात् गृहागतां वा।।७३।। **गोहृत्कायैः** वाङ्मनःकायकर्मभिः **सदे**त्यव्ययं वा।।७४।। **अस्मि**न्वारे **क्षण**मपि **न स्वपेत्** अथवा स्वप्रकाशापरोक्षरूपे शिवे प्रमादं न कुर्यात् **भीर्**भयं **प्राप्तमपि नश्येत् व्रते त्यक्ते शंकरः कुप्येत** व्रतसांतत्यार्थमिदं शासनं।।७५।।७६।। **रमा** श्री**र्नत्या** पुरुषार्थाः चतुर्विधाः

सर्वतृप्तिः कोशवृद्धिर्होमाल्लभ्याखिलं स्तवात् । तद्व्रतं कुर्विति प्रोक्त्वा सागात्कन्याऽकरोद्व्रतम् ।।७८।।
भूयाद्भाव्येषा देयेति मत्वा चन्द्राङ्गदाय राट् । तां वरायानुरूपाय नलगोत्रभुवे ददौ ।।७९।।
गजाश्वदासराष्ट्रादि दत्त्वापि स्वपुरे मुदा । पुत्राभावात्स तं राजा मेने संस्थाप्य पुत्रवत् ।।८०।।
कालिन्द्यामेकदा क्रीडन्मज्जति स्म स तच्चराः । पितरौ श्वशुरौ गत्वा तदूचुस्तत एत्य ते ।।८१।।
अन्वेष्यापि न तं प्रापुः शोकं चक्रुस्तदाखिलाः । कन्यानुगन्तुमुत्कापि शवाभावान्निवारिता ।।८२।।
तामाश्वास्यानयद्राष्ट्रं चित्रवर्मा नृपः सुता । शोकार्ताप्यकरोत्प्रेम्णा सोमवारव्रतं शुभम् ।।८३।।
पुत्रशोकाकुलं त्विन्द्र-सेनं सस्त्रीकमुत्तमम् । खिन्नं संस्थाप्य कारायां तद्राज्यं बुभुजेऽहितः ।।८४।।
तं नागिन्योऽम्बुमग्नं स्वं लोकं नीत्वामृतोपमम् । सर्पेशाय ददुः सर्पेट् सुधया तं व्यजीवयत्।।८५।।
अलौकिकं पुरं नागान्दृष्ट्वा स चकितोऽभवत् । वासुकिः प्राह तं कस्त्वं कस्य भक्तोऽसि मे वद ।।८६।।

।। चन्द्राङ्गद उवाच ।।

सच्छ्लोकनलवंशोत्थ इन्द्रसेनसुतोऽस्म्यहम् । चन्द्राङ्गदाभिधो राजा जामाता चित्रवर्मणः ।।८७।।
कालिन्द्यां पतितस्त्वत्र केनानीतो न वेद्मि तत् । दैवाद्वो दर्शनं जातं सफलं जन्म कर्म मे ।।८८।।
सृष्ट्यादिहेतुः सर्वेशः सर्वात्मा चिन्मयोऽप्यजः। कैलासे मूर्तिमद्योऽस्ति शम्भुर्नः कुलदैवतम् ।।८९।।

ब्राह्मणभोजनात्सर्वतृप्तिरित्यग्रिमेणान्वेति।।७७।। **सा** मैत्रेयी।।७८।।'*यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा* ' इति निश्चित्य **चंद्रागदाय देयेति मत्वा**।।७९।।८०।। **कालिंद्यां** यमुनायां द्व्यज्मगधेत्यण् **स** चन्द्राङ्गदः **तच्चरा**स्तद्दूताः **त**च्चन्द्राङ्गदनिमज्जनं **ते** मातापितरौ श्वश्रूश्वशुरौ च **कन्या** सीमन्तिनी अनुगमनं कर्तुमुद्युक्ताऽपि।।८१।।८२।। **शोक**पीडिता**ऽपि** सीमन्तिनी।।८३।। **कारायां** बन्धनालये **अहितः** शत्रुः।।८४।। **तं** चन्द्राङ्गदं **स्वं लोकं** पातालं **सर्पेशाय** वासुकये **सुधया**ऽमृतेन।।८५।। **स** चन्द्राङ्गदः। ननु कर्मकाण्डप्रक्रमे व्रतार्चनादिरूपमुपासनं प्रकृतासंगतमिति चेन्न देवताज्ञानपूर्वकस्य कर्मणः श्रैष्ठ्यात् केवलकर्मणोऽन्धतमःप्रवेशश्रवणात्। व्रतोपलक्षणेन देवताज्ञानेन सह कर्मानुष्ठेयमिति ज्ञाप्यते श्रुतिश्च ' *अन्धं तमः प्र०* ' अग्निहोत्रादिलक्षणा केवलाऽविद्या केवलं देवताज्ञानं विद्या।।८६।। **सच्छ्लोकः** पुण्यश्लोकः।।८७।। **वो** भवतां।।८८।। कस्य भक्त इत्यस्योत्तरमाह जगज्जन्मस्थितिभङ्गाना**मादि**कारणं प्रधानादेः परत्वात् कुतः **सर्वेशः** अन्तर्यामित्वेन नियन्ता तर्ह्यस्माज्जीवो भिन्नो वा नेत्याह **सर्वात्मा** जीवरूपेणानुप्रविष्टत्वात् अतएव **चिन्मय**श्चिदेकरसः अतएवाव्ययः तर्हि कथं तस्य भजनं तदाह **यो** भक्तानुग्रहार्थं मायां वशीकृत्याविकृतेन स्वरूपेण **कैलासे मूर्ति**मान्यो**ऽस्ति** तर्हि भूमिष्ठस्य तव गोचरः कथं तदाह **नो**ऽस्माकं **कुलदैवतं** कुलपरंपरोपासनेनैवास्माकं विषयो भवति ' *तं यथायथोपासत इति* ' श्रुतेः।।८९।। **पूतः** पवित्रो**ऽमानुषा**नलौकिकान्

।। वासुकिरुवाच ।।

पूतोऽस्यत्र पुरे तिष्ठ भुञ्जन्भोगानमानुषान् । सुधाकल्पद्रुपूर्णे रुक्-शुग्भीनिद्रालयोनिते ।।९०।।

।। चन्द्राङ्गद उवाच ।।

मां तु मत्वा मृतं नद्यां पितरौ मे मरिष्यतः । शोकार्तापि वधूर्वर्षे वर्तमाने विवाहिता ।।९१।।

श्रुत्वेति चेद्व्रजेत्युक्त्वा रत्नभूषामृतादिकम् । दत्वाऽह्यश्वौ मनोवेगौ गमयामास तौ स तु ।।९२।।

स ससर्पोऽश्वमारुह्य गच्छन् प्रेक्ष्य मनोजवः । कालिन्द्यां सोमवारे स्वां विरूपां महिषीं जगौ ।।९३।।

वधूः कस्यासि कन्या त्वं शोकार्तासि कुतोऽङ्गने।सा तच्छ्रुत्वा सखीं प्राह कथयास्मै सविस्तरम् ।।९४।।

।। सख्युवाच ।।

चन्द्राङ्गदवधूश्चित्र-वर्मकन्येयमत्र तु । प्रियो नष्टस्तच्छुगार्ता स्नात्यत्राद्यास्ति सद्व्रतम् ।।९५।।

कारायां श्वशुरावस्याः संस्थाप्य बुभुजे स्वयम्। राज्यं रिपुः सोमवार-व्रतमेषा करोत्यतः ।।९६।।

सीमन्तिन्यपि तद्रूपं दृष्ट्वा स्वपतिसन्निभः। कोऽयं धूर्तोऽसि यक्षो वा भाति वा स्वप्नहृद्भ्रमः ।।९७।।

इति मत्वा शुशोचैनामाश्वास्याहैष्यति त्र्यहात् । पुण्याद्भर्ता तवेत्युक्त्वा राष्ट्रं चन्द्राङ्गदो ययौ ।।९८।।

सापि तूष्णीं ययौ राष्ट्रं पितुश्चन्द्राङ्गदस्त्वरिम्। स्वागमं श्रावयामास स भीतो मुक्तवान्नृपम् ।।९९।।

द्विषा क्षमापितो मुक्तश् चन्द्रसेनः समागतम्। श्रुत्वा नष्टं सुतं वध्वा प्रेमाश्रूत्तोऽभवत्क्षणात् ।।१००।।

अलङ्कृतं पुरं सोऽपि प्रविश्य पितरौ दृढम् । समालिङ्ग्यादितः सर्वं शशंस पुलकाङ्कितः ।।१०१।।

अमृत**कल्पद्रु**माकीर्णे रोगशोकभय**निद्रा**रहिते **पुरे**।।९०।। **नद्यां** कालिंदीं**वधूरपि** मरिष्यति यतो **वर्तमाने** उद्वाहिता।।९१।। वासुकिस्त**च्छ्रुत्वा** प्राह **इति** इत्थं वदसि **चेत्त**र्हि **व्रज इत्युक्त्वाऽहिः** सर्पः सहायार्थं **अश्व** आरोहणार्थं च **तं** चन्द्राङ्गदं **स** वासुकिः।।९२।। **स** चन्द्राङ्गदः **विरूपां** सौभाग्योपचाररहितां **स्वां महिषीं** पत्नीं।।९३।। **कस्य वधूः** पत्नी **असि** कस्य च **कन्या** दुहिता **अस्मै** पृच्छते **सखीं** वयस्यां सख्यशिश्वीति ङीप् **सविस्तरं** सप्रपञ्चं प्रथने वावशब्द इति घञो निषेधात्।।९४।। **अत्र** नद्यां **प्रियो** भर्ता **नष्टः सद्व्रतं** सोमवारव्रतं अतोऽत्र स्नाति।।९५।।९६।। **सीमन्तिन्यपि तद्रूपं दृष्ट्वा** स्वगतं प्राह **स्वप्नभ्रमो** हृदयभ्रमो **वा भाति**।।९७।। **एनां** सीमन्तिनी**माश्वास्य आह तव पुण्या**न्निमित्तात्**त्र्यहात्**त्रिदिनेन **भर्ता एष्यति इत्युक्त्वा राष्ट्रं ययौ**।।९८।। **अरिं** शत्रुं **स्वागमं नृपमिन्द्रसेनं**।।९९।। **द्विषा** शत्रुणा **वध्वा** पत्न्या सह **प्रेमाश्रु**सान्द्रः।।१००।।१०१।।

सर्पं सत्कृत्य राज्याय प्रेरयत्पित्रनुज्ञया । गत्वा श्वशुरराष्ट्रं स्व-भार्याशोकं जहार सः ।।१०२।।
आनीतानर्घवस्तूनि तस्यै दत्वा तया सह । राज्यमेत्याभिषिक्तः स जिष्णुवद्बुभुजे श्रियम् ।।१०३।।
इयान् व्रतप्रभावस्तद्-व्रतं कुर्वित्यजोऽब्रवीत् । ततः प्रभृत्युभौ भक्त्या चेरतुर्व्रतमुत्तमम् ।।१०४।।
गुर्वाज्ञयेयितुर्गेहं प्रत्यब्दं गुरुदर्शनम् । कृत्वा श्रीपुत्रपौत्राढ्यावुभयीं सिद्धिमापतुः ।।१०५।।
एवं जगन्मङ्गलमङ्गलात्मा मनुष्यभावात्परिगृह्य भक्तान् ।
सञ्चारपूतां जगतीं विधाय ततान लीलाममलामघघ्नीम् ।।१०६।।

इति श्रीगुरुचरिते कर्मयोगे दम्पतीगुरुसंवादो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

आदितः सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

सप्ताहपारायणे चतुर्थः। अन्ते रसज्ञा वशा स्तोत्रं पठनीयम्। द्वितीयदिने आरम्भे श्रीगुरुस्तुतिः।

स चन्द्राङ्गदः।।१०२।। **अनर्घ्यवस्तू**न्यमूल्यवस्तूनि जयशीलो **जिष्णु**रिन्द्रः ग्लाजिस्थश्चेति ग्स्नुः तेन तुल्य इति वतिः इन्द्रवद्राजश्रियं ।।१०३।।१०४।। **ईयतु**र्जग्मतुः।।१०५।। **जगदा**नन्दानन्दभूत **आत्मा** विग्रहो यस्य स मानुष्यनटनेन अत्र च कर्मकाण्डे प्रसंगाच्चिरंटीनां पातिव्रत्यमेवोभयत्र तारको धर्मो नापरः। मृते भर्तरि सति सम्भवेऽनुगमनमेव मुख्यधर्मस्तदसम्भवे वैधव्यपालनं तेनापुत्राया अपि ब्रह्मचारिवत्स्वर्गाप्तिः पूर्वाध्याये प्रतिपादिता। इह तु संवादमिषेण मन्त्रानधिकारेऽपि व्रताचरणेनोभयसिद्धिरुक्ताऽतो मोक्षे स्वातंत्र्यं द्योतितमिति दिक्।।१०६।।

इति टीकायां सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

अष्टादशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच।।

निद्रितं मोहतम्यां मे मनोऽहङ्कारघूर्णितम् । बोधार्कोदयबुद्धं तत् पातुमैच्छत्कथामृतम् ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

वत्स विष्णौ प्रबुद्धोऽसि यत्तृप्तिः शृण्वतोऽपि नो । मन्ये त्वयि प्रसादोऽस्ति श्रीमद्भगवतो हरेः ।।२।।
शृण्वेको ब्राह्मणस्तत्र त्यक्तान्यान्नप्रतिग्रहः । दैवाप्तभुगृती शान्तोऽसक्तः कर्मपरो गृही ।।३।।
तत्स्त्रीः कृत्येव सस्त्रीकाः स्वादु भुक्त्वान्यसद्मनि। लभन्ते स्वंशुकार्थांस्तद् दृष्ट्वा पतिमगर्हयत् ।।४।।
भोक्तुं भर्त्रा सहाहूता धनिनैकेन सैकदा । पत्याऽक्रुट्कामलोभेन निषिद्धैत्यावदद्गुरुम् ।।५।।
दीनां कुचैलां क्षुधितां पत्या साकं धनी गृहे । दाताह्वयति भोक्तुं मां पतिं बोधय नैति सः ।।६।।
तच्छ्रुत्वाहूय तं गच्छ भोक्तुं वध्वेत्यजोऽब्रवीत् । स प्राह नियमं हित्वा तथा कुर्वे त्वदाज्ञया ।।७।।
इत्युक्त्वागात्तया भोक्तुं श्वक्रोडोच्छिष्टपाकतः । भुञ्जन्ती ददतेऽन्नं सा दृष्ट्वा पत्ये शशंस तत् ।।८।।
उत्थायोभौ ततः खिन्नौ गुरुं प्राप्य तदूचतुः । स प्राहाङ्गाद्य लब्धं ते स्त्रीः परान्नसुखं परम् ।।९।।
सोचेऽद्य च्छलितो भर्ता क्षन्तव्यो मन्तुरद्य मे । तामाह श्रीगुरुरितः पत्यनुज्ञानुगा भव ।।१०।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथाऽष्टादशोऽध्यायः।। *ब्राह्मण्या दुःस्वभावं च परिहृत्य द्विजातये। शशंसाष्टादशे कृत्स्नमाह्निकं श्रीगुरुः स्वयं।।१।।* **मोहतम्यां** मोहमय्यां रात्र्यां **निद्रितं** संजातप्रमादनिद्रं भवत्कृत**बोध**सूर्योदयसमये **बुद्धं** जातविवेकं **मे** मनः **कथामृतं पातुमैच्छत्** यथा सुप्तो बाल उत्थाय दुग्धं पातुमिच्छति तद्वत्।।१।। **विष्णौ** व्यापके गुरौ विषये संजातबोधो**ऽसि** यस्मात्तच्चरितं **श्रृण्वतोऽपि तृप्तिर्न** विद्यतेऽत**स्त्वयि भगवत्प्रसादोऽस्ती**ति **मन्ये**।।२।। **तत्र** गन्धर्वनगरे **त्यक्त**परा**न्नप्रतिग्रहः ऋती** सत्यवक्ता शमादिसम्पन्नः **गृही कर्मपरो**ऽप्यनासक्तोऽभूत्।।३।। **सस्त्रीका**स्तत्रत्याः परगृहे **स्वाद्वन्नं भुक्त्वा** शोभनवस्त्राणि धनं च **लभन्ते** इति **दृष्ट्वा** स्व**पति**मकुत्सयत्।।४।। **सा भर्त्रा सह भोक्तुमेकेन धनिना** आमन्त्रितोऽपि **काम**क्रोध**लोभ**हीनेन **पत्या** मा गच्छेति **निषिद्धा** सती **गुरु**मागत्या**वदत्**।।५।। **दीनां** दरिद्रां **कुचैलां** वस्त्रहीनां **दाता भोक्तुमाह्वयति स** पतिर्**न** गच्छति तं **बोधय**।।६।। **तद्वाक्यं श्रुत्वा तं** विप्र**माहूय** पत्यासह **भोक्तुं गच्छेति**। **स** विप्रः।।७।। **तया** पत्या सहा**गात्** तत्र **श्वक्रोडोच्छिष्टं पाकतोऽन्न**मानीय भोक्तृभ्यो **ददत** इति **दृष्ट्वा** स्वयं भुंजानापि दुर्मानसा भूत्वा **पत्ये** कथयामास।।८।। यद्वृत्तं **तत् सः** गुरुः **अङ्ग** हे स्त्रीः **परं परान्नसुखं ते लब्धं**।।९।। **सा** स्त्री **ऊचे मे मन्तु**मपराधः **इतः परं**

।। विप्र उवाच ।।

निष्ठाऽन्यथा कृता मेऽद्य दुष्टयाघं कथं व्रजेत् । जन्मप्रभृत्यद्य यावन् नेदृक्पापं मया कृतम् ।।११।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

मा भीस्त्वय्येष दोषो न दुश्चित्तं न कुलस्त्रियः । कार्यं सातः परं नेच्छेत् तथात्तुं क्वापि नैह्यतः ।।१२।।

कदाचिद्यस्य कस्यापि कर्माभाव उपस्थिते । द्विजाभावात्तु भोक्तव्यं तत्र दोषोऽन्यथा भवेत् ।।१३।।

।। विप्र उवाच ।।

परान्नं कस्य भोक्तव्यं कस्मिन्गेहे न कुत्र वा । कस्माद्दानं गृहीतव्यं निषिद्धं चापि शंस मे ।।१४।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

सद्विप्रवैदिकगुरुश्वशुरस्वशिष्य-मातामहालय उ भोजनतो न दोषः।
नाऽचारहीनपरकर्मरताहितार्त-क्षुद्राशुचिस्वगुरुदुःखकरान्नमद्यात् ।।१५।।

दातारमेति सततं सुकृतं तदन्न-भुक्त्यास्य भोक्तुरघमेति तथाप्यमन्त्रात्।
हूत्याङ्घ्रिजस्य च तथा खलु मासपुण्यं दर्शे परान्नग्रहणादपयाति भोक्तुः ।।१६।।

कन्यालयेऽर्भजननोत्तरमन्नमद्याल् लक्ष्मीरपैति सततं परगेहवासात्।
ग्राह्यं च दानमपि सज्जनतो ग्रहे सत् क्षेत्रादिके न न कुहाप्यतिनिन्द्यदानम् ।।१७।।

पत्यनुज्ञावशवर्तिनी **भव**।।१०।। **दुष्टया** पत्न्या **अघं** पापम्।।११।। **दुश्चित्तं** कष्टयुक्तं चित्तं **सा**ऽप्य**तःपरं तथा नैच्छत्** त्वमत ऊर्ध्वं **क्वाऽपि** भोक्तुं **न** गच्छ।।१२।। नायं नियमः **द्विजा**लाभान्निमित्ताच्छ्राद्धादि**कर्म**लोपे प्राप्ते **तत्र भोक्तव्यं अन्यथा** रसासक्त्या **दोषो भवे**न्नेदृशेन भोजनेन यद्वा**ऽन्यथा द्विजा**संभवे **कर्म**लोपं जानन्नप्यहं न व्रजामीति दुराग्रहा**द्दोषो भवेत्**।।१३।। **कस्य** पवित्रान्नं **कस्मिन्गेहे भोक्तव्यं कुत्र वा न** भोक्तव्यं **निषिद्धं दानं च शंस** कथय।।१४।। **स**दाचारसंपन्नो **वैदिक**श्च **गुर**वः अध्यापकान्नदातृभयहर्त्रादयः **श्वशुरः** पत्नीपिता **स्वाः** बांधवाः **मातामह**श्चैषां गृहे **भोजनतो दोषो न ना** पुरुषः **आचारहीनः परकर्म**तत्परः **अहितार्तः** लोभादिग्रस्तः **क्षुद्रः** कदर्युः **अशुचिः** जातशौचमृताशौचादियुक्तः पतितो बहिष्कृतो वा **स्व**जन**गुरु**पीडकश्चैषा**मन्नं नाद्यात्**।।१५।। निरन्तरपरान्नभोजनेन **भोक्तुः सुकृतं** अन्न**दातारं** प्रति गच्छति **अस्यान्न**दातु**रघं** पापं **भोक्तुं** कर्मणि षष्ठी भोक्तारं प्रति गच्छति **तथाप्यमंत्रा**दामत्रणं विना परान्नभोक्तुस्तथैव पूर्ववत् **तथा** ब्राह्मणगृहे **अङ्घ्रिजस्य** शूद्रस्य **हूत्या** ब्राह्मणगृहे भोक्तुमागच्छेत्याह्वानेन गत्वा भोक्तुस्**तथै**व पूर्वोक्तवत् **दर्शे परान्न**भोजना**न्मासपुण्यं भोक्तुरपयाति** दातारमिति शेषः पूर्ववत्।।१६।। पुत्रोत्पत्त्यनन्तरं स्वदुहितुर्गृहे**ऽन्नमद्यात्** निरन्तरं **परगेहवासाल्लक्ष्मी**र्गच्छति **सज्जनतः** स्वधर्मनिष्ठावतो

उत्तमं यज्ञशिष्टान्नं दीक्षितब्रह्मिणोरपि । स्वार्थं पक्वं क्वापि नाद्यादद्याद्यज्ञार्पितं शुभम् ।।१८।।

नश्येज्जपादापदि दानदोषः स्वाचारमप्यापदनापदिष्टम्।
विविच्य विप्राः प्रचरन्ति ये न क्वाप्याधिदैन्यर्णगदान्स्पृशन्ति ।।१९।।

स्वाचारहीनाः परकर्मसक्तास्तेऽमुत्र चात्रापि सदार्तिभाजः।
तस्माद् द्विजाचारममुं निराशीस् त्वं कर्तुमर्हस्युभयार्थदं वै ।।२०।।

।। विप्र उवाच ।।

देवदेव जगन्नाथ दयाब्धे भगवन्प्रभो । सद्गुरो सर्वमाचारं वक्तुमर्हसि मे हरे ।।२१।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

विस्तृतोऽब्धिवदाचारो मुनीनामपि दुर्ग्रहः । तस्मात्सारं सद्गतिदं वक्ष्ये शाक्त्यादिसंमतम् ।।२२।।

आचार आद्यो धर्मो नुः सुखदस्तूभयत्र सः । श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त-चरणं विष्णुचिन्तनम् ।।२३।।

श्रद्धया देशकालाप्त-दानं पात्रे दया क्षमा । शौचानसूयानायासाऽतृट्ताकार्पण्यमङ्गले ।।२४।।

सत्ता दैवीसम्पदेतल् लक्षणो धर्म उच्यते । श्रैष्ठ्यं कर्माप्यते तस्मात्ततो ज्ञानं ततोऽमृतम् ।।२५।।

श्रुतिस्मृतिपुराणानि धर्ममूलं श्रुतिर्वरा । तद्द्वैरे द्वौ वृषौ श्रुत्योर्द्वैधे स्मृत्योस्तु लौकिकः ।।२६।।

वर्णाश्रमविभागोक्तो देशकालोचितो वृषः । लौकिकोऽपि चतुर्वर्णैः सेवनीयः प्रयत्नतः ।।२७।।

दानं ग्राह्यं अतिनिन्द्यदानं महादानं वा क्षेत्रे तीर्थेऽन्यत्र वा **न** ग्राह्यं।।१७।।१८।। **आपदि दान**प्रतिग्रह**दोषः** पुनर्मामैत्विति मन्त्रद्वयजपेन **नश्येत्** आश्वलायनः '*अगमनीयां गत्वाऽयाज्यं याजयित्वाऽभोज्यं भुक्त्वाऽप्रतिग्रहं प्रतिगृह्य चैत्यं यूपं वोपहत्य पुनर्मामैत्विन्द्रियमित्याभ्यां आज्याहुतीर्जुहुयात्समिधो वा जपेद्वा* ' इति। **विविच्य** विशोध्य **दैन्यं** दीनतां **ऋणं** देवाद**गदं** रोगं।।१९।।२०।।२१।। **शाक्त्यः** पराशरः।।२२।। **आद्यः** पुरातनः **नुः** पुरुषस्य **श्रुत्या**दिलक्षणो **धर्मः** तस्मा**च्छ्रैठ्यं कर्म**।।२३।।२४।।२५।। **तद्द्वैरे** श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधे **श्रुतिर्वरा श्रुत्योः** परस्परं **द्वैधे द्वौ वृषौ** धर्मौ **स्मृत्यो**र्द्वैधे **लौकिक**धर्मानुकूलस्मृतिसम्मतो धर्मः।।२६।। **वर्णा** ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः शूद्राः **आश्रमा** ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासिनः तेषां **विभागश उक्तः देशः** काश्मीरादिः **कालः** शिशिरादिः तयो**रुचितः** योग्यः **वृषो** धर्मः **सेवनीयः लौकिकोऽपि** यदुक्तं '*यद्यपि स्यात्स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्यस्थापनक्षमः। तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लंघयेत्* ' इति **प्रयत्नत** इत्यत्र भारतोक्तिः स्मर्तव्या ' *न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः। धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्य* ' इति।।२७।। **सुतरामनुष्ठिता**त्पर**धर्माद्विगुणोऽ**प्यङ्गादिवैकल्योऽपि **स्वको** धर्मः **वरः** श्रेष्ठः ' *श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे*

स्वनुष्ठितादन्यधर्माद् विगुणोपि स्वको वरः । स्वगृह्योक्तोऽविरुद्धोऽपि स्मार्तो ग्राह्यो द्विजातिभिः ।।२८।।

नित्यं नैमित्तिकं कर्म नातीयात्काम्यमैच्छिकम् । तत्त्यागी क्वापि न सुखी ब्रह्मीभूतमृते भवेत् ।।२९।।

प्रमादलुप्तकर्मा तु प्रायश्चित्त्या शुचिर्विना । अनुतप्तं प्रयत्नाद्धी-दुःसङ्गापहृतक्रिया ।।३०।।

भजेत्सलक्षणं धर्मं श्रद्धाभक्तियुतो नरः । ब्राह्मणस्तु विशेषेण यतोऽस्मै श्रैष्ठ्यमर्पितम् ।।३१।।

दानादाने याजनेज्येऽध्ययनाध्यापने द्विजः । स्नानसन्ध्याजाप्यहोम-पाठयज्ञपरश्चरेत् ।।३२।।

वैदिकां तान्त्रिकां मिश्रामाद्यां वैकां चरेत्क्रियाम् । विमलः सुमुखस्नातो द्विराचान्तो गुरूक्तिमान् ।।३३।।

त्रिकच्छी धौतसच्छुष्क-द्विवासा यतगोशिखः । मृद्भस्मगन्धान्यतम-लिप्तो दर्भकरः शुचिः ।।३४।।

पीठस्थोऽन्तर्जानुकरः प्रकुर्यात्कर्म सत्स्थले । उपोषितो विना नैशं कुर्याद्यज्ञजपार्चनम् ।।३५।।

दोषो नौषधगव्येक्ष्वप् फलताम्बूलभक्षणे । कर्म संकल्प्य कार्यं सम्पूर्णतास्येश्वरार्पणात् ।।३६।।

निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह ' इति स्मृतेः **द्विजातिभि**स्त्रैवर्णिकैः **स्वगृह्योक्त**स्तद**विरोधोऽपि स्मार्तो ग्राह्यः** स्वगृह्यशब्देनात्र शाखाभेदो विवक्षितः शाखाभेदेऽपि विध्यभेदादुपासनं न भिद्यते' *सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्* ' इति न्यायवत् त्रैवर्णिके द्विजातित्वम्।।२८।। **नित्यं** सन्ध्योपासनहोमपञ्चयज्ञदर्शादि **नैमित्तिकं** पुत्रजन्मनिमित्तकं जातेष्ट्यादि कर्म **नातीयात् काम्यं** त्वै**च्छिकं** तदतिक्रमे च दोषाश्रवणात् कृते च बन्धकत्वश्रवणात् ' *अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते* ' इति स्मृतेः ननु तर्हि काम्यं नैव कार्यमिति किमिति न निषिद्ध्यते यत ऐच्छिकमित्युच्यत इति चेद्रागिविरागिभेदेनेदं नियम्यते तथाहि '*आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः* ' इत्यत्र भाष्यकृद्भिरिदमुक्तं आचार्येणानुज्ञातोऽनुरूपान्दारानाहृत्य *प्रजातन्तुं* प्रजासन्तानं *मा व्यवच्छेत्सीः* प्रजासंततेर्विच्छित्तिर्न कर्तव्यानुत्पद्यमानेऽपि पुत्रे काम्यादिकर्मणा तदुत्पत्तौ यत्नः कर्तव्यः इत्यभिप्रायः प्रजाप्रजननप्रजातित्रयनिर्देशसामर्थ्यात् अन्यथा प्रजननश्चेत्येकमेवावक्ष्यदिति इदं च रागिविषयकमेव '*नापुत्रस्य लोकोऽस्ति* ' इति श्रुतिहार्दज्ञानां विरागिणां तु '*एतद्ध स्म वै तद्विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषा नोऽयमात्मायं लोक* ' इति ' *ते ह स्म...*' इति श्रुतिरेषणात्रयोत्थानं ब्रूते। यदि तेषां तीव्रतरा मुमुक्षा चेत्संन्यास एव श्रेयान् तदितरेषां त्वारुरुक्षूणां नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानमेव विमुखानां तु प्ररोचनार्थं काम्यकर्मप्रतिपादनमित्यतः काम्यमैच्छिकमित्युक्तम्। **तत्त्यागी** नित्यनैमित्तिकत्यागी **क्वापी**ह वाऽमुत्र **सुखी न भवेत्** किन्तु दुःखभागेव तर्हि ज्ञानिनामपि कर्मात्यये तथैवेति चेन्नेत्याह **ब्रह्मीभूतमृते** ज्ञानिनं विना ज्ञानिनां तु न विधिनिषेधापत्तिः कार्याभावात् स्मृतिः उक्तं च गीतायां ' *यस्त्वात्मरतिः* ' इति द्वाभ्यां।।२९।। **प्रमादे**नानवधानेन **लुप्तं कर्म** यस्य स **प्रायश्चित्त्या शुचिः** ' *विध्यपराधे प्रायश्चित्तिः* ' इति सूत्रकारवचनात् बुद्धिपूर्वकं **दुःसंगेन** च लुप्तं कर्म यस्य स **प्रयत्ना**च्छुचिः **अनुतप्तं विना**ऽनुतापात्तु सद्यः शुचिः।।३०।।३१।। **दानं** पात्रे द्रव्यसमर्पणं **आदानं** प्रतिग्रहः **याजनं** पौरोहित्यार्त्विज्यादिकरणं **इज्या** यजनं **अध्ययनं** वेदपाठः शिष्याय विद्यादान**मध्यापनं** च त्रीणि कर्माण्युपजीवनार्थं त्रीणि चागंतुसाधनार्थं बुधो विवेकी प्रत्यहं **चरेत्** कथंभूतः **स्नाना**दियुक्तः।।३२।। **आद्यां एकां** केवलां **वैदिकां वा विमलः** कृतमलाद्युत्सर्गः **सुमुखः** कृतदंतधावन **यतगोशिखः** मौनी बद्धशिखश्च।।३३।।३४।। **पीठस्थ** आसनारूढः **नैशं** रात्रिकर्तव्यं कर्म **विना उपोषितः**।।३५।। **गव्यं** गोरसः **इक्षुः**

(क्षेपकः)खेऽर्को यत्रैत्युद्गमास्तौ प्राक्प्रत्यक् ते ततोऽपराः ।।

द्युनक्तं प्रागुदग्वक्त्रो होमाद्येऽग्न्यादिसंमुखः । सौम्यैन्द्र्यैशान्यनुक्तायां दक्षाङ्गं चोपवीतता ।।३७।।

आसीनत्वं मध्यपाठो देवतीर्थमनुक्तके । निवीतं कण्ठलम्ब्यार्षं दक्षांसस्थं तु पित्र्यकम् ।।३८।।

प्राचीनावीतमन्यांसस्थं सूत्रं तूपवीतकम् । भ्रष्टं वा त्रुटितं सूत्रं त्यक्त्वा दद्ध्यान्नवं विधेः ।।३९।।

त्रिघ्नीकृत्य त्रिपद्या षणवतिस्वकरोन्मितम् । तूलादिसूत्रं पुनस्त्रिरावृत्य नवसूत्रकम् ।।४०।।

कृत्वा त्रिरावृतं ग्रन्थिं दत्वा काजशिवान्नमन् । प्रोक्ष्याब्लिङ्गैः पङ्क्विारं सावित्र्या धेहि मन्त्रवत् ।।४१।।

प्रसिद्धः **आपः** जलं **औषधादिभक्षणे न दोषः** एतदशक्तविषये प्रथमतः **कर्म संकल्प्य कार्यं** अन्तेऽ**स्य** कर्मणः **ईश्वरार्पणात्सम्पूर्णता** ' *यस्य स्मृत्या...प्रमादात्कुर्व..*' स्मृतेः।।३६।। **खे** आकाशे **यत्र** प्रदेशे**ऽर्कः** सूर्य **उद्गमास्तौ** एति **ते प्राक्प्रत्य**क्च **तत**स्ताभ्या**मपरा** अवान्तरा दिशः साध्याः। यस्मिन्प्रदेशे प्राची साध्यते तत्र वृत्तं कृत्वा द्वादशाङ्गुलशङ्कुर्मध्ये निखेयः तस्य केन्द्रस्थितस्य शङ्कोश्छाया पूर्वाह्ने यं प्रदेशं प्रविशति तस्मिन् छायाग्रे चिह्नं कार्यं सा पश्चिमा दिक्। अपराह्ने छाया वृत्ताद्बहिर्यत्रापैति तस्मिन् छायाग्रे चिह्नं कार्यं सा पूर्वा दिक्। तदर्धप्रदेशे वृत्ते दक्षिणोत्तरे दिशौ तदंततो विदिशश्च साध्या एतद्दिक्साधनं सायनांशसूर्यो यस्मिन्दिने मेषादिगो भवति तस्मिन्दिने कार्यं। तदन्यदिने वार्कक्रान्तिलवाक्षकर्णनिहतिरित्याद्युक्तप्रकारेण साध्यं एवं सूर्योदयवशाद्दिक्साधनं। उदयश्च नाम सवितुस्तन्निवासिनां प्राणिनां चक्षुर्गोचरापत्तिः तदत्ययश्चास्तमयं न परमार्थत उदयास्तमये स्तः तन्निवासिनां प्राणिनां चाभावे तान् प्रति तेनैव मार्गेण गच्छन्नपि नैवोदेता नास्तमेति चक्षुर्गोचरापत्तेस्तदत्ययस्य चाभावात्। तर्हि ' *मासेन स्यादहोरात्रः पैत्रो वर्षेण दैवतः। दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्म* ' इति तेषां दिनव्यवहारः कथमिति चेत्तथैवामरावत्याः सकाशाद् द्विगुणकालं संयमिनी पुरी वसत्यतस्तस्मिन्निवासिनः प्राणिनः प्रति दक्षिणत एवोदेत्युत्तरतोऽस्तमेति इत्युच्यतेऽस्मद्बुद्धिं चापेक्ष्य तथोत्तरास्वपि पुरीषु योजना यथात्र भारते षष्टिघटिकात्मकोऽहोरात्रस्तथैव मनुजमानेन मासेन पितृणामहोरात्रः तत्र शुक्लपक्षे संततं सूर्यदर्शनं कृष्णे चास्तमयं एवमेव स्वर्गे देवानां मानवाब्दात्मकोऽहोरात्रः तत्रोत्तरायणे संततं सूर्यदर्शनं दक्षिणायनेऽस्तमयं च। सर्वेषां च मेरुरुत्तरतो भवति। यदाऽमवरावत्यां मध्याह्नगः सविता तदा संयमिन्यामुद्यन्दृश्यते तत्र मध्याह्नगोचरो वारुण्यामुद्यन्दृश्यते तथोत्तरस्यां प्रदक्षिणावृत्तेस्तुल्यत्वात् इलावृतवासिनां सर्वतः प्राकारनिवारितादित्यरश्मीनां सवितोर्ध्वे इवोदेतार्वागस्तमेता दृश्यते पर्वतोर्ध्वछिद्रप्रवेशात्सवितुः प्रकाशस्य। एवमन्यत्राप्यूहम्। एवमुक्तन्यायेनात्र मनुष्याणां षष्टिघट्यात्मकोऽहोरात्रः, मासात्मकः पितृणां वर्षात्मको देवानां च। ब्रह्मलोके तु नास्तो नोदयश्च। तथा छंदोगाः '*न वै तत्र निम्लोच नोदियाय कदाचन* ' इति।।३६।। दिवा **प्राङ्**मुखः **नक्तमुदङ्**मुखः **होम**पूजादौ **अग्नि**देवा**दिसंमुखः** अग्नेः संमुखत्वमुक्तमाश्वलायनगृह्ये '*एते वै यज्ञस्य यदाज्यभागौ तस्मात्पुरुषस्य प्रत्यङ्मुखस्यासीनस्य दक्षिणमक्ष्युत्तरं भवत्युत्तरं दक्षिणमुत्तरं* ' इति **अनुक्तायां** दिशि पूर्वोत्तरैशान्यः अनुक्तस्थले **दक्षिणाङ्गं** उपवीतत्वं च।।३७।। स्थित्यामनुक्ताया**मासीनत्वं** चानुक्ते पाठे **मध्यमपाठोऽनुक्ते** तीर्थे **देवतीर्थं कण्ठलम्बि**सूत्रं **निवीत**मृषिकर्मणि दक्षिणबाहुस्थं **प्राचीनावीतं** पितृकार्ये।।३८।। वामबाहुस्थ**मुपवीतं** देवकार्ये पतितान्त्यजोदक्या स्पर्शे स्थानाच्च्युते मासचतुष्टयातीते सूतके च प्राप्तौ यज्ञोपवीतं भ्रष्टं भवति **भ्रष्टं त्रुटितं वा सूत्रं त्यक्त्वा** नवीनं विधिव**द्दध्यात्**।।३९।। **त्रिपद्या गायत्र्या त्रिगुणीकृत्य पुनस्त्रिरावृत्य** त्रिगुणीकृत्य संजातं **नव**तन्तुकं **त्रिरावृतं कृत्वा**।।४०।। **काजशिवा**न्ब्रह्मविष्णवीश्वरा**न्नमन्ग्रंथिं** बध्वा**ऽब्लिङ्ग**र्बहुवचनस्य त्रित्वे पर्यवसानादापोहिष्ठेति तिसृभिर्दश**वारं** गायत्र्या च **प्रोक्ष्य समन्त्र**कं यज्ञोपवीतमिति मन्त्रेण **धेहि** धारणं कुरु हे द्विज त्वमिति शेषः।।४१।।

शश्वद्योज्याः सत्स्थिताग्नि-मन्त्रदर्भासनद्विजाः । पिण्डादिस्थाः कुशा विप्रः प्रेतश्राद्धाञ्चितानलः ।।४२।।
मन्त्रा गौस्तुलसी नीचेऽसन्तः सन् शोधितो द्विजः। सोङ्कारान् सर्वदा होमे स्वाहान्तान्वामहस्तहृत्।।४३।।
आर्षच्छन्दोदेवताविनियोगज्ञो मनून्जपेत्। शूद्राहृतं द्विजक्रीतं समिद्दर्भाप्सुमाद्यसत् ।।४४।।
अफेनानुच्छिष्टहस्त-नखास्पृष्टामलाम्बु सत् । कुशकाशयवोशीर-गोधूमव्रीहिकुन्दराः ।।४५।।
दूर्वामौञ्जस्तृणं दर्भा वर्षामास्वीकृताः शुभाः । मूलतो ब्रह्मविष्णवीशा दर्भे सर्वेऽभितोऽमराः ।।४६।।
कर्मोत्तरान्तं प्राक्संस्थं व्यस्तं वा पित्र्यमग्निगम् । याम्यन्तं तद्वदास्यं च ज्ञेयोऽङ्गे वामतः क्रमः ।।४७।।
तर्जन्यल्पाधःकराग्र-मध्यादिषु यथाक्रमम्। तीर्थं पित्र्यं कायदैवमाग्नेयं ब्राह्ममुच्यते ।।४८।।
पित्रर्षिदेवादानोप-स्पर्शकार्यं चरेत्तु तैः। वामान्वारब्धान्यपाणिः कर्माद्यान्ताम्बुदानयुक् ।।४९।।
त्वक्फलकृमिरोमोत्थ-श्वेतासृक्पीतमेचकम् । वासो दग्धं द्विजादेः सद्धौतमस्फाटितं स्वकम् ।।५०।।
ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय गणेशब्रह्मविष्णवजान् । देवान्नत्वा गुरून्खेटान्गां सच्छ्लोकांश्च संस्मरेत् ।।५१।।
ग्रामाद्बहिस्तु नैर्ऋत्यां सद्द्रुम्बवध्वादि वर्जिते । स्थलेम्बु दूरात्संस्थाप्य यतनासाक्षिवाक् तृणे ।।५२।।

शोभनकर्म**स्थिता अग्न्या**दयः पुनः पुनः कर्मणि **योज्याः पिण्डादि**षट्स्थान**स्थाः कुशा असंतो**ऽशोभनाः **प्रेतश्राद्धं** महैकोद्दिष्टश्राद्धं भुनक्तीति तथा स **विप्रो**ऽसन् **चिता**ग्निरसन्**मंत्रा गौस्तुलसी** च **नीच**गता अशोभना एषां मध्ये प्रेतश्राद्धभुक्स संस्कारप्रायश्चित्त्याद्या शोधितश्चेच्छुद्धो भवेत् जपादिसमये **सोङ्कारा**नोङ्कारपूर्वान्**होमे** च **स्वाहान्तान्**मंत्रान्**जपेत् वाम हस्तो हृदि** यस्य सः।।४३।। मंत्रयर्ष्यादिज्ञः यदुक्तम् '*अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च। योऽध्यापयेद्यजेद्वाऽपि पापीयान्जायते तु स* ' इति। **शूद्रे**णानीतं ब्राह्मणेन **क्रीतं समिद्दर्भाप्सुमादि असत् समिदि**ध्मं **दर्भाः** प्रसिद्धाः **आप** उदकं **सुमं** पुष्पं यदुक्तं '*समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत्। शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्व्रजन्त्यधः* ' इति।।४४।। **फेन**रहितं **अनुच्छिष्टं** मलरहितं जलं कर्मणि **सत् कुशा**दयो दशप्रकारा दर्भाः श्रावणमासे**ऽमा**वास्यायामाच्छिद्य **वर्ष**पर्यंतं **शुभाः** '*अयातयामास्ते दर्भाः विनियोज्याः पुनः पुनः* ' इति स्मृतेः। भाद्रामायां क्वचिदुक्तं तत्कृष्णादिमासाभिप्रायेण। **मूले ब्रह्मा** मध्ये **विष्णु**रग्रे रुद्रो**ऽभित** आसमंतात्**सर्वे** देवाः।।४५।।४६।। **प्राक्संस्थमुत्तरान्तं** उदक्संस्थं पूर्वान्तं **वा** दैवं **पित्र्यं** तु **अग्निगं याम्यन्तं** मुखमपि **तद्वत् अङ्गे वामा**ङ्गादि **क्रमः**।।४७।। **तर्जन्यधः पित्र्यं** कनिष्ठाधः **काय**मार्षं **कराग्रे दैवं मध्ये** तले **आग्नेयं** करमूले **ब्राह्मं तैः**।।४८।। **पित्रादिकार्यं आदानं** प्रतिग्रहः '*आग्नेयेन प्रतिगृह्णीयात्*' इति श्रुतेः **उपस्पर्श** आचमनं **अन्यपाणि**र्दक्षिणहस्तः।।४९।। **त्वगा**दिवस्त्राणि **श्वेता**दीनि च ब्राह्मणादेः क्रमोक्तानि **स्वकं** स्वीयं इति परिभाषा समाप्ता।।५०।। **ब्राह्ममहूर्तः** स चिंतनार्हकालोऽन्तिमो रात्रेश्चतुर्थप्रहरः तस्मिन्काले **गुरून्** मातापित्रादीन् **खेटान्** ग्रहान्सिद्धान्वा **गां** भूमिं धेनुं वा पुण्य**श्लोका**न्धर्मादीन्।।५१।। **सद्द्रुः** पुण्यवृक्षोऽश्वत्थादिः **अम्बु** जल**मध्वा** मार्गः **अम्बु** जलपात्रं **यतनासाक्षिवाक्** पिहितनास इतस्ततोऽपश्यन्मौनी **तृणा**स्तृतभूमौ।।५२।।

उदङ्मुखोऽन्यथा नक्तमासीनो वस्त्रमस्तकः । आर्षसूत्रं दक्षकर्णे कृत्वा मूत्रविशौ त्यजेत् ।।५३।।
लिङ्गं सहाद्भिरप्स्थार्द्र-धात्रीमात्रमृदा गुदम् । त्रिर्वामो दशवारं च करः शोध्याः कराङ्घ्रयः ।।५४।।
प्रत्येकं सप्तवारं द्वि-गुणं वीर्येऽर्धमन्यके । वर्णिवानप्रस्थभिक्षोः शौचं द्वित्रिचतुर्गुणम् ।।५५।।
अर्धार्धार्धं निशाशक्ति-मार्गेष्वज्ञाबलासु तु । गन्धलेपान्तावधि स्याद् गण्डूषान्वामतस्त्यजेत् ।।५६।।
द्विजो द्वादश चान्योऽल्पान्तर्जन्यास्यं न शोधयेत् । क्षीरिकण्टकिवृक्षाम्र-निम्बापामार्गदारुणा ।।५७।।
द्वादशाङ्गुलमात्रेण द्विजोऽन्योऽल्पेन मन्त्रवत् ।शुद्धास्योऽब्गोविशा प्रातः स्नायान्मध्यन्दिनेऽम्मृदा ।।५८।।
भिक्षुर्व्रती त्रिकालं न चिरण्टी शिरसा सदा । शीतैः शीताप्सम्पुटितोष्णकैर्वाब्लिङ्गमन्त्रितैः ।।५९।।
धाम्न्याचमनसङ्कल्प-मार्ष्टितृप्त्यघहारि नो । दीपाल्युत्सवमाङ्गल्याऽब्दाद्येऽभ्यङ्गं सदैच्छिकम् ।।६०।।
अनिन्द्याहेऽधवाभिक्ष्वोर्नेदं स्नायान्न शीतकैः । माङ्गल्येऽर्भोत्पत्तिपर्व-क्रान्तिश्राद्धेषु नोष्णकैः ।।६१।।
स्नायाद्वान्त्यशुचिस्पर्श-दुःस्वप्नरतिदुर्गमे । नद्यां प्रवाहाभिमुखो वरुणं प्रार्थ्य मन्त्रवत् ।।६२।।

दिवो**दङ्मुखो नक्तमन्यथा** दक्षिणमुखः **आसीनो** मुक्तकच्छ उपविष्टः **वस्त्रं मस्तके** यस्य **आर्षसूत्रं** निवीतं **दक्षिणकर्णे कृत्वा मूत्रं** मलं चोत्सृजेत्।।५३।। उदकस्थिततयाऽऽ**र्द्रधात्री**फलमितया **मृदा सहै**कवारं **लिङ्गं त्रिवारं गुदं** चादि्भः सह मृदा शोध्यं **दशवारं वामकरः** शोध्यः उभौ पादौ **करौ** च **सप्तवारं प्रत्येकं शोध्याः**।।५४।। रेतोत्सर्गे **द्विगुणं** मूत्रोत्सर्गे**ऽर्धं** एतद्ब्रह्मचारिणो **द्विगुणं** वनस्थस्य **त्रिगुणं भिक्षोश्चतुर्गुणं**।।५५।। **निश्यर्धं अशक्तौ** तदर्धं **मार्गे** प्रवासे तदर्धं **अज्ञे**षु बालेषु **अबलासु** स्त्रीषु **गंधलेप**क्षयपर्यंतं शौचं न तु पूर्वोक्तसंख्यया **द्विजो द्वादशगण्डूषान्**स्व**वामतस्त्यजे**दित्यग्रिमेणान्वयः।।५६।। **अन्यः** क्षत्रियो**ऽल्पान्द**श अष्टौ वैश्यश्चतुरः शूद्रः **तर्जन्या** मुखं **न शोधयेत् क्षीरि**णः प्लक्षादयः **कण्टकि**नः खदिरादयः **आम्रा**दयः प्रसिद्धा एषामन्यतमस्य काष्ठेन।।५७।। सत्वचेनार्द्रेण **द्वादशाङ्गुल**परिमितेन **अन्यः** क्षत्रियो**ऽल्पेन** दशाङ्गुलेन वैश्योऽष्टाङ्गुलेन **मन्त्रवत्**समन्त्रकेन मुखदुर्गंधीति मंत्रसहितं यथा स्यात्तथा **शुद्धं** दन्तधावनजिह्वोल्लेखनादिनाविमलीकृतं **आस्यं** येन सः **अब्गोविशा** गोमयलेपनपूर्वकमुदके **स्नायात् मध्यंदिने** तथैवा**म्मृ**दा स्नायाद्गृहस्थः।।५८।। **भिक्षुः** कुटीचको बहूदश्च हंसे तु सकृदेव स्यादिति पूर्वमेवोक्तं **व्रती** वनस्थश्चान्द्रायणादिव्रतकर्ता च **त्रिकालं** स्नायात् सुवासिनी नित्यं **शिरसा न** स्नायात् **शीतैः कैः** जलैः अथवा आपोहिष्ठेत्यादिमन्त्रितैः **शीतो**दकेन **सम्पुटितोष्णो**दकैः।।५९।। **धाम्नि** गृहे **मार्ष्टि**र्मार्जनं **तृप्ति**स्तर्पणं **अघहार्य**घमर्षणं **नो** कुर्यात् **दीपावल्यामुत्सवे** विवाहादि**मांगल्ये** वर्षारंभे चा**भ्यंग**स्नानं कार्यं **सदा** तदरिक्तकाले **ऐच्छिकं** न नित्यं।।६०।। तदप्य**निन्द्ये** षष्ट्यष्टमीचतुर्दशीरहिते **विधवायां भिक्षोश्चेदं** अभ्यंगस्नानं **न मांगल्ये शीतो**द**कैर्न स्नायात्** पुत्रोत्पत्तौ **पर्व**णि सं**क्रांतौ श्राद्धा**हे च **नोष्ण**द**कैः** स्नायात्।।६१।। **वान्तौ अशुचिस्पर्शे दुःस्वप्न**दर्शने मैथुने श्मशानादौ निषिद्धस्थानगमने च **स्नानं** कुर्यात् **नद्यां प्रवाहाभिमुखो मन्त्रवत्** हिरण्यशृङ्गमित्यादिमंत्रैः जल**मालोड्य स्वमा**त्मान**मुन्माज्यार्घमर्षणं कृत्वा स्नात्वा जले देवानृषीन्पितॄन्तर्पयित्वा** परिभा-

स्नात्वा लोड्याम्ब्वम्बुमन्त्रैः स्वमुन्मार्ज्याघमर्षणम् । कृत्वा स्नात्वा तर्पयित्वा जले देवानृषीन्पितॄन्।।६३।।

निष्पीड्योदग्दशं वासः शोधिताङ्गो गृहं व्रजेत् । स्रवत्यात्मा सरन्ध्रोऽतः प्रातःस्नानं विशोधनम् ।।६४।।

त्रिसप्तद्वादशाहं चेत् सन्ध्यास्नानाग्निवर्जितः । द्विजोऽपि शूद्रोऽशक्तश्चेन् मान्त्राद्यन्यतमं चरेत् ।।६५।।

हृद्यभौमाग्नेयमान्त्रानिलदिव्यैः शुचिर्हरेः । ध्यानमृद्भस्माम्मनुगो-रजोवर्षात्मकाप्लवैः ।।६६।।

मेधाऽलोलुपतारोग्य-रूपतेजोयशोबलम् । शौर्यदुःस्वप्नहृत्यायुर्लभेत्स्नातोऽन्यथापरम् ।।६७।।

स्नात्वा मृद्भस्म हुत्वाङ्गे धार्यमभ्यर्च्य चन्दनम् । केशवाद्यैर्द्वादशभिः सिते पक्षेऽसिते परैः ।।६८।।

ललाटोदरहृत्कण्ठ-दक्षकुक्षिभुजश्रुतिः । कुक्षिदोः श्रुतिपृष्ठाङ्ग-ककुन्मूलेन कं त्विति ।।६९।।

मृद्गन्धितिलकैरङ्क्या भस्मपुण्ड्रैः षडर्णतः । मृताशौचे न गन्धान्न माङ्गल्ये भस्म धारयेत् ।।७०।।

गयाश्राद्धाधानपट्ट्ट-प्रेतकृत्योत्तरीयकम् । पादुका रौप्यमुद्रा न क्षौरं जीवत्पिता भजेत् ।।७१।।

रौप्यहैमीखड्गमुद्रा-वत्तर्जन्यल्पकाङ्गुलिः । साग्रागर्भचतुर्दर्भ-पवित्रानामिकोऽपि वा ।।७२।।

मुक्ताङ्गुष्ठाल्पगोकर्णाकृतिहस्तेन कं त्रिभिः । केशवाद्यैः प्राश्य हस्तौ द्वाभ्यां प्रक्षाल्य चाधरौ ।।७३।।

षोक्तवत्।।६२।।६३।। **उदग्दशं वासो निष्पीड्य** प्रोक्ष्य तेन **शोधितं अंगं** येन स **गृहं व्रजेत्** नवरंध्र**स**हित **आत्मा** देहः **स्रवति अतः प्रातःस्नानं** **वि**शेषेण **शोधनं**।।६४।। **त्रि**दिनं **स्नानवर्जितः सप्ता**हं **संध्या**वर्जितः **द्वादशाह**माधाना**ग्निवर्जितः द्विजोऽपि शूद्रो** भवेत् **अशक्तो** मंत्रस्नानादीनां मध्ये यदेव सम्भवति तदा**चरेत्**।।६५।। **हरेः ध्यानं हृद्यं** मानसिकस्नानं **भौमं** **मृ**ल्लेपः **आग्नेयं भस्म**स्नानं **मांत्र**मापोहिष्ठेति तिसृभिर्मार्जनं **आनिलं गोरजः**स्नानं **दिव्यं** सातप**वर्ष**स्नानं।।६६।। **मेधा** धारणावती बुद्धिः **अलोलुपत्वं** **दुःस्वप्नहृति**स्तन्नाश एतत्सर्वं प्रातःस्नायी **लभेत् अन्यथा** स्नानाभावे **अपरं** दुर्मेधाइन्द्रियलौल्यरोगकुरुपाप्रागल्भ्यापकीर्तिमुखं लभेत्।।६७।। **स्नात्वा मृ**त्तिका धार्या होमं कृत्वा **भस्म** धार्यं सम्पूज्य **चन्दनं धार्यं** धारणमंत्रानाह शुक्ले **केशवादिद्वादश**नाम**भिरसिते** कृष्णे संकर्षणाद्वादशनामभिः ललाटादिस्थानानि मृदाद्यंकितानि कार्यानि ।।६८।। **ललाटोदरे** प्रसिद्धे **हृद्व**क्षःस्थलं **कण्ठो** गलः **दक्षिणकुक्षि**दक्षिण**भुजो**दक्षिणकर्णश्च वामकुक्षिर्वामभुजो वामकर्णः **पृष्ठाङ्गं** पृष्ठदेशः **ककुत्त**दुपरि भागः **कं** मूर्धा एतेऽवयवाः ॐ नमो नाराय-णायेत्यनेन **इति**शब्दः स्थानसमाप्त्यर्थः।।६९।। **मृत्ति**लकै**र्गन्धतिलकैरङ्क्या**श्चिह्निताः कार्याः मृदोर्ध्वतिलका भस्मना तिर्यक्पुण्ड्रा इति विवेकः ॐनमः शिवायेति **भस्मपुण्ड्रै**रङ्क्याः।।७०।। **जीवत्पिता गयाश्राद्धा**दि **न भजेन्न** कुर्यादित्यर्थः आन्ध्यादिदोषदूषिते पितरि तदाज्ञयाऽऽधाने न दोषः। क्षुरेण वपनं कर्तनेन कृत्तकेशादिर्भवेत्।।७१।। **तर्जन्यां रौप्या मुद्रा हैम्य**नामिक्यां **खड्ग**मुद्रा कनिष्ठिक्यां धार्या रौप्यहैमीखड्गमुद्रावन्त्यस्तर्जन्यल्पकाङ्गुल्यो यस्येति समासः। अथवा **गर्भ**रहित**साग्रचतुर्दर्भपवित्रेऽनामिक**योर्यस्य सः।।७२।। **मुक्तोऽङ्गुष्ठोऽल्पा** कनिष्ठिका च यस्मात्स चासौ **गोकर्ण**स्या**कृति**रिवाकृतिर्यस्य तादृशेन **हस्तेन कं** उदकं

द्वाभ्यां प्रोक्ष्यास्यमेकैकात् करं पादौ शिरोऽपरैः । आस्यं नासेक्षिणी कर्णौ नाभिं हृत्के भुजौ स्पृशेत् ।।७४।।

नासां साङ्गुष्ठतर्जन्याङ्गुष्ठेनास्यं च दृक्श्रुती । सानामिकेन साल्पेन नाभिं करतलाग्रतः ।।७५।।

हृद्बाहून्कं च सर्वाभिः स्पृशेदाचमनं त्विदम् । त्रिभिः पीत्वा शुद्धपाणिः स्पृशेत्कर्णमसंभवे ।।७६।।

माषमज्जनमात्राम्बु-पानेऽथ द्विरुपस्पृशेत् । मूत्राद्युत्सर्गशुद्ध्यूर्ध्वं स्नाने दाने सुरार्चने ।।७७।।

प्राक्परे कर्मसन्ध्यासु सुप्ते वासोधृतौ क्षुते । कासश्वासागमादानाध्ययनाशुद्धभाषणे ।।७८।।

श्मशानचत्वारगतौ पच्छौचे स्वाऽन्ययोः कृते । आचामेद्धीनसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।।७९।।

रक्ताश्रुपातेऽसुयामे जलोत्तारेऽभिवादने । उच्छिष्टस्पर्शेऽपाने च याते कर्णं स्पृशेत्तु वा ।।८०।।

विप्रदक्षश्रुतौ देव-पाशीनेन्द्वग्न्यबाशुगाः । सन्ध्याज्ञानाद्भवेच्छूद्रः सन्ध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः ।।८१।।

विना संध्यावन्दनेन नाधिकारोऽन्यकर्मसु । सम्यग्ब्रह्मात्र ध्यायन्ति विप्राः सन्ध्या ततः स्मृता ।।८२।।

भाढ्या भहीनार्कयुक्ता तूत्तमा मध्यमाधमा । प्रातःसंध्याऽपरा तद्वत् सार्कार्कोना च भान्विता ।।८३।।

त्रिनाड्यधस्तामकृत्वा चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत् । अध्यर्धयामादासायं संध्या मध्याह्निकी स्मृता ।।८४।।

कैशवाद्यैस्त्रिभिर्नामभिः **प्राश्य** देवतीर्थेनेति परिभाषोक्तमनुसंधेयमेवं सर्वत्र **द्वाभ्यां** गोविन्दविष्णुनामभ्यां करौ वामपूर्वाविति परिभाषोक्तमनुसंधेयं **द्वाभ्यां** मधुसूदनत्रिविक्रमनामभ्यां **अधरा**वौष्ठौ च **प्रक्षाल्य**।।७३।। वामननाम्नाऽऽ**स्यं** मुखं **प्रोक्ष्य एकेन** श्रीधर इत्यनेन दक्षिणकरं प्रक्षाल्य **अपरै**स्त्रिभिः **पादौ शिर**श्च हृषिकेशपद्मनाभाभ्यां पादौ दामोदरेण शिरश्च **आस्यं** मुखं संकर्षणनाम्ना वासुदेवप्रद्युम्नाभ्यां **नासा**पुटे अनिरुद्धपुरुषोत्तमाभ्यां अक्षिणी अधोक्षजनारसिंहाभ्यां कर्णौ अच्युत इत्यनेन **नाभिं** जनार्दननाम्ना हृदयं उपेन्द्रेण **कं** मस्तकं हरिश्रीकृष्णाभ्यां **भुजौ** च **स्पृशेत्**।।७४।। **साङ्गुष्ठतर्जन्या नासां** स्पृशेत् **अङ्गुष्ठेनास्यं** मुखं **सानामिका**ङ्गुष्ठेन दृशौ सकनिष्ठिकाङ्गुष्ठेन कर्णौ **करतले**न **नाभिं अग्रेण हृद्बाहून् सर्वाभिः कं स्पृशेत्** एतद**सम्भवे त्रिभिः पीत्वा** द्वाभ्यां **शुद्धपाणिः कर्णं स्पृशेत्**।।७५।।७६।। **पाने** आचमने **द्विरुपस्पृशे**दाचान्तः पुनराचामेत् **शुद्ध्यूर्ध्वं** शुद्ध्यनन्तरं न प्राक् **स्नाना**दौ पूर्वमन्ते च **सुप्ता**दौ पश्चाद्द्विराचमनं **आदानं** प्रतिग्रहः **स्वान्ययोः** स्वपादक्षालने परपादक्षालने च।।७७।।७८।।७९।। **अपाने** बहि**र्याते चै**कवारमाचामेत् द्विराचमनं नाम केशवादिचतुर्विंशतिनामभिः संबुध्यन्तैश्चतुर्थ्यन्तैर्वोक्तस्थानस्पर्शरूपं द्विरावर्तनं जलाभावे **कर्णं स्पृशेत्**।।८०।। **विप्रदक्ष**कर्णे **देवा** वसन्त्यतस्तत्स्पर्शादाचमनं कैश्चिन्मांत्राचमनमुक्तं आचमने न्यूनाधिकजलपानं सुरासमं। **संध्याया अज्ञानाच्छूद्र**कल्पो **भवेत्**।।८१।। **अत्र** वेलायां **विप्राः सम्यग्ब्रह्म ध्यायन्ति ततो** हेतोः **संध्या स्मृता**।।८२।। **प्रातःसंध्या भाढ्या** सनक्षत्रो**त्तमा** लुप्तनक्षत्रा **मध्यमाऽर्कयुक्ताऽधमा अपरा** सायंसंध्या **सार्को**त्तमा लुप्तार्का मध्यमा **भान्विता**ऽधमा।।८३।। त्रिघटीकालातिक्रमे प्रायश्चित्तार्थं **चतुर्थार्घ्यं** दद्यात् **अधि**का**र्धयामा**त्सार्धप्रहरोत्तरा**दासायं मध्याह्नसंध्या स्मृता** पंचधा विभक्तमानभागाः क्रमेण प्रातःसंगवमध्याह्नापराह्णसायाह्नसंज्ञकाः।।८४।।

धृत्वानामिकाङ्गुष्ठैर् यतिवर्णी च पञ्चभिः । अन्यो नासां शनैर्वायुं सव्ययापूर्य शक्तितः ।।८५।।
प्रणवव्याहृतीः सप्त गायत्रीं शिरसा सह । त्रिर्जपन्कुम्भितं मन्दं दक्षनाड्या विरेचयेत् ।।८६।।
कार्योऽन्यथासुयामान्यो मूलबन्धोऽत्र सत्तमः । जालन्धरोड्ड्डियाणाख्यौ कुम्भके रेचके हितौ।।८७।।
प्राणायामोऽघनिघ्नोऽयं कार्यः सर्वेषु कर्मसु । ग्रामाद्बहिः स्याद्द्विगुणं नद्यां शतगुणं फलम् ।।८८।।
तीर्थे सहस्त्रं सन्ध्यायामनन्तं सान्ध्यकर्मजम् । बहिःसंध्या सुरापानानृतोक्त्याद्यघहारिणी ।।८९।।
संध्यामुपासिष्य इति संकल्प्यादाय मार्जयेत् । गोकर्णाकृतिताम्रादि-पात्रे वामकरेऽप्यपः ।।९०।।
वरान्तैर्नान्तैः सथान्तैः क्रमात्के पादयोर्हृदि । आपोहिष्ठेति पच्छोपः प्रातर्मध्यन्दिने निशि ।।९१।।
सूर्यश्चापः पुनन्त्वग्निश्चेति प्राश्य ह्युपस्पृशेत् । सोङ्कारव्याहृत्योङ्कारयुग्देव्यप्सूक्ततो द्विजः ।।९२।।
मार्जयेत्प्रतिमंत्रं के ऋतं चेति तृचान्तरे । निःश्वास्याघनरं स्मृत्वा दक्षनासापुटेन तं ।।९३।।

वर्णी ब्रह्मचारी **अल्पा** कनिष्ठिका **अन्यो** गृहस्थो वनस्थश्च **पञ्चभि**रङ्गुलिभिः अङ्गुष्ठेन दक्षिणनासां धृत्वा **सव्यया** नासापुट्या **शनैः शक्तितो वायुमापूर्या**ङ्गुलीभिर्दक्षिणनासापुटं निरुध्य हनुं हृदि कृत्वा।।८५।। **प्रणव**युक्ताः सप्त**व्याहृतीः शिरसा सह गायत्रीं** च **त्रि**वारं **जपन्** कुम्भकं कुर्यात् जपोऽत्र मानसिकः, कृते च वाचिके कुम्भकासम्भवात् एवं **कुम्भितं** वायुं **मन्दं दक्षनाड्या विरेचयेत्** उड्याणबन्धपूर्वकं मन्दं त्यजेत् हठात्कृते रेचके बलहानिप्रसङ्गात्।।८६।। **अन्यो** द्वितीयः प्राणायामो यदा क्रियते तदाऽन्यया पूर्वगृहीतया इतरया नाड्या पूरकस्तदन्यया रेचकः यदुक्तं '*प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं बध्वा त्यजेद्वामया पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बध्वा त्यजेद्वामया। सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिना* ' इति। **अत्र** प्राणायामे पूरकरेचककुम्भकेषु त्रिष्वपि **मूलबन्धः सत्तमो**ऽतिशोभनः **जालंधरः कुम्भके हितः** शिराजालबन्धनात् '*बध्नाति हि शिराजालम-धोगामि नभोजलं। तेन जालंधराख्योऽयं बन्धोऽसौ योगसिद्धिद* ' इति। **उड्डियाणो रेचके** हितः तथा च भगवत्पूज्यपादाः ' *जालंधरोड्याणनमूलबन्धान् जल्पन्ति कण्ठोदरपायुमूले। बन्धत्रयेऽस्मिन्परिचीयमाने बन्धः कुतो दारुणकालपाशैः।।१।। उड्याणजालन्धरमूलबन्धैरुन्निद्रितायामुरगाङ्गनायां। प्रत्यङ्मुखत्वात्प्रविशन्सुषुम्णां गमागमौ मुञ्चति गन्धवाहः।।२।।* ' इति। निरुद्धे प्राणे *भूः* सर्वपदार्थोपेतो भूलोकः *ॐ* नाम ब्रह्मैवं सर्वत्र अत्र भूरादिष्वोङ्कारवाच्यब्रह्मदृष्टिः कर्तव्या '*ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्* ' इति न्यायात् ब्रह्मण उत्कर्षत्वात्तद्दृष्टिर्निकृष्टेषु भूरादिषु युक्ततरा **अघनिघ्नः** पापहरः **सर्वेषु कर्मस्वि**त्यनेन श्रौतस्मार्तकर्मारम्भे प्राणायामोऽवश्यं कार्यः तदन्त आचमनं श्रोत्रस्पर्शो वा।।८७।। **ग्रामा**पेक्षा **बहि**र्जलाशयादौ **द्विगुणं** सन्ध्याकर्म**फलं नद्या**दावेवमेवोह्यम्।।८८।। **बहिः सन्ध्या**वन्दनं कृतं चेत्।।८९।। **गोकर्णाकृतिताम्रादिपात्रे वामकरे** वा**ऽप आदाय मार्जयेदि**त्यन्वयः।।९०।। **वरान्तैः पादै**र्मूर्ध्नि **नान्तैः पादयोः सथान्तैर्हृदि आपोही**ति तृचस्य **पच्छ** इति पूर्वेणान्वयः।।९१।। **सूर्यश्चे**ति प्रातः **आपः पुनन्त्वि**ति मध्यन्दिने**ऽग्निश्चेति** निशि अपः **प्राश्योपस्पृशेत् सोङ्कारव्याहृति**गायत्र्या आपोहिष्ठेति नवर्ग्भिश्च।।९२।। **प्रतिमंत्रं** मूर्ध्नि **मार्जयेत् ऋतं चेति तृचा** स्वान्तरे चित्ते **निःश्वास्य** पापपुरुषं **स्मृत्वा दक्षिणनासापुटेन तं बहिर्निःसार्य**

बहिर्निःसार्य हस्तेऽप्सु पतितं नावलोकितम् । क्षिप्त्वा क्षितौ वामभाग आचम्याप्पूरिताञ्जलिः ।।९४।।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्याञ्जलिं व्यङ्गुष्ठतर्जनीम् । तिष्ठन्ध्यायन्संमुखोऽर्कं देव्यार्घ्यं त्रिर्निवेदयेत् ।।९५।।
असावादित्यो ब्रह्मेति ध्यात्वासिच्य प्रदक्षिणम् । परीत्याचामेन्मध्याह्ने नतोऽर्घ्ये हंस इत्यृचा ।।९६।।
जपेद्गृहाद्बहिर्द्विघ्नं त्रिघ्नं नद्यां शतं फलम् । गोष्ठे वनेऽग्निहोत्रे च हरहर्यग्रतोऽमिति ।।९७।।
काष्ठासनेऽकीर्त्यकर्णं दौरात्म्यं पल्लवेंऽशुके । दैन्यं रुग्ग्राव्ण्यथाऽऽरोग्यं भसिते कम्बले सुखम् ।।९८।।
विदैणेयेजिने द्वैपे मोक्षः प्रज्ञायुषी कुशे । व्याहृत्यास्मिन्सिद्धपद्म-स्वस्तिकाद्यासनात्सुखं ।।९९।।
उपविश्य क्षमां प्रार्थ्य भूतान्युत्सार्य भावयेत् । यथाङ्गमात्मन्यात्मानं देव्या तद्रूपमेकधीः ।।१००।।
आर्षदैवतछन्दांसि स्मरन्नक्षरपूर्वकान् । न्यासान्कृत्वाऽखिला मुद्राः प्रदर्श्य मनुदेवताम् ।।१०१।।
तां बालां बालादित्येति त्रिभिर्ध्यानैस्त्रिकालतः । ध्यात्वा चागच्छ वरद इति तिष्ठन्समाहितः ।।१०२।।

हस्तस्थोदके **पतितं** भावयित्वा।।९३।। **नावलोकितं** तं **क्षितौ वामभागे** प्रसह्य **क्षिप्त्वाऽऽचम्या**द्भिः **पूरिताञ्जलिः**।।९४।। मुक्ताङ्गुष्ठ**तर्जनी**कम**ञ्जलिं** स्वहृदयप्रदेशा**द्गोशृङ्गमात्रं** द्वादशाङ्गुलमात्रं यथा ऊर्ध्वं जलमुद्गच्छेत्तथोत्क्षिप्य **तिष्ठन्संमुखोऽर्कं ध्यायन्देव्या** गायत्र्या सव्याहृतिकया **त्रिरर्घ्यं** त्रिवारं निवेदयेत्।।९५।। **असावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं परीत्यासिच्य** जलमिति शेषः मंत्रार्थं **ध्यात्वा** ' *स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एक* ' इति श्रुत्युक्तं मंत्रहार्दं विचिन्त्या**चामेत् मध्याह्नेऽर्घ्य**दाने **नतः** प्रह्वः **हंसः** शुचिष**दित्यृचा**ऽर्घ्यं दद्यादिति शेषः फलं पूर्ववत्।।९६।। **अग्निहोत्रा**दिस्थाने **हरिहर**मूर्तिसमीपे चापरिमितफलं।।९७।। जपादौ **काष्ठासने** आस्यतेऽस्मिन्नित्यासनं तस्मिन्काष्ठासनेऽप**कीर्तिर्ऋणं** दुःखं च **पल्लवेंऽशुके** वस्त्रे च दुःस्वभावता।।९८।। **ऐणेये** चर्मणि ज्ञानं **द्वैपे** व्याघ्रचर्मणि **मोक्षः कुशा**सने **प्रज्ञायु**र्वृद्धिः अस्मिन्नधिकरणे **आसने सिद्धा**द्यन्यतमासनेन आस्यतेऽनेनेत्यासनं तेन **सुखं** यथा तथोपविश्येत्यग्रिमेणान्वेति तत्रोपवेशनं **व्याहृत्या** कार्यं समस्तव्याहृतिभिरिति भावः उपलक्षणमिदं आसनविधेः आसनानि तु ' *जानूर्वोन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे। समकायशिरोग्रीवः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते।।१।। पादाङ्गुष्ठौ निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु। ऊर्वोपरि विप्रेन्द्र कृत्वा पादतले उभे। पद्मासनं भवेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम्।।२।। मेण्ढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यं गुल्फं तथोपरि। गुल्फान्तरं च निक्षिप्य सिद्धासन-मिदं भवेत्* ' इति।।९९।। पृथ्वि त्वयेति भूमिं **प्रार्थ्या**पसर्पन्त्वपक्रामन्त्वित्याभ्यां **भूतान्युत्सार्य यथाङ्गं** हृदयादि **देव्या** द्योतनरूपया गायत्र्या**ऽऽत्मन्यात्मानं तद्रूपं भावयेत् एका** ध्यानमुख्या **धी**र्यस्य।।१००।। अत्र देवीपदेनात्मयाथात्म्यप्रकाशकत्वाद्गायत्र्या एव ब्रह्मज्ञानोपादानतयोपादनं किमर्थमिति चेच्छन्दसां प्राधान्यात्सोमाहरणादितरच्छन्दोक्षराह-रणेनेतरछन्दोव्याप्त्या च सर्वसवनव्यापकत्वाज्जपे गायत्र्या एव प्राधान्यं गायत्रीसारत्वाच्च ब्राह्मणस्य गुरुतरां गायत्रीं हित्वा ततोऽन्यद्गुरुतरं न विद्यतेऽतएव परिव्राड्व्यतिरिक्तै-र्द्विजैगायत्र्येव त्रिषु कालेषु जप्या **अक्षरपूर्वकान्** चतुर्विंशत्यक्षर**न्यासानखिला**श्चतुर्विंशति**मुद्राः** देवेभ्यो मुदो रातीति मुद्रा **मनुदेवतां** मन्त्रदेवतां।।१०१।। **बालां बालादित्य**मण्डलमध्यस्थामिति **त्रिभिर्ध्यानैस्त्रि**षु **काले**षु सार्वविभक्तिकस्तसिः **आगच्छ वरदे देवी**ति **ध्यात्वा** सावधान**स्तिष्ठन्**।।२।। **प्राङ्**मुखो गायत्री**मंत्रार्थमनुसंदधानः**

प्रागास्यो मन्त्रार्थमनु-सन्दधानो जपेच्छनैः । सोङ्कारव्याहृतिं देवीं छिन्नपादां स्त्रजांशुके ।।१०३।।

मत्रकारौ मनस्त्राणौ तद्योगान्मन्त्र उच्यते । जन्मविच्छेदपापघ्नौ जपकारौ तु तद्युजा ।।१०४।।

प्रोक्तो जपो हि यज्ञोऽयं सर्वयज्ञेषु तूत्तमः । वाचिकोऽसन्मानसः सन् रहस्यो मध्यमो जपः।।१०५।।

शाखारेखाशङ्खमणि-प्रवालस्फटिकैर्जपे । मुक्तापद्माक्षीस्वर्णाक्षैर् दशोत्तरगुणं फलम् ।।१०६।।

प्रोक्षिता स्त्रक् सती मेरु-लङ्घने स्त्रक्च्युतौ जपे । तन्द्र्यादौ च जपाच्छुद्धिर् देवीं नासाग्रदृग्जपेत्।।१०७।।

यतिर्जपेत्षडोङ्कारां सहस्त्रं चाष्टयुक्शतम् । अन्योऽष्टाविंशतिं पङ्क्तिं नार्थार्थं तां जपेद्द्विजः ।।१०८।।

मैत्रैः सौरैरुपस्थाय वारुणैश्च क्रमात्सदा । जातवेदसे तच्छंयोस् त्रिर्नमो ब्रह्मणे इति ।।१०९।।

प्रणम्य दिक्तत्पदेव-विप्रान्सन्ध्यां विसृज्य च । गुरुं निषण्णं प्रागास्यं संमुखोऽत्राभिवादयेत् ।।११०।।

कराभ्यां यथावामान्य-कर्णौ स्पृष्ट्वा पदौ गुरोः । व्यस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा शिरोऽङ्घ्र्योर्न्यसेत्तदभिवादनम्।।१११।।

शनैर्जपेद्गायत्रीमिति शेषः स च गायत्र्यर्थः संक्षेपतः प्रदर्श्यते ***तदि***ति परं ब्रह्मोच्यते '*ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृत* ' इति स्मृतेः। प्रसवतीति ***सविता*** तस्य सर्गस्थिति-प्रलयोपलक्षकसर्वप्रपञ्चोत्पादकत्वलक्षणाशेषद्वैतभ्रमाधिष्ठानज्ञापकस्य ***वरेण्यं*** सूक्ष्मबुद्धिग्राह्यं निरतिशयात्मकं स्वरूपं ***भर्गो***ऽविद्याकामकर्मादिदोषभर्जकं त्यक्ताशेषानर्थं ***देवस्य*** द्योत-नात्मकस्य स्वयंप्रकाशस्याखिलभासकस्य ' *न तत्र सूर्यो भाति* ' इति स्मृतेः ***धीमहि*** चिंतयामः ***यः*** प्रत्यगभिन्नः परमात्मा ***नः*** प्रत्यक्स्वरूपान् जापकान् ***धियः*** धिय एकत्वेऽपि वृत्ति-भेदाद्बहुवचनं ***प्रचोदयात्*** प्रेरयेदिति दशपदार्थः। एवं च सर्वसाक्षिकं सर्वद्वैतभ्रमाधिष्ठानं परमानन्दरूपं निरस्तसमस्तानर्थं स्वप्रकाशचिद्रूपं ब्रह्म चिन्त्यमिति समुच्चयार्थः। एवं च सति ब्रह्मणः स्वविवर्तजडप्रपञ्चस्य रज्जुसर्पन्यायेनाध्यारोपापवादाभ्यां सामान्याधिकरण्यरूपमेकत्वमुक्तं भवति। एवं मंत्रार्थमनुसंदधानो जपेत् ' *आवृत्तिरसकृदुपदेशात्* ' इति न्याया-द्यावत्साक्षात्कारं पुनःपुनरावर्तयेत् **स्त्रजा** मालयां**ऽशुके** वस्त्रे धृतया **छिन्नपाद**मित्यनेन प्रतिपादमवसानं कार्यं **ओङ्कारव्याहृत्या**सह गायत्र्या जपः।।३।। **म**कारो **मनस्त्रकारस्त्राण-स्तद्योगान्मंत्रः ज**कारो **जन्मविच्छेदः पकारः पापघ्नस्तद्यो**गाज्जपः।।४।। जपयज्ञः **सर्वयज्ञेषूत्तमो** भगवद्विभूतित्वात् ' *यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि* ' इति स्मृतेस्तदकरणेऽल्पसुखोऽपि नृलोकोऽलभ्यः किंपुनरन्ये '*नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्य* ' इति स्मृतेः। **वाचिको**ऽधमः **मानस** उत्तमः **रहस्यो**ऽन्यैरश्रुतो **मध्यमः**।।५।। **शाखाः** कराङ्गुल्यः **रेखा**स्तत्पर्वाणि शाखादिभिरक्षान्तैस्तन्मालाभिरिति यावत् **जपे** यथो**त्तरगुणं फलं** शाखाभिः संख्याने एकफलं रेखाभिर्दशगुणमेवमुत्तरोत्तरं।।६।। **स्त्रङ्**माला **प्रोक्षिता** संस्कृता चेत्**सती जपे स्त्रक्च्युतौ** मालापाते निद्रादौ प्राप्तायां गायत्री**जपाच्छुद्धिः देवीं** गायत्रीं।।७।। **यतिः** कुटीचको बहूदश्च **अन्यो** ब्रह्मचारी गृही वनी **चाष्टयुक्शतं जपेत्** । **अष्टाविंशति**वारं वाऽत्यशक्तश्चे**त्पङ्क्तिं** दशवारं **द्विजो नार्थार्थं जपेत्**।।८।। **मैत्रै**र्मित्रदेवताकैर्मित्रस्य चर्षणीधृत इत्येतैः प्रातः दिनस्य मित्रदैवत्यत्वात् **सौरै**रुदुत्यमित्यादिभिः सूर्यदेवत्यैः मध्याह्ने रात्रौ तु तत्वायामीति वरुणदेवताकैः रात्रेर्वरुणदैवत्यत्वात् **सदा** त्रिष्वपि कालेषु पुन**र्जातवेदसे तच्छंयो**रित्याभ्यामुपस्थाय **नमो ब्रह्मण** इति त्रिः परिदध्यात्।।९।। **दिशः** प्रागाद्या**स्तत्पा** इन्द्रादयः **विप्रा** ब्राह्मणाश्च तान्**प्रणम्य** उत्तमे शिखरे इति **संध्यां विसृज्य प्राङ्**मुखमुपविष्टं **गुरुं संमुख** उपविश्यात्र संध्यायामन्यदा वा**ऽभिवादयेत्**।।११०।। **तद्यथा**

हृद्दृग्वाक्पत्कोरुवक्षः-करैर्देवान्नमेद्वरान् । ज्ञानल्पानपि सद्विप्रान् पाणिभ्यान्नाशुचीन्नमेत् ।।११२।।
कर्मस्थाग्न्यादिहस्तान्तद्वत्स्वयं चाल्पकान्करात् । उद्वाहोर्ध्वं चरेत्सायं प्रातरौपासनं स्वयम् ।।११३।।
पत्नी वान्यतराग्रेऽन्यश् चेद्धमन्या प्रबोध्य तम् । प्रादुष्कृताग्निं ध्यात्वालङ्कृत्य संस्कृत्य हौम्यकम् ।।११४।।
ज्वालायां समिधं हुत्वा प्रातः सूर्याय चाग्नये । सायं तूष्णीं तूभयत्र द्वितीयां जुहुयात्ततः ।।११५।।
उपतिष्ठेत्स्वर्चिताग्निः सूर्याग्निमनुभिः क्रमात् । कायाभ्यां तूभयत्रात्र षष्टिधान्यमिताहुतिः ।।११६।।
पयोदध्याज्यनीवार-यवव्रीह्यादि हौम्यकम् । गृह्यं परिचरेच्छ्रौताग्नीन्वापि ज्ञाततद्वृषः ।।११७।।
नातीयाद्ब्राह्मणो यज्ञान् नित्यमासिकवार्षिकान् । नाहोतीयाद्विना दानं शक्त्या दद्यात् किमप्युत ।।११८।।
भगवन्तं हरिं विष्णुं संस्मरेत्सर्वदाऽसकृत् । संस्कृते साररे च्छन्ने स्वे गृहे निवसेद्गृही ।।११९।।

स्ववामदक्षिण**कराभ्यां** स्व**वाम**दक्षिण**कर्णौ स्पृष्ट्वा व्यस्ताभ्यां** कराभ्यां **गुरो**र्वामदक्षिणपादौ वामदक्षिणकराभ्यां **स्पृष्ट्वाऽङ्घ्र्योः** पादयोः **शिरो न्यसेत्तदभिवादनं** वदन्ति।।११।। **हृन्म**नः **दृग्**दृष्टिः **वाक्** वचनं **पदौ** पादौ **कं** शिरं **उरो** वक्षः **करौ** हस्तौ तै**र्देवान्नमेत् वरान्** श्रेष्ठान् वयसा**ऽल्पानपि ज्ञान्सतः** साधून् **विप्रां**श्च **पाणिभ्यां** नमेत् **अशुची**नशुद्धान्।।१२।। **कर्मस्थान् अग्नि**समिदादि**हस्तान्न नमेत् तद्वत्स्वयं चा**शुचि कर्मस्थोऽग्न्यादिहस्तश्च न नमेत् **अल्पका**न्छूद्रादीन्**करा**देकेन करेण *'मूर्खानां त्वेकपाणिना '* इति स्मरणात्तथाचारदर्शनाच्च। विवाहानन्तरं **स्वयं सायंप्रातरौपासनं चरेत्**।।१३।। अथ**वाऽन्यश्चेदन्यतराग्रे** दम्पत्योरेकतरस्याग्रतोऽन्यः पुत्रादिः *' पत्न्यपि वा पुत्राः कुमार्यन्तेवासी वा नित्यानुगृहीत '* इति गृह्योक्तेः वेणु**धमन्या** न मुखेनान्यथा **प्रादुष्कृताग्निं ध्यात्वा** वा प्रादुष्करणं नामाग्नेः प्रज्वलनं तच्च सूर्योदयात्प्रागस्तात्प्राक् च कार्यं कालात्यये व्याहृतिहोमः *' यद्वा तदाहुर्यस्याग्निमनुद्धृतमादित्योभ्युदियाद्वाभ्यस्तमियाद्वा का प्रायश्चित्तिः '* इति प्रश्नपूर्वकं *' हिरण्यं पुरस्कृत्य सायमुद्धरेज्ज्योतिर्वै हिरण्यमिति रजतमन्तर्धाय प्रातरुद्धरेदेतद्रात्रिरूपम् '* इति श्रुत्युक्तं प्रायश्चित्तं योज्यं परिसमूहनपरिस्तरणपर्युश्रणै**रलङ्कृत्य** होमद्रव्यं **संस्कृत्य**।।१४।। **ज्वालायां समिधं हुत्वा प्रातः** सूर्योदयादासंगवं सूर्यास्ताद्दशघटीपर्यन्तं प्रातर्दिवा **सूर्याय** रात्रा**वग्नये** चो**भयत्र तूष्णीं** प्रजापतय इति **द्वितीयां जुहुयात्** प्रातरित्युक्तेऽपि होमस्य सायमारम्भः।।१५।। परिस्तरणविसर्जनपूर्वकं परिसमूहनादिना **स्वर्चितः अग्नि**र्येन सः **सूर्य**मंत्रैर्दिवा रात्रौ तु **अग्नि**मंत्रैः **उभयत्र कायाभ्यां** हिरण्यगर्भः प्रजापत इत्याभ्यां चो**पतिष्ठेत् अत्र षष्टि**संख्या**मित**सतुष**धान्याहुतिः** तण्डुलानां तु शतसंख्याकप्रस्थस्य चतुःषष्ट्यंशमिता वा कालात्यये चतुर्गृहीताज्येन व्याहृतिहोमः संकटे समस्य होमः पक्षत्रयान्ते वा पक्षहोमः।।१६।। **पय आदि** होमद्रव्यं एवं **गृह्यं परिचरेच्छ्रौताग्नीं**श्च **ज्ञात**स्तयोर्धर्मं येन स *' विद्यां चाविद्यां च '* इति श्रुतेर्ज्ञानाभावे *' अन्धं तमः प्रविशन्ति '* इति श्रुत्याऽनिष्टप्रतिपादनात्।।१७।। **नित्यान्**पञ्च**यज्ञान्** *' महायज्ञाश्च नित्याः स्युः संध्यावच्चाग्निहोत्रवत् '* इति स्मृतेः मासिका दर्शादयः वार्षिका आग्रयणादयः *'यस्याग्निहोत्रम्'* इति श्रुतेः **किमपि** धान्यफलादिः।।१८।। **संस्मरेत्**कर्मवैगुण्यापहत्यै *' प्रमादात्कुर्वतां.. यस्य स्मृत्या.. '* स्मृतिभ्यः। वास्तुशांत्यादिना **संस्कृते साररे** सकपाटे भित्यादिभिश्**छन्ने** स्व**गृहे गृही** वसेत् *लक्ष्मीरपैति सततं परगेहवासा*दिति पूर्वमेवोक्तं *' अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनं। गृहं न प्रविशेद्धीमानापदामाकरो हि स '* इति।।१९।। पवित्राऽपि **भूमि**रेकवार**मुपलिप्ता चेत्पुनर्लेपेन शुद्ध्यति** तदुक्तं *' सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते। यत्र लेपो*

भूः पूताप्युपलिप्ता चेत् पुनर्लेपेन शुद्ध्यति । तन्नित्यं वास्तूपलिम्पेत् प्रेताद्योऽलिप्तकेऽस्ति हि ।।१२०।।

कांस्यांशुकेऽत्र गर्ह्ये गो-विशा नैर्ऋतितो गृहम् । उपलिप्य स्वलङ्कार्यं रङ्गवल्ल्यादिनान्वहम् ।।१२१।।

स्थाप्यं गव्यं तिलाश्चर्म मणिश्रीखण्डधेनवः । त्रिसन्ध्येऽर्च्योऽमरः प्रातर्विस्तराच्चन्दनादिना ।।१२२।।

मध्याह्ने निशिदीपैर्वा गोवज्जन्मान्यथा द्विज । गुर्वर्काग्न्यम्ब्वष्टधार्चा गोविप्रान्यतमार्चनम् ।।१२३।।

कुर्यात्तिष्येऽजसामीप्यं शालिग्रामे तमप्युत । गुर्वाज्ञया भक्तिमान्यं पूजयेत्स प्रसीदति ।।१२४।।

देवो भक्ततपोयोगाद्दृच्छत्यर्चनगौरवात् । बिम्बाभिरूप्यात्सामीप्यं भक्तिरेवात्र कारणम् ।।१२५।।

नाश्रद्धधानोऽधिकारी संशयात्मात्र नास्तिकः । येभ्यो मातेति पुंगन्धं निवार्यादाय चाखिलान् ।।१२६।।

संभारानुपविश्याग्रे देवस्याप्पूरितं घटम् । दक्षभागे निधायाब्जं प्रपूज्य प्रोक्ष्य तत्स्थलम् ।।१२७।।

स्वं संभारांश्च भूभूत-शुद्धिं कृत्वा यथायथम् । प्राणान्प्रतिष्ठाप्य चान्तर् बहिर्मातृकया न्यसेत् ।।१२८।।

तनौ देवेऽपि पूंसूक्त-मन्त्रैश्चापि यथाक्रमम् । कराङ्घ्र्यूरुकटीनाभि-हृद्ग्रीवादोर्मुखाक्षिके ।।१२९।।

एवं भूत्वा सुरोऽर्घ्यादि-पात्राण्यप्पूरितानि च ।संस्थाप्येशकलां हृत्स्थाम् आपादतलमस्तकम् ।।१३०।।

भवेत्तत्र पुनर्लेपेन शुद्ध्यति ' इति। **तत्तस्माद्वास्तु** वेश्मभूमिः।।२०।। **अत्रो**पलेपने **कांस्य**पात्रं वस्त्रं च **गर्ह्यं गो**मयेन **नैर्ऋति**मारभ्या**न्वहम**हन्यहनि।।२१।। **गव्यं** घृतादि **चर्म** ऐणेयं **मणिः** शालिग्रामः **धेनु**र्नवसूतिका गौः **त्रि**कालं देवः पूज्यः यद्वा **विस्तरात्प्रातः मध्याह्ने चंदनादि**पञ्चोपचारैः।।२२।। **निशि दीपै**रारार्तिकैः **अन्यथा जन्म गोव**त्पशुवत् **गुरु**राचार्यो**ऽर्कः** सूर्यो**ऽग्नि**रावसथ्यः श्रोतश्च **अम्बू**दकं तीर्थादि **अष्ट**विधा प्रतिमाऽभिमतदेवताप्रतिकृतिः **गौः** प्रसिद्धा **विप्रो** वेदज्ञः एषाम**न्यतम**स्या**र्चनं**।।२३।। **तिष्ये** कलौ **अजसामीप्यं** विष्णुसान्निध्यं **तमपि** पूजयेत्**स** देवः।।२४।। **देवो** हेतुत्रयात्सान्निध्य**मृच्छति** ततो**ऽप्यत्र भक्तिरेव कारणं**।।२५।। अतो**ऽत्र** देवपूजने**ऽश्रद्दधानः** संशयवान् नास्तीति मतिर्यस्य स **नास्तिको नाधिकारी** यदुक्तं ' *शोकाक्रान्तः कृपाविष्टः श्रद्धया रहितः पुमान्। गुरुदेवद्विजातीनां पूजनं न समाचरेत्* ' इति देवा मनुष्यगन्धेभ्योऽपयान्त्यतो ' *येभ्यो मातैवापित्र* ' इति द्वाभ्यां **निवार्या**र्भवाख्याने ' *तं तेभ्यो वै देवा अपैवाबीभत्संत मनुष्यगंधात्त एते धाय्ये अन्तरदधत येभ्यो मातैवापित्र* ' इति श्रूयमाणत्वात्।।२६।। **अब्जं** शंङ्खं।।२७।। **स्व**मात्मानं **भू**शुद्धिं **भूतशुद्धिं च** तत्रोक्तां **अन्त**र्मातृकाभि**र्बहिर्मातृका**भिश्च न्यासं कुर्यात् जातावेकवचनं।।२८।। पुरुष**सूक्तमंत्रैः तनौ** स्वशरीरे **देव**मूर्त्यां च ' *सहस्रशी..पुरुष..* ' आभ्यां **करौ** ' *एतावा.. त्रिपादू..* ' आभ्यां पादौ ' *तस्माद्वि.. यत्पुरुषे..* ' आभ्या**मूरु** ' *तं यज्ञं.. तस्माद्य..* ' आभ्यां **कट्यौ** ' *तस्माद्य..* ' **नाभिं** ' *तस्मादश्वा..* ' **हृद**यं ' *यत्पुरुषं..* ' कण्ठं ' *ब्राह्मणो.. चन्द्रमा..* ' बाहू ' *नाभ्या आ..* ' **मुखं** ' *सप्तास्या..* ' नेत्रे ' *यज्ञेन..* ' **कं** शिरं प्राण्यङ्गत्वाद्द्वन्द्वैकवद्भावः **न्यसेन्**न्यासं कुर्यात्।।२९।। ' *ज्ञेयोऽङ्गे वामतः क्रम* ' इत्युक्तमेव ' *देवो भूत्वा यजेद्देवम्* ' इति स्मरणा**देवं** न्यासादिना **सुरो भूत्वा** उदक**पूरितानि** पाद्या**र्घ्या**चमनस्नान**पात्राणि हृत्स्थां** जीवसंज्ञितामीश्वर**कलां** गुरूपदिष्टमूर्तित्वेना**पादतलमस्तकं**।।१३०।। **ध्यात्वाऽञ्जलि**स्थपुष्पगतां **विभाव्य** श्वासमार्गेणागतां भावयित्वा तत्पुष्पसमर्पणेना**र्चागतां** प्रतिमाविष्टां **प्रकल्प्य** ता**मर्चां** प्रतिमां

ध्यात्वाञ्जलौ सुमगतां विभाव्यार्चागतां ततः । प्रकल्प्यार्चां देवरूपां साक्षान्मत्वा ततोऽर्चयेत् ।।१३१।।

सम्पूज्य पीठद्वाराशा मन्त्रतन्त्रविधानतः । पुंमन्त्रैर्वाह्वानपीठ-पाद्यार्घ्याचमनाप्लवान् ।।१३२।।

वस्त्रे सूत्रे गन्धपुष्पे धूपदीपाशनादिकम् । नतिप्रदक्षिणापुष्पाञ्जलीन्भक्त्याऽर्पयेत्क्रमात् ।।१३३।।

(क्षेपकः)**यजेत्पौराणिकैर्मन्त्रैः स्त्रीः शूद्रश्च द्विजोदितैः ।**

संभवे सत्याप्लवादौ दद्यात्पञ्चामृतानि च । भूषाः सुभोगा गन्धोर्ध्वमशनेऽन्नं चतुर्विधम् ।।१३४।।

राजोपचारताम्बूल-दक्षिणारार्तिकैः फलैः । स्तोत्रैर्गीतैर्नृत्यवाद्यैस्तोषयेद् द्विजभोजनैः ।।१३५।।

घण्टानादं चरेदादौ स्नाने धूपप्रदीपयोः । दद्यादाचमनं स्नाने नैवेद्ये वस्त्रसूत्रयोः ।।१३६।।

जलं प्रत्युपचारं च शङ्खांब्वीशं विनाप्लुतौ । स्वारामारण्यक्रयाप्तं पुष्पं सन्मध्यमं त्वसत् ।।१३७।।

तद्वच्छ्वेतारक्तकृष्णं वर्ज्यं पर्युषितं सुमम् । सच्छिद्रं जन्तुयुक् शीर्णं कीटाद्यात्तं स्वयं च्युतम् ।।१३८।।

समलं वामहस्ताङ्घ्रि-स्पृष्टं क्षालितमम्बुनि । बकुलाब्जाशोकजाती-दूर्वाबिल्वं शमी कुशः ।।१३९।।

तुलसी करवीरं च मल्लिकाशोकमुत्तमम् । कोविदारार्कधत्तूर-शाल्मलीकुटजैर्हरिः ।।१४०।।

नार्च्यो गणेशस्तुलस्या दूर्वयार्येश्वरोऽसितैः । रक्तैः केतकनिम्बाद्यैर् बिल्वं श्वेतसुमं प्रियम् ।।१४१।।

दूर्वा गणेशस्य विष्णोस् तुलसीत्यादि सर्वशः । ज्ञात्वा पुष्पाणि देयानि श्रद्धया देवतुष्टये ।।१४२।।

हुत्वा पुंसूक्तेन दत्वा पुष्पाणि प्रार्थयेद्धरिः। मन्त्रं जपेद्यथाशक्ति भक्त्या तद्गतहृद्द्विजः ।।१४३।।

साक्षाद्देवरूपां मत्वा ततो यजेत्पूजयेत्।।३१।। **मंत्रतंत्रविधाने**न दक्षिणमार्गेण **पीठं द्वाराणि** दिशश्च **सम्पूज्य पुरुष**सूक्त**मंत्रैर्वा** *सहस्र०० आह्वानं* १ *पुरुष००* **पीठ**मासनं २ *एतावा००* **पाद्यं** ३ *त्रिपादू००* **अर्घ्यं** ४ *तस्माद्वि००* **आचमनम्** ५ *यत्पुरुष००* स्नानं ६।।३२।। *तं यज्ञं००* **वस्त्रे** ७ *तस्मा००* **सूत्रे** यज्ञोपवीते ८ *तस्मा००* **गंधं** ९ *तस्माद००* **पुष्पं** १० *यत्पु००* **धूपं** ११ *ब्राह्मणो००* **दीपं** १२ *चन्द्रमा००* **अशनादि**नैवेद्यं १३ *नाभ्या००* **नती**र्नमस्कारान् १४ *सप्ता००* **प्रदक्षिणा** १५ *यज्ञेन००* **पुष्पाञ्जलिं** १६ एवं **भक्त्या क्रमे**णा**र्पयेत्**।।३३।। (क्षेपकः) **स्त्रीः शूद्रश्च** भक्तिमान् **द्विजो**क्तैः **पौराणिकैर्मंत्रैः** न वैदिकैः।।३४।।३५।। **आदौ** पूजारम्भे।।३६।। **आप्लुता**वभिषेके शिवं **विना**ऽन्यत्र **शंखाम्बुं** दद्यात् **स्वो**द्यानलब्धं **पुष्प**मुत्तमं **आरण्यं मध्यमं क्रयाप्त**मधमम्।।३७।। **कीटादि**भक्षितम्।।३८।।३९।। **हरि**र्न पूज्यः।।१४०।। **तुलस्या गणेशो** न पूज्यः **आर्या** देवी **ईश्वरः** शिवः **असितैः** कृष्णैः **रक्तैः केतकनिम्बाद्यै**श्च न पूज्यः शिवस्य **बिल्वं श्वेत**पुष्पं **प्रियम्**।।४१।।४२।। नैवेद्यान्ते **पुरुषसूक्तेन** प्रत्यृचं चरुणा**ऽऽज्येन** वा **हुत्वा** तथैव प्रत्यृचं **पुष्पाणि**

द्विजदेवाङ्घ्र्यब्जतीर्थं पेयं धार्यं च मूर्धनि । चतुर्धाध्ययनं कुर्यात्स्ववृत्त्या पोष्यपोषणम् ।।१४४।।

स्ववृत्त्या जीवनाभावाद् गुर्वापद्यन्यवार्तया । जीवेतानिन्द्यया नैव हीनवृत्त्या कुटुम्ब्यपि ।।१४५।।

कृतसन्ध्यः कृतोपस्थो जानुस्थसकुशाञ्जलिः । सोङ्कारव्याहृतिं देवीं रोदसीदत्तदृग्जपेत् ।।१४६।।

तां पच्छोऽर्धर्चशः सर्वां वेदान्साङ्गान्स्वशक्तितः । तिष्ठन्नासीनो व्रजन्वानध्यायेऽल्पं जपेत्ततः ।।१४७।।

त्रिर्नमो ब्रह्मण इति तर्पयेत्साक्षताञ्जलिः । देवानृषीन् तिलैः पितॄन् स्वगृह्योक्तविधानतः ।।१४८।।

यज्ञादिवर्ज्यमाशौचे कर्म मानसिकं चरेत् । यमाग्निपितृभे नन्दा शुक्रार्काहे जनुर्दिने ।।१४९।।

माङ्गल्येऽब्दतदर्धार्धं विवाहव्रतचौलतः । तिलैर्नैमित्तिकमृते तर्पयेन्न गृहे तु न ।।१५०।।

भीष्मं माघसिताष्टम्यां दीपाल्यां तर्पयेद्यमम् । नित्यैर्नैमित्तिकैः श्राद्धैः सत्पुत्रः पुत्रतां व्रजेत् ।।१५१।।

त्रियज्ञाढ्यं वैश्वदेवं कुर्यात्सूनापनुत्तये । ध्याते कुण्डस्थापितेऽग्नौ दीप्तेऽन्नाद्याहुतीर्हुनेत् ।।१५२।।

दत्वा हरिं सूक्तैः स्तोत्रैर्वा **प्रार्थयेत् तद्गतहृत्त**देकचित्तः **भक्त्या यथाशक्ति** गुरूपदिष्टं **मंत्रं जपेत् द्विज** इत्यनेनायं त्रैवर्णिकविषयः शूद्रेण तु ब्राह्मणोदितैः पूजनमेव कार्यं नामसंकीर्तनस्मरणश्रवणेषु तस्याप्यधिकारः।।४३।। पूर्वं ब्राह्मणचरण**तीर्थं** पश्चा**द्देव**चरण**तीर्थं** च **पेयं मूर्धनि** मूर्ध्ना **धार्यं** अध्ययनाध्यापनतदर्थविचारप्रवचनरूपं **चतुर्धाध्ययनं**।।४४।। **स्व**वर्णभेदोक्तया **वृत्त्या पोष्या**णामग्निधेन्वतिथिपितृपुत्रभार्याणां **पोषणं** महा**पद्यनिन्द्यया** वृत्त्या **जीवेत कुटुम्ब्यपि हीनवृत्त्या न** जीवेत। ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहस्तदसंभवेऽध्यापनयाजनेऽथवाऽयाचितयायावरशिलोञ्छनानि *'कुसूलकुम्भिधान्यो वा त्र्याहिकः श्वस्तनोऽपि वा। कलौ द्विजो न हि भवेदश्ववृत्तिः कथंचन '* इति। *यायावर* प्रत्यहं धान्ययाच्ञा द्वादशाहपर्याप्तान्नं *कुसूलं* षड्दिनपर्याप्तं *कुम्भिधान्यं* एभिर्निर्वाहो न भवेच्चेत् क्षात्रवृत्त्या वैश्यवृत्त्या वा कुटुम्बभरणं उक्तं च *'वृद्धौ मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् '* इति। अन्यवृत्त्यादिविचारः स्मृत्यादाववगन्तव्यः।।४५।। **कृत**मध्याह्न**संध्या**वन्दनः **कृतोपस्थः** वामोरूपरि स्थापितदक्षिणपादः त**ज्जानुस्थित सकुशाञ्जलि**र्यस्य कैश्चित्सरसब्रह्मकरणार्थं सोदकाञ्जलिरुक्तः आश्वलायनस्तु *'दक्षिणोत्तरौ पाणी सन्धाय पवित्रवन्तौ विज्ञाय तेषां वा एष औषधीनां रसो यद्दर्भाः सरसमेव तद्ब्रह्म करोति '* इत्याह उत्सर्जनोपाकर्मणोस्तु *'उदपात्रे दर्भान्कृत्वा ब्रह्माञ्जलिकृतो जपेत् '* इति विशेषमाह **देवीं** गायत्रीं।।४६।। **पच्छोर्धर्चशः सर्वां वेदा**दींश्च **रोदसादत्तदृक्** द्यावापृथिव्योः संधिमीक्षमाणो जपेत्।।४७।।४८।। **कर्म** संध्यावंदनं **यमाग्निपितृभे** भरणीकृत्तिकामघासु **नन्दा** प्रतिपत्षष्ठ्यैकादश्यः **अर्को** रविवारः जन्मतिथ्यादिश्च।।४९।। विवाहे**ऽब्दं व्रते** उपनयने षण्मासं **चौले** त्रिमासं **तिलैर्न तर्पयेत्** अयं नियमस्त्रिपुरुषसपिण्डानामेव **नैमित्तिकं**विना **गृहे** तिलतर्पणं वर्ज्यं।।५०।। *'वैयाघ्रपादगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च। अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय तर्पणे '* इति भीष्मं *यमधर्मराजमृत्य्वन्तकवैवस्वतकालसर्वभूतक्षयौदुम्बरदध्ननीलपरमेष्ठिवृकोदरचित्रचित्रगुप्तेति* नामभि**र्यमं** *'जीवत्पिताऽपि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः '* इति **नित्यैः** *अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाष्टकान्वष्टकापूर्वेद्युरिति* षण्णवति**श्राद्धैः नैमित्तिकैः** गयातीर्थाद्यागमनिमित्तैः यदुक्तं *'जीवितो वाक्यकरणात्प्रत्यब्दं भूरिभोजनात्। गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता '* इति।।५१।। देवयज्ञभूतयज्ञपितृ**यज्ञाढ्यं** एषां लक्षणानि *'यदग्नौ जुहोति स देवयज्ञो यद्बलिं करोति स भूतयज्ञो यत्पितृभ्यो*

प्रातः सायं बलीन्दद्यात् पितृभ्योऽपि बहिर्बलिम् । भूताद्युद्देशतः क्षिप्त्वा काङ्क्षेदतिथिमागतम् ।।१५३।।
कमप्यभ्यर्च्य शक्त्यान्नं देयमीश्वरतुष्टये । साद्यान्ताम्ब्वन्नं यतौ तत् स्वल्पमप्यद्रिसिन्धुवत् ।।१५४।।
बलावनुद्धृते नाद्यान्नोद्धरेच्च स्वयं बलिम् । नित्यं श्राद्धं चरेद्वान्नं दद्यादद्याच्च पोष्ययुक् ।।१५५।।
मन्त्रवत्परिषिच्यार्द्र-हस्ताङ्घ्र्यास्योऽविदिङ्मुखः । दक्षभागे बलीन्दत्वाऽहं वैश्वानर इत्यमुम् ।।१५६।।
स्मृत्वापो मन्त्रवत्प्राश्य हुतप्राणाहुतीर्ग्रसेत् । धृतपात्रः प्राणमन्त्रैरजावद्भोजनं चरेत् ।।१५७।।
पात्रधारणमौने तु प्राणाहुत्यूर्ध्वमैच्छिके । तैजसे राजते हैमे ताम्रे जम्ब्वाम्रचम्पके ।।१५८।।
रम्भामधूककुटज-पनसोदुम्बरच्छदे । भोक्तव्यं मण्डलोर्ध्वस्थे विधवाव्रतिभिक्षुभिः ।।१५९।।
न तैजसेऽखिलैर्वल्ली-पलाशार्कवटादिषु । पीठस्थोऽप्यासनारूढः प्रसृतप्रोष्ठपान्न तु ।।१६०।।
नार्भैर्वध्वोद्वाहमृते नाद्यादुष्टैकपङ्क्तिगः । द्वार्भस्माग्र्यप्स्तम्भमार्गैर् भिन्द्यात्पङ्क्तिं तु संशये ।।१६१।।
नाद्यात्पाकाग्निदेवासद्गृहे सन्ध्यातिरात्रिषु । पीतशेषं ग्रासशेषं रात्रिपर्युषितं विना ।।१६२।।
तैलाज्यपक्वं शूद्रान्नमुदक्यादिविलोकितम् । केशकीटादियुक्पक्वं व्याद्युच्छिष्टं सदा त्यजेत् ।।१६३।।

ददाति स पितृयज्ञो यत्स्वाध्यायमधीते स ब्रह्मयज्ञो यन्मनुष्येभ्यो ददाति स मनुष्ययज्ञ ' इति ' *कण्डणी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी च मार्जनी। पञ्चसूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न विन्दति* ' इति तद्दोषपरिहारार्थमात्मसंस्कारार्थं च।।५२।। अस्य **प्रात**रादिक्रमः **अतिथिमाकांक्षेत्**।।५३।। आगतमतिथिं **कमप्य**ज्ञातनामगोत्रमपि प्रथमं उदकं ततो**ऽन्नं** पुनरुदकमिति **यतौ** यतये फलश्रवणं त्ववश्यं दानार्थं अदत्ते प्रत्यवायः स्मर्यते '*यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नमदत्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्* '।।५४।। **पोष्ययुक् अद्यात्**।।५५।। रात्रौ '*ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामि* ' दिवा '*सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि* ' इति **मंत्रवत्परिषिञ्च्यार्द्रहस्त**पादमुखः **विदिश्**याग्न्यादिकोणे **मुखं** यस्य तथा न भवतीति सः चित्रादिभ्यो यथोपदेशं **बलीन्दत्वाऽहं वैश्वानर इति** मंत्रार्थं '*वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्* ' इति न्यायसिद्धार्थमात्मान**ममुं** प्रत्यग्रूपम्।।५६।। **स्मृत्वा**ऽमृतोऽपस्तरणमसीत्य**पः प्राश्य** '*यद्वै प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपानोऽथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यान* ' इत्यादि तत्स्वरूपविचारपूर्वकं '*श्रद्धायां प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवोमाविशाप्रदाहय* ' इत्यादिपञ्चप्राणमन्त्रै**र्हुतप्राणाहुती**रदन्तलग्ना **ग्रसेत्** वामहस्तेन **धृतं पात्रं** येन सो**ऽजावच्छी**घ्रं **भोजनं** चतुर्विधान्नं **चरेद्**भक्षेत्।।५७।। **पात्रधारणमौन**योः **प्राणाहूत्यूर्ध्वं** विकल्पः।।५८।। **मण्डलोर्ध्वस्थे** चतुष्कोणमण्डलोपरि स्थापिते **विधवाव्रति**यतिभिः।।५९।। कांस्ये **न** भोक्तव्यं **अखिलैः** सर्वैरपि **वल्लीपलाशार्कवटादि**पत्रेषु न भोक्तव्यं **पीठस्थ आसनारूढपादो न प्रसृत**पादो **न प्रोष्ठ**पादो न।।६०।। **न** बालैः सहैकपात्रे विवाहं विना न भार्यया च **दुष्ट**संशये **पङ्क्ति द्वारा**भिर्भिन्द्यात्।।६१।।६२।। **तैलाज्यपक्वं विना**

कुसुम्भालाबुवृन्ताक-कोविदारवटादिकम् । कुस्थानोत्थान्नशाकादि-पलाण्डुलशुनाद्यसत् ।।१६४।।

सद्गोलुलायीदुग्धादि सदन्यासां तु गर्हितम् । कांस्येऽसन्नारिकेलेक्षु-रसो गव्यं च ताम्रके ।।१६५।।

गुडः सदध्यार्द्रकोऽसन् केवलं लवणं त्वसत् । श्वोदक्यापतिताद्यारश्रवणे तद्विलोकने ।।१६६।।

भुक्तौ परस्परस्पर्शे नाद्यात्पङ्क्तिस्थ उत्थिते । गुरून्विनोलूखलादेर् नाद्याद्यावद्ध्वनि द्विज ।।१६७।।

नष्टे दीपे न भोक्तव्यं न मूत्राद्युत्सृतौ भुजिः। लेह्याद्यसद्धस्तदत्तं नोच्छिष्टं भाजने न्यसेत् ।।१६८।।

ग्रसेदास्याविकारेण ग्रासानष्टौ यतिर्वनी । षोडश द्वात्रिंशदन्यो वर्णीष्टं मधुरं द्रवम् ।।१६९।।

प्राङ्मध्येऽम्लादिकठिनं तिक्ताद्यन्ते द्रवं ह्यपि । सर्वं सशेषमश्नीयात् पायसाज्याब्धिजैर्विना ।।१७०।।

नाद्याद्व्रताऽहेर्कपर्व-नक्तं भूताष्टमी दिवा । तलप्रसृतशाखाभिर् भुक्तं फूत्कारतोऽप्यसत् ।।१७१।।

त्यक्त्वोच्छिष्टं क्षितौ मन्त्रात् पीतापोशनशेषकम् । कौ सिक्त्वा रौरव इति मन्त्राच्छुद्धकरास्यपात् ।।१७२।।

हस्तोद्धृष्टाम्बु सिक्त्वाक्ष्णोर्जपेच्छर्यातिमित्यपि । आतापिं चेति ताम्बूलं सत्पञ्चत्र्यैकपूगयुक् ।।१७३।।

नयेत्पुराणमननात् ततो नक्तं कृतक्रियः । स्वपेद्यामोर्ध्वं द्वियामं विष्णवर्पितसमक्रियः ।।१७५।।

रात्रिपर्युषितं वर्ज्यं **उदक्या** रजस्वला **व्याद्युच्छिष्टं** पक्ष्याद्युच्छिष्टं।।६३।।६४।। सती सवत्सा चतुस्तनी **गौर्लुलायी** महिषी च **अन्यासां** खरोष्ट्राविकादीनां **कांस्य**पात्रे **नारिकेले-क्षुरसोऽसत् ताम्र**पात्रे **गव्यं** दुग्धादि असत्।।६५।। **दधि**युक्तं **आर्द्रक**युक्तश्च **गुडोऽसन् श्वा** प्रसिद्धः **उदक्या** ऋतुमती **पतितो** जातिभ्रष्ट **आदि**शब्दात्सप्तान्त्यजा म्लेच्छयवनो-डुम्बाः एषां शब्द**श्रवणे तद्विलोकने** जाते वा।।६६।। **गुरून्विना पङ्क्तिस्थ** एकस्मिन्नप्यु**त्थिते नाद्यात् उलूखल**कलहरघट्टादे**र्यावद्ध्वनि** ताव**न्नाद्यात्**।।६७।। भोजनसमये **मूत्राद्युत्स**र्गे जाते **न भुजि**र्भोजनं न कार्यं।।६८।। **वनी षोडशान्यो** गृहस्थो **द्वात्रिंशत् वर्णी** ब्रह्मचारी यथे**ष्टं मधुरं द्रवं** च।।६९।। **प्राक्**प्रथमं भोक्तव्यं **मध्येऽम्लादिकठिणं** च अन्त्ये **तिक्तादि**द्रव्यं च **अब्धिजं** लवणं।।७०।। कर**तलेन भुक्तं फूत्कार**शब्देन भुक्तं चा**सत्**।।७१।। *यजमानकुल* इति **मंत्रेणोच्छिष्टं क्षितौ त्यक्त्वा**ऽ*मृतापिधानसी*त्यनेन **पीत**स्या**पोशन**स्य किञ्चि**च्छेषं कौ** पृथिव्यां ***रौरवे*** *पूयनिलय* इति **सिक्त्वा** प्रक्षालितहस्तमुखपादः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिः।।७२।। *'शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ। भोजनान्ते स्मराम्येतान्यतश्चक्षुर्न हीयते। आतापिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं मयान्नं जरयत्वशेषं सुखं ममैतत्परिणामसंभवं यच्छन्त्वरोगं मम चास्तु देह '* इति। **पञ्च**भि**स्त्रिरेके**न वा **पूगे**न **युक्ताम्बूलं सच्छो**भनं, न समपूगयुक्तं दद्याद‌द्याच्चेत्यर्थः।।७३।। **सांगं** त्रयोदशपदार्थोपेतं पूर्वं ब्राह्मणाय **दद्यात्** ततः स्वयं **अद्यात् अद**स्ताम्बूलं **विधवा यति**श्च **नाद्यात्** नागवल्ली**पर्णं चूर्ण**मूला**ग्रशिरा**रहितं **सत्** दिनशेषं नयेदित्यग्रिमिणेन सम्बंधः।।७४।। **कृता** संध्यावंदनोपासनादि**क्रिया** येन मध्यम**यामद्वयं स्वपेत् विष्णवेऽर्पिताः समाः क्रियाः** येन सः *'यत्करोषि यदश्नासि... तत्कुरुष्व मदर्पणम्'* इति स्मृतेः।।७५।। **निट्** रात्रिः *'अगस्तिर्माधवश्चैव मुचकुन्दो महामुनिः। कपिले मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिन '* इति

सुमुहूर्तकृते तल्पे स्तुवन्निट्सुखशाय्यहीन् । त्रिसन्ध्ये न स्वपेद्भूत्यां धान्येऽह्न्यमरगोगृहे ।।१७६।।

न श्मशानाध्ववल्मीक-घोरदेश उदक्शिराः । नग्नो नोर्ध्वं देवगुर्वोः प्रवासे प्राक्पदः स्वपेत् ।।१७७।।

कार्या निशाद्ययामान्तं सङ्कटान्तरिता क्रिया । नैशा निशीथपर्यंतं प्रायश्चित्तं ततः परम् ।।१७८।।

कर्मवैगुण्यादिदोषे लोपादावपि सर्वशः । प्रायश्चित्तं चरेद्विद्वान् यथावन्नान्यथा शुचिः ।।१७९।।

स्वर्क्षे स्वजायामृतूर्ध्वं शुद्धामुपगमेद्रहः। प्राक्चतुर्निट्श्राद्धतत्प्राग् दिनाहोव्रतपर्वसु ।।१८०।।

जन्माहाद्यष्टमीभूत-मूलान्त्यपितृभेषु नो । कैश्चिदुक्तं दशाब्दोर्ध्वं वर्णी स्यादृतुगः सदा ।।१८१।।

द्वेषादिनोपगच्छेद्यो नर्तौ स भ्रूणहाप्यृतौ । यो विदेशं व्रजेद्वन्ध्यां कन्यापुत्रान्वितामृते ।।१८२।।

षोडशाहमृतुः कन्याऽसमेऽत्राह्नि समे सुतः । भवेन्निषेकसमये यादृक्चित्तविकल्पना ।।१८३।।

भ्रूणस्तद्वदतस्ताभ्यां सत्त्वं धार्यं हिताप्तये । पितृत्राता हि सत्पुत्रः प्रायोऽपुत्राः पतन्त्यधः ।।१८४।।

पितृतारक एकोऽपि सत्पुत्रोत्र ध्रुवादिवत् । किं कार्यं बहुभिर्दुष्टैर् धार्तराष्ट्रशतोपमैः ।।१८५।।

तारकोऽत्रैवमाचारः प्रोक्तः शाक्त्यादिसंमतः । विचाराचारमादाय कर्म कुर्वन्सुखी भव ।।१८६।।

उभयीसिद्धिभाजस्ते य आचारं चरन्त्यमुम् । स्वाचारहीना दण्ड्याः स्युर् ब्राह्मणास्तु विशेषतः ।।१८७।।

अहयः सर्पांस्तान्मन्त्रैः **स्तुवन् भूत्यां** भस्मनि **अह्नि** दिवसे देवालये गोष्ठे च।।७६।। **देवगुर्वोरूर्ध्व**मुच्चप्रदेशे।।७७।। **निशाद्ययाम**पर्यन्तं **क्रिया** दिवा विहिता कार्या **नैशा** रात्रि-विहिता तु **निशीथपर्यन्तं कार्या** सौरजपो ब्रह्मयज्ञश्च रात्रौ वर्ज्यः **ततः** सङ्कटादिना कर्मलोपे **प्रायश्चित्तं**।।७८।। **कर्मवैगुण्य**मङ्गवैकल्ये **यथावद्य**थोक्तं।।७९।। **स्वर्क्षे** शोभने नक्षत्रे **ऋतूर्ध्वं** ऋतुदर्शनाद्दिनचतुष्टयोर्ध्वं **स्वजाया**मित्यादिना परिसंख्या विधीयते पूर्वाश्चतस्रो निशः **श्राद्धत**त्पूर्व**दिने अहो** दिवा **व्रत**मेकादश्यादि**पर्व** दर्शादि।।१८०।। **जन्म**तिथ्यादौ **भूते** चतुर्दश्यां **मूल**रेवतीमघासु **न**। **दशाब्दोर्ध्वं** रजस्वलात्वमुक्तं अतस्तत्पूर्वं कन्योद्वाहः कार्यः **ऋतु**गामी **सदा** ब्रह्मचारी।।८१।। **नोपगच्छेत्** पत्नीमिति शेषः **ऋतौ विदेशं व्रजे-त्सोऽपि भ्रूणहा** नियमपक्षेऽपि रागिणस्तदतिक्रमे प्रत्यवाय एव न तु विरागिणः।।८२।। **स्त्रीणां षोडशाहमृतुरत्र**र्तौ **असमे** दिने **कन्या समे** दिने **पुत्रः निषेकसमये** मैथुनकाले **तद्वत्क**ल्पनानुरूपः **भ्रूणो**ऽर्भको **भवेत्**।।८३।। **अतो** हेतो**स्ताभ्यां** दम्पतीभ्यां **हिताप्तये** सत्पुत्रोत्पत्तये **सत्व**गुणविशिष्टं चित्तं **धार्यं अपुत्राः** पुत्रशून्या **अधो व्रजन्त्य**ज्ञा न तु ज्ञानिन इति ज्ञापनाय **प्राय** इत्युक्तं।।८४।। **धार्तराष्ट्रा** दुर्योधनादयः।।८५।। '*अनाचारस्तु मालिन्यमत्याचारस्तु मूर्खता। विचाराचारमादाय कर्म कुर्वन्सुखी भवेत्* ' इति स्मृतेर्विचार एव सुखदः।।८६।। **उभयी**मैहिकीमामुष्मिकीं च **सिद्धिं** भजन्ति **त** उभयीसिद्धिभाजः।।८७।। **इष्ट**मभीष्टं **साधु** धर्म्यं **सुखं भुक्त्वा** चित्तशुद्धिद्वारा **मोक्षं** प्राप **तिष्ये** कलौ

इति गुरुमुखलब्धं धर्ममेनं चरन्स । द्विज इह सुखमिष्टं साधु भुक्त्वाऽप मोक्षम्।
तत उदित इहासौ तिष्यलुप्तोऽपि धर्मो। विभुरपि लघुसिद्ध्यै भक्तियोगं ततान ।।१८८।।

।। इति श्रीगुरुचरिते कर्मयोगे कर्मकाण्डकथनं नाम पञ्चमोध्यायः ।।

।। आदितोऽष्टादशोऽध्यायः ।।

कालवशा**ल्लुप्तोऽपि** क्षिप्रं विज्ञानप्राप्तये **भक्ति**रूपमुपायं **ततान**। एवं क्रियाकारकफलादिरूपः प्रपञ्चो निष्प्रपञ्चात्मन्यध्यस्तस्यात्मनो याथात्म्यप्रदर्शनार्थमधिकारिभेदेन चित्तशुद्ध्यर्थमिदं कर्मकाण्डमुपन्यस्तमिति।।८८।।

इति श्रीगुरुचरिते टीकायामष्टादशाध्यायः ।।१८।।

।।श्रीगुरुदेव दत्त।।

।। एकोनविंशोऽध्यायः ।।

।। नामधारक उवाच ।।

कर्मयोगं ज्ञानयोग-सहायं चित्तशोधनम् । उक्त्वापि भगवान्कस्माद् भक्तियोगं जगौ वद ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

भक्तिरेवानुत्तमात्र सर्वसाधनकारिणी । कर्मज्ञस्याप्यभक्तस्य मोघं कर्मेत्यथाब्रवीत् ।।२।।

त्रिभिर्योगपथैरेव परस्परसहायकैः । ब्रह्माद्वन्द्वं समं शान्तं गम्यते नैकयोगतः ।।३।।

श्रद्धालुः सात्त्विको भक्तो नितरां भगवत्प्रियः । सकार्ममपि तद्भिन्नं शश्वत्क्षिपति दुर्भवे ।।४।।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मण्यपि कर्म यः । स लोके भक्तिमान्धीमान् मुच्यते कर्मबन्धनात् ।।५।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथैकोनविंशोऽध्यायः।। *एवं पञ्चभिरध्यायैः प्रोक्ता नित्यक्रिया यया। पवित्रत्वं योग्यता च नान्यथेह द्विजन्मनः।।१।। श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहीति श्रुतेरियं। शुद्धान्तःकरणानां च ध्यानार्थं भक्तिरुच्यते।।२।। ऊनविंशेऽन्नपूर्तिश्च वन्ध्यायाः पुत्रसम्भवः। कथ्यते शुष्ककाष्ठस्य विस्तारश्च द्विजोद्धृतिः।।३।।* पूर्वकाण्डे *सारं सद्गतिदं वक्ष्ये सुखदस्तूभयत्र सः। उभयीसिद्धिभाजस्ते य आचारं चरन्त्यमु*मित्यादिभिर्मोक्षमुक्त्वापि किमर्थं भक्तियोगं ततानेति पृच्छति **कर्मयोग**मिति।।१।। उत्तरमाह **भक्ति**रिति प्रथममसंगतया भगवदुद्देशेन स्वाश्रमोचितकर्मानुष्ठानं ततो महत्सेवा ततस्तत्कृपा ततस्तद्धर्मश्रद्धा ततो भगवत्कथाश्रवणं ततो भगवति रतिस्तया च देहद्वयविवेकज्ञानं ततो दृढा भक्तिस्ततो भगवत्त-त्त्वज्ञानं ततस्तत्कृपया सर्वज्ञत्वादिभगवद्गुणाविर्भावः इति क्रमोऽस्त्यतो **भक्तिरेवानुत्तमा** प्रधानेति पाठः **सर्वसाधनकारिणी** च कर्मापि तथाविधमिति चेन्न तस्य प्राथम्यात्। तदपि तत्त्वज्ञेना**प्यभक्ते**नानुष्ठितं चे**न्मोघं** निरर्थकमेवेति '*अन्धं तमः प्रविशन्ति* ' इति श्रुतेः तर्हि '*कर्मणा पितृलोक* ' इति श्रुतेरभक्तेनानुष्ठितं कर्म तत्त्वज्ञेन वाऽनुष्ठितं कथं मोघं कर्मेति चेन्मोघशब्देन परमपुरुषार्थालाभरूपनिरर्थकता प्रतिपादिता पितृलोकादिफलस्य नश्वरत्वात् '*तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत* ' इत्यादिन्यायोपबृंहितश्रुत्याऽनित्यत्वप्रतिपादनाद्भगवत्प्र-सादलब्धस्य ज्ञानफलस्य नित्यत्वप्रतिपादनाच्च '*नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय* '। ' *पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया* ' । ' *भजतां प्रीतिपूर्वकं ददामि बुद्धियोगं तं* ' ' *भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत* ' इत्यादिप्रामाण्याद्भक्त्यैकगम्यो मोक्ष इति हेतोरथ चित्तशुद्धिप्रधानभूतकर्मकाण्डकथनान्तरं ज्ञानप्रदभक्तियोगं श्रीगुरु**रब्रवीत्**।।२।। अतः **परस्परसहायकैस्त्रिभिर्योगपथै**रात्मप्राप्त्युपायभूतमार्गै**र्ब्रह्म गम्यते नैकयोगतः** समीचीनेन कर्मयोगेन तु चित्तशुद्धिरेव तथैवागमवदाचार्यप्रसादादपरोक्षं यद्यप्यात्मनो ज्ञानमुत्पद्यते तथाप्यसंभावनाविपरीतभावनातिरस्कृतत्वान्मलिनचित्तेषु परोक्षमिव भवतीति नापरोक्षसंस्कारभ्रमनिवृत्तिसमर्थं भगवत्परिचर्यया तु सम्यगमलचित्तानां तत्प्रसादलब्धापरोक्षज्ञानानां अयत्नत एव करकलितो मोक्षः '*यमेवैषां वृणुते तेन लभ्य* ' इति '*यस्य देवे परा भक्तिः* ' इत्यादिश्रुतिभ्यः।।३।। अन्यच्च **श्रद्धालु**रिति '*मय्यावेश्य मनो ये माम्* ' इत्यादिस्मृते**र्भगवतो भक्तो नितरां प्रियः सकार्मं** कर्मशूरं भक्तिविधुरं पुनः पुनर्दुःखात्मके जन्ममरणलक्षणे **भवे क्षिपति** '*अविद्यायामन्तरे..* ' ' *तानहं द्विषत* ' इत्यादिवचना-त्।।४।। **कर्मण्य**नापन्नविकारतयाऽयस्कान्तवत्स्वसामीप्याद्बुद्धीन्द्रियचालक आत्मन्य**कर्म** इन्द्रियजन्यक्रियाऽसंबन्धं **पश्येत् अकर्मणि** जडे धीन्द्रियादौ **कर्म** बोद्धव्यश्रोतव्यादि **यः** पश्येत्**स भक्तिमान**स्मिन्**लोके धीमान**ुच्यते स एव **कर्मबन्धान्मुच्यते**।।५।। **तस्य** श्रीगुरो**र्भक्तियोग**प्रचुरं **यस्य** चेष्टितस्य **श्रवणात्पूता**ऽतएव **तस्मिन्**भगवति विषये **दृढा भक्तिर्भ-**

भक्तियोगमयं तस्य भक्तिगम्यस्य चेष्टितम् । शृणु तस्मिन्दृढा भक्तिः पूता यच्छ्रवणाद्भवेत् ।।६।।
भिक्षां सशिष्यगुरव एकैकः प्रत्यहं ददौ । भास्कराख्यो द्विजो दीन आययौ तत्र भक्तिमान् ।।७।।
आदाय गुरवे भिक्षां दातुकामो गुरुप्रियः । स त्रिपुंभुक्तिपर्याप्तं तण्डुलादिकमाप तम् ।।८।।
तद्दिने केनचिद्दत्ता भिक्षा श्रीगुरवे वरा । शिष्यभक्तयुजे तत्र सोऽपि भोक्तुं ययौ द्विजः ।।९।।
सायमेत्य मठे भिक्षा-द्रव्यमादाय स द्विजः । सुष्वापैवं त्रिमासं स तत्र तस्थौ सुभाविकः ।।१०।।
तं तत्रोपहसन्ति स्म प्राप्य स्वल्पान्नतो गुरुम् । भिक्षां दातुं प्राज्यशिष्यं पुष्णाति स्वमितीतरे ।।११।।
तज्ज्ञात्वा तं प्रभुः प्राह भक्तियोगविधित्सया । द्राङ्मे सशिष्यभक्ताय भिक्षां देह्यद्य भाविक ।।१२।।
तच्छ्रुत्वा हृषितः शाक-सितादुग्धघृतादिकम् । स आनीय स्वयं पाकं कर्तुमारेभ उत्तमम् ।।१३।।
दातुं तदान्यमप्युत्कं भिक्षां देहि श्व इत्यजः । तं निवार्याह्वयाशेषान्भोक्तुमित्याह भास्करम् ।।१४।।

वेत् भक्तिर्नामेश्वरानुरक्तिः। भज्यते जीवेश्वरावस्यां भजेर्भावे क्तिनि भजनं भक्तिः, भजेर्वाऽधिकारे क्तिनि भजनाय विभज्येते जीवेश्वरावस्याम्, भजेः करणे क्तिनि वा भज्यन्ते कामकर्मादिदोषा यया सेति।।६।। **शिष्यैः स**हिताय **गुरवे** गन्धर्वग्रामस्थ **एकैको** विप्रः **प्रत्यहं** क्रमेण **भिक्षां ददौ** एकदा **तत्र भास्कराख्यो** भक्त **आययौ**।।७।। **गुरवे भिक्षां दातुं कामो** यस्य स पुरुषत्रयभोजन**पर्याप्तं तण्डुलादिक**मादाय **तं** गुरुं प्राप।।८।। **वरा** षड्रसान्ना **शिष्याश्**च **भक्ताश्**च तै**र्युज्य**त इति तत्सहितायेत्यर्थः **सोऽपि** भास्करोऽपि **तत्र भोक्तुं ययौ**।।९।। भुक्त्वा च **सायमा**गत्य **स द्विज** आनीतं **भिक्षाद्रव्यमादाय मठे सुष्वाप एव**ममुना प्रकारेण प्रत्यहं गुरुपङ्क्त्यां भुक्त्वा **मास**त्रयपर्यन्तं **तत्र तस्थौ सु**तरां **भाविकः** एतेन तस्य स्थितिर्गुरुभक्तिवशादेव न केवलं भोजनार्थम्।।१०।। **तं** तादृशं दृष्ट्वे**तरे उपहसन्ति स्म** उपहासमाह **स्वल्पान्नतः प्राज्याः** प्रभूताः **शिष्या** यस्य तं **गुरुं भिक्षां दातुं प्राप्य स्व**मात्मानं **पुष्णाती**त्यहो भक्तिरस्येति।।११।। **तत्**सोपहासवचनं **ज्ञात्वा प्रभुर्भक्तियोगविधित्सया तं** भास्करं **प्राह शिष्यभक्तस**हिताय मह्यं **द्राक्** शीघ्र**मद्य भिक्षां देहि**।।१२।। **सिता** शर्करा **उत्तमं** सुस्वादु।।१३।। **तदा** भिक्षां दातु**मुत्कमन्यं** विप्रं कञ्चन तत्रत्यं **श्वो** व्यवहितैष्यदिवसे त्वं **भिक्षां देहीति तं निवार्य भास्कर**माहूया**द्याशेषा**ञ्छिष्यान् भक्तानन्यानपि ग्रामस्था**न्भोक्तुमाह्वयेति भास्करं प्रत्याह**। ननु प्राग्भिक्षानिमन्त्रणमागतं चेत्तर्ह्यपरनिमन्त्रणप्रत्याख्यानं युक्तं, श्वो भिक्षां देहीति कथं भाषितं नेदं यतः प्रशस्यतरमित्यत आह श्वो भिक्षां देही**त्यज** आह अत्राजशब्देन जन्मादिविक्रियाशून्यस्य धर्मरक्षार्थं स्वेच्छया परिगृहीतस्वाधीनसंभवविग्रहस्य भक्तवात्सल्यार्थं तन्मतानुवर्तिनो भगवतः क्वचिद्विध्यतिक्रमोऽप्यकिञ्चित्करः पूर्णकामत्वात्। ज्ञानिनोऽपि विधिनिषेधातिक्रमे न ज्ञानभङ्गः '*एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान्* ' इति श्रुतेः। तर्हि शिष्या अपि तथा वर्तेयुरिति चेन्न तेषामादेशातिक्रमदोषः प्रभवेत् आदेशस्तु '*यान्यस्माकँ सुचरितव्यानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि* ' इति। ननु यत्पूर्वैः कृतं तत्करणीयं यथा च जामदग्न्यरामः स्वजननीं जघान, शुनःशेपो जनकं तत्याज, याज्ञवल्क्यस्त्वाचार्यं, गौतम इन्द्रमतिथिं, ब्रह्मा स्वसुतां जगाम, इन्द्रस्त्रिशीर्षाणं ब्राह्मणं जघान, क्षत्रियो बलदेवः सुरां पपौ, पौराणिकं वा जघान, सोमो गुरुभार्यां जहारेत्यादि महतामाचारानुसारादहमप्यनुतिष्ठामीत्यत आह श्रुतिः *यानि* प्रसिद्धान्यनवद्यान्यदुष्टानि महात्माचरितानि

तच्छ्रुत्वाप्याह्वयत्तान्स त ऊचुर्लज्जसे न किम् । पक्तान्नकणतुल्यान्नः किमाहूय करिष्यसि ।।१५।।
तच्छ्रुत्वैत्य गुरुं तत्स शशंस भगवांस्तदा । आनयित्वात्र भोक्तव्यं सर्वैरित्याह तान्गुरुः ।।१६।।
शङ्किता अपि तद्वाक्यात् तूष्णीं स्थित्वा बहूनि ते । निर्माय भुक्तिपात्राणि सर्वे स्नात्वाययुः पुनः ।।१७।।
शाट्येशस्याज्ञयाच्छाद्य सिद्धान्नं तीर्थमन्त्रितम् । सहान्यैः षड्विधं सोऽदाद् गुरवे ब्राह्मणैः सह ।।१८।।
भक्ताञ्छिष्यान्स तत्रत्यां-स्त्र्यपत्येष्टयुजो द्विजान् । गुरुं चेष्टं सुखं भोक्तुं प्रार्थयामास सादरम् ।।१९।।
परमान्नान्नपौल्याज्य-सूपशाकादिषड्रसैः । षोढान्नममितं नीतं त्रिपुंपर्याप्तपाकतः ।।२०।।
नीत्वा नीत्वापि भोक्तृभ्यो दत्तं तत्र तु पूर्ववत् । नाप्यल्पं दातृभिस्तष्टं चेष्टा भगवतस्त्वियम् ।।२१।।
भुक्तं सशेषमाकण्ठं तृप्ताः स्मोऽलमिति द्विजाः । उक्त्वोत्तस्थुः सहाजेन ततो गुर्वाज्ञयाङ्घ्रिजान् ।।२२।।
हीनांश्चाहूय तेभ्योऽदात्कामं नान्नं व्यहीयत । पशुपक्षिमृगादिभ्यः प्रकामं स उपानयत् ।।२३।।
न शिष्टास्तत्र केपीति श्रुत्वा भुक्त्वा तदाज्ञया । यादोभ्योऽदात्स शेषान्नं तदा निःशेषतां ययौ ।।२४।।
माधुर्यं सुरसान्नस्य दुर्लभं ह्यमृतान्धसाम् । स्वप्नेऽपि न श्रुतं रुच्यं तृप्तिरेषाप्यलौकिकी ।।२५।।

शास्त्रे लोके वा निन्दारहितानि कर्माणि लौकिकानि वैदिकानि कर्तव्यानि तान्युक्तान्यनिन्दितानि महतामपि यथा जामदग्न्यराम पितृवचनं दुष्करमपि चकार, शुनःशेपो विश्वामित्रस्योपकारं न विसस्मार, याज्ञवल्क्यस्तपसादित्यमवाप्य शुक्लानि यजूँषि प्रतिपेदे, गौतमः स्वभार्याजारायापीन्द्राय प्राणनाशपर्यन्तं कोपं न चकार, ब्रह्मा पुत्रोत्पत्त्यर्थं महान्तमुद्यमं चकार, बलदेवश्च शेषोऽपि देवब्राह्मणकार्यार्थं शुक्रशोणितमयशरीरमपि स्वीचकार, सोमो गुरोर्गरीयसीं कीर्तिं चकार, इन्द्रस्त्रिलोकीस्वास्त्यार्थं निन्दितामपि ब्रह्महत्यां स्वीचकारेति *सेवितव्यानि नो इतराणी*ति श्रुत्यभिप्रायः। एतेन राजपरिष्कारधारणशिबिकारोहणादीन्यपि भगवता सेवितानि तेजीयस्त्वान्न निन्दितानि इतरैरनुष्ठितानि चेत्पातायैवेति दिक्।।१४।। **स** भास्कर**स्तान्छिष्या**दीन् **आह्वयत्ते** त**मूचुः पक्तान्नकण**सङ्ख्यामितानस्मा**नाहूय किं करिष्यसि लज्जसे न किम्**।।१५।। **स** भास्कर**स्तद्व**चनं **श्रुत्वा गुरु**मागत्य तस्मै **तत्** उक्तं **शशंस भगवांस्**तु **तदा तानानयित्वा सर्वै**रद्यात्र **भोक्तव्यमिति** तान्प्रत्याह।।१६।। **तद्वाक्याद्वि**श्वासभूताद्गुरुवाक्या**त्तूष्णीं स्थित्वा आययु**रिति पदच्छेदः।।१७।। **ईशस्य** गुरो**राज्ञया** त**च्छाट्या**ऽन्न**माच्छाद्य** त**त्तीर्थमंत्रितं षड्विधं सिद्धान्नं अन्यैः सह स** भास्करः **ब्राह्मणैः सह गुरवेऽदात्**।।१८।। **स्त्रियोऽपत्यानीष्टा**श्च तत्सहितान् **द्विजान् इष्ट**मन्नं **सुखं** यथा तथा **भोक्तुं**।।१९।। **परमान्नं** पायसः **षोढान्नं** षड्विधान्नं नवमाध्याये चतुर्विधं प्रोक्तं '*चर्व्यं चिपिटधान्यादि पीयते पानकं पय* ' इति द्विविधं तत्सहितं षोढान्नं **त्रि**पुरुषभोग्यपाकतः।।२०।। **न तष्टं** न तनूकृतं तनूकरणे तक्षः **भगवच्छ**ब्देनाष्टविधैश्वर्यवत्त्वं सूचितम्।।२१।। **सशेषं** पात्रे त्यक्तं **अङ्घ्रिजा**न्छूद्रान्।।२२।। **हीना**न्रजकादीन् **कामं** यथेप्सितं **व्यहीयत** हीनं न बभूव *हीनं* न्यूनं **उपानयत्स**मर्पयत्।।२३।। **स** भास्करः **तदाज्ञया** गुर्वाज्ञया।।२४।। **अमृतान्धसां** देवानां **रुच्यं** स्वादु।।२५।। **प्राग्द्वा**पारे पाण्डवानां

प्राक्पार्थसङ्कटेऽरण्ये निशीथेऽदात्स्वमायया । ऋषिभ्योऽन्नं हरिरिति श्रुतं दृष्टं त्वदोऽत्र तु ।।२६।।

नृणां चतुःसहस्राणि भुक्तानि स्वल्पपाकतः । जीवा अगणिता भुक्ता मायाऽतर्क्येयमीशितुः ।।२७।।

भास्करोऽयं प्रियो भक्तो यत्प्रसादोऽस्य नान्यके । त्रिमासं सर्वदा तेन पादसंवाहनादिभिः ।।२८।।

श्रद्धाभक्त्यैव भगवान् सेवितस्तत्फलं त्विदम् । इत्युक्त्वान्ये नराः प्रेम्णा तुष्टुवुः श्रीगुरुं परम् ।।२९।।

दत्वा प्रभुर्भास्करमीप्सितं वरं प्रस्थापयामास गृहाय स द्विजः।
ईशप्रसादात्सकलार्थयुग्ययौ सायुज्यमन्ते दृढभक्तियोगतः ।।३०।।

शृण्वन्यदप्यद्भुतमीशचेष्टितं गङ्गाह्वया तत्र तु षष्टिवत्सरा।
साध्वी वशानर्च परमेशमन्वहं भक्त्यैकदोचे स तु तां किमिच्छसि ।।३१।।

सङ्कटे आगते द्वैतवने **निशीथे स्वमायया ऋषिभ्योऽन्नं** कृष्णोऽदादिति **श्रुतं अत्र तु अदः** प्रत्यक्षं **दृष्टं**। एवं हि भारते कथा - कदाचिद्दुर्वाससो दुर्योधनेनातिथ्यं कृतं तेन च परितुष्टेन वरं वृणीष्वेत्युक्ते कपटद्यूतापहृतराज्या वनस्थाः सपत्नाः पाण्डवाः दुर्वाससः शापान्नश्येयुरिति मनसि निधाय दुर्योधनेनोक्तं युधिष्ठिरोऽस्मत्कुले मुख्योऽतस्तस्यापि भवतैव-मेव शिष्यायुतसहितेनातिथिना भवितव्यं किन्तु द्रौपदी यथा क्षुधा न सीदेत्तथा तस्यां भुक्तवत्यां तद्गृहं गन्तव्यमिति। ततश्च तथैव दुर्वाससि प्राप्ते परमादरेण युधिष्ठिरेणाह्निकं कृत्वाऽऽगम्यतामिति विज्ञापिते मुनिसङ्घोऽघमर्षणाय जले निममज्ज तत्र चिन्तातुरया द्रौपद्या स्मृतमात्रः श्रीकृष्णस्तत्क्षणमेव भक्तवात्सल्यतया चागतस्तया चावेदिते वृत्तान्ते भगव-तोक्तं द्रौपदि अहं बुभुक्षितोऽस्मि प्रथमं मां भोजयेति तया चातिलज्जयोक्तं स्वामिन्मद्भोजनपर्यन्तमक्षय्यमप्यन्नं सूर्यदत्तस्थाल्यां मया च सर्वान्सम्भोज्य भुक्तं, अतो नास्त्यन्नमिति। तथाप्यतिनिर्बन्धेन स्थालीमानाय्य तत्कण्ठलग्नं किञ्चिच्छाकान्नं प्राश्योक्तमनेन विश्वात्मा भगवान्प्रीयतामिति अथ भोक्तुं मुनिसङ्घमाह्वयेति स च तावतातितृप्त इति।।२६।। **नृणां चतुःसहस्र**मिति पाठः। सु**स्वल्पपाकतः जीवा अगणिता भुक्ताः अतर्क्या** तर्कागोचरा *'अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्* ' इति श्रुतेः।।२७।। **यद्यस्मादस्य** भगवतः श्रीगुरोरीदृशः **प्रसादोऽन्यके** पामरे न **तेन** भास्करेण **सर्वदा पादसंवाहनादिभिः** एतेन दास्यभक्तिरुक्ता।।२८।। **श्रद्धाभक्त्यैवे**त्यवधारणेन सेवासाफल्याय तदेव मुख्यसाधनमुक्तं **तु** शब्देनान्यद-गोचरमपि मोक्षरूपं फलं सूचितं।।२९।। **प्रस्थापयामास** गमयामास **स सकलार्थयुक्** भुक्तैहिकभोगः **अन्ते** देहान्ते यद्वा भगवत्प्रसादाप्तज्ञानतः सदद्वैतानृतद्वैतयोरन्योन्यैक्यवीक्षणल-क्षणसंसारभ्रमान्ते **दृढभक्तियोगतः सायुज्यं ययौ** तस्येति शेषः आत्यन्तिकमोक्षं गतः। ननु यदीश्वरोऽयमवतीर्णस्तथापि सविशेष एव साकारत्वात् कथमस्य दृढभक्त्याऽऽत्यन्तिक-मोक्ष इति चेत् *'निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः। ये मंदास्तेऽनुकंप्यन्ते सविशेषनिरूपणैः १ वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात्। तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनम् २* ' इति। बृहि बृह वृद्धावित्यस्माद्धातोर्निष्पन्नो ब्रह्मशब्दो वृद्धं वस्त्वभिधत्ते वृद्धिश्चात्र निरतिशया विवक्षिता संकोचकयोः प्रकरणोपपदयोरभावात् यदा त्वापेक्षिकं वस्तु प्रकृतं भवेदुप-पदं वा किञ्चिद्वाचकं प्रत्युज्येत् तदा संकोचो भवेत् न त्वेतदुभयमप्यत्रास्ति निरतिशयवृद्धिर्नित्यशुद्धादिरूपा तथा च पूर्वाचार्याः *'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वज्ञं सर्वशक्ति ब्रह्म ब्रह्म-शब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य नित्यशुद्धत्वादयोऽर्थाः प्रतीयन्ते बृहतेर्धातोरर्थानुगमात्* ' इति तदेव ब्रह्मामुना स्वेच्छारूपेणावतीर्णमित्यष्टमाध्याये स्फुटतरमुक्तमत उक्तं **सायुज्यं** सायुज्यं नामात्यन्तिको मोक्ष इति स च भगवत्प्रसादलभ्य एवेति पुनः पुनरुक्तम्।।३०।।**अद्भुतमीशचेष्टितं शृण्वि**त्यनेनास्य श्रवणमपि दुर्लभं *'आश्चर्यो वक्ता* ' इति श्रुतेः।।३१।। **स्वस्थाः**

।। गङ्गोवाच ।।

लोकोऽपुत्रस्य न स्वस्था लुप्तपिण्डोदकक्रियाः । पितरोऽधः पतन्तीति श्रुत्वा स्वामिन् बिभेम्यहम्।।३२।।

भवेऽग्रे सुपुत्राप्त्या गतिर्भूयादितीच्छया । सर्वेश तेऽर्चनं कुर्वे पाहि मां करुणानिधे ।।३३।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

कमावर्तेन मायाब्धौ क्व भ्रमिष्यसि वेत्सि किम् । क्वेयं तत्र स्मृतिस्तेऽत्र पुत्रौ गङ्गे भविष्यतः ।।३४।।

तच्छ्रुत्वा पल्लवे ग्रन्थिं बध्वोचे पुत्रवत्यहो । निष्कला जातिवन्ध्यापि भवेयं त्वत्प्रसादतः ।।३५।।

व्रततीर्थार्चने यातं वयो मे पुत्रकामया । विशेषात्सेवितोऽश्वत्थो मौर्ख्याद्दास्यति किं स मे ।।३६।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

ब्रह्मनारदसंवादं शृण्वात्थ यदसत्तु तत् । नारदाश्वत्थमूलेऽहं मध्येऽजोऽग्रे शिवः पुनः ।।३७।।

अवाक्प्रत्यगुदक्शाखास् त्रयाणां प्राक्समाः सुराः । तीर्थाब्धयश्चाङ्कुरेषु गोयज्ञर्षिश्रुतिद्विजाः ।।३८।।

ओङ्कारोऽङ्घ्र्यन्तशीर्षस्थ इत्यश्वत्थोऽस्त्यसंस्कृतः ।
नार्च्यः संस्कृत्य मौञ्ज्युक्त-कालेऽस्मिन्सत्क्षणेऽर्चयेत् ।।३९।।

नार्कारशुक्रनिट्सन्ध्या-कुयुक्पर्वादिषु स्पृशेत् । वर्णित्वमौनसत्त्वाढ्यो भजेन्नामुं वधूरपि ।।४०।।

स्वर्गता अपि '*नापुत्रस्य लोकोऽस्ति* ' इति श्रुतेः।।३२।।३३।। जन्मान्तरे मद्वरफलमिदमिति **वेत्सि किं**।।३४।। **पल्लवे** वस्त्राञ्चले **निष्कला** विगतार्तवा।।३५।। पुत्रं कामयत इति कर्मण्यण् **पुत्रकामया मया विशेष**तो **मौर्ख्यादश्वत्थो सेवितः सो**ऽश्वत्थो मन्दभाग्यायै मह्यं पुत्रमिति शेषः **दास्यति किं** अपि तु न।।३६।। हे साध्वि मौर्ख्यादश्वत्थः सेवित इति **यदात्थ** ब्रवीषि ब्रुवः पञ्चानामित्यानाहादेशः **तदसत्** '*अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्* ' इति स्मृत्या भगवद्विभूतित्वेनोक्तत्वात्। अश्वत्थमाहात्म्यज्ञानाय **ब्रह्म**णो **नारदस्य** च **संवादं शृणु** कदाचिन्नारदेन पृष्टो ब्रह्मा नारदं प्रत्याह हे **नारदे**त्यादि **मूलेऽहं** ब्रह्मा वसामि **अजो** विष्णुः।।३७।। **पुनः** क्रमेण **त्रयाणां** दक्षिणपश्चिमोत्तरदिग्गत **शाखाः प्राक्** पूर्वशाखायां **समाः** सर्वे **सुरा** देवाः **तीर्थान्यब्धयो** गावो **यज्ञा ऋषयः श्रुत**यो **द्विजा** विप्रा **अङ्कुरेष्व**ङ्कुरोपलक्षितपर्णेषु।।३८।। अकारोकारमकारात्मक **ॐकारो** मात्राभेदेना**ङ्घ्र्यन्तशीर्षस्थः** मूल-मध्याग्रेषु स्थितः तदुपलक्षितास्त्रयो वेदास्त्रयो लोका अपि स्थिताः **इति**शब्द उपास्यरूपप्रतिपादनसमाप्त्यर्थः फलातिशयार्थं विशेषमाह **असंस्कृतः** उपनयनादिसंस्काररहितः **नार्च्यः** न पूज्यः **मौञ्जी**बन्ध**नोक्तकाले**ऽश्वत्थोद्यापनविधिना **संस्कृत्य** ततः **सत्क्षणे** ग्रहानुकूल्ये शोभने कालेऽर्चेत्।।३९।। **अर्कः** सूर्य **आरो** भौमः **निट्** निशा **कुयु**ग्व्यतिपातादि **वर्णित्वं** ब्रह्मचारित्वं **सत्त्वं** सत्यत्वं **मौनं** प्रसिद्धं तै**राढ्यो** युक्तो **ना** पुमान् **अमुं** अश्वत्थं।।४०।। अश्वत्थाधोभागे **गोमयेन लिप्ते** रङ्गवल्ल्यादि**रञ्जिते** वर्णभेदेन स्त्रीपुरुषभेदेन **स्वाधिकारो**

तत्तले गोविशा लिप्ते रञ्जिते स्वस्ति वाचयेत् । संस्नाप्य सप्तकलशैः पूजयेत्स्वाधिकारतः ।।४१।।
ध्यात्वाष्टबाहुं श्रीविष्णु-रूपमावेष्ट्य वाससा । नाममन्त्रैर्मंदगत्या शक्त्या कार्याः प्रदक्षिणाः ।।४२।।
नमेत्प्रदक्षिणायास्तु भक्त्याद्यन्तसमाप्तिषु । पदे पदे मेधफलं दैन्यर्णार्त्यघतापहृत् ।।४३।।
ग्रहार्तिघ्नं सौरिवारे तन्नामोच्चारणं तरोः । सदेशेऽपैति नुः काल-मृत्यू रौद्रमनोर्जपात् ।।४४।।
तत्रातिफलदा ब्रह्म-भुज्याप्लुतिजपाध्वराः । पुत्रादिकामसिद्ध्यै नो विलम्बोऽक्षय्यपुण्यदात् ।।४५।।
येनेह स्थापितोऽश्वत्थस्तेन स्वः स्थापितं कुलम् । येन च्छिन्नोऽपि वंशः स्वस्तेन च्छिन्नो न संशयः।।४६।।
प्रदक्षिणादशांशेन हवनं तद्दशांशतः । कृत्वा ब्रह्मभुजिं दद्याद्धैमाश्वत्थार्थगोतिलान् ।।४७।।
सद्ब्रह्मभ्यो लभेदिष्टमित्यूचे नारदं विधिः । तस्मात्तं विधिना साध्वी भज द्राक्सिद्धिदोऽस्ति सः ।।४८।।
त्वं भीमामरजायोगे स्नात्वा षट्कूल उत्तमम् । संगमस्थं भजाश्वत्थं सत्यं पुत्रौ भविष्यतः ।।४९।।
तथा कुर्वेऽपि षष्ट्यब्दा मत्वोक्तिं तव वेदवत् । इत्युक्त्वा सेश्वराश्वत्थं पत्या भेजे यथाविधि ।।५०।।
चतुर्थेऽह्न्याह तत्स्वप्ने कृत्वाश्वत्थप्रदक्षिणाः । यद्दास्यति गुरुर्भुङ्क्ष्व भवेत्पुत्र इति द्विजः ।।५१।।

योज्यः।।४१।। चतुर्थ्यन्तैर्विष्णुसहस्र**नाममन्त्रैः**।।४२।। **आदिः** प्रथमं **अन्तो** मध्यमं **मेध**स्याश्वमेधस्य **फलं दैन्यं** दारिद्र्यं **ऋणं** देयं **आर्तिः** पीडाऽ**घं** पापं **ताप**श्चाधिभौतिकादिस्तान्हरतीति तथा मेधफलविशेषणमिदं नामोच्चारणविशेषणं वा।।४३।। शनिवारे **तन्नाम्नां** '*कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः। सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुत* ' इत्युच्चारणं **ग्रह**पीडा**घ्नं तरोः सदेशे**ऽश्वत्थसमीपे *त्र्यम्बकमि*ति मन्त्र**जपात्कालमृत्यु**र्नश्यति पुनः का कथाऽपमृत्योः।।४४।। **अक्षय्यपुण्यदा**दश्वत्थात्सेवितात् चातुर्मास्यफलादिवदिदं प्राशस्त्यं बोद्ध्यं अन्यथा भेदप्रसंगात्।।४५।। **इह** भूतले **स्वः** स्वर्गे **येना**श्वत्थ**श्छिन्नः स्वः** स्वकीयो **वंशः**।।४६।। व्रतसम्पूर्तये उद्यापनमाह **प्रदक्षिणे**ति **ब्रह्मभुजि**र्ब्राह्मणभोजनं **हैमः** स्वर्णनिर्मितो**ऽश्वत्थः अर्थो** दक्षिणार्थं धनं **गौस्तिला**श्च प्रसिद्धाः।।४७।। **सद्ब्रह्मभ्यो** विद्वद्ब्राह्मणेभ्यः एतेन सात्त्विकदानं सूचितं **इति**शब्दो ब्रह्मनारदसंवादानुवादसमाप्त्यर्थः। यद्यपि सकामभजनं मोक्षानुचितं तथापि कामकलुषितचित्तानां अंतर्मुखतासंपादनार्थं तद्द्वाराऽनायासेन रुच्युत्पादकं कामवशादपीश्वरभजनं जातं चेद्वस्तुशक्तिप्रभावात्कामबीजभर्जनपूर्वकमधिकारित्वं प्रसादं च दास्यत्येव न क्षुद्रदेवताराधनलभ्यफलवन्नश्वरं भविष्यति। इह देवतामयाश्वत्थभजनोपदेशव्याजेन संसारवृक्षे ब्रह्मदृष्टिः कर्तव्येति ज्ञापितं ॐकाररूपत्वप्रतिपादनात्।।४८।। पुत्री च पुत्रश्चेति **पुत्रौ** इदमात्मदृष्ट्याऽन्नमयकोशोपासकानां सर्वान्नप्राप्तिवत्फलमुक्तं।।४९।। ।। **षष्ट्यब्दा** वृद्धाप्यहं **तथा** देवतात्मदृष्ट्याऽश्वत्थार्चनं **कुर्वे ईश्वरः** श्रीगुरुस्तत्सहितं स्त्रीणामस्वातंत्र्या**त्पत्या** सह **भेजे**।।५०।। भजनदिना**च्चतुर्थेऽह्नि तत्स्वप्ने** कश्चिद्**द्विजः**।।५१।। **अश्वत्थस**हितं श्रीगुरुं **ननाम**।।५२।। इष्टान्कामान्ददात इती**ष्टकामदे**।।५३।। गारुडे '*पुत्राः कतिविधा ज्ञेया* ' इति गरुडेन पृष्टो भगवान् चतुर्दशपुत्रानाह

साप्युत्थाय ततः स्नात्वा सङ्गमं प्राप्य सद्गुरुम् । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य साश्वत्थं प्रणनाम ह ।।५२।।

दत्त्वा फले स तां प्राह दानं देहि समाप्य सत् । व्रतं प्रदक्षिणारूपं फले भुंक्ष्वेष्टकामदे ।।५३।।

प्राग्युगेऽनेकपुत्राः स्युरौरसो दत्तकस्त्विह । औरसस्तूत्तमोऽस्यास्य-दर्शनं पितृमुक्तिदम् ।।५४।।

तत्साध्वीहौरसौ पुत्रौ तारकौ ते भविष्यतः । मदर्चनफलं त्वेतन्न सन्देहोऽत्र शोभने ।।५५।।

तथेत्युक्त्वापि सा गेहं गत्वा चक्रे यथोदितम् । निष्कलाप्यृतुमत्यासीन् निःसीममहिमा प्रभोः ।।५६।।

शुद्ध्यूर्ध्वं सह पत्येत्य सा प्रपूज्य गुरुं मुदा । गृहं गत्वा दधौ गर्भं तन्निशीशप्रसादतः ।।५७।।

स्वतन्त्रसंविद्भगवान् लीलां को वेत्ति यत्स्तुतौ । द्विसहस्ररसज्ञोऽपि कुण्ठितश्चकिता श्रुतिः ।।५८।।

वलीपलितवेपैर्यद्देहो विद्धो जराकृशः । साधत्त गर्भमित्यन्ये प्रशशंसुः परस्परम् ।।५९।।

तद्भर्ता सोमनाथस्तु प्रीत्या पुंसवनादिकाः । क्रिया व्यधात्क्रमात्पुत्रीं कालेऽसौषीत्ततः सती ।।६०।।

तदेयं कन्यका साध्वी सच्छीलगुणशालिनी । भविष्यति कुलोद्धर्त्री पुत्राढ्येत्याह दैववित् ।।६१।।

तच्छ्रुत्वा स द्विजेभ्योऽदादर्थवस्त्रादिकं द्विजः । प्रापतुर्द्वादशेऽह्नीशं कन्यामादाय जम्पती ।।६२।।

तत्पादाब्जान्तिकं कन्यां संस्थाप्योचे प्रणम्य सा । संसृतिस्थजरद्वन्ध्य-द्रुमस्ते फलितो दृशा ।।६३।।

सेव्यते फलितोऽपि द्रुः पान्थैश्चेत्सुफलो वरम् । वन्ध्योऽपि मोघफलत इति भातीश वेत्सि तत् ।।६४।।

'औरसो दत्तकश्चैव कलौ द्वावेव सम्मतौ। औरसो धर्मपत्नीज ' इत्यादि चोक्तं औरसस्य मुखदर्शनं पितृमुक्तिदं *'ऋणमस्मिन्सन्नयत्यमृतत्वं च गच्छति। पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवितो मुखं '* इत्यादिश्रुतिभ्यः।।५४।।५५।। **निष्कला** विगतार्तवा।।५६।। चतुर्थेह्नि शुध्यतीति वचनात्पञ्चमेऽह्नीत्यर्थः।।५७।। **स्वतंत्रसंविद**पराधीनबुद्धिः **द्विसहस्ररसज्ञः** शेषः।।५८।। **वली** चर्मसंकोचः **पलितं** केशादौ शौक्ल्यं **वेपः** कम्पस्तैः **सा गर्भमाधत्त**।।५९।। **क्रिया** गर्भसंस्कारान्शास्त्रोपदिष्टा**न्व्यधाद्**व्यकृणोत्**सती** सा ब्राह्मणी **काले** दशमे मासि समराशिगत चंद्रविलग्नयुक्ते वा कुयोगवर्जिते शोभनसमये **पुत्रीं असौषीत्** *पूङ् प्राणिप्रसव* इति धातोः प्रसवो नाम गर्भमोचनं *स्यादुत्पादे फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचन* इति कोशात्।।६०।। **साध्वी** पतिव्रता **सती शीले**न स्वभावेन **गुणै**श्च **शाल**ते शोभत इति तथा **दैवविद्**गणकः।।६१।। **स** सोमनाथः **जम्पती** जाया पतिश्च।।६२।। **अंतिकं** समीपं **सा** जातापत्या **ऊचे** श्रीगुरुमिति शेषः **ते** तव **दृशा फलितः** प्रसूतिकोऽभूत्।।६३।। ईदृशः **फलितोऽपि द्रु**र्वृक्षः **सुफलश्चेत्पांथैः** पथिकैः **सेव्यते** अत्र पान्थैः स्वर्लोकाभिलाषिभिः पूर्वजैः **फलितोऽपि** जातापत्योऽपि **सुफलश्चेत्**पुत्रयुक्तश्चेत्सेव्यो दयनीयत्वेन *'कृपणं हि दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन् '* इति श्रुतेः **मोघफलतो वन्ध्योऽपि वरं** मनाक्प्रिय **इति** मे **भाति** हे **ईश तदे**व त्वं **वेत्सि** इति गौणात्मपक्षे व्याख्येयं। मुख्यात्मपक्षे तु श्रीगुरूपासनया विशुद्धबुद्धेर्ब्राह्मण्याः कन्याजननेनैव गर्भभरणप्रसवकष्टादिना वैराग्यं जातं किं कर्तव्यं

तच्छ्रुत्वा सस्मितं कन्यामादायेशो जगाद तौ । शीलधीगुणपुत्राढ्या भवेत्साध्व्यखिलार्चिता ।।६५।।

कन्या लब्धोत्तमेयं वां पुत्रेच्छा चेद्भवेत्सुतः । मूर्खः शतायुर्वाल्पायुर्विद्वान्वां कतरः प्रियः ।।६६।।

सार्भो विद्वान् प्रियोऽल्पायुरपीत्यूचतुरप्युभौ । तथेत्युक्त्वा स सापत्यौ गमयामास तौ प्रभुः ।।६७।।

गर्भं साप्यल्पकालेन धृत्वासूत सुतं शुभम् । श्रद्धया निष्कलाप्येवं पुत्रौ लेभेऽथ किं वद ।।६८।।

विद्याविनयवान् भूत्वा पितृशुश्रूषणोद्यतः । धार्मिकः पञ्च पुत्रांस्तत्पुत्रो लब्ध्वामृतं ययौ ।।६९।।

कन्यापीशप्रसादात्सा दीक्षितस्य सती शुभा । भूत्वा गुरूक्तवद्ब्रह्म-वादिनी प्राप सद्गतिम् ।।७०।।

एवं गुरुप्रभावोऽयं श्रद्धादृष्ट्यैव दृश्यते । सद्भक्तैर्न त्वभक्तैः स जन्मान्धैरिव भास्करः ।।७१।।

दण्डकुण्डीकरं शान्तं काषायाच्छादनं सदा । ध्यायन्तौ यतिरूपं तं दम्पती मुक्तिमापतुः ।।७२।।

श्रद्धाभक्त्यैव सुलभा गुरुवाक्यानुवर्तिनाम् । उभयी सिद्धिरप्यन्यच्चित्रं तच्चेष्टितं शृणु ।।७३।।

नश्वरया प्रजया तया जय्येन सुखेनानित्येन लोकेन च अस्माकमयमेव नित्य आत्मा लोक इति निश्चित्य वदति ***संसृतिस्थः*** ममाहमिति बुद्ध्या संसारस्थः ***जरद्***वृद्धः पुरुषवत्कर्मानधिकृतत्वाद्***वन्ध्यः द्रुमोऽयं*** देहः संघातरूपस्ते ***दृशा फलितः*** संजातविवेकफलः ***पांथै***र्मुमुक्षुभिः ***सुफलश्***चेन्मोक्षपर्यवसायिफलश्चे***त्सेव्यते***ऽन्यथा धिक्क्रियते स्वर्गादिल-क्षणं *मोघफलं* उपभोगेनोपक्षिप्यते तस्मा***द्वंध्य***त्वं पापपुण्यराहित्यं *वरं* । अत्र वृक्षरूपकत्वमाचार्योक्तमुपन्यस्यते '*जन्मजरामरणशोकाद्यनेकानर्थात्मकः प्रतिक्षणमन्यथास्वभावो मायाम-रीच्युदकगंधर्वनगरादिवद्दृष्टनष्टस्वरूपत्वादवसाने च वृक्षवदभावात्मकः कदलीस्तंभवन्निःसारोऽनेकशतपाखण्डबुद्धिविकल्पास्पदस्तत्त्वजिज्ञासुभिरनिर्धारितेदंतत्त्वो वेदान्तनिर्धारितपरब्र-ह्ममूलसारोऽविद्याकामकर्माव्यक्तबीजप्रभवोऽपरब्रह्मविज्ञानक्रियाशक्तिद्वयात्मकहिरण्यगर्भाङ्कुरः सर्वप्राणिलिङ्गभेदस्कंधः तृष्णाजलासेकोद्भूतदर्पो बुद्धीन्द्रियविषयप्रवालाङ्कुरः श्रुति-स्मृतिन्यायविद्योपदेशपलाशो यज्ञदानतपआद्यनेकक्रियासपुष्पः सुखदुःखवेदनानेकरसः प्राण्युपजीव्यानन्तफलस्तत्तृष्णासलिलावसेकप्ररूढजटिलीकृतदृढबद्धमूलः सत्यनामादिसप्तलोक-ब्रह्मादिभूतपक्षिकृतनीडः प्राणिसुखदुःखोद्भूतहर्षशोकजातनृत्यगीतवादित्रक्ष्वेलितास्फोटितहसिताकृष्टरुदितहाहामुञ्चमुञ्चेत्याद्यनेकशब्दकृततुमूलीभूतमहारवो वेदांतविहितब्रह्मात्मदर्शना-संगशस्त्रकृतोच्छेद* ' एष समष्टिरूपो व्यष्टिरूपोऽपि देहाख्यो वृक्षस्तत्कल्पः ' *ऊर्ध्वमूलोऽवाक्* ' इति श्रुतेः।।६४।। गुरुः **तत्त**स्या वचः **श्रुत्वा सस्मितं** यथा तथा **कन्यां** गृहीत्वा **तौ जगादो**वाच बुद्धिस्वभावादियुक्ता सर्वमान्या **साध्वी**यं कन्या **भवेत्** । अत्र सस्मितेत्यनेन संजातविवेकाया अपि ब्राह्मण्या दत्तवरानुभवार्थं मायावरणं प्रसारितवान् *सूतमसूत दम्पती मुक्तिमापतु*रित्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात्।।६५।। **शतायुर्मूर्खः वा**ऽथवा **विद्वानल्पायु**रनयोर्मध्ये **वां कतरः प्रिय**स्तद्ब्रूत।।६६।। **सार्भः** सापत्यो**ऽल्पायुरपि विद्वान् प्रियः** ।।६७।। **साऽपि** गङ्गा।।६८।।६९।। **ब्रह्मवादिनी गुरूक्तवद्भूत्वा सद्गतिं प्राप** । ननु मंत्रपाठश्रवणयोः स्त्रियो दोषश्रवणात् कथं ब्रह्मवादिनी जाता। नायं दोषः। अधिकारं विना मंत्रपाठश्रवणयोर्दोषापत्ते**र्दीक्षितस्य** पत्न्यास्तु मंत्रपाठश्रवणयोरधिकार एव न तु सांगशाखाध्ययनेऽनुपनीतत्वात्।।७०।। गुरुशास्त्राभ्यामभिहिते तत्त्वे तदवबोधोपाययोश्च परमो विश्वासः **श्रद्धा** सैव **दृष्टि**स्तया।।७१।। **कुण्डी** कमण्डलुः कषायेण रक्तं **काषायं** तेन रक्तं रागादित्यण् तदा**च्छादनं** यस्य तं।।७२।। **श्रद्धा**युक्तया **भक्त्यैव उभयी** ऐहिकी आमु-

तत्रैत्य नरहर्याख्यो विप्रः कुष्ठी जगद्गुरुम् । प्रणतः शरणं प्राप्य प्रावोचद् गद्गदाक्षरः ।।७४।।

हरे शम्भो परानन्द-मूर्ते जय जयाच्युत । भक्तवत्सल ते कीर्तिं श्रुत्वात्राप्तोऽस्मि सद्गुरो ।।७५।।

यजुर्विदोऽपि मे तुण्डं केऽपि नेक्षन्ति कुष्ठिनः । तीर्थार्चनजपैः कुष्ठं तन्मे नापैत्यघात्मनः ।।७६।।

कृपया तेऽपयायात् तदिति मत्वागतोऽस्म्यहम् । नास्ति चेत्तत्प्रतीकारः शंसाग्रेऽसूंस्त्यजामि ते ।।७७।।

तच्छ्रुत्वा प्राक्तनाघोत्थं कुष्ठं नश्येदिति प्रभुः । प्रोक्त्वा शुष्कौदुम्बरैधो दृष्ट्वावोचत्स कुष्ठिनम् ।।७८।।

मद्वाक्ये भक्तिमांश्चेत् तत्काष्ठमारोप्य सङ्गमे । भज पल्लविते तस्मिन्छुद्धोऽकुष्ठो भविष्यसि ।।७९।।

ओमित्युक्त्वा तदारोप्य श्रद्धाभक्त्या स सङ्गमे । भेजे दत्वाधारबन्धं परितोऽम्बुनिषेचनैः ।।८०।।

कृपाऽस्य सद्यस्तव शुद्ध्यभावादुक्तं फलं कष्टमिदं कुतोऽस्मिन्।
शङ्काङ्कुरस्यात इदं त्यजेति जनैर्निषिद्धोऽप्यभजत्सदेध्मम् ।।८१।।

तदैत्य ते गुरुं प्राहुर्भवद्वाक्याद्द्विजो जरत् । भजतीध्मं बोधय तं मरिष्यत्युपवासतः ।।८२।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

करोति साधु तद्विप्रो दृढभक्त्या तरिष्यति । भक्तिर्हि तारकात्रैव भवसिन्धुनिमज्जतः ।।८३।।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भि(भे)षजे गुरौ । यादृशी भावना यस्य तस्य सिद्धिस्तु तादृशी ।।८४।।

वच्मि सूतर्षिसंवादं प्राग्वृत्तं दृढभक्तिदम् । ऋषीन्सूतो जगादेदं सिंहकेतुनृपात्मजः ।।८५।।

ष्मिकी च।।७३।।७४।। **हरे** इत्यनेन पापहर्तृत्वं **शम्भो** इत्यारोग्यदातृत्वं **परानन्दमूर्ते** इति मोक्षदत्वं सूचितं **भक्तवत्सले**ति स्पष्टमेव भक्तवात्सल्यमभिहितं **अत्र** देशे **आप्तोऽस्म्या**गतोऽस्मि त्वामिति शेषः।।७५।। **यजु**र्वेदज्ञस्यापि **तुण्डं** मुखं।।७६।। **अपयायाद**पगच्छेत् **तत्प्रतीकार**स्तन्नाशोपायः **शंस** कथय **ते** तवा**ग्रेऽसू**न्प्राणा**न्त्यजामि** प्रायोपवेशनेनेत्यर्थः।।७७।। **प्राक्तनाघोत्थं** पूर्वजन्मपापजन्यं **शुष्कौदुम्बर**काष्ठं **दृष्ट्वा कुष्ठिनमवोचत्**।।७८।। **मद्वाक्ये भक्तिमान**सि **चेत्त**र्हि **तत्** औदुम्बरकाष्ठं **भज** जलसेकादिना **तस्मिन्पल्लविते** सति **त्वं शुद्धः कुष्ठ**रहितश्च **भविष्यसि**।।७९।। **ॐमित्य**ङ्गीकारे काष्ठस्य **परित आधारबंध**मालवालमिति यावत् **दत्वा** कृत्वा**ऽम्बुनिषेचनैः** काष्ठं **भेजे**।।८०।। तं तादृशं दृष्ट्वा दयया जना ऊचुः **अस्य** श्रीगुरोः **सद्यो**दर्शनादेव **कृपा तव** पापनिष्कृ**त्यभावात्कष्ट**रूप**मिदं फलं** पापनाशकमुक्तं **कुतोऽस्मिन्** काष्ठे**ऽङ्कुरशंका अत इदं** कष्टं **त्यजेति जनै**र्निवारितो**ऽपि** द्विजो **सदा इध्मं** काष्ठ**मभजत**।।८१।। **ते** जनाः **जर**ज्जीर्णं।।८२।। **साधु** सम्यक् **हि** यतः **भवसिन्धौ निमज्जतः** पुंसः दृढभक्तिरित्यादौ भावसाधनत्वात्पुंवद्भावसिद्धिः पूर्वपदस्येति केचित् दृढं भक्तिरिति।।८३।। प्रमाणयति **मन्त्र** इति।।८४।। दार्ढ्यार्थमितिहासमवतारयति **सूत**स्य **ऋषी**णां च **संवादं वच्मि इदं** वक्ष्य-

धनञ्जयाख्यः पाञ्चाल एकदा वनमभ्यगात् । दृष्ट्वा स मृगयाश्रान्तस् तत्र जीर्णं शिवालयम् ।।८६।।
तस्थौ तत्र क्षणं साकं शबरेणानुयायिना । दृष्ट्वा लिङ्गानि रम्याणि दूतः प्राह नृपं गृहे ।।८७।।
लिङ्गं नीत्वा पूजयितुं कांक्षेऽज्ञोऽस्म्यनुशाधि माम् । यदाज्ञापयसे देव दृढभक्त्या करोमि तत् ।।८८।।

।। राजपुत्र उवाच ।।

संस्थाप्य सत्स्थले लिङ्गं शुचिर्भूत्वा स्त्रियान्वितः । भक्त्या पूजय मत्वेशमुपचारैर्यथाविधि ।।८९।।
चिताभस्मान्वहं देयं दत्तान्नं भुङ्क्ष्व भार्यया । प्रसादबुद्ध्येत्युक्त्वा स पूजाविधिमुपादिशत् ।।९०।।
सोऽपि तुष्टो गृहीत्वैकं लिङ्गं गत्वा गृहं स्त्रिया । भेजे यथोपदेशं तद् भस्मादात्प्रत्यहं मुदा ।।९१।।
भस्मैकस्मिन्दिने क्वापि न लेभेऽभूत्स दुर्मनाः । तद्भार्या प्राह मां दग्ध्वा शम्भवेऽर्पय भस्म तत् ।।९२।।
शरीरं कृमिविड्भस्म-रूपान्तं क्षणभङ्गुरम् । तत्साफल्यं कुरु हरे भस्मार्पणनिमित्ततः ।।९३।।

।। शबर उवाच ।।

तिष्ठत्स्विनक्ष्माग्निषु साक्षिषु प्रिये भर्तृत्वमाश्रुत्य वृतास्यदोऽन्यथा।
कुर्यां कथं तन्वि किशोरि बालिके भो साध्व्यलब्धैहिकसौख्य उत्तमे ।।९४।।
सा प्राह मोहो वितथोऽयमध्रुवे येन ध्रुवं साहजिकं प्रसाध्यते।
तत्साधयास्मिन्परकीयकल्पना नास्त्येव तेऽर्धाङ्गविभाग्यदो वपुः ।।९५।।

माणं।।८५।।८६।। **अनुयायिना**ऽनुचरेण **शबरेण दूतः** शबरः।।८७।। **अज्ञः** पूजाविधानानभिज्ञोऽस्मि **अनुशाधि** शिक्षय हे **देव** राजपुत्र।।८८।। शोभन**स्थले**।।८९।। **अन्वहं** प्रत्यहं **दत्तान्नं** नैवेद्यशेषं **प्रसादबुद्ध्या भार्यया** सह **भुंक्ष्व**।।९०।। **तल्लिङ्गं स्त्रिया** सह **भेजे**।।९१।।९२।। ईदृशस्य **हरे** शम्भौ **भस्मार्पणनिमित्ते**न **साफल्यं कुरु** अन्यथा **कृमिविड्भस्म**परिणामं निष्फलमेव।।९३।। **इनः** सूर्यः **क्ष्मा** भूमिः **अग्निः** पूर्वपतिः यतोऽहं त्वां लब्धवान् एतेषु **साक्षिसु** तिष्ठत्सु सत्सु त्वं तु भार्या भर्तुं योग्या अहं तु भर्ता एव तव **भर्तृत्व**मङ्गीकृत्य मया **वृताऽसि अदो** भर्तृत्वं। **अलब्धं ऐहिकसौख्यं** पुत्रादि यया तत्सम्बुद्धौ।।९४।। **सा** शबरी **अध्रुवे** नश्वरे देहे **वितथो** मिथ्याभूतो **मोहोऽयं** येनाध्रुवेण देहेन **साहजिकं** स्वरूपभूतं **ध्रुवं** मोक्षाख्यं पदं **अस्मि**न्देहे **परकीयो**ऽयमिति **कल्पना नास्त्येव** यत**स्ते** तवा**र्धाङ्गविभागी अदः** घटवद्दृश्यं **वपुः** पाञ्चभौतिकम्।।९५।। **प्रियया**

प्रोक्ते सुयुक्ते प्रियया तथेत्यसौ प्रोक्त्वा गृहे तामवरुद्ध्य सालयाम्।
दग्ध्वार्पयद्भस्म शिवाय नित्यवद् भ्रान्त्या प्रसादक्षण आह्वयत्प्रियाम् ।।९६।।
दग्धापि साह्वानत आप पूर्ववत् तां सद्‍्म चालोक्य स शङ्कितोऽब्रवीत्।
दग्धापि गेहेन सहागता कथं सुप्तोत्थितास्मीति शबर्युवाच तम् ।।९७।।
शम्भुप्रभावोऽस्त्विति तेन भाषिते द्राक्प्रादुरासीन्निजरूपधृक् शिवः ।
दौष्कुल्यदोषं परिहृत्य दर्शनात् ताभ्यां शिवोऽदादुभयत्र काङ्क्षितम् ।।९८।।
भक्तेः प्रभावोऽयमियान्न किञ्चित् फलत्यृते भक्तिमतोऽस्य सिद्ध्येत्।
भक्त्येष्टमित्याह स तान्कदाचिद् गच्छन्प्रभुः स्नातुममुं ददर्श ।।९९।।
तं तादृशं प्रेक्ष्य कमण्डलुस्थ-क्षीरेण तत्प्रोक्ष्य स शुष्ककाष्ठम्।
ददर्श सद्दिव्यदृशा तदेध्मे सद्योङ्कुरा भूरिश आविरासन् ।।१००।।
दिव्यं स्वधामाङ्कुरितं च काष्ठमदृष्टकुष्ठोऽग्रत आस्थितं तम्।
दृष्ट्वा स काष्ठार्पितदृष्टिमीशं तुष्टाव सत्प्रेमभरानताङ्गः ।।१०१।।
कोट्यर्कभं कोटिसुचन्द्रशान्तं विश्वाश्रयं देवगणार्चिताङ्घ्रिम्।
भक्तप्रियं त्वात्रिसुतं वरेण्यं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०२।।

सुतरां युक्तियुक्ते **प्रोक्ते** सति **तथेत्यसौ** शबरः **सालयां** गृहसहितां **भ्रान्त्या** भ्रमेण **प्रसाद**समये **नित्यवत्प्रियामाह्वयत्**।।९६।। **आप** प्राप **दग्धामप्या**गतां **तां सद्म** गृहं **च**।।९७।। अयं **शम्भूप्रभावोऽस्तु** भवतु।।९८।। **भक्तिमृते** भक्तिं विना **अतोऽस्य भक्त्येष्टं सिद्ध्येत् स** श्रीगुरुः **तान्ज**नान् **अमुमु**दुम्बरसेवकं ब्राह्मणम्।।९९।। **क्षीरेण** जलेन।।१००।। **काष्ठेऽर्पिता दृष्टि**र्येन त**मीशं** प्रशस्त**प्रेमभरे**णा**नता**नि शीर्षा**द्यङ्गा**नि यस्य।।१।। *अथाष्टकमिदम्* ।। **कोटि**सूर्यकान्तिमपि **कोटिचन्द्रशान्तं** अधिष्ठानत्वेन **विश्वाश्रयं त्वा** त्वां **वरेण्यं** निरतिशयानन्दरूपं **पाहि** अविद्याकामकर्मभ्यो रक्ष।।२।। '*माया चेयं तमोरूपा तापनीये तदीरणात्* ' इति वचना**न्मायै**व **तम**स्तन्निवर्तने**ऽर्क** इव तं **स्वीकृत**संन्यासि**वेषं**

मायातमोऽर्कं विगुणं गुणाढ्यं श्रीवल्लभं स्वीकृतभिक्षुवेषम्।
सद्भक्तसेव्यं वरदं वरिष्ठं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०३।।
कामादिषण्मत्तगजाङ्कुशं त्वामानन्दकन्दं परतत्त्वरूपम्।
सद्धर्मगुप्त्यै विधृतावतारं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०४।।
सूर्येन्दुगुं सज्जनकामधेनुं मृषोद्यपञ्चात्मकविश्वमस्मात्।
उदेति यस्मिन्नमतेऽस्तमेति वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०५।।
रक्ताब्जपत्रायतकान्तनेत्रं सद्दण्डकुण्डीपरिहापिताघम्।
श्रितस्मितज्योत्स्नमुखेन्दुशोभं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०६।।
नित्यं त्रयीमृग्यपदाब्जधूलिं निनादसद्बिन्दुकलास्वरूपम् ।
त्रितापतप्ताश्रितकल्पवृक्षं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०७।।
दैन्याधिभीकष्टदवाग्निमीड्यं योगाष्टकज्ञानसमर्पणोत्कम् ।
कृष्णानदीपञ्चसरिद्युतिस्थं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०८।।
अनादिमध्यान्तमनन्तशक्तिमतर्क्यभावं परमात्मसंज्ञम् ।
व्यतीतवाग्हृत्पथमद्वितीयं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ।।१०९।।

सद्भिर्**भ**क्तैः **सेव्यम्**।।३।। **कामा**दय एव **षण्मत्तगजा**स्तन्निवर्तकमङ्कुशमिव **त्वां** मानुषानन्दादिप्राजापत्यानन्दान्ता उत्तरोत्तरं शतगुणितास्ते यदन्तर्गता अत **आनन्दकन्दं** '*यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसत* ' इति श्रुतेः। परतत्त्वं निरुपाधिकं ब्रह्म रूप्यतेऽनेनेति **परतत्त्वरूपं सतां धर्म**स्य च **गुप्त्यै** रक्षणाय कृतावतारं **विशेषेण धृतावतारो** येन वा।।४।। **सूर्य**चन्द्रौ **गा**वौ नेत्रे यस्य तं **मृषोद्यं** मिथ्यावाच्यं **पञ्चात्मकं** पाञ्चभौतिकं **विश्वं** मनुष्यादिकं **अस्माद**भिन्ननिमित्तोपादानात् रज्जुसर्पव**दुदेति यस्मिन्नमते** प्रलयं याति च जले बुदबुदा इव तं।।५।। **रक्त**कमल**पत्र** इवा**यते कर्णान्त**विश्रान्ते **नेत्रे** यस्य **सन्** लक्षणयुक्तो **दण्डः कुण्डी** कमण्डलुश्च ताभ्यां **परिहापितं** भक्ताना**मघं** येन तं **श्रिता स्मित**मेव **ज्योत्स्ना** यस्येदृशस्य **मुख**चंद्रस्य **शोभा** येन तं नित्यं सहासप्रसन्नवदनं।।६।। **त्रय्या मृग्या** न तु लब्धा **पद**कमल**धूलि**र्यस्य तं **नादबिन्दुकला** एव **स्वरूपं** योगिध्येयं यस्य तं **तापत्रय**त**तप्ता**नां स्वा**श्रिता**नां **कल्पवृक्षम्**।।७।। **दैन्यं** दीनता **आधि**र्मनःपीडा **भी**र्भयं **कष्टं** क्लेशास्त एव **दवो** वनं तस्या**ग्नि**र्दाहकस्तं **उत्कं** उत्कण्ठं।।८।।

स्तोत्रे क्व ते मेऽस्त्युरुगाय शक्तिश् चतुर्मुखो वै विमुखोऽत्र जातः ।
स्तुवन्द्विजिह्वोऽभवदीश्वर त्वां सहस्रवक्त्रश्चकितोऽपि वेदः ।।११०।।

स्तुत्वैवं प्रणतीश्चक्रे तमाश्वास्याब्रवीद्विभुः । मत्प्रसादान्महत्त्वश्री-कीर्तिसत्पुत्रवान्भव ।।१११।।

शिष्योत्तम त्वं योगज्ञो भविष्यसि कुलं च ते । त्वद्वद्भविष्यत्यानीय वधूं तिष्ठ ध्रुवं त्विह ।।११२।।

तथेत्युक्त्वा द्विजो भार्यामानीय स तया सह । तत्र तस्थौ ततो लेभे पुत्रान्पुत्रीं स सत्तमान् ।।११३।।

विद्यासरस्वतीमन्त्रं गुरुदत्तं जपन्वरम् । भेजे गुरुं भवासक्तो जीवन्मुक्तोऽभवद्द्विजः ।।११४।।

तत्कुलं चापि तत्तुल्यं तद्भक्तिमहिमा त्वियान् । त्वत्पूर्वजोऽपि तत्तुल्यस् तस्मात्ते मतिरीदृशी ।।११५।।

सद्गुरोस्तु प्रसादोऽयं भविष्यत्यपि ते कुले । वर्धमानः सदैवेति संविन्मे ब्राह्मण ध्रुवा ।।११६।।

।। इति श्रीगुरुचरिते भक्तियोगे भक्तिमहिमावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।।

।। आदित एकोनविंशोऽध्यायः ।।

सप्ताहपारायणे पञ्चमः। अन्ते रसज्ञा वशा स्तोत्रं पठनीयम्।द्वितीयदिनारम्भे गुरुस्तुतिः।

अतर्क्यभावमतर्क्याभिप्रायं वाङ्मनसमार्गागोचरं *दृक्पथ*मिति पाठः।।९।। भो **उरुगाय ते स्तोत्रे मे क्व शक्तिः** यत ब्रह्मापि गुणानन्त्या**द्विमुखो जातः सहस्र**मुखोऽपि **द्विजिह्वः** सर्पविशेषः शेषः सोऽपि *विमुखः* **वेदोऽपि चकितः** एतावानयमीदृश इति विधिवाक्येन वक्तुं शङ्कितः।।११०।।११।। **त्वद्व**त्त्वादृशं।।१२।। **सत्तमा**नतिशोभनान्।।१३।। गुरुभजनप्रभावादेव **भवासक्तः** संसारानासक्तः तत्प्रसादलब्धज्ञानेन **जीवन्मुक्तोऽभवत्**।।१४।। **तत्कुलमपि तत्तुल्य**मभवत् '*नास्याब्रह्मवित्कुले भवति* ' इति श्रुतेः **इयान्त**स्य श्रीगुरो**र्भक्तिमहिमा त्वत्पूर्वजोऽपि ते**न नरहरिणा **तुल्यः**।।१५।। हे **ब्राह्मण इत्येवं**प्रकारा **मे संविद्**बुद्धि**र्ध्रुवा**।।११६।।

इति टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः।।

अथ विंशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

को मत्पूर्वः कथं तेन सेवितो भगवान्प्रभुः । यत्प्रभावान्ममेदृग्द्धीस् तच्छ्रोतुं सादरोऽस्म्यहम् ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

प्रागुक्तं यवनात् त्रातः सायंदेव इति प्रिय । पूर्वः स एव तेऽश्रौषीद्गुरुं गन्धर्वपूःस्थितम् ।।२।।

तत्रैत्य प्रणतो विप्रो मठे दृष्ट्वा परात्परम् । नत्वा दण्डवदस्तौषीदुपसंगृह्य पद्द्वयम् ।।३।।

परमात्मन्परञ्ज्योतिः श्रीनृसिंहसरस्वति । भक्तेश श्रुतिचिन्त्यं ते सर्वतीर्थाश्रयं पदम् ।।४।।

न मर्त्यस्त्वं महेशोऽसि त्र्यात्मा मानवाकृतिः । प्राणदानक्षमाम्ब्वाढ्य-कमण्डलुकरोऽसि कः ।।५।।

दुष्टनिग्रहसद्रक्षा-क्षमदण्डकरोऽस्यजः । शिवोऽसि मुक्तिदः पाप-तापनाशक्षमोग्रदृक् ।।६।।

मृतो जीवितो येन दुग्धा लुलायी वशा शुष्ककाष्ठं तरुत्वं प्रणीतम्।
क्षणादन्त्यजोऽप्युद्धृतस्तेऽनुभावं क्षितौ कोऽर्हति ज्ञातुमन्यत्तवापि ।।७।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

स्तुत्यानयास्मि ते विप्र भृशं तोषमुपागतः । भूयात्ते वंशमात्रस्य श्रद्धाभक्तिर्मयि ध्रुवा ।।८।।

कच्चित्क्षेमं युवत्यादेस् तव ब्रूहि क्व तिष्ठसि । कालेन बहुना विप्र संगतोऽस्यद्य मत्प्रिय ।।९।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ विंशोऽध्यायः।। *गुरुप्रसादो विंशे च सायंदेवपरीक्षणं। काशीयात्रोदिताऽनन्तव्रतमाहात्म्यमुत्तमं।।१।।* त्वत्पूर्वज इत्युक्तमेव पृच्छति **क** इति।।१।। **प्राङ्**नवमाध्याये **ते** तव **पूर्वजः अश्रोषी**च्छ्रुतवान्।।२।। **तत्र** गन्धर्वपुरे श्रीगुरुमागत्य पादद्वन्द्वं **उपसंगृह्या**भिवाद्य।।३।। हे **परञ्ज्योतिः** सूर्यादीनामपि चिद्धातूनां प्रकाशक '*अनुकृतेस्तस्य च* ' इति न्यायात्।।४।। **मानवाकृति**रपि **त्वं न मर्त्यः** किन्तु **महेशोऽसि** भूतानामपि **प्राणदानक्षमे**णा**म्बु**ना**ऽऽढ्यो** युक्तः पूर्णः **कमण्डलुः करे** यस्य **कः** प्रजापतिस्त्वं।।५।। **दुष्टनिग्रह**साधु**रक्षण**समर्थो **दण्डः करे** यस्येदृशो**ऽजः** विष्णुः भक्तानां **पापतापनाश**समर्था **उग्रा दृग्य**स्य स त्वं **मुक्तिदः शिवः**।।६।। **अनुभावं** सामर्थ्यं **अन्यदै**श्वर्यादि।।७।।८।। **तव युवत्यादेः क्षेम**मस्ति किं **कच्चि**त्कामप्रवेदने **मत्प्रिय** प्रेष्ठभक्त।।९।। **स्वकैः** स्वजनैः

।। सायंदेव उवाच ।।

देवदेव जगन्नाथ भगवन्त्वत्प्रसादतः । सर्वेषां क्षेममस्तीश काङ्क्ष्यां तिष्ठाम्यहं स्वकैः ।।१०।।
योगक्षेमेक्षका भ्रातृ-पुत्रा मे तेऽनुकम्पया । त्वत्पादाब्जरसं पातुमलिप्रायोऽस्मि सम्प्रति ।।११।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

कष्टं मे सेवनं नाज्ञ कोऽपि ज्ञातुं न शक्यते । ग्रामे नदीतटेऽरण्ये दुर्गमेऽपि वसाम्यहम् ।।१२।।
तच्छ्रुत्वा सोऽनुयास्यामि यत्र क्वापीत्थमाददे । तथेत्युक्त्वैकदा शम्भुस् तेनागात्सह संगमम् ।।१३।।
निवार्यान्यान्समं तेन स्थित्वाश्वत्थतले निशि । वृष्ट्यै तदादिदेशाब्दमकालेऽपि परीक्षितुम् ।।१४।।
गर्जिताब्दो ववर्षारं झञ्झावातसखस्तदा । क्षणप्रभापि मुष्णन्ती दृष्टिमासीदनुक्षणम् ।।१५।।
उपर्युपरि वस्त्रैस्तं समन्तात्स प्रकम्पितम् । सहिष्णुः श्रीगुरुं भेज आसारार्तिरणद्द्विजः ।।१६।।
यामाभ्यां खण्डितं वर्षं दृष्ट्वोचे तं गुरुः पुरम् । गत्वाग्निमानयात्यन्तं क्लिन्नाङ्गे शीतमुत्थितम् ।।१७।।
कुत्रापीततस्ततोऽपश्यन् याहि मामनुचिन्तयन् । तच्छ्रुत्वागात्स करक-चूर्णिताङ्गोऽपि शीकरैः ।।१८।।
क्लेदितात्माप्यनुध्यायन् चञ्चलातेजसोऽयनम् । प्रविश्य गोपुराद् द्वाःस्थ-दत्तमार्गः पुरं स तु ।।१९।।
गृहीतभाजनं न्यस्त-वह्निः शीघ्रं न्यवर्तत । ज्ञातुं गुरूक्तिहेतुं स व्यधाद् दृष्टिमितस्ततः ।।२०।।
पार्श्वद्वयतलस्थोग्र-सर्पौ दृष्ट्वाऽगमज्जवात् । दृष्ट्वानुयातावपि तौ भीतो दध्यौ हरेः पदम् ।।२१।।

सह।।१०।। **योगक्षेम**द्रष्टारः **अलिप्रायो** भ्रमरप्रायो**ऽस्मि** भवामि।।११।। **कोप्य**वाङ्मनसगोचरोऽपि मदात्मेतिशेषः।।१२।। **स** सायंदेवः **यत्र क्वापि** त्वाम**नुयास्यामीत्थमाददे** स्वीकृतवान्।।१३।। **तेन** सायंदेवेन **सह अन्या**नागता**न्निवार्य वृष्ट्य**र्थ्यं मेघ**मादिदेशा**ज्ञापितवान्।।१४।। **क्षणप्रभा** विद्युत् **दृष्टिं मुष्णन्ती**।।१५।। धारासंपातपीडया **रणन्तो द्विजा** दन्ता यस्य स स्वयं सर्वं **सहिष्णुः प्रकम्पितं गुरुं उपर्युपरि वस्त्रैः** कृत्वा **भेजे**।।१६।। प्रहरद्वये **खण्डितां** वृष्टिं **दृष्ट्वा क्लिन्नाङ्गे शीतमुत्थितं** अतः **पुरं गत्वाऽग्निमानय**।।१७।। वर्षोपल**चूर्णितगात्रः शीकरै**रम्बुकणैः।।१८।। **क्लेदित**देहोऽपि **चञ्चलातेजसो** विद्युत्प्रकाशा**दयनं** मार्गं चिन्तयन् **गोपुरात्** पुरद्वारात् **पुरं प्रविश्य** द्वारपाल**दत्तमार्गः**।।१९।। **गृहीतः भाजन**स्थ**वह्नि**र्येन *कुत्रापीतस्ततोऽपश्यन्नि*त्यस्य कारणं **ज्ञातुं इतस्ततो दृष्टि**मकरोत्।।२०।। **जवा**द्वेगाद**गमत्** तथाप्य**नुयातौ तौ**

तदोच्चैः सङ्गमे वेद-ध्वनिं श्रुत्वा विलोक्य च । द्योतं भ्रान्तो द्रुतं प्राप्य दृष्ट्वैकं स्वगतं द्विजः ।।२२।।

कैः कृतोऽयं ध्वनिर्द्योतः क्वेत्यभूच्छङ्कितः स तम् । भीतं प्राह गुरुर्मा भीस्त्वद्गुप्त्यै तौ प्रचोदितौ ।।२३।।

तदाप्यही गुरुं नत्वा जग्मतुस्तं प्रभुर्द्विजम् । प्राहेदृशी गुरोः सेवा मरुतामपि दुष्करा ।।२४।।

।। सायंदेव उवाच ।।

भगवन्ननुकम्पाब्धे शरणागतवत्सल । सेवातत्त्वमुपाख्याहि श्रीगुरोस्तारकं परम् ।।२५।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

छायौपम्येन संसेव्यो गुरुस्तत्त्वमिदं परम् । प्रार्पयेन्नियतं देहं सार्थं तस्मै परात्मदृक् ।।२६।।

सर्वभावेन बुद्ध्वेशं तं भजेत्तत्प्रसादभुक् । तद्ध्यानजीवनस्तत्पत्तीर्थपस्तत्कथारतिः ।।२७।।

दुःसाध्येऽपि यदादिष्टं कार्ये भक्त्या तदारभेत् । आरब्धं स नयेत्सिद्धिं भीतः कालोऽप्यपैत्यतः ।।२८।।

शृणु गौरीशसंवादं ब्राह्मस्त्वष्टाभजद् गुरुम् । विद्यार्थी सर्वभावात्तद्दार्ढ्यं ज्ञातुं गुरुर्जगौ ।।२९।।

वर्षास्वापः पतन्त्यत्र प्रत्यब्जमुटजे त्वतः । रचयैकं गृहं रम्यं सुखदं नूत्नवत्सदा ।।३०।।

शिष्यं तदाश्रुत्य यान्तं गुरुस्त्रीः प्राह कञ्चुकम् । देहि मेऽङ्गमितं चित्रं मनोहरमकृत्रिमम् ।।३१।।

पुत्रोऽप्याहाङ्घ्रियोग्ये मे पादुके देहि येऽम्भसि । गर्तेऽपि यातुः सुखदे चिन्तितस्थलनायके ।।३२।।

कन्याह कुण्डले दन्ति-दन्तभूतं प्रदेहि मे । लसत्क्रीडागृहं चैक-स्तम्भं पुत्तलिका अपि ।।३३।।

दृष्ट्वा।।२१।।**द्योतं** प्रकाशं च **द्विजः स्वगत**मचिन्तयत् **कैः कृत** इति।।२२।। **त्वद्गुप्त्यै** रक्षणाय **तौ** सर्पौ प्रेरितौ।।२३।। हे द्विज **ईदृशी** कष्टरूपा **गुरोः सेवा** देवानां दुःखेनापि कर्तुमशक्या त्वं तु नरः सन्कथं करिष्यसि।।२४।।२५।। **छायौपम्येन** पुरुषस्य छायाऽऽसनोत्थानगमनादौ पुरुषं न व्यभिचरति तद्वत् **सार्थं** द्रव्यसहितं **देहं नियतं तस्मै** गुरवे **प्रकर्षेणार्पयेत् परार्थे दृग्**दर्शनं यस्येदृशः शिष्यः।।२६।। **तस्य** गुरो**र्ध्यानं जीवनं तत्पादतीर्थ**पानः **तत्कथा**यां **रतिः** प्रीतिर्यस्य।।२७।। **दुःसाध्येऽपि कार्ये आदिष्ट** आज्ञप्त**स्तदारभेत्** ननु तादृशं कथं सिद्ध्येदत आह **आरब्ध**मिति आरब्धकार्ये तत्सिद्धिपर्यन्तं मरणशंकापि नेत्याह **भीत** इति **अतो**ऽस्माद्गुरुभक्ताद्भीतः कर्तरि क्तः भीत्रेत्यादिनापादाने पंचमी।।२८।। **ब्राह्मो** ब्रह्मपुत्रः।।२९।। **उटजे** पर्णशालायां।।३०।। **तदाश्रुत्या**ङ्गीकृत्य **कञ्चुकं** चोलीं।।३१।। **चिन्तितस्थल**प्रापके।।३२।। **कन्या** प्राह हस्ति**दन्त**निर्मित**मेकस्तम्भं गृहं** सचेतनाः **पुत्तलिकाः**।।३३।। **येषु पाकः शीततां न यास्यती**दृशानि भाण्डानि कज्जलस्पर्शरहितानि **इति** श्रुत्वा **स** शिष्यो **वनं**

सचेतनाः सदा येषु पाकः शैत्यं न यास्यति । अनञ्जनस्पृग्भाण्डानीत्याकर्ण्य स ययौ वनम् ।।३४।।
अज्ञोऽस्म्यप्यत्र गुर्वर्थं मर्तव्यमिति तं वने । निर्विण्णमाययौ कश्चिदवधूतो दयार्द्रधीः ।।३५।।
व्यपेतभीः प्रहृष्टात्मा गुरुभावनया स तम् । उपसंगृह्य तत्तस्मै शशंस गुरुभाषितम् ।।३६।।
तमाश्वास्याब्रवीत्साधुः काशीक्षेत्रे त्वभीष्टदे । सति जाग्रति विश्वेशे किं केषां दुर्लभं वद ।।३७।।
तत्रत्यपुण्यं को वेत्ति तद्वास्युद्वीत्क्षणादपि । अपैत्यघौघः किं वाच्यं सुखमानन्दकानने ।।३८।।
पुमर्थदोऽपि विश्वेशः प्राणिमात्रं मृतं क्षणात् । स तारकोपदेशेन दत्ते मुक्तिमनुक्षणम् ।।३९।।

।। शिष्य उवाच ।।

क्वास्ते काशी क्व विश्वेशो जाने स्वर्भुवि वा न तत् । प्रार्थये तारकं त्वां मे दर्शयाज्ञोऽस्मि केवलम् ।।४०।।
स प्राह त्वां नयाम्यद्य त्वद्योगात् क्षेत्रदर्शनम् । स्यान्मेऽप्ययत्नतो जन्म-साफल्यं यद्यदीक्षणात्।।४१।।
तमादाय ततो योग-गत्या शीघ्रं महामुनिः । काशीं गत्वा क्षेत्रयात्रां यथाक्रममुपादिशत्।।४२।।
विश्वेशदर्शनं चान्तर्गृहयात्रां यथाक्रमम् । दक्षिणोदङ्मानसाख्यां पञ्चक्रोशीं च विस्तरात् ।।४३।।
स्नानदानार्चनश्राद्ध-युक्तां यात्रां च पाक्षिकीम् । भवानीशो हरिर्धुण्डिर् दण्डपाणिश्च भैरवः।।४४।।
गुहः काशी च गङ्गाद्या देवा लिङ्गानि सर्वशः। इत्यादीनां पूजनं च निवेद्य स्थापनं तथा ।।४५।।
स्वनामाङ्कितलिङ्गस्य कथयित्वा यथोक्तवत् । कुरु प्रसीदेद्विश्वेश इत्युक्त्वान्तर्दधे स्वयम् ।।४६।।
मद्भावस्य परीक्षायै गुरू रूपान्तरादयम् । प्राप्तः किलेति मत्वा स यथानिर्दिष्टमाचरत् ।।४७।।

ययौ।।३४।। **गुरुकार्यार्थं मर्तव्यमिति निर्विण्णं तं** अवधूत **आययौ**।।३५।। निर्भयः प्रसन्नचित्तः अयं **गुरु**रिति बुद्ध्या **तमपुसंगृह्या**भिवाद्य **शशंस** कथयामास।।३६।।३७।।३८।।'*देहान्ते देवस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे* ' इति श्रुतेः **तारकं** रामनाम प्रणवो वा।।३९।।४०।। **यद्यस्माद्यदीक्षणा**त्काशीक्षेत्रदर्शनात् ।।४१।।४२।। मुख्य-त्वेन यात्रां निर्दिशति **दक्षिण**मानसाख्यां उत्तर**मानसाख्यां**।।४३।। **पाक्षिकीं** शुक्ले कृष्णे च क्रियमाणां यात्रां भवस्य पत्नी **भवानी** इन्द्रवरुणभवेत्यानुगादेशो ङीप् च **ईशो** विश्वे-श्वरः।।४४।।४५।। **स्वनामान्वितलिङ्गस्य स्थापनं कथयित्वा** हे शिष्य **यथोक्तवत्कुरु विश्वेशः प्रसीदेदित्युक्त्वाऽन्तर्दधे स्वयं** साधुः।।४६।। मदीयभक्तेः **परीक्षां** कर्तुं

चरित्वा क्षेत्रयात्रां स लिङ्गं संस्थापयत्तदा । विश्वेशो दर्शयित्वा स्वं रूपं प्रीतोऽब्रवीदिदम् ।।४८।।

वत्स वत्स पवित्रोऽसि गुरुभक्त्या विशुद्धया । धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि वृणीष्वाभीप्सितं वरम्।।४९।।

शिष्योऽपि गुरुतत्पत्नी-पुत्रोक्तीस्तं तथाब्रवीत् । कलाविद्यापटुर्भूत्वा ज्ञानविज्ञानवानिह ।।५०।।

प्रसार्य क्वापि चातुर्यं लोकख्यातो भविष्यसि । इत्युक्त्वान्तर्दधे विश्वेट् ततः सोऽप्याययौ गुरुम् ।।५१।।

याचिताखिलवस्तूनि श्रीविश्वेशप्रसादतः । निर्मायादात्कृती तेन गुरुस्तुष्टस्तमब्रवीत् ।।५२।।

भूत्वा ज्योतींषि यावत्त्वं चिरजीवी प्रसार्य सत् । चातुर्यं सर्वलोकेषु त्वं स्त्रष्टेवापरो भव ।।५३।।

तव सर्वर्धिनिधयो वशाश्चिंताव्यथादिकाः । न स्पृशन्ति कदापि त्वां प्रसादोऽयं मम ध्रुवः ।।५४।।

ततः प्रस्थापयामास तं स्वस्थानमुपेत्य सः । भूत्वा गुरूक्तवद्ध्यास्ते श्रीमंस्त्वष्टाखिलश्रुतः ।।५५।।

इति गौर्यै शिवेनोक्तं सेवातत्त्वं त्विदं गुरोः । तदुक्ताचरणं भक्त्या सर्वभावात्तदर्चनम् ।।५६।।

एतावदुक्त्वा विरते गुरौ द्विजो नत्वाब्रवीदद्य विचित्रमीक्षितम्।
काशीपुरं वै भवता सहाखिलं यद्यत्समाख्यातमवेक्षितं समम् ।।५७।।
क्वाहं क्व काशी क्व भवांस्तथापि वा अदृष्टपूर्वं सकलं प्रदर्शितम्।
न त्वं नरो नासि सुरो न चेतरो नूनं परात्मैव परावरोऽस्यजः ।।५८।।

प्राग्ब्रह्म त्वमजोऽक्रियोऽपि बहुलं स्यामित्यभूद्धीस्तया । सृष्ट्वैवाण्डभुवं ततो जगदिदं सृष्टं सधर्मं गुणैः ।।

रूपान्तरेणायं गुरुः प्राप्तः किल।।४७।। **अब्रवी**त्तं प्रतीति शेषः।।४८।।४९।। *कलाविद्ये*ति विश्वेश्वरवाक्यं **कला**श्चतुःषष्टिः **विद्या**श्चतुर्दश **ज्ञानं** व्यावहारिकं **विज्ञानं** पारलौकिकं **क्वापि** स्वर्गे भुवि पातालेऽपि।।५०।।५१।। **कृती** कृतकृत्यः इष्टादिभ्यश्चेतीनिः।।५२।। **यावज्ज्यौतींषि** चन्द्रसूर्यनक्षत्राणि तावत्त्वं **चिरंजीवी सन् अपरा स्त्रष्टा** ब्रह्मेव **भव**।।५३।। **ऋद्धयो**ऽणिमादयः **निधयो** महापद्मादयः **चिन्ता** मानसी **व्यथा** दैहिकी **आदि**शब्देनाधिदैविकादयः।।५४।। इति वरं दत्वा **प्रस्थामयामास** गमयामास।।५५।। आख्यानमुपसंहरति **इती**ति **सर्वभावा**त्सर्वाभिप्रायेण।।५६।। **विरते** मूकीभूते सति **समं** सर्वं मया**ऽवेक्षितं**।।५७।। अतएव **त्वं न नरः** किं देवोऽहं नेत्याह **नासि सुरः** अघटितघटनापटीयस्त्वा**न्नूनं** निश्चितं **परे** ब्रह्मादयो**ऽवरे** यस्मादीदृशो**ऽजः पर**श्चासा**वात्मा** च प्रत्यगभिन्नपरब्रह्मरूपो**ऽसि**।।५८।। स्तौति शार्दूलविक्रीडितैः *प्रागिति* **प्रा**क्सृष्टेः पूर्वं **त्वं ब्रह्म** नित्यशुद्धबुद्धादिलक्षणं तादृशरूपो**ऽजोऽक्रियोऽपि बहुलं** अहं **स्यां** भवेयमि**ति** या **धीरभूत्** यथाकाशस्याल्पत्वं बहुत्वं च वस्त्वंतरकृतमेव तथैव तवात्मनो बहुभवनं न

स्वैः स्वं भो रमयन्विहंसि सदरीनत्रावतीर्यानिशं । वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।५९।।
कल्याकृष्टहृदुज्झितक्रतुनर-त्रस्ताध्वराशीर्मुदे । प्रातः सूर्य इवोदितोऽस्यज महामोहान्धकारं ग्रसन् ।।
सद्धर्माश्रमसेतुमत्र शिथिलप्रायं सुदार्ढ्यं नयन्। वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।६०।।
सर्वानन्दनिधानरूपममलं स त्वं सुखं मूर्तिमत् । प्रादुष्कृत्य जनत्रयान्तरमृग-क्रीडावनं पावनम्।।
संसारावटमग्रमुद्धरसि भो स्वीकृत्य तुर्याश्रमम्। वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।६१।।
मूके गां दृशमन्धके सुतनयं वन्ध्यासु चासून्मृते। सौभाग्यं विधवासु पल्लवमहो दत्तं सुशुष्केन्धने।।
एवंभूत इयान्तवैष महिमा त्रैलोक्यसंस्थाक्षमो । वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।६२।।
मुक्तावास मुमुक्षुकल्पविटपिन् भो कामिनां कामधुग् । दारिद्रानलमेघ दुष्कृतदवाग्रे तापिताराम ते ।।
श्रुत्यन्विष्टरजःपदं श्रुतविवादातीततत्त्वं महत् । वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।६३।।

ह्यात्मनोऽन्यदनात्मभूतं तत्प्रविविक्तं देशकालं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टं भूतं भवद्भविष्यद्वा वस्तु न(?) विद्यतेऽतो नामरूपे सर्वावस्थे ब्रह्मणैवात्मवती न ब्रह्म तदात्मकं **तया** धिया प्रकृतिभूतया**ऽण्डभुवं** ब्रह्माणं **सृष्ट्वा** तं निमित्तीकृत्येति यावत् **ततः सधर्ममिदं जगत्सृष्टं भो** गुरो **स्वैः** स्वरूपकल्पितैर्गुणैर्भूतैर्मायामयैः **स्वं** जीवरूपं **रमयन्न**त्रावतीर्या**निशं** साधुद्वेष्टॄन् **विहंसि** यस्त्वं तस्य **ते वरं** श्रेष्ठं **श्रीमत्पादाब्जद्वयं वन्दे**।।५९।। *बहु स्यामिति संकल्प्य स आद्योऽभूज्जगत्स्वयं। श्रीदत्तः शिक्षयन्दुष्टान्नमते स्वात्मना स्वयं।।१।।* **कलि**नाऽधर्ममित्रेणा**ऽकृष्टा**नि **हृद**यानि येषां **उज्झिता**स्त्यक्ताः यज्ञा यैस्ते च ते **नरा**श्च तेभ्य**स्त्रस्ता** ये**ऽध्वराशि**षो देवास्तेषां **मुदे** मूलाज्ञानं परिहरन् **प्रातः सूर्य इवोदितोऽसि**। प्रशस्तो **धर्मो** येषु ते च ते **आश्रमा**स्तेषां **सेतुं शिथिलप्राय**मपि तं **सुदार्ढ्यं नयन्व**र्तसे।।६०।। *नरैस्त्यक्तेषु यागेषु कलिदोषहतैरिह। देवानन्दप्रदो दत्तोऽवतीर्णो धर्मभावनः।।२।।* भो **सर्वानन्दनिधान मूर्तिम**द्घनं **सुखं** त्रिविध**जनानामन्तरं** मन एव **मृग**श्चपलत्वात्तस्य **क्रीडावन**मिव **पावनं** रूपं **प्रादुष्कृत्य** चातुर्था**श्रमं स्वीकृत्य** च **संसार**गर्तं **मग्नं** लोक**मुद्धरसि** अथवा यः पूर्वोक्तः **स त्वं मूर्तिमत्सर्वानन्दनिधानरूपं** प्रकटीकृत्यान्यत्समानं।।६१।। *सर्वानन्दनिधिर्भूत्वा यतिर्दत्तो जगत्त्रयं। पावयन्नमलो भक्तानुद्धरत्यतिकष्टतः।।३।।* **मूके गां** व्यवहारार्हवाणीं **दृशं** दृष्टिं **वन्ध्यासु** पुत्रं **मृते** शवे प्राणान् **सु**तरां **शुष्के** अनार्द्रे शुषः कः **काष्ठे पल्लवं त्रैलोक्यसंस्था**यामक्षम**स्ततोऽप्यधिकः।।६२।। *मूकाय वाचं दृशमन्धकाय ददौ वशायै तनयं मृताय। प्राणान्सुभागं च गताधवायै शुष्कद्रुमं पल्लवयन्हि दत्तः।।४।।* नन्वेकोऽहं त्रिविधजनक्रीडावनरूपं कथमित्यत आह **मुक्ता**ना**मावासः** निर्दोषत्वात्समत्वाद्ब्रह्मत्वाच्च '*निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता* ' इति स्मृतेस्तत्सम्बुद्धौ **मुमुक्षुकल्पविटपिन्** मुमुक्षूणां सद्गुरुप्राप्तिसाधनलाभभावनादिनिरासकल्पनापूरक, बहिर्मुखानामपि भक्तानां कामान्दोग्धीति **कामधुक्** तत्संबुद्धौ विषय्यवान्तरभेदानामपि दरिद्रादीनां मनोरथपूरकस्तवमेवेत्याह **भो दारिद्रा**ग्निशामक**मेघ** पातकारण्यदाहक **तापाः** संजाता यस्य तस्या**राम**रूप **ते** तव **पदं** पद्यते योगिभिर्गम्यते इति पदं स्वरूपं सिद्धांतातिरिक्तशास्त्र**विवादातीततत्त्व**रूपं **महद्व्या**पकं **श्रुतैः** श्रुतिभिर**न्विष्टं** सारभूतं **रजो** यस्य।।६३।। *चिंतामणिरिवाभाति भक्तानां भक्तियोगतः।*

भो योगीश्वरभावितं तव पदं तीर्थाश्रयं सज्जना-। जीवं कामिसुदैवतं च कमलालीलास्थलं निर्मलम् ।।
विद्वद्वादकरण्डकं सुकृतसंस्थानं महत्पावनं । वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।६४।।
वेदागोचर ते चरित्रममलं शक्तोऽत्र कः कृत्स्नशो । वक्तुं वह्न्यबिनेन्दुभूखपवनात्मेतीह मूर्त्यष्टकम्।।
एतद्विश्वमयं न चान्यदिह वा ॐकाररूपेशितर् -। वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।६५।।
कुण्डीदण्डकरं प्रशान्तममलं संन्यासिरूपं तव । श्रीभीमामरजायुतिस्थितमज ध्येयं शरण्यं मयि ।।
ज्ञातं तारकमीश सत्यमनिशं ब्रह्मन्स्थिरीकुर्वदो । वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ।।६६।।

एवं स्तुवन्तं प्रभुराह तेऽर्पिता । तुष्टेन भक्तिर्मयि खल्वहैतुकी।
भो पुत्रपौत्रादिसमस्तवंशजा । भक्ता भविष्यन्ति ममैव निश्चितम् ।।६७।।
इतःपरं म्लेच्छनिषेवणं जहि । स्त्रिया सुतैश्चात्र सदैव तिष्ठ भोः ।
द्विजोऽपि गत्वा गृहमानयत्स्त्रियं । सुतांश्च तुष्टाव जगद्गुरुं पुनः ।।६८।।
त्वं वाच्यवाचकतयेश जगन्मयो वा । ॐकारवाच्य भगवन् त्रिगुणात्मकोऽसि।
आद्यन्तवर्जित पुराकृतभागधेयाद् । दृष्टं त्विदन्तव परात्परसत्त्वरूपम् ।।६९।।

शास्त्रवादव्यतीतात्मा श्रीदत्तो भगवान्स्वयं।।५।। इदं पदमनेकबुद्धिविषयमित्याह **भो** श्रीगुरो **तव पदं** याज्ञवल्क्यादि**योगीश्वरैर्भावितं तीर्थाश्रयं** यतोऽस्माद्गङ्गा निःसृता श्रुतिश्च *'चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि। तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेम् '* इति **सज्जनजीवि**काभूतं **कामि**नामुत्तमं **दैवतं** लक्ष्मीविलासस्थानं **निर्मलं** पापहरं रत्नानां **करण्डक**मिव **विदुषां वादा**नामपि **करण्डकं** पूज्यं **पावनं** चास्ति।।६४।। *योगीशचिंतितं लोकपावनं यत्पदं महत्। कामदं श्रीनिवासं च स दत्तः पुण्यशास्त्र-भूः।।६।।* भो उ◌ुपनिषदतिरिक्त**वेदा**विषयं **मल**निवर्तनं **ते चरि**तं सर्वशो **वक्तुं** कोऽपि न समर्थः ईश्वरेणापि स्वयं कात्स्र्येनाज्ञात्वात् श्रुतिश्च *'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद "* इति अग्निजलसूर्यचन्द्रभूम्याकाशवायुपुरुषाः इत्यदो **मूर्त्यष्टकं** तव हे **ॐकाररूप ईशितः** मूर्त्यष्टक**मय**मेव जग**न्नान्यत् वै** निश्चयेन।।६५।। *आत्मा-प्युपनिषद्वेद्यो यल्लीलां कोऽपि वेद नो। जगन्मयाष्टमूर्त्यात्मा स दत्तः प्रभवात्मकः।।७।।* दण्डकमण्डलु**करं ज्ञानं** ज्ञप्तिरूपं **मयि** भक्ते **स्थिरीकुरु**।।६६।। *संन्यासिरूपो श्रीदत्तो धृतदण्डकमण्डलुः। गन्धर्वस्थः सच्चिदात्मा सदा तिष्ठतु मे हृदि।।८।।* **अहैतुकी** निःश्रेयसफला तव **पुत्राद्या मम भक्ता भविष्यन्ति**।।६७।। **जहि** त्यज **द्विजः** सायंदेवः।।६८।। **वाच्यं** रूपं **वाचकं** नाम तद्भावस्त**त्तया** वाच्यवाचकभेदेन **त्वं जगन्मयोऽसि** हे **ॐकारवाच्य** *'तस्य वाचकः प्रणवः '* इति पातञ्जलात् ॐकारस्य परापरब्रह्मण आलम्बनत्वा-द्भगवत ॐकारवाच्यत्वं *'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म..' 'एतदालम्बनंश्रेष्ठ..' 'परं चापरं च यदोङ्कार '* इत्यादिश्रुतिभ्यः अतएव त्वं जगन्मयोऽसि लोके नामनामिनोर्भेदस्याप्रसिद्धत्वाद्वस्तु-

पापोऽपि पूतोऽस्मि तवाङ्घ्रिसंश्रयात् । स्पर्शाश्रयाल्लोहमपीव काञ्चनम् ।
तप्तोऽपि शान्तोऽस्मि मुखेन्दुदर्शनाद् । दीनोऽपि धन्योऽस्मि तव प्रसादतः ॥७०॥

स्तुत्वैवं श्रीगुरुं हृष्टः कारनाटकभाषया । आवतारकथोद्धातं जगौ तस्य यथाक्रमम् ॥७१॥

भगवान्तेन तुष्टः सन् दत्वेष्टं वरमाह तम् । अयं ज्येष्ठसुतो मान्यो धन्यस्ते मेऽतिवल्लभः ॥७२॥

इत्युक्त्वा नागनाथस्य मूर्ध्न्यधाच्छंकरं करम् । तदैव गीष्पतिसमो वक्ता ज्ञाता बभूव सः ॥७३॥

सद्गुरुः प्राह विप्रं ते भार्येयं सुभगा सती । चतुरश्चतुरान्पुत्रान् लभेत्त्वमपि भाग्यभाक् ॥७४॥

इतः परं म्लेच्छलब्ध-वृत्तिं हित्वा कुटुम्बयुक् । तिष्ठात्रैव तव श्रेयो भवेन्मे सुप्रसादतः ॥७५॥

स्नात्वा स्वकैः सह तिथौ भाद्रशुद्धचतुर्दशे । अनन्तव्रतमस्त्यद्य तारकं तत्त्वमाचर ॥७६॥

धर्मः कृष्णोपदेशेन चरित्वा यद्व्रतं महत् । दिव्यं सौख्यं सार्वभौमं भुक्त्वागात्सतनुर्दिवम् ॥७७॥

॥ सायंदेव उवाच ॥

भवान्देवोऽस्ति नोऽनन्तो भवत्सेवाव्रतं परम् । तथापि श्रोतुमिच्छामि को धर्मः कीदृशं व्रतम् ॥७८॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

धर्मोऽभूत्पाण्डवो राजा तत्सदस्यां सुयोधनः । मायाभ्रान्त्यापतन्मानी व्रीडितो जनहास्यतः ॥७९॥

तश्चोङ्कारस्य ब्रह्मविवर्तत्वाद्विवर्तानां च विवर्ताधिष्ठेन भेदशून्यत्वात्।।६९।। **पापोऽप्यहं** त्वत्पाद**संश्रया**च्छुद्धोऽस्मि तापत्रय**तप्तोऽप्यहं** तव **मुखेन्दुदर्शनाच्छान्तोऽस्मि दीनो**ऽधर्माज्ञानानैश्वर्यादियुक्तो**ऽप्यहं तव प्रसादाद्धन्योऽस्मि**।।७०।। अवतारः प्रादुर्भावस्तमारभ्ये**त्यावतारं** यः **कथा**या **उद्घातो** गानं तं **यथाक्रमं कारनाटकभाषया जगौ**। ननु वैदिकसूक्तेषु विद्यमानेषु पौराणिकस्तोत्रेषु च स्वयं ब्राह्मणोऽपि स कुतः कारनाटकभाषयाऽस्तौत् देवो वा कथं तेन तुष्ट इति चेद् वैधे वेदापेक्षा ईश्वरस्तवनं तु स्वाधिकारानुरूपं कार्यं न तेन प्रत्यवायः प्रत्युत ईशतुष्टिरेव सा त्वनुरक्तिसापेक्षा।।७१।। **ज्येष्ठसुतो नागनाथः**।।७२।।७३।। **विप्रं** सायंदेवं **चतुर**श्चतुःसंख्याङ्कान् **त्वमपि भाग्यभा**गैश्वर्यवान्।।७४।।७५।। अत्र **चतुर्दशे भाद्र**पद**शुद्ध**तिथौ तिथयो द्वयोरिति तिथिशब्दस्य पुंस्त्वमपि।।७६।। **धर्मः** पाण्डवः **सतनु**देहसहितः।।७७।। येन व्रतं कृतं स **को धर्मः कीदृशं व्रतं** चक्र इति।।७८।। **सदस्यां** सभायां मयनिर्मित**मायाभ्रान्त्या सुयोधनोऽपतत् जनहास्यतो व्रीडितो**ऽभूत् अत्र ह वाव किल स्मर्यते खाण्डवदाहे रक्षितेन मयासुरेण धर्मराजकृतराजसूययज्ञसभायां जले स्थलभानं स्थले जलभानं द्वारे भित्तिभानं भित्तौ द्वारभानं चेत्येवंलक्षणा या रचिता माया तया संजातया भ्रान्त्या स्थलबुद्ध्या जले गच्छन्नपतत्तदाऽन्धसुतोऽयं सत्यमिति स्त्रियो हास्यं चक्रुस्तेन लज्जितोऽभूदिति।।७९।। ततः कपट**द्यूतमिषे**ण दुर्योधनो **धर्मं जित्वाऽनुजस**हितं तं

जित्वा द्यूतमिषाद्धर्मं हृततच्छ्रीः स सानुजम् । वनाय प्रेरयत्सोऽपि तत्र गत्वा सुदुःखितः ।।८०।।

स एकदागतं कृष्णं नत्वा सस्त्र्यनुजोऽब्रवीत् । त्वन्नस्त्रातेति बिरुदं वहन्नोऽकं न वेत्सि किम् ।।८१।।

।। श्रीकृष्ण उवाच ।।

बलवद्दैवमपि मां भजतां नेक्षते सदा । त्वं मद्भक्तोऽपि मद्वाक्यात् कुर्वनन्तव्रतं महत् ।।८२।।

कोऽनन्तस्तद्व्रतं कीदृक् पुरा केन कृतं वद । इति धर्मानुयोगं स श्रुत्वा वक्तुं प्रचक्रमे ।।८३।।

चराचरजगत्काल-भूताद्यात्माप्यहं विभुः । कर्मप्रयोजनगुणैर्भूपानन्तोऽस्म्यहं पृथक् ।।८४।।

भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतमुत्तमम् । व्रतिनोऽनन्तफलदं तत्कुर्विष्टमवाप्स्यसि ।।८५।।

ऋषिः सुमन्तुः प्रागासीद् वासिष्ठो गौतमीपतिः । तत्स्त्रीः कन्यां प्रसूयैकां मृतान्योद्वाहितामुना ।।८६।।

सा दुःशीला कलिद्वेष-प्रिया चण्डी पतिं सुताम् । क्रूरा तौ त्रासयामास कन्यापि ववृधे शुभा ।।८७।।

चित्रक्रियापटुं सोऽदात् सच्छीलगुणलक्षणाम् । कौण्डिण्याय स्वगृह्योक्त-ब्राह्मोद्वाहविधानतः ।।८८।।

तत्र श्वशुरवात्सल्यात् स्थित्वा मासद्वयं मुनिः । श्वश्रूत्रस्तो ययौ वध्वा कौण्डिण्यः श्वशुराज्ञया ।।८९।।

चण्ड्याररं दृढं बध्वा पाथेयं नार्पितं स तु । प्रादाद्बहिस्थगोधूम-पुलाकं तौ ततो गतौ ।।९०।।

मध्याह्ने तस्थतुर्नद्यां चिरण्टीः प्रेक्ष्य तत्र सा । गत्वार्चयन्तीः प्राहेदं युष्माभिः क्रियते किमु ।।९१।।

द्वादशाब्दं **वनाय प्रेरयत्** किंभूतो दुर्योधनः **हृता त**स्य धर्मस्य **श्रीः** संपत्सहिता राज्यलक्ष्मीर्येन सः धर्मः सपत्नीकः सानुज**स्तत्र** तस्मिन्नवसरे **सु**तरां **दुःखितो गत्वा** द्वैतवनमिति शेषः।।८०।। **अनुजैः स्त्रिया** च सहितः **नो**ऽस्माकं वनवासदुःखं **न वेत्सि किं**।।८१।। **सदा मां** निर्विकल्पस्थित्या **भजतां नेक्षते** देहतादात्म्यवत एव **दैव**भोगप्रतीतेः अतएव समाधिना दैवनाशोऽप्युक्तः '*अमुना वासनानाले निःशेषं प्रविलापिते। समुलोन्मूलिते पापपुण्याख्ये कर्मसंचय* ' इत्यादि ईदृक्त्वं तव नास्ति तथापि **त्वं मद्भक्त** एवातो **मद्वाक्या**द्दैवहरं **महदनन्तव्रतं कुरु**।।८२।। **कोऽनंत** इत्यादि**धर्मस्यानुयोगं** प्रश्नं **श्रुत्वा स** कृष्ण उत्तरं **वक्तु**मुप**चक्रमे**।।८३।। **विभु**र्व्यापकत्वा**च्चराचरा**दिरूपोऽपि **कर्मप्रयोजनगुणैः** कृत्वा**ऽहं** चराचरादिविकारजाता**त्पृथ**क्स्थितस्ततोऽप्यधिक '*अतो ज्यायांश्च पूरुषः पादोऽस्य विश्वा* ' इति श्रुतेः *विष्टभ्याह*मिति स्मृतेः अतो हेतोर्हे **भूप** त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वा**दहमनन्तः** ब्रह्मेत्यर्थः '*सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म* ' इति श्रुतेः।।८४।।८५।। **प्राक्**पूर्वं **तत्स्त्री** गौतमी **अमुना** सुमन्तुना गार्हस्थ्याभीप्सया**ऽन्या** यथावदु**द्वाहिता**।।८६।। **चण्डी** अत्यन्तकोपवती रूढिता(?) च **तौ** कन्याभर्तारौ।।८७।। **चित्र**कर्मकुशलां '*अलंकृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यादेष ब्राह्मो विवाह* ' इत्युक्तलक्षणविधानेन।।८८।। **वध्वा** सह।।८९।। **अररं** गृहद्वारकपाटं **पुलाकं** तुच्छधान्यं।।९०।। **तत्र** नद्यां पूजयन्ती**श्चिरण्टीः** सुवासिनीः **प्रेक्ष्य गत्वा** च **युष्माभिरिदं किमु क्रियत** इति **प्राह** तां पप्रच्छेति भावः।।९१।। ता ऊचु**र्भाद्रे**ति।

।। स्त्रिय ऊचुः ।।

भाद्रशुद्धचतुर्दश्यामद्यानन्तव्रतं शृणु । स्नात्वा रक्ताम्बरं धृत्वा रक्तसूत्रे चतुर्दश ।।९२।।
ग्रन्थीन्बध्वा सप्तफण-दर्भशेषे निधाय तम् । कुम्भोपरि चतुर्बाहुं ध्यात्वानन्तं प्रपूज्य च ।।९३।।
दत्वा चतुर्दशापूपान् ब्रह्मणे जीर्णदोरकम् । विसृज्य दत्त्वा नूत्नं स्वे बध्वा हस्ते च दम्पती ।।९४।।
संतर्प्याब्दे घटान्दद्याच् चतुर्दश चतुर्दशे । प्रत्यब्दं पूजयेद् भक्त्या वरं नातः परं व्रतम् ।।९५।।
कुर्वदोऽभीष्टदमपि प्रोक्त्वास्यै दोरकं ददुः । सापि तत्र व्रतं कृत्वा पतिं प्राप सदोरका ।।९६।।
ततो यान्तौ धनी कश्चिद् ग्रामं नीत्वा श्रियं ददौ । तत्रानन्तप्रसादात्तौ श्रीमानाढ्यौ बभूवतुः ।।९७।।
दोरं दृष्ट्वैकदाग्नौ स जहौ मत्वा वशीकृतिम् । श्रीदानन्तं न त्यजेति वारितोऽपि तया ऋषिः ।।९८।।
तदाहृताग्न्यरिभ्यः श्रीस् ततोऽनन्तं स्मरन्नटन् । वनेऽनन्तः क्वेति स गो-द्रुगाः पृष्ट्वाप कश्मलम् ।।९९।।
तस्मै नीत्वा वृद्धविप्र-रूपेण पुरमद्भुतम् । स्वं रूपं दर्शयामास तुष्टावानन्तमप्यसौ ।।१००।।
जय सर्वेश्वरानन्त विश्वव्यापिन्जनार्दन । त्वन्मायामोहितधिया कृतान्मन्तून्क्षमस्व मे ।।१०१।।

नन्विद**मनन्तव्रत**मनन्तफलम्। चातुर्मास्यादिफलवत्प्राशस्त्यबोधकोऽर्थ इति चेद्गुणवादोऽनुवादोऽर्थवाद इति च त्रेधाऽर्थवादः।'*विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते। भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः।* ' '*आदित्यो यूप इत्यादौ गुणवादो विरोधतः। अग्निर्हिमौषधं मानान्तरसिद्ध्यानुवादकः। भूतार्थवादः प्रामाण्याद्वाक्यैक्यादङ्गिदेववत्।* 'अत्र चराचरजगद्विकारावर्तित्वेनावर्तात्पृथक्त्वेन चोपास्यस्यानन्तस्य च प्रतिपादनात्तत्प्राप्तिरूपानन्तफलस्य नार्थवादत्वं अनन्तफलं नामैकसमयावच्छेदेन सर्वकामानुभवोऽयं चात्मज्ञानादेव '*यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वकामान्सह ब्रह्मणा विपश्चिता* ' इति श्रुतेः अज्ञानी पुरुषः क्रमेण विविधानि कर्मफलभूतानि शरीराणि गृहीत्वा चक्षुरादिकरणापेक्ष उपाधिकृतेन जलसूर्यकादिवत्प्रतिबिम्बभूतेन जीवरूपेण तं तं भोगमनुभवति ज्ञानी तु सर्वान् भोगान्युगपदेवानुभवति ईदृशं फलमस्माद्व्रताल्लभ्यते न तु चातुर्मास्यादिवदक्षय्यं प्राशस्त्यबोधकमतोऽनन्तव्रतमिदं।।९२।। **दर्भ**निर्मित**सप्तफण**रूपे **शेषे**।।९३।। **ब्रह्मणे** ब्राह्मणाय।।९४।। **संतर्प्य** भोजयित्वा **चतुर्दशे** वर्षे।।९५।। इतरव्रते स्त्रियोऽस्वातंत्र्येऽपि परमार्थे स्वातंत्र्यं द्योतितमनेनान्यथा कथमीशप्रसादः।।९६।। **यांतौ** गच्छन्तौ **श्रीः** संपत् **मानः** सत्कारस्तद्युक्तौ।।९७।। **वशीकृतिं** वशीकरणं **तया** पत्न्या **वारितोऽप्यग्नौ जहौ** तत्याज।।९८।। **अग्नि**शत्रु**भ्यो** निमित्तेभ्योऽनंतेनेति शेषः **श्रीर्हता** वैराग्यार्थमयमनुग्रह एव **अटन्**पर्यटन् **गौ**र्वृषो **द्रु**राम्रवृक्षः **गौ**र्धेनुः ताः **क्वानंत इति पृष्ट्वा कश्मलं** मूर्छां प्राप।।९९।। **विप्ररूपेणा**नंतेन **असौ** ऋषिः।।१००।। **मंतून**पराधान्।।१०१।।

।। श्रीमदनन्त उवाच ।।

न दैन्यं दुष्कृतं तेऽत्र श्रियं भुक्त्वा पुनर्वसुः । नक्षत्रेषु प्रसादान्मे भविष्यसि महामुने ।।१०२।।

।। ऋषिरुवाच ।।

केऽपि सत्फलिताम्रस्य फलं नाश्नन्ति गोर्मुखे । तृणं नैति पशोश्चापि स्वाद्वप्पूर्णे सरोवरे ।।१०३।।

जीवास्पृष्टेऽग्रतो दीनौ खरेभौ च द्विजो जरन् । एते दृष्टा मयैतेषां कुतोऽभूदीदृशी स्थितिः ।।१०४।।

।। श्रीमदनन्त उवाच ।।

शिष्यान्नापाठयन्मत्तो विद्वांस्तेनाम्र ईदृशः । गौर्जाता मोघभूदानाद् वृषोऽदाताभवद्धनी ।।१०५।।

अन्योन्यदानग्रहणादीदृश्यौ स्तः सरस्युभे । खरः क्रोधीभो मदी च द्विजोऽहं तेऽपि मोचिताः ।।१०६।।

इति लब्धवरोऽनन्तं नत्वैत्य स तथाभवत् । तस्माद्व्रतोत्तमं धर्म व्रतं चर हितं भवेत् ।।१०७।।

इति कृष्णोऽब्रवीत्सोऽपि व्रतं कृत्वा हताहितः । अकण्टकं चिरं राज्यमृद्धं भुक्त्वामृतं ययौ ।।१०८।।

त्वमप्याचर विप्रेदमत्रामुत्रापि सौख्यदम् । इत्युक्तः प्रभुणानन्त-व्रतं चक्रे द्विजोत्तमः ।।१०९।।

तत्र स्थित्वा स्वकैः सार्धं प्रेत्य सायुज्यमाप्तवान् । तद्वंशजा अपि गुरोः प्रसादात्तादृशोऽभवन् ।।११०।।

त्वमपीदृक्तत्प्रसादाद् भक्तिमानसि सद्गुरौ । मा भीस्तरिष्यसि भवं मृगतृष्णोपमं द्रुतम् ।।१११।।

इति श्रीगुरुचरिते भक्तियोगे भक्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।

आदितः विंशोऽध्यायः ।।

अत्रास्मिन्जन्मन्यात्मदर्शनप्रभावा**न्नक्षत्रेषु पुनर्वसुर्भविष्यसि**। पुण्यातिशयादाकल्पं ततः सायुज्यं गमिष्यसीति भावः भोगेनैव पुण्यविलयात्।।१०२।। **गोर्मुखे** पशोश्च मुखे।।१०३।। **खरश्च इभो** हस्ती च **जरन्**वृद्ध **ईदृशी स्थितिः** कष्टा।।१०४।। **विद्वान्सन्मत्तः** निष्फल**भूमिदानात् धनी** सन् **अदाता**।।१०५।। **सरसी** द्वे सरोवरे **मदी** हस्ती ये त्वया दृष्टा**स्तेऽपि मोचिताः** पापबंधनात्।।१०६।। **एत्या**ऽगत्य हे **धर्म**।।१०७।। **सोऽपि** धर्मः **हत**शत्रुः **अकण्टकं** निर्वैरं **ऋद्धं** समृद्धं।।१०८।।१०९।।११०।। **मा भीः** संसाराद्भयं माऽस्तु ते तत्कुलजत्वात् **मृगतृष्णा**प्रायं **भवं द्रुतं तरिष्यसि** एतेन भगवद्भक्तानां संसारसागरो मृगतृष्णोपम इति मोक्षसौकर्यं सूचितं।।१११।।

।। इति टीकायां विंशोऽध्यायः।।

अथैकविंशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

साधूदितं चरित्रं भो प्रभोर्धन्यं दिनं त्विदम् । क्षणमात्रोऽपि कालोऽद्य नातीतस्तत्कथामृते ।।१।।

।। सिद्ध उवाच ।।

तन्तुको नाम भक्तोऽभूत् त्रियामं भगवत्प्रियः । संसारयात्रां निस्तीर्य याममात्रं तमाभजत् ।।२।।

तद्बन्धुता कदाचित्तं श्रीशैलं गन्तुमाह्वयत् । स प्राह मे मठः शैलः श्रीगुरुर्मल्लिकार्जुनः ।।३।।

सा तं निषिध्य मूर्खोऽयमिति मत्वा ययौ नगम् । कुतो नेतोऽसीत्यजेन पृष्टोऽपि प्राह पूर्ववत् ।।४।।

ततो माघेऽल्पकालेन शिवरात्रिरुपस्थिता । मध्याह्ने तद्दिनेऽजस्तं प्राह शैलोत्सवोऽद्य सन् ।।५।।

।। तन्तुक उवाच ।।

त्वत्पादाब्जोत्सवान्मन्ये क्वापि नास्त्यधिकोत्सवः । इदं प्रत्यक्षमज्ञाय मुधा मुग्धा भ्रमन्ति कौ ।।६।।

तच्छ्रुत्वा प्राह भगवान्मा ब्रूहीदं जगत्प्रभुः । सर्वत्रावस्थितोऽप्येष सत्क्षेत्रमहिमा वरः ।।७।।

महातपस्विभिः क्षेत्रं पवित्रीकृतमस्ति तत् । परमात्मा तत्प्रभावात् तत्र जागर्त्यनारतम् ।।८।।

अतस्तत्रैव भजतां कार्यसिद्धिर्भवत्यरम् । महातपस्विनो धन्याः स्वयं मुक्ता अपीतरान् ।।९।।

मोचयन्ति स्वतपसा जन्मसंसारबन्धनात् । लोकोद्धृत्यै प्रजायन्ते सत्तपस्विविभूतयः ।।१०।।

तत्संचारस्थलरजः-संस्पर्शोऽप्यत्र मुक्तये । अतस्तत्सेवितक्षेत्रे लोको यास्यति सादरम् ।।११।।

एह्यद्य योगगत्याद्रिं गत्वा ते दर्शयामि तत् । इत्युक्त्वा पादुके दिव्ये धारयित्वा दृढं दृशौ ।।१२।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथैकविंशोऽध्यायः।। *श्रीशैलयात्रैकविंशे सद्भक्तिस्तन्तुकस्य च। नन्द्युद्धारः कविद्वन्द्वसमुत्कर्षः प्रकीर्तितः।।१।।* ।।१।। **त्रियामं संसारयात्रां निस्तीर्य तं** श्रीगुरुम्।।२।। **बन्धु**समूहः ग्रामजनेत्यादिना तल्।।३।। **सा** बन्धुता **नगं** श्रीशैलं **तं** स्थितं दृष्ट्वा **कुतः नेतोऽसि** गतोऽसी**ति** श्रीगुरुणा पृष्टः **पूर्ववत्** *मठः श्रीशैलः भगवान् श्रीगुरुर्मल्लिकार्जुनः* इति **प्राह**।।४।। **तद्दिने** व्रतदिने **सन्** शोभनः।।५।। **मुधा** व्यर्थः **मुग्धा** मूर्खाः।।६।। हे अङ्ग तन्तुक।।७।। **तत्प्रभावा**त्साधुतपःप्रभावात् **अनारतं** नित्यं।।८।। **इतरा**न्मन्दमतीन्।।९।। लोकोद्धाराय।।१०।। साधु**संचार**संबन्धिधूलयः।।११।। **तत्**क्षेत्रं श्रीशैलाख्यं।।१२।। **अमुं**

निमीलयित्वा श्रीशैलं सह तेन ययौ क्षणात् । प्राहोन्मील्य दृशौ पश्य श्रीशैलममुमित्यजः ।।१३।।

सोऽप्युन्मीलितदृग्दृष्ट्वा श्रीगिरिं तदनुज्ञया । क्षौरस्नानादि कृत्वागाद् द्रष्टुं श्रीमल्लिकार्जुनम् ।।१४।।

यान्तं स्वकः प्रेक्ष्य तमाह नोऽनु-यातोऽसि कस्मान्न युतिं करोषि।
अद्य क्षणाच्छ्रीगुरुणाऽऽहृतोऽस्मी-त्युक्तोऽपि तेनोक्तममंस्त मिथ्या ।।१५।।

तस्मै यथास्वं स निवेद्य भक्तो। गुर्वङ्घ्रिपद्मद्वय एकतानः।
प्रासादमेत्यान्तरनेकलोक-व्याप्तं विवेशेश्वरदर्शनाय ।।१६।।

तत्रोपविष्टं गुरुमर्चयन्ति। सर्वेऽपि कश्चिन्न हि तत्र देवः।
इत्थं विलोक्यापि गुरुं प्रपूज्य। पुनर्गुरुं प्राप्य तदुक्तवान्सः ।।१७।।

अत्र त्वमेवासि कुतोऽज्ञलोका। आयान्ति हित्वा निकटस्थितं त्वाम् ।
व्याप्याखिलं त्वं परिपूर्णविश्वं। दशाङ्गुलं तिष्ठसि वक्ति वेदः ।।१८।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

एकः परात्मा भजतां तथापि। स्थानप्रभावः प्रिय भिन्न एव ।
स्थानं त्विदं सर्वजनाश्रयं सन्। मुक्तिप्रदं शृण्विह पूर्ववृत्तम् ।।१९।।

विमर्षणो नाम नृपः किरात-देशे कृती क्षात्रवृषप्रवीणः ।
द्विजातिभक्तोऽपि च भूतमात्र-हिते रतः साधुजनानुयायी ।।२०।।

श्रीशैलं पश्येत्यजः श्रीगुरुः **प्राह**।।१३।। **श्रीमल्लिकार्जुनं द्रष्टुमगा**द्देवालयं।।१४।। **स्वकः** स्वजनः **यान्तं** देवदर्शनार्थं गच्छन्तं **तं** तन्तुकं **युतिं** संगतिं **अद्य क्षणाच्छ्रीगुरुणा** आनीतो**ऽस्मीति** तन्तुके**नोक्तोऽपि** तदुक्तं **मिथ्या**ऽसत्यं मन्यते स्म।।१५।। **यथास्वं** यथायोग्यं **स** तन्तुकः विज्ञाप्य **एकतानो**ऽनन्यवृत्तिः **प्रासादं** देवगृहं मल्लिकार्जुन**दर्शनार्थं अनेकलोकव्याप्तमन्त**र्गृहं प्र**विवेश**।।१६।। **उपविष्ट**मासीनं **गुरुं तत्र** गुरोरन्यः कोऽपि **देवो ने**ति दृष्ट्वा।।१७।। **निकटस्थितं** समीपवर्तिनं साक्षित्वेन बुद्धिस्थितं वा हे **परिपूर्ण** विवर्तादप्यधिकोऽसीति वेदोक्तिः।।१८।। **इह पूर्ववृत्तं** कथयामि सावधानेन **शृणु**।।१९।। **कृती** कुशलः पुण्यवान् **क्षात्र**धर्मनिपुणः

स्त्रीलम्पटः प्राग्गुणतो निषिद्धभुक्। शैवोत्तमः शङ्कररूपचिन्तकः ।
तं प्राह साध्वी महिषी कथं शिवे । भक्तिर्दृढा धर्मविरुद्धचेष्ट ते ।।२१।।

।। राजोवाच ।।

पम्पापुरे श्वाभवमाद्यजन्यामुच्छिष्टमत्तुं शिवसद्म यातम् ।
हन्युर्जना द्वारि मृतिक्षणेऽजो । दृष्टोऽर्चितः प्रोज्वलिताश्च दीपाः ।।२२।।
प्रदक्षिणं तं हि परीत्य शैवे । दिने मृतस्तेन नृपोऽत्र शैवः।
ये दुर्गुणास्ते श्वनिसर्गजोत्थाः । स्युः पूर्वसंस्कृत्यनुगो हि जीवः ।।२३।।
प्राङ्मे जनिः क्वेति तयाह पृष्टः। प्राक्त्वां कपोतीं सति चञ्चुमांसाम्।
चिल्लोऽहनच्छ्रीमदगे शिवाग्रे । प्राणार्पणान्मे महिषीह जाता ।।२४।।
क्वेतो भवान् यास्यसि चाप्यहं क्व। शंसेति पृष्टः स तु सिन्धुदेशे ।
राजा भविष्याम्यपि सृञ्जयोत्था । मत्स्त्री त्वमग्रेऽपि कलिङ्गजा त्वम् ।।२५।।
सौराष्ट्रकेऽहं खलु मागधी त्वं । गन्धारजावन्तिदशार्णजौ च।
नृपोऽप्यनन्तोऽपि ययातिजा त्वं । पाण्ड्योऽहमग्रेऽपि विदर्भजा त्वम् ।।२६।।
स्मरोपमो धीगुणशीलशाल्यहं । वृत्त्वा तदा त्वां रतिभां स्वयंवरे ।
त्वया सहेष्ट्वा पुरुदक्षिणान्मखान्। सम्राट्तया प्राप्य सुतान्सुभोगयुक् ।।२७।।

साधुजनसेवकः।।२०।। **महिषी** अभिषिक्तपत्नी।।२१।। **मृतिक्षणे** मरणकाले**ऽजः** शंकरः पूजितो **दृष्टः तं** शिवं **प्रदक्षिणं** परिक्रम्य **शैवे दिने** शिवरात्र्यां माघकृष्णचतुर्दश्यामिति यावत् **तेन** कारणेना**त्र** जन्मनि शिवभक्तो राजाऽभवम्।।२२।। शुनोऽपि **निसर्गजा** स्वभावजन्या प्रकृतिस्तदुत्पन्नाः **हि** यतः **जीवः पूर्वसंस्कृति**म**नुग**च्छतीति तथा '*कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते* ' इति स्मृतेः। अतएव विदुषोऽपि प्रकृत्यधीनचेष्टा '*सदृशं चेष्टते स्वस्या* ' इति वचनात्।।२३।। पूर्वं मम जन्म कुत्र जात**मिति तया पृष्टः** राजा**ऽऽह श्रीमदगे** श्रीशैले।।२४।। **शंस** कथये**ति** तया **पृष्टो** राजा प्राह **अग्रे** तृतीयजन्मनि।।२५।। पञ्चमजन्मनि आवां **अवन्तिदशार्णजौ अग्रे** सप्तमजन्मनि **पाण्ड्य**देशजो**ऽहं त्वं विदर्भजा**।।२६।। **मखा**न्यज्ञानिष्ट्वा '*येनेष्टं राजसूयेन मण्डलेश्वरश्च यः। शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः स* ***सम्राट्*** '

लब्ध्वात्मतत्त्वं घटजाच्च जीवन्-मुक्तो भविष्यामि सह त्वयैवम्।
राड्दम्पती वै प्रतिजन्म भूत्वा । मुक्तौ भविष्याव इति ह्यवोचत् ।।२८।।
शम्भोः पुरः साहजिकासुदानादेवं तिरश्चोऽपि गतिस्तु लोकाः ।
बुद्ध्वेदमायान्त्यपि देवता तु । स्थलानुमानात् खलु जागरूका ।।२९।।
इत्युक्त्वा धारयित्वेशः पादुके सङ्गमं क्षणात् । तमानीयेरयद् ग्रामं प्रहृष्टः प्रययौ स तु ।।३०।।
तत्रत्याः सङ्गमेऽदृष्ट्वा गुरुं खिन्ना अवेक्ष्य तम् । आयान्तमब्रुवन्यान्तः कस्मात् क्षौरं कृतं त्वया ।।३१।।
स प्राह मां क्षणान्नीत्वा श्रीशैलं भो यथाविधि । क्षेत्राचारं कारयित्वा सम्प्रत्यत्रानयत्प्रभुः ।।३२।।
तच्छ्रुत्वात्रैष मध्याह्ने दृष्टो ब्रूते मृषेति ते । मत्वैत्य सङ्गमे तत्र निशि सर्व उपोषिताः ।।३३।।
चक्रुर्जागरणं शैव-नामोच्चारणपूर्वकम् । ततः शैलाज्जनः प्राप्तः पश्चात्स प्राह विस्मितः ।।३४।।
श्रीशैलेऽयं शिवद्वारि तन्तुकः सकृदीक्षितः । तदा सप्रत्ययाः सर्वे ननन्दुर्विस्मिता भृशम् ।।३५।।
सद्गुरोः सेवया बाढं कर्मबन्धं निहत्य सः । सिषेवे परमानन्दं यत्र नो द्वन्द्वसाध्वसम् ।।३६।।
एकैकयापि भक्त्यैवं मुक्ताः कति न वेद तान् । कवी शिष्यावभूतां तौ मुक्तौ श्रीगुरुकीर्तनात् ।।३७।।
गुरुलीलामयास्ताभ्यां प्रभूता ग्रथिताः कथाः । तल्लीला वक्ति कः कार्त्स्न्याद्यत्र वेदोऽपि शङ्कितः ।।३८।।

।। नामधारक उवाच ।।

तस्य भावस्तत्ता **तया**।।२७।। **घटजा**दगस्त्यात् **एवं त्वया सह प्रतिजन्म** राज**दंपती भूत्वा**ऽन्ते **मुक्तौ भविष्याव इति** सोऽब्रवीत्।।२८।। साहजिकप्राण**दाना**न्न तु योगादिना प्रायोपवेशेन वा **तिरश्चोऽप्येवं गति**श्चेद्विदुषः किमु वक्तव्यं **जागरूका** शीघ्रमिष्टदा।।२९।। **ईरय**त्प्रेरयत् **स** तंतुकः।।३०।। **खिन्ना** ग्रामं यान्तः संतः त्वरया पश्चादा**यान्तं** तंतुकम्।।३१।। **स** तंतुकः।।३२।। **एष मध्याह्नेऽत्र दृष्टः** इदं **मृषा ब्रूते इति मत्वा सर्वे** कृतोपवासाः श्रीगुरुसमीपं कृतनिवासा वा।।३३।।३४।। **सकृदीक्षित** एकवारं दृष्टः।।३५।। **द्वन्द्वसाध्वसं** द्वैतभयं न।।३६।। **एकैकया** श्रवणादिलक्षणया।।३७।। **गुरुलीला**प्रचुराः **कथाः**।।३८।। **हि** यतः **वक्ता श्रोतुः** प्रश्नेच्छुः

कौ शिष्यौ सद्गुरोर्जातौ तन्मे कथय सादरम् । वक्ता हि श्रोतृपृच्छाशीः स्मृतिमेति यतः कथा ।।३९।।

।। सिद्ध उवाच ।।

नन्दिशर्मा द्विजः कश्चित् कुष्ठार्तः तुलजापुरि । त्र्यब्दं तेपे तपः स्वप्ने देव्योक्तं गच्छ चेश्वरीम् ।।४०।।

स चन्दलेश्वरीं प्राप्य सप्तमासं तपोऽतपत् । तयाप्युक्तं यतिं गच्छ स्थितं भीमामरायुतौ ।।४१।।

स प्राह तां गच्छ मर्त्यमिति वक्तुं न लज्जसे । परीक्षितं त ऐश्वर्यमियत्कष्टं कुतोऽर्पितम् ।।४२।।

इत्युक्त्वा स तपस्तेपे भक्तैर्देव्या स हापितः । यद्भव्यं तद्भवत्वेव कष्टमेतावदर्जितम् ।।४३।।

देव्याज्ञया तथैवाल्पं सह भोग्यमिति द्विजः । मत्वा स्वगतमानम्य देवीं भुक्तो ययौ यतिम् ।।४४।।

गन्धर्वपुरमासाद्य स यतिः क्वेत्यपृच्छत । पापं मत्वार्जुनाभं तं कुष्ठिनं नोत्तरं ददुः ।।४५।।

तं कश्चिदाह स्नात्वारं शिवरात्रिव्रतस्य च । पारणायै मठे देव आयास्यत्र तिष्ठ भोः ।।४६।।

अत्रान्तरे प्रभुः प्राप मठं भक्तास्तमब्रुवन् । द्विजोऽर्जुनश्वेतदेह इदानीं कश्चिदागतः ।।४७।।

विश्वसाक्षी तमाहूय प्राह हित्वामरान्नरम् । आयातोऽसि कुतोऽर्हः किं दोषोत्थस्थास्नुरुग्हृतौ ।।४८।।

तच्छ्रुत्वा मत्कृतं ज्ञातमनेनैष न मानुषः । प्रत्यक्षः परमात्मेति मत्वोचे तं क्षमाप्य सः ।।४९।।

मूढोऽहं कुत्सितमतिः पापात्मा पापसम्भवः । शरण्यं त्वां प्रपन्नोऽस्मि दयाब्धिं भक्तवत्सलम् ।।५०।।

मयि कुष्ठं समुत्पन्नं विवाहोर्ध्वं तदैव तु । पितृदारैरपि परि-त्यक्तं मां कोऽपि नेक्षते ।।५१।।

नाङ्गीकुर्वन्त्यपि सुरा भात्यतोऽपि मृतिर्वरम् । परात्मना त्वया नोचेत्स्वीकृतोऽत्र जहाम्यसून् ।।५२।।

यतः प्रश्नाद्भगवतः **कथा स्मृति**पथमागच्छत्येतद्भवत एव श्रुतं *प्रश्नमृतेऽपि ता* इत्यादि।।३९।। **ईश्वरीं** चन्दलाख्यां **गच्छे**ति **स्वप्ने देव्या** कथितं।।४०।।**तया** देव्या**ऽप्युक्तं** स्वप्न इति शेषः **भीमामर**जासंगमे **स्थितं**।।४१।। **ते** तव देव्याः।।४२।। **हापितो** देवालयाद्बहिर्निष्काशितः।।४३।। **सह** एकवारं भीमामरजासंगमगमनरूपं **कष्टं स्वगतं** स्वचित्ते भुक्तमस्यास्तीति **भुक्तः** पीता गावो भुक्ता ब्राह्मणा इति महाभाष्ये दर्शनात्।।४४।। **अर्जुनाभं** श्वेताङ्गं।।४५।। **अरं** शीघ्रं **देवः** श्रीगुरुः **भो** विप्र।।४६।। **अर्जुन**वृक्ष इव **श्वेतो देहो** यस्य।।४७।। **विश्वसाक्षी** श्रीगुरुः पूर्वजन्म**दोषो**त्पन्नस्थिरतरकुष्ठरोगपरिहारविषये नरो**ऽर्हो** योग्यो भवे**त्किं**।।४८।। **तद्**गुरोर्वाक्यं **श्रुत्वा तं** श्रीगुरुं **क्षमाप्य स** नंदी

१ अपघनः=शरीरावयवः

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

मा भीः पापोत्थरोगोऽयमियत्कालमनेन तु । भुक्तं पापमतो भक्तिर्मयि जाताचलामला ।।५३।।

अत्रास्ते सङ्गमे तीर्थ-राजोऽघौघविनाशनः । तत्र स्नाहीति संभाष्य सोमनाथमथाब्रवीत् ।।५४।।

विधिवत्कारयित्वा षट्-कूलतीर्थे सचैलकम् । अश्वत्थमर्चयित्वा द्राक् सोमनाथामुमानय ।।५५।।

सोऽप्युक्तवत् कारयित्वा तमानीय गुरोः पदे । उपानयत्तमाहेशः पश्योत्तिष्ठाखिलं वपुः ।।५६।।

स्वर्णीभूतं स तु स्वाङ्गमुत्थायोद्वीक्ष्य विस्मितः । किञ्चित्कुष्ठाङ्किताष्ठीवद् गुरुं प्राञ्जलिरब्रवीत् ।।५७।।

भगवन्किं कृतं त्वेतत् कुष्ठं शिष्टं कुतोऽल्पकम् । तच्छ्रुत्वा सस्मितं प्राह त्वत्संशयफलं त्विदम् ।।५८।।

इत्याश्राव्य गुरोर्वाक्यं प्रणिपत्याब्रवीद्वचः । सुधाप्यम्बुधिया पीता मृतिं नयति किं दवः ।।५९।।

स्प्रष्टाऽवित्वाद्दहत्यल्पं स्वभावं परिहृत्य किम् । हरे स्वभावः पूर्णत्वं तवानेनैति किं वद ।।६०।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

यद्भावो यादृशः क्वापि नान्यथा स्यात्स्वदोषतः । ग्रहीतुर्भात्यन्यथार्के जन्मान्धस्येव शून्यता ।।६१।।

मर्त्येन मम किं भूयादिति शङ्कोदिता त्वयि । तत्फलं त्विदमस्त्येकः प्रतीकारोऽत्र तं कुरु ।।६२।।

श्रुतिबृंहितया सिद्ध्येत् पुरुष्टुत्या त्वमर्त्यता । भविष्यत्यनया शुद्धिस् त्वं कृतार्थो भविष्यसि ।।६३।।

तच्छ्रुत्वा दीनवाग्लोलत्सर्वापघन[१] आह तम् । स्वामिन् सर्वान्तरस्थस्त्वं किं वाच्यं तेऽग्रतः प्रभो ।।६४।।

ऊचे।।४९।। **शरणे** साधुं **त्वां**।।५०।।५१।। **सुरा** देवा **अपि नाङ्गीकुर्वन्ति अतः** कष्टान्**मृति**र्मरणं **वरं** मनाक्प्रियं **असू**न्प्राणान्।।५२।। **मा भी**र्भयं माऽस्तु यतः **पापं भुक्तमतो मयि** विषये **भक्तिर्जाता** इयं **अचला** भविष्यति स्वानुभवेन देवोऽयमिति बुद्ध्या जनितत्वात्।।५३।।५४।। **विधिव**द्यथाशास्त्रं तदर्हमिति वतिः **सचैलकं** वस्त्रसहितं **अमुं** नंदिनं।।५५।। **सोऽपि** सोमनाथोऽपि यथो**क्तवत्कारयित्वा पदे** पदयो**रुपानय**त्समर्पयत् **ईशः** श्रीगुरुः।।५६।। **स्वर्णीभूतं** अभूततद्भावे च्विः **किञ्चि**दवशिष्टेन **कुष्ठेनाङ्किताष्ठीवद्**द्वयं यस्येदृशं स्वाङ्गं।।५७।। **सस्मितं** सहास्यं **प्राह** श्रीगुरुरिति शेषः।।५८।। नंदी इत्थं **गुरुवाक्यं** श्रुत्वा **सुधा**ऽमृतं जलबुद्ध्या पीतं चेन्मरणं **नयति किं दवो**ऽग्निः।।५९।। **स्प्रष्टु**रज्ञाना**दल्पं दहति किं** '*नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः। तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी नर* ' इति यन्नामशक्तिः स त्वं हरिः हरति पापानीति हरिः तत्संबुद्धौ हे **हरे अनेन** दोषावशेषदर्शनेन **तव स्वभावः पूर्णत्वमेति किं वद**।।६०।। **यादृशो** यस्य स्व**भावः** स कदापि **नान्यथा** व्यभिचारापत्तेः किंतु **ग्रहीतुर्दोषतोऽन्यथा भाति यथा** प्रकाशमानेऽ**र्के**ऽपि **जन्मान्धस्य शून्यता** प्रकाशराहित्यं स्वदोषवशादेव तद्वदत्रापि।।६१।। या **त्वयि शङ्कोदिता तत्फलमिदं**

लिपिमप्यक्षमो ज्ञातुं कथं स्तौमि पुरुष्टुत । अन्यत्किमपि कर्तुं मां यथास्वं विनियोजय ।।६५।।

प्रभुः प्राह सकृद्वक्त्रान् निर्गतं न पुनर्वचः । ममान्तः प्रविशत्येव दन्तावलरदोपमम् ।।६६।।

उक्तमेव त्वया कार्यमित्युक्त्वा भस्म मन्त्रितम् । प्रक्षिप्य तन्मुखे प्राह स्तुहि नानाविधोक्तिभिः ।।६७।।

सोऽपि गीष्पतिवद्भूत्वा तं स्तोतुमुपचक्रमे । प्रेमगौरवनम्राङ्गो हर्षगद्गदया गिरा ।।६८।।

साक्षात्तत्त्वमसीश त्वं कर्ता भर्ताव्ययो ध्रुवः । त्वं सर्वं खल्विदं ब्रह्मास्यात्मा साक्षी जगन्मयः ।।६९।।

धिया गुणैस्त्रिधाभूतात् स्वभेदात् सत्त्वलक्षणात् । भूतान्युद्भाव्य सर्वात्मन् विश्वं सृष्टं चराचरम् ।।७०।।

मायामयं ह्यस्वतन्त्रं वित्पात्रं कल्पितोऽत्र ना । सोऽपि त्वन्मायया भ्रान्तो भूत्वा संकल्पवान्सदा ।।७१।।

यात्यधो विस्मृतात्मा सत्-कर्मायत्तो वियोनिषु । भ्रमते भुक्तनिरयः कल्पेऽपि वासनाहृदा ।।७२।।

स्थित्वोद्भवति कल्पादौ प्राग्वत्सत्कर्मवानपि । गत्वोर्ध्वं पतति क्षीण-पुण्योऽधश्चन्द्रमण्डले ।।७३।।

ततोऽप्योषधिगो भूत्वा पुंसि रेतस्ततोऽप्यसौ । स्त्रीपुंयोगाच्छुक्ररक्त-मयो गर्भत्वमेत्यहो ।।७४।।

प्रतीकारोऽवशिष्टनाशोपायः **तमु**च्यमानं।।६२।। उपनिषद्**बृंहितया** प्रगल्भस्तुत्या यद्वा **पुरो**र्विस्तीर्णस्य व्यापकस्य ममाभेदप्रतिपादकस्तुत्या**ऽमर्त्यता** ब्रह्मत्वं त्वयि मयि च **सिद्ध्येत् अनया** तेऽविद्यादेः **शुद्धिस्त्वं** च **कृतार्थो भविष्यसि**।।६३।। **लोलत्स**र्वाङ्गं।।६४।। **अक्षमो**ऽसमर्थः **यथास्वं** यथायोग्यं।।६५।। गजदन्तसमं।।६६।।६७।।६८।। **अक्षमो**ऽसमर्थः **यथास्वं** यथायोग्यं।।६५।। गजदन्तसमं।।६६।।६७।।६८।। श्रुतिबृंहितयेत्येतदनुरूपां स्तुतिमाह। **साक्षाच्च**क्षुराद्यपेक्षबाह्यं सन्निकृष्टमव्यवहितं **तत्त्वमसि** हे **ईश**नशील यत**स्त्व**मीक्षिताऽतः **कर्ता** स्वतंत्रत्वात् कर्मानुसारेण जगतो **भर्ता**ऽपि त्वमेवा**व्ययो**ऽविनाशी अतो **ध्रुवो** नित्यः यद्वा य**स्त्वं** तत्पदवाच्यो**ऽव्ययो ध्रुव**श्च स एव त्वंपदवाच्यः **कर्ता भर्ता** च। ननु बुद्धेः परिणामित्वेन क्रियावेशात्कर्तृत्वं न त्वसंगस्यात्मन इति सांख्योक्तेः कथमस्य कर्तृत्वमिति चेत्करणत्वेन क्लृप्तशक्तिकायाबुद्धेः कर्तृता कल्पयितुं न शक्या कुठारादावदर्शनात् बुद्धेः कर्तृत्वे करणान्तरस्य कल्पनीयत्वाच्च। लौकिकवैदिकव्यापाराणां कर्तृत्वसापेक्षत्वाज्जीवः कर्ता '*कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्* ' इति न्यायात्। उक्तमहावाक्यविचारार्थं शमो विधेय इत्याह '***सर्वं खल्विदं ब्रह्म** तज्जलानिति शांत उपासीत* ' इति शमवाक्यं। तस्मात्सर्वमिदं ब्रह्म तज्जत्वात्तल्लत्वात्तदनत्वात्सर्वात्मके ब्रह्मणि रागद्वेषविषयासंभवादुपास्तिकालेऽपि शांतो भवेत्। एवं शांतेन किं चिन्तनीयं तदाह **आत्मा** व्यापकः **साक्षी** द्रष्टा न तु दृश्यः तर्हि दृश्यं किं तन्मयमित्याह **जगन्मयः** अधिष्ठानसत्तातिरिक्तान्यसत्ताभावात्।।६९।। हे विश्वा**त्मन्** जगदुपादानभूतमायाशक्तियुक्तमहत्तत्त्वाख्यसमष्टिबुद्धेः सकाशात्सत्त्वं लक्ष्यतेऽनेनेति तस्मा**त्सत्त्वलक्षणात्स्व**स्मादिभन्नात् सत्त्वादिगुणै**स्त्रिधाभूता**दहंकारा**द्भूतानि** आकाशादीनि कल्पयित्वा **विश्वं सृष्टं**।।७०।। **वित्पात्रं** ज्ञानपात्रं **ना** नरः पूर्वमुक्तः।।७१।। जीवस्य लोकान्तरगमनरूपः संसारः तृतीयाध्याये प्रथमपादे षड्भिरधिकरणैरुक्तोऽनुसंधेयः। **भुक्तः** पापफलरूपो **निरयो** येन स नानायोनिषु **भ्रमते कल्पेऽपि वासना**न्तःकरणेन।।७२।।

कललं प्राक् पञ्चरात्राद् बुद्बुदः सप्तरात्रतः । पेशी पक्षादर्बुदोऽथ भवति स्वस्थितो घनः ।।७५।।
मासा क्रूरः शिरो द्वाभ्यां ग्रीवाद्यङ्गानि च त्रिभिः । चतुर्भिस्त्वग्रोमनखाः पञ्चभिः षड्भिरप्यथ ।।७६।।
नासास्याक्ष्यादिरन्ध्राणि सप्तभिश्चलनं च धीः । अष्टभिर्नवभिः पूर्णो देही भूत्वेश्वरं जगौ ।।७७।।
जातो मृतः शश्वदहं वियोनीर्-मयोषिता भक्तिपराङ्मुखेन।
अवाङ्मुखं देव जरायुवीतं मामुद्धर त्रस्तमितो भजे त्वाम् ।।७८।।
एवं स्तुत्वा सूतिवायु-त्यक्तो विस्मृतलब्धधीः । रोरूयति जनुर्लब्ध्वा मोहितो माययेश ते ।।७९।।
अनभिप्रेतमापन्न आसनोत्थानचेष्टने । पराधीनतया भुङ्क्ते स व्यथां वक्तुमक्षमः ।।८०।।
ततोऽपि क्रीडनासक्तो वयस्यैरज्ञभावगः । तारुण्ये विषयासक्तो मत्तो दुर्जनसङ्गतः ।।८१।।
देवमायां स्त्रियं प्रेक्ष्य तद्भावैरजितेन्द्रियः । भोगोत्सुकः खलोऽज्ञात-कार्याकार्यो दुरध्वगः ।।८२।।
वार्धक्ये स्वजनत्रस्तो रुग्णोऽस्वस्थो जराकृशः । श्वासकासकफाविष्टः सम्भवत्यजितेन्द्रियः ।।८३।।
शतायुरपि रात्र्यार्धं हृतं शिष्टमपीदृशम् । कथंकारं नृजन्मापि श्रेष्ठं भक्त्या विना त्वयि ।।८४।।
तत्साफल्यं नवविध-त्वद्भक्त्यासक्तसङ्गतिः । त्वयि भक्तिः साधने द्वे त्वां याचे भक्तवत्सल ।।८५।।
भो जनात्रावतीर्णोऽयं सद्धर्मत्राणकारणः । परमात्मा परं ब्रह्म लीलाधाम्नैष नो नरः ।।८६।।

प्राक्कल्पवत् सत्कर्मवानप्यूर्ध्वं स्वर्गं **गत्वा** पंचाग्निविद्याक्रमेणासौ।।७३।। **पुंसि रेतो भूत्वा स्त्रीपुं**सयो**र्योगा**दृतुकालीनत्वात्।।७४।। **प्राक्**प्रथमं षट्कोशात्मस्थितः घनः सांद्रः।।७५।। **क्रूरः** कठिणः **द्वाभ्यां** मासाभ्यां **शिरः** संपद्यते **चतुर्भि**र्मासै**स्त्वक् पंचभी रोमनखाः**।।७६।। **षड्भिर्नासास्या**दिछिद्राणि **सप्तभिश्चलन**सामर्थ्यं **अष्टभिर**ध्यवसायलक्षणा पूर्वसंस्कारानुगता बुद्धिः **नवभि**र्मासैः सर्वाङ्गसं**पूर्णो देही भूत्वेश्वरं जगौ** नवभिरित्यत्र नवमे मासीत्यूह्यमेवमन्यत्रापि।।७७।। **शश्वत्पु**नःपुनः **वि**विधा **योन**यो **मयोषिताः** कष्टेनेति शेषः हे **देव जरायु**परिवेष्टितमधो**मुखं** पूतिगंधि**त्रस्तं मामितो** गर्भवासा**दुद्धर इतः**परं **त्वा**मीश्वरं मोक्षाय **भजे**।।७८।।७९।। **अनभिप्रेतं** स्वेष्टाद्विपरीतं प्राप्तोऽपि **वक्तु**मसमर्थोऽतः **पराधीनतया व्यथां भुङ्क्ते**।।८०।। **ततो** बाल्ये**ऽप्यज्ञा**नत्वं गतः द्रव्यादिना **मत्तः** प्रमत्तो वा।।८१।। **स्त्री**रूपां **देव**निर्मितां **मायां प्रेक्ष्य तद्वि**लासैर्मोहितोऽवशे**न्द्रियः अज्ञात**मैहिकामुष्मिकं **कार्यं** सदाचारादिरूपं पुण्य**मकार्यं** निषिद्धं पापं च येन स **दु**र्मार्गगः।।८२।। प्रतिकूलवर्तिभ्यः **जने**भ्य**स्त्रस्तः** रोगग्रस्तः कफश्वासाद्युपद्रववशा**दस्वस्थः जरया वार्धक्ये** मन्दाग्नित्वा**त्कृशः अजितेन्द्रियः** पुरुष एवं **संभवति**।।८३।। एवं **शतायुरपि रात्र्या** निद्राव्यवायाभ्या**मर्ध**मप**हृतं** अव**शिष्ट**मर्ध**मपीदृशं** बाल्यादिभिर्हृतं **श्रेष्ठमपि नृजन्म** त्वद्विषयक **भक्त्या विना कथंकारं** व्यर्थमेव।।८४।।**तज्जन्मसाफल्यं**

सेव्यताममृतत्वाय योगैर्वा श्रवणादिना । भजतोऽनुभजत्येष भगवान् भक्तिभावनः ।।८७।।
यथा तृणौघोऽग्निस्पर्शाद् भस्मसाज्जायते तथा । निःशेषाघं कृपांशेन निर्दग्धं मेऽमुना तथा ।।८८।।
भगवन् कति ते वाच्या वाङ्मनोऽविषया गुणाः । श्रुत्या नेतीति सिद्धेपि श्रद्धावद्योगिगोचर ।।८९।।
इत्यादिना बहु स्तुत्वा पदोः प्रणिपपात सः । शिष्टं कुष्ठं तदा नष्टं विशिष्टेष्टसुतुष्टितः ।।९०।।
तत्रैव स्थापयामास तं दत्त्वेष्टं वरं प्रभुः । सोऽप्यानीय वधूं स्थित्वा व्यरचद्विविधाः कथाः ।।९१।।
कवितां प्रसृतां लोके तस्य ज्ञात्वा नृकेसरी । कश्चित्कविरमंस्तेयं गर्ह्योदारापि नृस्तुतिः ।।९२।।
तद्ग्रामे केनचिन्नीतो गुरुस्तस्मै व्यदर्शयत् । उपास्यकल्लेशलिङ्गस्थं स्वं रूपं हृदर्चने ।।९३।।
पञ्चभिस्तं नवैः श्लोकैर् नित्यवन्मानसार्चने । स्तुवन्तं श्रीगुरुः प्राह क्वास्ते कल्लेश्वरो वद ।।९४।।
तच्छ्रुत्वा स तदा ध्यानं विसृज्य भगवान्स्वयम् । नृरूपेणावतीर्णोऽयमिति मत्वान्वगाद्गुरुम् ।।९५।।
नृकेसरिर्गुरुं प्राप्य रचितैः पञ्चभिः शुभैः । श्लोकैस्तुष्टाव तं प्राह हित्वेशं स्तौषि किं नरम् ।।९६।।

श्रवणकीर्तनस्मरणसेवनार्चनवन्दनदास्यसख्यमात्मनिवेदनसंज्ञक**नवविधत्व**द्विषयक**भक्ति**तत्पराणां भक्तानां **संगतिस्त्वयि** विषये **भक्ति**श्चेति **द्वे साधने त्वां** प्रति **याचे भक्तवत्सले**ति संबुद्ध्या भक्ताभीष्टमवश्यं पूरयसीति सूचितम्।।८५।। एवं स्तुत्वा अन्यान्प्राह **भो जने**ति **परमात्मा** परप्रेमास्पदत्वात्स एव **परं ब्रह्म** तर्हि कुतोऽयं साकार इत्यत आह **लीलाधाम्नाऽवतीर्णः** अवतारप्रयोजनं हेतुगर्भविशेषणेनाह **सद्धर्मत्राणकारणः** अतोऽयं न **नरः**।।८६।। यस्मादेवं तस्मादष्टाङ्गै**र्योगै**र्निष्कामकर्मानुष्ठानै**र्वा**ऽथवा **श्रवणादिनाऽमृतत्वाय** मोक्षार्थं भवद्भिः **सेव्यतां** यतोऽसौ **भक्तिभावनः** अतो **भगवान्भजतो** भक्ता**ननु**गृह्णाति *भजनं* नाम निरन्तरस्मरणं ध्यायति प्रोषितनाथा पतिमित्यत्र या निरन्तरस्मरणा पतिं प्रति सोत्कण्ठा सैवमभिधीयते एवमेवोपासकः *भक्तिशास्त्रार्पितधियोपेत्य तादात्म्याभिमानतश्चिरासनं भवेद्यत्र तदुपासनमुच्यत* इति वार्तिकोक्तेः इदमेवानन्दजनकं '*समाधिर्निर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यत* ' इति वचनात्।।८७।। **अघं** पापं **अमुना दग्धं**।।८८।। भो **श्रद्धावद्योगिगोचर श्रुत्या नेति** नेत्यस्थूलमनण्वित्यादिना **सिद्धेऽपि** ते रूपे **वाङ्मनो**ऽगोचरा वाङ्मनसयो**रविषया** नित्यतृप्तत्वाद्या **गुणाः कति वाच्याः** अनन्तत्वादवाच्या एव अत्र वाङ्मन इति द्वन्द्वैक्यं।।८९।। **पदोः** पादयोः '*धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः। ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतव* ' इति मनूक्तानां **विशेषेण शिष्टा**ना**मिष्ट**स्य श्रीगुरोः संतोषतः तदाज्ञापालनमेव संतोषः।।९०।।९१।। **उदारा** प्रगल्भाऽपि **नृस्तुति**र्निन्द्येति मन्यते स्म।।९२।। **तस्मै** नृकेसरये **हृदर्चने** मानसपूजायां।।९३।।९४।।९५।। **ईशं**

।। नरकेसर्युवाच ।।

भवान्मयाज्ञभावेन मानुषो लौकिको मतः । कृपयापास्य मेऽज्ञानं सत्त्वं रूपं प्रदर्शितम् ।।९७।।

तेन नष्टोऽद्य मे मोहस्त्वत्प्रसादाज्जनार्दन । प्राक्पुण्यं फलितं मेऽदः शिष्यालौ मां नियोजय ।।९८।।

भगवानपि सुप्रीतस् तस्मै दत्वांशुकं वरम् । प्राह कल्लेश्वरं विप्र भज तत्रापि मत्स्थितिः ।।९९।।

स प्राह भगवन्तेऽदः प्रत्यक्षं रूपमुत्तमम् । हित्वोत्सहे न गन्तुं मां त्वत्पादाब्जे स्थिरीकुरु ।।१००।।

मद्धाम्न्याप्तोऽस्यनायासाद् भगवन् भक्तकामधुक् । दयाब्धे मा कुरूपेक्षां दयनीयतमस्य मे ।।१०१।।

इत्युक्त्वा स पपाताग्रे तमाश्वास्य दयानिधिः । शिष्यत्वेनोररीकृत्य स्वात्मसौख्यमुपादिशत् ।।१०२।।

एवं भूत्वा कवी द्वौ तौ संग्रथ्य हरिसत्कथाः । तत्कीर्तनाच्छ्रद्धयात्र कृतकृत्यौ बभूवतुः ।।१०३।।

इति श्रीगुरुचरिते भक्तियोगे भक्तिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।

आदितः एकविंशोऽध्यायः ।।

सप्ताहपारायणे षष्ठः। अन्ते रसज्ञा वशा स्तोत्रं पठनीयम्।द्वितीयदिने आरम्भे श्रीगुरुस्तुतिः।

हित्वा नरं स्तौषि किं कुत्सितो नरः ***किंनरः*** देवापेक्षया दुर्गन्धादिना नराः कुत्सिताः तं *कुत्सिता नरा* यस्मात्तं वा।।९६।। **मया** मायया यो**ऽज्ञभाव**स्तेन त्वं **लौकिको मतः**। ममेति शेष इति योज्यं मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्चेति षष्ठीसापेक्षात्।।९७।। भवतो दर्शनं **अदः मे प्राक्पुण्यं फलितं शिष्य**पङ्क्तौ।।९८।। **अंशुकं** वस्त्रं **तत्रापि** कल्लेश्वरेऽपि।।९९।। **हित्वा गन्तुं नोत्सहे**।।१००।। ध्यानतो **मद्धाम्नि** चित्ते।।१०१।। **उरीकृत्या**ङ्गीकृत्य **स्व**स्य प्रतीचः **आत्म**नो ब्रह्मणो यदभेदज्ञानानुभव**सौख्यं** तदुपदिदेश।।१०२।।१०३।।

इति श्रीगुरुचरिते टीकायां एकविंशोऽध्यायः।।२१।।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

श्रुतो गुणानुवादोऽपि हरेस्तृप्तिर्न मे गुरोः । अतीव वर्धते तृष्णा शश्वच्छ्रवणपानतः ।।१।।

भवाननलसो नूनमुदारतम एव मे । पूर्वश्रेयःप्रभावेन सङ्गतोऽस्ति कृपाकरः ।।२।।

।। सिद्ध उवाच ।।

गुणानुवादक्षीराब्धेः कति पासि कथामृतम् । सच्चित्सुखस्य लीलानुरनन्तस्य परात्मनः ।।३।।

गुणान्कार्त्स्न्येन वक्तुं न क्षमः कोऽपीशितुस्त्वहम् । उच्चावचखगोड्डान-न्यायाद्वक्ष्ये यथामति ।।४।।

स भीमामरजातीर-विहारी भक्तवत्सलः । भक्ताधीनत्वमाश्रित्य सदाभूत्तन्मतानुगः ।।५।।

निराकारो निरीहोऽपि शुद्धसत्त्वस्वरूप्यजः । बुद्ध्या सङ्गत्य लीलार्थं स्वयं विश्वात्मकोऽभवत् ।।६।।

सर्वत्र स्थितिमांस्त्वेष पश्येयुर्मुनयो हि माम् । इति मत्वा त्रिधा भूत्वा त्रिषु लोकेषु संस्थितः ।।७।।

तत्रापि भुवि मे भक्ता भूयांसो मन्मयास्त्वहम् । तेषामगोचरोऽस्म्यस्मात् स्थेयं तत्रेत्यमंस्त सः ।।८।।

ततोऽत्र भगवान् भूमौ लीलाधाम्ना युगे युगे । भजतोऽनुभजत्येष श्रद्धाभक्तिप्रियः प्रभुः ।।९।।

किं वर्ण्यते भगवतो भक्तवात्सल्यमद्भुतम् । परिपूर्णोऽपि सन्तृप्तो भोक्तुं भ्रमति तद्गृहे ।।१०।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ द्वाविँशोऽध्यायः।। *द्वाविंशेऽष्टतनुर्भूत्वा दीपावल्युत्सवं व्यधात्। ददौ शूद्राय धान्यर्द्धिं क्षेत्रमाहात्म्यमाह च।।१।।* एतावा**न्गुणानुवादः श्रुत**स्तथा**पि मे** अलंबुद्धिर्**न हरेर्गुरो**र्गुणामृतस्येति शेषः **शश्व**त्पुनःपुनः **श्रवण**रूप**पानेन मेऽतीव तृष्णा वर्धते**।।१।। **उदारतमो** महत्तमो दातृतमो वा **पूर्व**पुण्यसामर्थ्यात् **कृपाकरः** कृपासागरः **भवान्**।।२।। हरे**र्गुणानुवाद** एव **क्षीर**सागरस्तस्मा**त्कथा**रूप**ममृतं कति पासि** अशेषपाने तव शक्तिर्नास्तीति भावः कथंभूतस्य **सच्चित्सुखस्य** चिदानन्दैक-रसस्य **लील**याऽविष्कृतनरदेहस्य **परात्मनोऽनन्तस्य** एतैर्विशेषणैः परब्रह्मरूपत्वं साधितम्।।३।। **कार्त्स्न्येन** समग्रत्वेन **वक्तुं कोऽपि न** समर्थः **अहं** तत्कथनपुण्येना-त्मशुद्धये **यथामति वक्ष्ये**।।४।। **आश्रित्या**ङ्गीकृत्य।।५।। यर्हि भक्तानुगश्चेत्तर्हि साकारो वा निराकारो वेति विचार्यमाणे '*न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र* ' इति न्यायात्साकारनिराकारयोर्विरुद्धत्वान्नीरूपमेव तत्त्वतो ब्रह्म रूपं तूपासनायामनुद्यते न तु तात्पर्येणेत्याह **निराकार** इति आकाररहितोऽपि निरिच्छोऽपि **बुद्ध्या** महत्तत्त्वेन **संगम्य स्वयं लीलार्थं विश्व**रूपोऽभूत्।।६।। **मुनयः** सनकादयः ब्रह्मविष्णुशिवरूपै**स्त्रिधा भूत्वा त्रिषु** सत्यादि**लोकेषु स्थितः**।।७।। **भूयांसः** प्रचुरा एतै रूपै**स्तेषा**मविषयो**ऽस्म्य**त**स्तत्र** भूलोके मया **स्थेयमित्यमंस्त**।।८।। **युगे युगे** तत्तदवसरं **अनुभजत्य**नुगृह्णाति।।९।। **तद्गृहे** स्वभक्तगृहे।।१०।। **भक्तानुग्रह** एव **लक्षणं**

अन्या अपि तु तल्लीलास् तादृश्यः सन्त्यनन्तशः । स्वकृते तु न ता विद्धि भक्तानुग्रहलक्षणाः ।।११।।
कलौ घोरेऽत्र नो भाग्यमुदितं हि युगे युगे । दुर्लभस्तपसापीशः स्मृत्यैव सुलभोऽत्र नुः ।।१२।।
स एष भगवांस्तत्र भक्ताधीनतयान्वहम् । निमन्त्रितो भक्तगेहे भिक्षान्नं बुभुजे प्रभुः ।।१३।।
दीपावल्युत्सवे सप्त प्रिया भक्ता जद्गुरुम् । स्वे स्वे गृहे नेतुकामा भिन्नवासाः समाययुः ।।१४।।
भवन्तं नेतुकामोऽद्य दीपाल्यां पञ्चवासरम् । प्राप्तोऽस्म्यद्यैव गन्तव्यमित्येकैकोऽब्रवीद् गुरुम् ।।१५।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

यूयं सप्तैक एवाहमेककालीन उत्सवे । सप्तग्रामेष्वेकदैव कथं मे गमनं भवेत् ।।१६।।
एकत्रैकैकघस्रे वा गतिरेकैकसद्मनि । सम्भवेच्चेत्कृतं तद्वद् भवद्भिर्मे वरं द्विजाः ।।१७।।
भक्ताधीनोऽस्मि मां यो यो नयेद्यास्यामि तत्र च । तच्छ्रुत्वान्योन्यं कलहं चक्रुर्नेष्याम्यहं त्विति ।।१८।।
निःस्वो धनीति द्वैतान्मां मा पाहि ह्यसि भो समः । भूतमात्रेऽत एहीति प्रोक्त्वा ते पतिताः पुरः ।।१९।।
निवार्य तान्सर्वगृहानेष्यामीत्युदितेऽपि ते । कैर्विश्वस्तव्यमित्यूचुर्भ्रान्ताः श्रीगुरुमीश्वरम् ।।२०।।
भगवानपि तद्भावं ज्ञात्वैकैकं रहो द्विजम् । सस्मितास्यः समाहूय प्राहोदारगिरा मुदा ।।२१।।
न वाच्यं क्वापि तेऽद्यैव गृहमेष्ये चरेत्यथ । तेऽपि सप्तैवमन्योन्यमशंसंतो ययुर्गृहान् ।।२२।।

यासां ता **लीलाः**।।११।। अन्यत्र **तपसापीशो दुर्लभः अत्र** तु **कलौ** पुरुषस्य **भक्त्यैव सुलभः** अयमिति शेषः।।१२।।१३।। **भिन्नवासाः** नैकग्रामाः।।१४।। **दीपाल्यां** दीपोत्सवे।।१५।। **एककालीन उत्सवे एकदैव सप्तग्रामेषु कथं गमनं भवेत्**।।१६।। सर्वैर्मिलित्वै**कत्रो**त्सवः कर्तव्य एवं कृते एकत्र **गतिः संभवे**दथवै**कैक**स्मिन्दिने **एकैक**गृहे *गतिः संभवेत्* भो **द्विजाः भवद्भि**रेवं **कृतं** चे**न्मे वरं** मनाक्प्रियं।।१७।। यस्मा**द्भक्ताधीनोऽस्मि** तस्मा**द्यो यो** भक्तो मां यद्गृहं **नयेत्तत्र यास्यामि अहं नेष्या**म्यहं नेष्यामी**त्यन्योऽन्यं कलहं चक्रुः**।।१८।। द्विजा ऊचुः भो भगवन् सर्वैश्वर्यसंपन्नोऽसि अतोऽयं **निःस्वो** दरिद्रस्तद्वेश्म न गन्तव्यं अयं **धनी** तद्वेश्म गन्तव्यमि**ति द्वैत**दृष्ट्या **मां मा** प्रेक्षेति शेषः किं तर्हि **पाहि** समदृष्ट्या रक्ष मां पालय यद्यपि सर्वेषां त्वमेव पालकस्तथापि द्वैतदृष्टिं मा कृथाः यतो **भूतमात्रे समोऽसि** अत **एहीति प्रोक्त्वा ते पुर**तः **पतिता** अभूवन्।।१९।। तथा **ता**न्पतितान्प्रति **सर्वे**षां **गृहा**न्प्रत्ये**ष्यामीति** भगवतो**दितेऽपि कैर्विश्वस्तव्यमित्यूचुः** अत्र हेतुः **भ्रान्ताः** भगवत्तत्त्वानभिज्ञाः।।२०।। **भावं** भक्तिं **रह** एकान्ते **उदारगिरा** प्रगल्भवचनेन।।२१।। **ते** तव **गृहे अद्यैव एष्ये** त्वया **क्वापी**दं **न वाच्यं** निःशंकं **चर** गच्छ **अशंसन्तः** परस्परमकथयन्तः।।२२।। श्रीगुरुर्ग्रामान्तरं गच्छतीति श्रुत्वाद्य **नो**ऽस्मा**न्हित्वा भवान्क**

तत्रत्यैः क्व भवान् याति नो हित्वेत्युदितेऽत्र तु । तिष्ठामीति प्रभुः प्रोक्त्वाष्टौ ग्रामानेकदाभ्यगात् ।।२३।।
स्थलेषूवास पञ्चाहमष्टस्वपि जगन्मयः । लौकिकैकस्वरूपेण ततोऽस्थात् सङ्गमे प्रभुः ।।२४।।
स्वाद्वन्नशाटीकन्त्राण-पादुकार्पणसेवनैः । सन्तोषितः स भगवान् भक्तैराप मुहुर्मठम् ।।२५।।
पुनः सर्वेऽपि ते प्राप्ताः कार्तिक्यां तु परस्परम् । ऊचुर्मे धाम्नि पञ्चाहं दीपाल्यां संस्थितो गुरुः ।।२६।।
तत्रत्या अपि तं प्राहुः पञ्चाहं क्वापि नो गतः । अत्रैव प्रभुरस्माभिर् दीपावल्युत्सवं व्यधात् ।।२७।।
मृषा मृषेति चान्योन्यं तदा प्रलपतो विभुः । तान्प्राह तूष्णीं स्थेयं भोः सर्वत्राहं गतः खलु ।।२८।।
तदा ते चकिताः सर्वे तुष्टुवुर्नतकन्धराः । भगवंस्ते परं पारं महिम्नोऽजानतां हि नः ।।२९।।
कथं लौकिकवाचस्त्वं स्तोत्रपात्रो भविष्यसि । श्रुतवाचामपि ब्रह्मन् न गुहाशयसंस्थित ।।३०।।
विश्वव्यापक तेऽनन्त दिव्यं जन्मक्रियाप्यज । नान्यार्थं नोऽमृतत्वार्थमवतारप्रयोजनम् ।।३१।।
श्रूयते दृश्यतेऽदो यत् त्वन्मायेयं दुरत्यया । मा वृणोत्विति भो श्रीमन् देहि नो दक्षिणां वराम् ।।३२।।
इत्युक्त्वा प्रणतिं चक्रुस्तान्सन्तोष्य जगत्प्रभुः । सर्वान्प्रस्थापयामास स्वं स्वं धामापि ते ययुः ।।३३।।

यातीति तत्रत्यैस्तद्ग्रामभवै**रुदिते** सति अहं **तु अत्र तिष्ठामीति** तान्**प्रोक्त्वा एकदै**कस्मिन्नेव काले**ऽष्टौ ग्रामानभ्यगात्**।।२३।। **लौकिकं** लोकप्रसिद्धं **एकं** मुख्यं य**त्स्वरूपं** तेन अ**ष्टस्वपि स्थलेषु** भक्तगेहेषु **पञ्चाहमुवास** नात्र चित्रं यतो **जगन्मयः** ईश्वरः **ततो** दीपोत्सवानन्तरं पूर्वव**त्संगमेऽस्थात्**।।२४।। **स्वादु** मिष्टं **शाटी** परिधानीय वस्त्रं **कंत्राणं** शिर-स्त्राणं काष्ठमये **पादुके** एषां **समर्पणं** पादसंवाहनादि**सेवा**दि च तैः कृत्वा **भक्तैः संतोषितो मठं** प्राप।।२५।। **कार्तिक्यां** कृत्तिकायुक्तां पौर्णमास्यां नक्षत्रेणेत्यण् टिड्ढाणञिति ङीप् **मे धाम्नि** गृहे **दीपावल्यां पञ्च**दिनपर्यन्तं प्रभुः स्थितः।।२६।। इतो ग्रामात् **क्वापि** ग्रामान्तरं **नो गतः व्यधा**द्यकृणोत्।।२७।। त्वं **मृषा** भाषसे त्वं **मृषेति** कलहं कुर्वत**स्तान्प्राह भो** विप्रा भवद्भि**स्तूष्णीं स्थेयं** न कस्यापि मृषा यतो**ऽहं सर्वत्र** सर्वान्प्रति गतः।।२८।। **नता** नम्रा **कंधरा** ग्रीवा येषा ते **महिम्नः परं पारमजानतां** अस्माकं।।२९।। **लौकिकवाचः स्तोत्रपात्रं कथं भविष्यसि** यतः **श्रुतवाचामपि** स्तोत्रपात्रं **न** भवसि अतः किमु वक्तव्यमन्यत् ननु '*यो वेद निहितं गुहायां* ' इति श्रुतेः कथं शास्त्रवाचोप्यपात्रत्वमत आह **गुहाशयो** बुद्धिस्तस्यां ज्ञातृज्ञानज्ञेयत्रिपुटीव्यवहारस्य भ्रान्तिविवेकाभ्यां संपादितयोर्भोगमोक्षयोश्च निगूढत्वात्तया बुद्ध्योपलब्धत्वेन तत्र **ब्रह्म संस्थित**मिति श्रुतिर्ज्ञापयति '*एष सर्वेषु भूतेषु* ' इति '*यद्वाचानभ्यु..* ' इति वाक्कर्तव्यस्तोत्राविषयत्वं प्रतिपादयति अत उक्तं **गुहाशयसंस्थिते**ति यद्वा गुहायां शेत इत्यसौ **गुहाशयः** अधिकरणे शेतेरित्यच् सम्यक् स्थितः **संस्थितः** कूटस्थः स चासौ।।३०।। **ते जन्मा**वतारोऽलौकिकः **क्रिया** कर्मा**प्य**लौकिकं **नान्यार्थं** त्वत्क्रीडाद्यर्थं न आप्तकामत्वात् किं तु तवा**वतारप्रयोजनं नो**ऽस्माकं मोक्षार्थमेव।।३१।। तर्हि मदंशानां भवतां बन्धोऽस्ति किं न वास्तवबंधाभावेऽपि **माया**वरणरूप एव बंधः नान्यः यदुक्तं '*न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वा मुक्त इत्येषा परमार्थता* ' इति

एवं स भगवान्नूनं पूर्णः सच्चित्सुखात्मकः । भक्ताधीनतया चेष्टा दुर्विभाव्या व्यधादिह ।।३४।।

जात्याचारवयोरूप-विद्यार्थगुणपौरुषम् । नापेक्षते हि भगवान् श्रद्धाभक्तिप्रियः प्रभुः ।।३५।।

शृणु चित्रं प्रवक्ष्यामि कश्चिच्छूद्रो गुरुप्रियः । दास्येनैवैहिकान् भोगान् भुक्त्वान्ते मुक्तिभागभूत् ।।३६।।

कृषीवलः स तु सदा स्वकर्मासक्त एव तम् । स्वक्षेत्रादामठं यांतं ननाम प्रत्यहं गुरुम् ।।३७।।

तद्गमागमसौख्यार्थं प्रत्यहं सङ्गमायनम् । अपास्य कण्टकाश्मादीन् सुगमं विशदं व्यधात् ।।३८।।

नत्वा पूर्ववदायान्तं मुदा तद्गतमानसः । कृषिं चकार तं दासं पृच्छति स्मैकदा गुरुः ।।३९।।

सदा मेऽग्रे कुतः शूद्र पतस्येतेन किं वद । साध्यं किं तेऽस्ति मनसि तदद्योद्धाटयाखिलम् ।।४०।।

।। शूद्र उवाच ।।

भजामि सुखकामस्त्वां क्षेत्रं ते कृपयाखिलम् । मनोज्ञं भाति तत्प्रेक्ष नोपेक्ष्यः पादजोऽप्यहम्।।४१।।

तदा सस्मितमीशोऽपि सर्वं क्षेत्रं विलोक्य तत् । आप्रादुर्भूतसस्यं तं प्राह द्राक् छिन्ध्यदोऽखिलम् ।।४२।।

विश्वासो मेऽस्ति वाक्ये चेच्छिन्धि मे यावदागमः। इत्युक्त्वा संगमं गत्वा प्रभुः कर्माह्निकं व्यधात्।।४३।।

गत्वा शूद्रोऽपि पत्ये तु प्राह निश्चित्य ते करम् । क्षेत्रं देहीति स प्राह नेदं साध्वद्य कर्षक।।४४।।

शश्वत्प्रार्थ्य परुद्दत्त-द्विगुणं भागमङ्घ्रिजः । दातुं निश्चित्य जग्राह प्रमापत्रमतोऽपि सः ।।४५।।

आहूयाथार्थलुब्धान्स लोकान्यावच्छिनत्ति तत् । सापत्या क्षेत्रमेत्य द्राग् वारयामास तं वधूः ।।४६।।

अतो मायावरणमोक्षरूपां **वरां दक्षिणां देहि** यतो वयं ब्राह्मणाः।।३२।।३३।। **दुर्विभाव्या** दुर्ज्ञेयाः **व्यधाद्**व्यकृणोत्।।३४।। ब्राह्मणादि**जातिः** श्रुतिस्मृत्युदिता**चारः** बाल्यादि**वयः रूपं** चक्षुप्रियो गुणः परापर**विद्या अर्थो** धनं **गुणाः** क्षान्त्यादयः प्राणेन्द्रियशरीरबलं **हि** यस्मा**न्नापेक्षते** अनुकंपावसर इति शेषः। किंतु भक्तिमेवापेक्षत इति वक्तुं **श्रद्धाभक्तिप्रिय** इति विशेषणं **प्रभु**रित्यनेन दानसमयेऽप्यन्यैरनिवारणीय इत्युक्तं भवति '*न हित्वा शूरदेवानमर्तासोदित्सं‍तं भीमं नगां वास्यन्ते* 'इति श्रुतेः।।३५।। **मुक्तिभाक्** मुक्तियोग्यः।।३६।। कृषिरस्यास्तीति **कृषीवलः** रजःकृष्येति वलच् स्वकर्मानासक्त एव प्रवाहपतितं कर्म कुर्वन् मुक्त इव। मठादारभ्य **आमठं** मठपर्यन्तं वा **आयान्तं** गच्छन्तं।।३७।। **संगम**मार्गं **विशदं व्यधात्**।।३८।।३९।। **उद्धाटय** स्फुटं कुरु।।४०।। सुखं कामयत इति **सुखकामः** कर्मण्यण् **पादजः** शूद्रः।।४१।। ईषत्**प्रादुर्भूतं सस्यं** यस्मिन्तत्**क्षेत्रं** दृष्ट्वा **तं** शूद्रं **प्राह अखिलं** सस्यं शीघ्रं **छिन्धी**ति।।४२।। अह्नि भव**माह्निकं** कालाट्ठञ् **पत्ये** क्षेत्राधिपाय हे **कर्षक** शूद्र **साधु** शोभनं **न**।।४३।।४४।। **शश्वत्**पुनःपुनः गतवर्ष**दत्त**भागाद्**द्विगुणं** भागं **दातुं**

निधाः स्तोत्राणि मा छिन्धीति वदन्त्याः स कैशिके । चूर्णप्रतिनिधीकृत्य पद्धूलिं पुनराच्छिनत् ।।४७।।
स नोन्मत्तस्तु भरत-प्रन्हादकबिभीषणैः । मातापित्रग्रजास्त्यक्ता गुर्वर्थे का कथान्यतः ।।४८।।
सा गत्वेशं रुदत्यूचे मुण्डिवाक्यानुवर्त्यहो । क्षेत्रं छिनत्ति तेऽपक्वं प्रमत्तस्तं निवारय ।।४९।।
निवारणाय सोऽप्येकं दूतं प्रेरयदेत्य सः । तस्मै गम्भीरया वाचा स्वामिवाक्यं शशंस ह ।।५०।।
तं प्राह शूद्रोऽपि पत्ये शंसारब्धोद्यमस्य तु । पारं यास्ये नो बिभेमि तत्प्रमालिपिरस्त्यसौ ।।५१।।
दूतोऽप्यागत्य पत्ये तु तत्स्माचष्टेऽब्रवीत् स ताम् । शूद्र्यन्यथा कथं वाक्यं कार्यं सोऽप्यर्थधान्यवान् ।।५२।।
तच्छ्रुत्वा सा रुदत्याप क्षेत्रसीमां सुतान्विता । तच्छूद्रोऽप्यखिलं छित्वा गुर्वागममचिन्तयत् ।।५३।।
कृत्वाप्याह्निकमागच्छन्छान्तं सर्वमवेक्ष्य तम् । प्रणतं प्राह किमिदं कृतं साहजिकोक्तितः ।।५४।।
यदन्येन हृदापीदृक् कर्तुं शक्यं न भुव्यदः । कर्माद्य दुष्करं निन्द्यं त्वया कृतमतःपरम् ।।५५।।
कुतस्ते भविता वृत्तिर्दास्यसीशाय किं वद । अपक्वं हरितं सर्वं सस्यमेतद्वृथा गतम् ।।५६।।
स प्राहोक्तं कथमपि श्रुतवत्सद्गुरोर्वचः । तन्मेऽपि फलदं जन्म दत्तं येन स वृत्तिदः ।।५७।।
भक्तिश्चेदुक्तवद्भूयात्त इत्युक्त्वा ययौ गुरुः । सोऽप्याप स्वगृहं धीरो ध्यायन्हरिपदाम्बुजम् ।।५८।।

निश्चित्य प्रमाणपत्रं जग्राह सोऽपि पतिरपि ततः शूद्रात्प्रमाणपत्रं जग्राह।।४५।।४६।। **स्तोत्राणि** छेदनशस्त्राणि **निधा** निधेहि सस्यं **मा छिन्धीति वदन्त्या**स्तस्याः केशसमूहे पाद**धूलिं चूर्णप्रतिनिधीकृत्य** अभूततद्भावे च्विः एतेन ताडनभिया स्त्रियाः पलायनं शूद्रस्य पश्चाद्धावनं ध्वन्यते एवं कृत्वा **पुनराच्छिनत्**।।४७।। स्त्रिया बिभीषकोऽपि **स न** चो**न्मत्त** इति किमुन्मत्तेनेति कैमुतिकन्यायेनाह **भरते**न **माता प्रन्हादे**न **पिता बिभीषणे**ना**ग्रजः गुर्वर्थे त्यक्तः** गुरुशब्देनेश्वर उपलक्ष्यते तस्य सर्वेषामपि गुरुत्वात् **अन्यतः** सार्वविभक्तिकस्तसिः अन्येषां दारादीनां तु **गुर्वर्थं** त्यागे **का कथा** किमुतेति भावः।।४८।। **ईशं** प्रभुं **मुण्डी** संन्यासी **अपक्व**मिति छेदः पचो वः।।४९।। **सोऽपि** प्रभुरपि **तस्मै** शूद्राय।।५०।। **तं** दूतं **शंस** कथय मे मयाऽ**रब्धस्योद्यमस्य पारं यास्ये असौ** इयं **तत्प्रमालिपिरस्ति** अतस्तस्मा**न्न बिभेमि**।।५१।। तच्छूद्रवाक्य**माचष्टे स्म** कथयामास **स** प्रभुः **तां** शूद्रीं **अन्यथा वाक्यं कथं कार्यं** तर्हि तव करः कथं लभेदत आह **सोऽप्यर्थधान्यवानि**ति।।५२।। **आप** प्राप।।५३।। **छातं** कृत्तं उपलक्षणात्सस्यं स्वाभाविकवचनादपि **किमिदं कृतं**।।५४।। **य**त्कर्म त्व**दन्येन** मनसा**ऽपि** ईदृक्करिष्यामीति मन्तुमप्यशक्यं **निन्द्य**मपक्वछेदनात्।।५५।। **वृत्ति**र्जीविका **ईशाय** क्षेत्रपाय वैश्वानररूपाय वा '*अहं वैश्वानर* ' इति स्मृतेः।।५६।। **कथमप्यु**पहासादिनाप्यु**क्तं श्रुतव**च्छास्त्रवत् तुच्छात्सांसारिकनिर्वाहफलादप्यधिकं फलं मोक्षादि कुतो वृत्तिरित्यस्योत्तरमाह **जन्मे**ति तथा चोक्तं '*यो मे गर्भगतस्यादौ वृत्तिः कल्पितवान्स्वयं। शेषवृत्तिविधानार्थं स किं सुप्तोऽथवा मृत* ' इति।।५७।। एवं **भक्तिश्चेत्ते** तवो**क्तवद्भूयात्**।।५८।। **मूल**नक्षत्रे

कालेनाल्पीयसा सूर्य इते मूलर्क्षमम्बुदः । ववर्ष च्छिन्नमपि तद्यावनालाद्यवर्धत ।।५९।।
प्रादुर्भूतानसंभाव्यानङ्कुरानभितोऽमितान् । दृष्ट्वा जल्हादिरे सर्वे शूद्रय्यप्यत्यन्तहर्षिता ।।६०।।
पत्युः पादौ सकारुण्यं गृहीत्वा गद्गदाक्षरा । बभाषे गुरुभक्तोऽसि मम मन्तून्क्षमस्व भोः ।।६१।।
तथेत्युक्त्वा तया शूद्रः प्रपूज्य क्षेत्रपं गुरुम् । यान्तं क्षेत्रं दर्शयित्वा प्रणतो वाक्यमब्रवीत् ।।६२।।
अङ्घ्री चिन्तामणिर्वाक्यं सुधास्पर्धि दयानिधे । ज्योतिर्मयो न वेत्त्यन्धो घूकोऽर्कमिव धाम ते ।।६३।।
दृष्टं समूढपुण्येन धाम ते दिव्यमद्भुतम् । कृतकृत्योऽस्म्यतो देव मां माधोक्षज विस्मर ।।६४।।
तमाह श्रीगुरुः शूद्र धन्योऽस्यवरवर्ण ते । परितुष्टोऽस्मि दास्येन नूनं सद्गतिभाग्भव ।।६५।।
दुराचारोऽपि यदि चेत् सेवते मामनन्यधीः । स तु साधुर्हि तस्मात्त्वं स्वाचारो भक्तिमान् मयि ।।६६।।
अतस्ते दत्तमेतत्तु निवसेत् त्वत्कुलेऽमले । अचला कमला दास्यं मदीयं चाप्यसंशयम् ।।६७।।
इत्युक्त्वागाद्गुरुः सोऽपि गत्वेशं प्राह निश्चितात् । अधिभागं प्रदास्ये ते यतो धान्यर्धिरद्भुता ।।६८।।

सूर्ये प्राप्ते सति **तद्यावनालादि छिन्नमपि**।।५९।। **असंभाव्यान**नेकान**मित** आसमंतात्**प्रादुर्भूतानङ्कुरान्**। **जल्हादिरे** आनंदं प्रापुः।।६०।। **भो** पते **मम मन्तू**नपराधान् **क्षमस्व**।।६१।। **शूद्रो**ऽपि **तथेत्युक्त्वा तया** पत्न्या सहितं **क्षेत्रपं** क्षेत्राभिमानिनं देवं **प्रपूज्य** यद्वा यदज्ञानोत्थादविश्वासात्पतिनिन्दागुरुधिक्कारादिचेष्टाः पूर्वं प्रवृत्ताः अधुना तु तस्यैव प्रसादेन लौकिकलाभदर्शनेन च तमोगुणाविष्टाया हीनजात्युद्भवाया अस्याः स्त्रिय ईदृशी शांतिरुपलब्धा नूनमयं क्षेत्रज्ञस्यात्मन एव प्रसादस्तेन विना कः शांतो भवेदिति तं **क्षेत्रज्ञं प्रपूज्य** सत्कृत्य तदैव संगमं प्रति **यान्तं** गच्छन्तं **गुरुं** अंकुरितं **क्षेत्रं दर्शयित्वा प्रणतो** भक्त्या लीनो वक्ष्यमाणं प्राह।।६२।। ते **अंघ्री चिंतामणि**स्ते **वाक्यं सुधा**तोऽधिकं **ते धाम ज्योतिर्मयं घूको** दिवांधः।।६३।। **समूढपुण्येन** पूर्वसंचितपुण्येन।।६४।।६५।। **स्वाचारः** स्वजात्याचारस्तेन संपन्नः '*अपि चेत्सुदुराचार* ' इति स्मृतेः।।६६।। **अमले** सच्छूद्रसंज्ञके **अचला** लक्ष्मीः तया प्रमादः स्यादित्यत आह **मदीयं दास्यं दत्त**मित्युक्तं ननु '*तदुपर्यपि बादरायणः संभवात्* ' इति न्याये भाष्येऽत्रैवर्णिकदेवदृष्टान्तेन शूद्रस्याप्यत्रैवर्णिकस्याधिकार इति चेदस्ति देवशूद्रयोर्वैषम्यं। उपनयनाध्ययनाभावेऽपि स्वयंप्रतिभातवेदा देवास्तादृशस्य सुकृतस्य पूर्वजन्मार्जितत्वात्। शूद्रस्तु तादृशसुकृतराहित्यातन्न स्वयंप्रतिभातवेदः नापि तस्य वेदाध्ययनं उपनयनाभावाच्छ्रौतविद्यायां शूद्रो नाधिकारी यस्य वेदोच्चारणेन वेदश्रवणेन च जिह्वाछेदनं त्रपुजतुभ्यां श्रवणाच्छादनं च श्रूयते स कथं विद्याधिकारी भवेत्। तथा च बादरायणः '*शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि* '। छांदोग्ये रैक्केन जानश्रुतय उक्तं '*आजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा* ' इत्यत्र जानश्रुतिविषयः शूद्रशब्दो यौगिको न रूढः विद्याराहित्यजनितया शुचा गुरुं दुद्रावेति शूद्रपदार्थः। न च रूढ्या योगस्यापहारो रूढेरत्रासंभवात्। ननु तस्य कथं मुक्तिरिति चेत् '*श्रावयेच्चतुरो वेदान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रत* ' इत्युक्तेः पुराणश्रवणेऽधिकारसद्भावाच्छ्रवणादिनाऽधिकारित्वसंपादने जन्मान्तरमोक्षः। धर्मव्याधादीनां तु केनचित्कर्मणा हीनयोनित्वेऽपि पूर्वानुष्ठितज्ञानोदयान्न विरोधः। अतो दास्यदानं निरव-

स प्राह नान्यथोक्तिर्मे प्रसादात्सद्गुरोस्त्वियम् । लब्धा धान्यर्धिरनयं न स्पृशाम्यर्पयोक्तवत् ।।६९।।

परिपक्वं तदा दृष्ट्वा सस्यं छित्वानयद् गृहम् । कामं शेषं जनेभ्योऽदादमितं धान्यमुत्तमम् ।।७०।।

बहवो लेभिरे धान्यं प्रकामं सोऽपि सद्गुरोः । कृपया परया भूत्वा श्रीमान्सेवेऽतिनीचवत् ।।७१।।

तत्रेदृश्यः प्रभोर्लीलाः कति वृत्तास्तु कृत्स्नशः । न ज्ञाताः कैरपि पुरं मन्ये धन्यतमं तु तत् ।।७२।।

।। नामधारक उवाच ।।

सत्तमाश्रितकाश्यादि-क्षेत्रेषु भुवि सत्स्वपि । प्रीत्योवास कुतस्तत्र भगवान् मे वदस्व तत् ।।७३।।

।। सिद्ध उवाच ।।

तत्र तीर्थान्यनेकानि देवा अप्यखिलाः खलु । जगन्निवास उद्वीक्ष्य तस्थौ ध्रुवमधोक्षजः ।।७४।।

मन्दधीभिस्तु तीर्थानि तिष्येऽज्ञातानि तान्यतः । गुरुः प्राहैकदा लोकं पावनानि प्रदर्शयन् ।।७५।।

काशीं जिगमिषो लोक सर्वतीर्थानि चात्र तु । दर्शयामीति तान्प्रोक्त्वा तीर्थान्याह स दर्शयन् ।।७६।।

संगमोऽयं प्रयागोऽष्टौ तीर्थान्यत्र तु षट्कुले । त्रिवेणीसङ्गमोऽयं तु पापघ्न्यमरजेष्टदा ।।७७।।

जीवनायेशदत्तेन्द्र-नीयमानसुधाघटात् । युद्धे जालन्धरहत-देवानाममृतं च्युतम् ।।७८।।

किञ्चिच्च्युतादपि महा-प्रवाहोऽत्रामरत्वदः । कालमृत्युभयाघघ्नी जातैषामरजा ततः ।।७९।।

मनोरथाख्यं तीर्थं तु कल्पद्रुवश्वत्थसन्निधौ । सन्तोषतीर्थमग्रेऽत्र रुद्रो विश्वेश्वरः स्वयम् ।।८०।।

द्यं।।६७।।६८।। **कामं** यथेष्टं।।६८।। **अनयं** अन्यायं।।६९।। **कामं** यथेष्टं।।७०।। **सोऽपि** शूद्रः **श्रीमान्भूत्वाऽतिनीचवत्सेवे** श्रीगुरुमिति शेषः इयमेव परा कृपा यच्छ्रीमतोऽप्यनौद्धत्यं।।७१।। अतएव **तत्पुरं** गांधर्वनगरं **धन्यतमं मन्ये**।।७२।। **तत्** अखिलं निवासकारणं।।७३।। **जगन्निवास**स्यापि स्थितिः क्षेत्रप्रकाशनेन भक्तानुग्रहार्थमेव।।७४।। **तिष्ये** कलौ **अज्ञातानि तानि पावनानि तीर्थानि प्रदर्शयन्नेकदा गुरुर्लोकं प्राहे**त्यन्वयः ***प्रकाशन्नि***ति पाठः।।७५।। हे **काशीं जिगमिषो** गन्तुमिच्छो **अत्र** गंधर्वनगरे **स** श्रीगुरुः।।७६।। **अयं संगमः प्रयागः** कुल इति छंदोनुरोधेन ह्रस्वत्वं **षट्कूले अयं संगमस्त्रिवेणी** इयं भक्ताभी**ष्टदाऽमरजा पापघ्नी**।।७७।। तस्या उद्भवमाह **युद्धे जालंधरहता**नां **देवानां जीवनाय ईशेन** शंकरेण **दत्तः इंद्रेण नीयमानो** यः **सुधाघट**स्तस्मा**दमृतं** किञ्चि**च्च्युतं**।।७८।। **अमरत्वदः** देवत्वदः।।७९।। **कल्प**वृक्षसंज्ञका**श्वत्थसन्निधौ** ततो**ऽग्रे संतोषतीर्थं** यो **रुद्रः** स **स्वयं विश्वेश्वरः**।।८०।। तद्दर्शनविधिमाह **वामहस्तेन नंदि**नो**ऽण्डं धृत्वा** दक्षिणहस्ता**ऽङ्गुष्ठतर्जन्यौ शृङ्गयोः**

वामहस्तेन नन्द्यण्डं धृत्वाङ्गुष्ठं च तर्जनीम् । संस्थाप्य शृङ्गयोर्मध्यात् कृतशैवीप्रदक्षिणः ।।८१।।
पश्येद्यदीशं मर्त्योऽपि देववच्छ्रीष्टयुग्भवेत् । साक्षात्काशीयमीशेन विहिता भक्ततुष्टये ।।८२।।
जीवन्मुक्तोऽत्र शैवः प्राग्लोके जड इतीरितः । येनाहिवज्ञनो भोगा विषं स्त्रीः शववन्मताः ।।८३।।
कदाचित्स सदा युक्तः प्रमाथीन्द्रियसंयमी । बन्धूनाहात्र काशीयं त ऊचुर्दर्शयाद्य नः ।।८४।।
स दध्यावीशमीशोऽपि तदैत्याहेप्सितं वद । स प्राहाद्य त्वया सार्धं काशीं संस्थापय ध्रुवाम् ।।८५।।
तथेत्युक्त्वेश्वरोऽगात्तज् जलान्तः कुण्डमुत्तमम् । उद्धूतं तत्र विश्वेश-मूर्तिराविरभूत्क्षणात् ।।८६।।
काश्यां चिह्नानि यान्यत्र जातान्यालोक्य तानि सः । स्वजनान्दर्शयित्वोचे काशीयं क्वापि यात नो ।।८७।।
प्रत्यब्दं पूजयित्वा नो विठ्ठलं कुलदैवतम् । काशीयात्रात्र कर्तव्या सर्वाघघ्नीप्सितार्थदा ।।८८।।
तस्मात्काशीयमित्यस्मिन् गुरौ ब्रुवति तत्क्षणम् । पूर्वाश्रमस्वसा रत्ना-नाम्नी प्राप्य ननाम तम् ।।८९।।
तामाह श्रीगुरुः प्रोक्त-स्मृतिस्तेऽस्ति न वा वद । सापि स्मृत्वा तदा स्वाङ्गं कुष्ठीभूतं ददर्श ह ।।९०।।
तां खिन्नां प्रणतां प्राह प्रभुः पापं भवान्तरे । चेद्भोक्ष्यसेऽत्र कुष्ठं द्रागपैत्यंहः प्रयत्नतः ।।९१।।
सा प्राह मातृकुक्षौ मे यथेतो न भवेत्स्थितिः । तथैव भवता कार्यं नान्यज्ज्ञाने परात्पर ।।९२।।
गुरुः प्राहाघहृत्तीर्थे त्र्यहं स्नानाच्छिवान्तिके । सप्तजन्मार्जितांहोऽपि नश्येत्कुष्ठस्य का कथा ।।९३।।

संस्थाप्य मध्यत **ईशं पश्येत्**। **कृता शैवी प्रदक्षिणा** येन सः।।८१।। **श्रिया इष्टैः** स्त्र्यन्नपानादिभि**र्युग्देववद्भवेत्**।।८२।। शिवस्य निरतिशयानन्दरूपस्य भक्तः **शैवः** ज्ञानी अतएव **जीवन्ने**व **मुक्तः येनाहिव**त्सर्पव**ज्जनो दृष्टः** अत्राहिना दुर्वासनाशिषा दष्टः साधुर्विषयविषार्तः सन्कामादिवेदनया प्रमादमृत्युं प्राप्नोति **भोगा विषं** भोगविषयाः सामानाधिकरण्येन शरीरे विसर्पणेन प्रायः मरणमेव तथैव विषयतादात्म्येनावश्यमेव प्रमादमृत्युरिति निश्चीयते **स्त्रीः शव**तुल्या यथा शवे दिवा काकादयः शश्वदुड्डीयोड्डीय पतन्ति तथा कामादय उद्यन्त्यस्तं यान्ति च रात्रावपि शवे एकान्ते जंबुकादयो रमन्ते तथा स्त्रीरूपे शवेऽप्येकान्ते पुरुषा रमन्तेऽतः शवतुल्यता यथा शवदर्शनमात्रेणापि स्नानं कार्यं तथैव स्त्रीदर्शनेनेति यस्य मत-म्।।८३।। **सदा युक्तो**ऽप्रमत्तः कुतः प्रमथनशीलाना**मिन्द्रियाणां संयमो**ऽस्यास्तीति तथा **ते** बन्धवः **नो**ऽस्मभ्य**मद्य** काशीं **दर्शयेत्यूचुः**।।८४।। **ईशं** विश्वेश्वरं **दध्यौ** ध्यायति स्म।।८५।। **तज्जल**मध्ये **कुण्डमुद्धूतं तत्र** कुण्डे।।८६।। **चिह्नानि** लक्षणानि **यानि तानि दर्शयित्वा स्वजनान् ऊचे काशीय**मित्यादि।।८७।।८८।। **स्वसा** भगिनी **तं** गुरुं।।८९।। **तां** रत्नां '*अतः पत्युर्यतित्वं ते कुष्ठं चाङ्ग*' इति प्रोक्तस्य स्मरणं अकस्मात्कुष्ठेन व्यापितं **स्वाङ्गं**।।९०।। **भवान्तरे** जन्मान्तरे **भोक्ष्यसि चे**च्छीघ्रं **कुष्ठमप**गच्छेत् पापं तु **प्रयत्नतो**ऽतः किं विधेयं ब्रूहि।।९१।। **सा** रत्ना **इतः**परं **मातृकुक्षौ स्थितिर्यथा न भवेत्तथा भव**द्भिः **कार्यं नान्यज्ज्ञाने**।।९२।। **अघहृत्तीर्थे** पापविनाशतीर्थे **शिव**सन्निधौ **अंहः** पाप-

सापि तत्र त्र्यहस्नानाद् भूत्वा कुष्ठोनितामला । मठं निर्माय तत्रैव स्थिता मुक्ता बभूव ह ।।९४।।

गुरुस्त्वग्रेऽघहृज्जम्बु-द्वीपस्थाखिलतीर्थवत् । कोटितीर्थं दर्शयित्वा प्राहेदं सफलाघहृत् ।।९५।।

क्रान्तिपर्वग्रहेष्वत्र स्नानदानजपादयः । अक्षय्यानन्तफलदा अकुत्सितहृदां नृणाम् ।।९६।।

गयावद्रुद्रपादाख्यं तीर्थं त्वग्रे गयोक्तवत् । कृध्वं कर्मात्र कृष्णाग्रे चक्राख्यं द्वार्वतीसमम् ।।९७।।

द्वारकोक्तवदाचीर्णात् फलं तस्याश्चतुर्गुणम् । स्नानाज्ज्ञानी भवत्यत्र पतितोऽप्यस्थिचक्रवत् ।।९८।।

गोकर्णवद्ग्रामपूर्व-भागः कल्लेश्वरोऽत्र तु । महाबलेशवत्तीर्थं मन्मथाख्यं सुसिद्धिदम् ।।९९।।

नभस्यखण्डाभिषेकादूर्जे दीपोत्सवात्स तु । अक्षय्यफलदो दद्यात् सर्वसिद्धियुतामृतम् ।।१००।।

एवं शशंसाखिलतीर्थयात्रां तेऽपि प्रहृष्टाश्च तथैव चेरुः ।
एतादृशं क्षेत्रमिदं वरीयो विज्ञाय विज्ञानमयात्मकोऽस्थात् ।।१०१।।

म्।।९३।। **कुष्ठेनोनिता**ऽत एवा**मला**।।९४।। **अघहृत्**पापहरं सप्तद्वीपानां मध्ये **जम्बुद्वीपं** मुख्यं तस्य नव वर्षाणि तन्मध्ये भारतं वर्षं अत्रैवेदं गंधर्वपुरं तन्मध्ये इदं **कोटितीर्थं** तत्तु जम्बुद्वीपगताशेषतीर्थतुल्यं।।९५।। **क्रान्तयो** मेषाद्याः **पर्वा**णि पूर्णिमा अमा व्यतीपाताः **ग्रहः** सूर्यचंद्रोपरागः **अक्षय्या**णि क्षेतुमशक्यानि क्षय्यजय्यौ शक्यार्थ इति निपातः **अनन्त**कर्मणां तपोदानादीनां **फला**नि **द**दतीति तथा **स्नानदानादयः** नन्वेवं कथं भवेदत आह **अकुत्सितहृदां** ईदृशं स्थानमाहात्म्यमिति श्रद्दधानानां।।९६।। **गयोक्तव**त्पिण्डदानादि **कृष्ण**स्याग्रतः **द्वार्वती** द्वारवती।।९७।। **द्वारकोक्तव**त्स्नानाद्याचरणात् **तस्याः** द्वारवत्या**श्चतुर्गुणफलं पतितोऽपि ज्ञानी भवति अस्थि चक्रव**द्भवति।।९८।। **मन्मथं** लिङ्गं **महाबले**श्वरतुल्यं।।९९।। **नभसि** श्रावणे **ऊर्जे** कार्तिके।।१००।। **वरीयो** वरिष्ठं ज्ञात्वा समस्तज्ञानरूपो**ऽस्थात्**।।१०१।। **अज्ञानतमोऽन्धैरसौ न दृश्यते अन्धैः** सूर्यो **यथा** तथेति। अथ रूपकेण क्षेत्रमुपलक्ष्यते *अत्राक्षय्यफलदो दद्यात्सर्वसिद्धियुताऽमृत*मित्यमृतमापेक्षिकं जन्यत्वाद्गृहादिवदध्रुवं '*आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं च भाष्यत* ' इति वचनात्। नेदमात्यन्तिकममृतं। आत्यन्तिकामृतं नामात्मयाथात्म्यं तच्च पुरोडाशादिवन्नोत्पाद्यं, सोमादिवन्न विकार्यं, मंत्रादिवन्नाप्यं, व्रीहादिवन्न संस्कार्यं। आत्मा हि कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरहित एक एव समोऽविनाशी '*एक एव हि भूतात्मा* ' इति श्रुतेः '*समं सर्वेषु भूतेषु* ' इति स्मृतेश्च। ईदृशस्यार्थित्वादिमिथ्याज्ञाननिदानमविद्यामन्तरेण न संभवति। नभोवन्निष्क्रियस्य स्वत एव दुःखासंसर्गिणः परमानन्दस्वभावस्य सुखं मे स्याद्दुःखं मे माऽभूदित्यर्थित्वं, शरीरेन्द्रियसामर्थ्येन च समर्थोऽहमित्यभिमानित्वं मिथ्याज्ञानं विना न संभवति। मिथ्याज्ञानवत आत्मनो '*जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीय* ' इति कामयमानस्य सर्वथैवार्थो बाह्यो जायादिर्न संपद्यते यदा तदा मन एवास्यात्मा वाग् जायेत्यादिसंपत्तिं दर्शयति श्रुतिः। एतच्चाज्ञत्वलिङ्गं मनआदिष्वात्मत्वाद्यभिमानस्याज्ञानकार्यत्वात्। यथा बाह्यकामिन्यलाभे सुप्तो मनोविजृंभितां कामिनामुपभुंजानोऽज्ञस्तद्वत्स्वर्गादिकामो यज्ञाद्यनुष्ठाय स्वप्नतुल्येऽपारमार्थिकेऽनित्ये सातिशये स्वर्गसुखे निमज्जति। स पुनरावर्तते '*यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे सुकृते तेऽनु-*

म्लेच्छं समुद्धृत्य ततोऽखिलात्मा तत्र स्थितो भाविककामधेनुः।
प्रत्यक्ष ईशोऽपि न दृश्यतेऽसाववित्तमोऽन्धैररुणो यथान्धैः ।।१०२।।

इति श्रीगुरुचरिते भक्तियोगे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।आदितः द्वाविंशोऽध्यायः ।।

भूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ' इति श्रुतेः *'ते तं भुक्त्वा स्वर्ग..'* इति स्मृतेश्च। यदि मुमुक्षुर्मन्दप्रज्ञश्चेत्तमुद्दिश्य स्वर्गसाधनभूतयज्ञसाम्येन *'तस्यैवं विदुषो यज्ञस्य '* इत्यध्यात्मयज्ञानुष्ठानं श्रुतिर्निर्दिशति यथा तथा काशीं जिगमिषोरशक्तस्यात्मशुद्ध्यभिलाषुकस्य निकटवर्तिनीयं काशीति सर्वतीर्थदेवतान्वितेन काश्यादेः साम्यं प्रदर्शितमिति बाह्यार्थः। आभ्यन्तरार्थस्तु - कलौ मंदबुद्ध्या देहे विद्यमानानि तीर्थानि तरणोपायभूतानि ध्यानादितीर्थानि लोकैर्न ज्ञातानि तानि प्रकाशयन्नाह काशीशब्देन प्रकाशत्वाज्ज्ञानं **अत्र** गंधर्वनगरे तत्तुल्ये दृष्टनष्टस्वभावदेहे **सर्वतीर्थानि** आज्ञाचक्राख्योऽ**यं प्रयागः** सात्त्विकाष्टभावा **अष्टतीर्थानि** षट्चक्राणि **षट्कुला**नि इडापिङ्गलासुषुम्णायोग**स्त्रिवेणीसंगमः** तदुक्तं पाद्मे *'इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी। तयोर्मध्यगता नाडी सुष्णाख्या सरस्वती '* इति। तिसृणां मध्ये क्रममुक्त्या**ख्येष्ट**फल**दामरजा**संज्ञा सुषुम्णा। *'तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति '* इति श्रुतेः। त्रिवेणीसंगमे तीर्थे तत्वमस्यादिलक्षणे इति वा **जालंधरा**सुरशब्देन स्वाभाविकमनोवृत्तिविशेषाः तद्विरुद्धाः प्रकाशरूपाः **देवाः** अनयोर्युद्धे छांदोग्ये श्रुतम्। ईशशब्देनात्मा इन्द्रशब्देन जीवः *'इंद्रायेन्दो परिस्रवा '* इति श्रुतेः। **सुधा**शब्देनामृतं योगशास्त्रोक्तं ज्ञेयं। **मनोरथाख्यं तीर्थं** भक्तिः। सन्तोष एव **संतोषतीर्थम्**। **कालमृत्युः** प्रमादः, बिभेत्यस्मादिति **भयं** द्वैतं, **अघ**मात्महत्या यथा यस्यकस्यचिच्छुद्धस्य मिथ्याभिशापोऽशस्त्रवध एवोच्यते तद्वदात्मनि पापित्वाद्यध्यासोऽपि हिंसैव। तदुक्तं भाष्यकारैः *'असूर्या नाम ते लोका '* इत्यस्या ऋचो भाष्ये *'अविद्यादोषेण विद्यमानस्यात्मनस्तिरस्करणात् विद्यमानस्यात्मनो यत्कार्यं फलं अजरामरत्वादिसंवेदनलक्षणं तद्धतस्येव तिरोभवतीति प्राकृता अविद्वांसो जना आत्महन '* इति। स्मृतावपि संघाताभिमानेनात्मापहरणरूपं महापातकमुक्तं *'किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा '* इति। रुतं शोकं द्रावयतीति **रुद्रः** सात्त्विकाहंकारः विवेको **नंदी** तत्सान्निध्यानंदहेतुत्वात्। **शैवी प्रदक्षिणा** श्रवणाद्यावृत्तिः **ईश**स्यात्मनो दर्शनं सोऽहमित्यपरोक्षानुभवः। तत **इष्ट**प्राप्तिरनिष्टहानिः साप्युक्तप्राया। इतिहासो विश्वासोत्पादनार्थः। मुक्तेति मुक्तिः सलोकता सरूपता समीपतेति त्रिधा। तस्याः **कुष्ठत्वं** पुनरावृत्तिलक्षणं। **त्र्यहस्नानं** ज्ञानाभ्यासोपलक्षणं **कोटितीर्थं** विशुद्धं ज्ञानं *'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यत '* इति स्मृतेः। इडापिङ्गलयोर्द्वयोः संक्रमणं सं**क्रांत्या**दिशब्दवाच्यं सूतसंहितादौ द्रष्टव्यं। **गयो**दरालंबनं। **द्वारका** पञ्चछिद्रोपेतं हृत्कमलं तत्र श्रीकृष्णाख्यात्मन उपलभ्यमानत्वात्। ब्रह्मरंध्रमेव **मन्मथ**स्थानं **सुसिद्धिदं** इति विशेषणात्, व्यत्ययेन वा द्वयोर्योजना। आत्मपुराणे च *'स देवदेवजनकः कपालत्रयमध्यमां। सिमंतिनीनां सीमंते सीमांतां विदितां नृणां। आत्मसंनिधिमात्रेण विदार्यात्र समाविशत्। ततो मनुष्यमात्रस्य पुरी द्वारावती स्मृता। अस्यां यस्मादयं कृष्णः पुराणपुरुषोऽविशत्। ऊर्ध्वभागे ततो द्वारं विद्वद्भिः कीर्त्यते बुधैः '* इति। एवमन्यदप्यूह्यं। **तेऽपि** लोकाः **प्रहृष्टाः** सौकर्यात्। मुक्तिफलदत्वात् गंधर्वाख्यदेह**क्षेत्रं वरीयः विज्ञानं** बुद्धिस्तदुपाधिकः। ननु द्वा सुपर्णेति श्रुतौ द्वयोरवस्थानं श्रूयते तत्र कथमेक इत्यत आह प्रतिबिम्बरूपेणा**खिलात्मा**ऽपि मलिनसत्त्वोपाधित्वा**न्म्लेच्छं** अस्पष्टवक्तारं चिदाभासं **सम्यगुद्धृत्य तत्र** हार्दाकाशे **स्थित** इति दिक् अन्यद्यथायथमूह्यम्।।१०२।।

इति श्रीगुरुचरिते भक्तियोगे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

।। नामधारक उवाच ।।

साधु साधूदितं क्षेत्र-माहात्म्यं लोकपावनम् । जगन्निवासो भगवान् यत्रोवासैष लीलया ।।१।।

तत्र तत्राखिला देवा ऋषियोगिमुनीश्वराः । निवसन्ति पुनस्तत्र ननु तीर्थानि सर्वशः ।।२।।

कृष्णापञ्चनदीयोगो धन्योऽन्योऽप्येष तादृशः । स भीमामरजायोगः साक्षात्तु भगवानिह ।।३।।

पशुपक्षिमृगा मीनास् तत्रत्याः स्नानपानतः । धन्या एव पुनर्नृणां धन्यत्वं किमु वर्ण्यते ।।४।।

यन्माहात्म्यश्रवणतो लीयन्ते पापराशयः । किं पुनस्तन्निवसतां सतां वाच्या हि सद्गतिः ।।५।।

भगवद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिस्तेषां करे स्थिता । मुक्तिं ते परिभाव्यातो भक्तिमेवाश्रयन्त्यरम् ।।६।।

मुक्त्यपेक्षा पुराभून्मे सा भवत्कृतबोधतः । व्यपेता दूरतो वृद्धाहैतुकीभक्तियोगतः ।।७।।

अतः प्रियतमं विष्णोः कीर्तनश्रवणादिकं । तद्गुणश्रवणं श्राव्यं रोचते मे विशेषतः ।।८।।

तस्मात्स्वर्गायचरित-पूरितात्मन्वदस्व मे । श्रीगुरोश्चरितं रम्यं मङ्गलं पावनं परम् ।।९।।

को म्लेच्छः सोऽतिहीनोऽपि कृपापात्रं परात्मनः । कथं जातो हि भवता यत्तूक्तं म्लेच्छ उद्धृतः ।।१०।।

।। सिद्ध उवाच ।।

धन्योऽसि तेऽद्य भगवत्प्रसादान्मतिरीदृशी । अतस्तच्चरितं वक्तुमानन्दोऽतीव वर्धते ।।११।।

यदा स्थितः कुरुपुरे प्रत्यक्षं श्रीपदस्तदा । रजकः प्रत्यहं भेजे तं स्तोत्रैर्नतिभिः सदा ।।१२।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः।। *त्रयोविंशे च यवनराजाभीष्टकरो हरिः। अदृश्योऽभूदभक्तानां नान्येषामिति वर्ण्यते।।१।।* विरतं ज्ञात्वा स्तवन्पृच्छति दशभिः।।१।।२।।३।।४।। **यस्य** क्षेत्रस्य **माहात्म्यश्रवणात्** **तन्निवसतां** तत्क्षेत्रवासिनां **सतां** धर्मवर्तिनाम्।।५।। **ते** भक्ता **मुक्ति**मनादृत्या**रम**लमत्यर्थम्।।६।। भगवद्दर्शना**त्पुरा** पूर्वं **मुक्त्यपेक्षा** मुमुक्षा **वृद्धो** यो**ऽहैतुकीभक्तियोग**स्ततः तस्मा**त्सा** मुमुक्षा **दूरतो** गता।।७।। **अतः** **विष्णो**र्व्यापनशीलस्य गुरोः **श्रवणादिकं** आदिशब्देनार्चनादि ग्राह्यं तत्रापि **विशेषतः** **तद्गुणश्रवणं मे** मम **रोचते** यतः **श्राव्यं**।।८।। स्वर्गे गीयत इत्यसौ **स्वर्गायः** श्रीगुरुस्तस्य **चरितैः पूरित आत्मा** बुद्धिः यस्य तत्संबुद्धौ **स्वर्गाये**ति पृथक्पदं वा कर्मिपक्षे स्वर्गप्राप्तये मुमुक्षुपक्षे सुष्ठुतत्त्वज्ञानार्जितायात्मने आत्मप्राप्त्यर्थमित्यर्थः।।९।। **उक्तं** पूर्वं भवता।।१०।। **ते** तव।।११।। **कुरुपुरे** सप्तमाध्यायोक्ते **स्तोत्रैः** स्वकल्पितैः नमस्कारैश्च।।१२।।

कदाचिदाह तं तुष्टः श्रीपादो भाविकोऽसि रे । कुर्वकण्टकसाम्राज्यं तच्छ्रुत्वा सोऽतिहर्षितः ।।१३।।
सोऽलङ्कृतं नृपं नद्यां क्रीडन्तं युवतीयुतम् । चतुरङ्गबलोपेतं दृष्ट्वा स्वगतमब्रवीत् ।।१४।।
गुरुः कोऽस्य कुतस्त्वीदृग्-भाग्यं तज्जीवितं वरम् । क्व वार्तास्य मयीत्येतज्-ज्ञात्वा श्रीपाद आह तम् ।।१५।।
ज्ञातं ते हृद्गतं त्वत्र जरन्नार्होऽसि जन्मनि । राज्यं भोक्तुमतो भुङ्क्ष्व जन्मन्येष्येऽर्पितं ध्रुवम् ।।१६।।
सम्मतं भवदुक्तं हि यूनो राज्यरसज्ञता । राज्येऽप्यस्तु स्मृतिस्ते म इति तं स स्म याचते ।।१७।।
श्रीपादोऽपि तथेत्यूचे प्रेत्यापि रजकस्ततः । वैडूर्यनगरे म्लेच्छः सार्वभौमोऽभवन्नृपः ।।१८।।
म्लेच्छधर्मारुचिः पूर्व-संस्काराद्देवविप्रभाक् । शुद्धात्मा दानधर्मज्ञः सर्वभूतसमोऽभवत् ।।१९।।
तं तत्पुरोहिता ऊचुः स्वधर्मं सेवयोत्तमम् । मृषोद्यवर्णधर्मोऽयमग्राह्यो मनसाप्यसन् ।।२०।।
मुखाद्यावयवैर्देह-साम्ये वर्णक्रमः कथम् । अचेतनोपलेध्मादौ देवतान्यत्र वा कथम् ।।२१।।
राजा तानाह धीमान्द्यमिदं सृष्टं परात्मना । गुणकर्मभिदा चातुर्वर्ण्यं देवस्तु सर्वगः ।।२२।।

रे रजक **अकण्टकं** शत्रुरहितं **स** रजकः।।१३।। **स** कदाचित्कृष्णा**नद्यां नृपं** यवनजातीयं **स्वगतं** स्वमनसि ।।१४।। **अस्य** राज्ञः **को गुरुः कुत ईदृ**शं **भाग्यं** लब्धं यस्मादीदृग्भाग्यवानयं **तत्त**स्मादस्य **जीवितं वरं अस्य** भाग्यस्य **मयि क्व वार्तेति**।।१५।। **अत्र जन्मनि जरन्** वृद्धः **राज्यं भोक्तुं न** योग्यो**ऽसि ध्रुवं** निश्चयेन **एष्ये जन्मन्यर्पितं** भविष्यति तदा **भुंक्ष्व**।।१६।। बाल्ये मौढ्यात् स्रक्चंदनादि रसज्ञानं न तदभिज्ञत्वेऽपि वार्धक्ये भोक्तुमसमर्थत्वा**द्यूनो राज्यरसज्ञता ते** तव **मे** मम।।१७।।१८।। **सार्वभौम**शब्देन मनुष्यलोकवर्तिसर्वविषयाणां लब्धत्वेनाशिष्टत्वेन यौवनेन च मनुष्यानंदविरोध्यभावान्निर्विघ्ना मनुष्यानंदसीमा चेत्ततो धर्मवीर्यप्रज्ञातेजोयशःप्रभृतीनां क्षय एव स्यात्तदाऽनर्थायैव राज्यं भविष्यत्यतो **राज्ये** वर्तमानस्या**पि मे** ते **स्मृतिरस्तु**। भवत्स्मृतौ सत्यां राज्यं नानर्थायेति यत्प्रार्थितं तदनुरूपमेव जन्म जातं तर्हि वेदबाह्ये म्लेच्छ ईदृक्त्वं कुत इत्यत आह **पूर्वसंस्कार**वशात् '*तं विद्याकर्मणि समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च* ' इति श्रुतेः। **म्लेच्छधर्मे अरुचि**र्यस्य सः अतएव **देवविप्र**भक्तः **शुद्धा**न्तःकरणो **दानधर्मज्ञ**श्चाभूत् न केवलमियदेव किंतु **सर्वभूतसमः** शत्रुमित्रभाववर्जितः।।१९।। तादृशं **तं** दृष्ट्वा यवनजातीया**स्तत्पुरोहिता ऊचुः उत्तमं स्वधर्मं** यवनजात्युचितं भज। मृषा उद्यते वाच्यते इति **मृषोद्यः** स चासौ विप्रादि**वर्णा**नां **धर्मो मनसाऽप्यग्राह्यः** यतो**ऽसन्** मिथ्याभूतः।।२०।। असत्त्वं प्रतिपादयति वर्णानां **मुख**हस्ता**द्यङ्गैः साम्ये**ऽयं ब्राह्मणोऽयं क्षत्रिय इति **वर्णक्रमः कथं** घटते गवाश्ववदवयवतः शब्दतो मलवैलक्षण्यतो वा भेदलक्षणाभावात् यथा स्त्रीपुरुषयोर्योनिलिङ्गादिनेयं स्त्री अयं पुरुष इति ज्ञाप्यते तथाऽयं ब्राह्मणोऽयं क्षत्रिय इत्यङ्गसंबन्धिलिङ्गाभावान्न वर्णभेदः। **अचेतना** ये **उपलाः** पाषाणा **इध्मं** काष्ठं त**दादि**शब्देन मृत्सुवर्णादि ग्राह्यं अत्र देवभावो **देवता कथं अन्यत्र** जलाग्न्यादिषु।।२१।। **इदं** युष्माकं बुद्धि**मांद्यं** यतः परमेश्वरेण **चातुर्वर्ण्यं** स्वार्थे ष्यञ् सत्त्वादि**गुणभेदेन** शमादि**कर्मभेदेन** च **सृष्टं** '*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश* ' इति स्मृतेः। यदुक्तमचेतनादौ कथं देवता तत्राह **देवस्तु सर्वगः** विवर्ताधिष्ठानत्वा-

स्थूलाक्षराल्लिपिज्ञानं शिशोरिव परात्मनः । गुरूक्तार्चाकल्पनया हृत्स्थैर्याद्बोध उद्भवेत् ।।२३।।

सतोम्ब्वाद्येऽपि बिम्बस्य प्रतीतिर्न मलान्विते । तथात्मनो न मलिने प्रतीतिः सा तु निर्मले ।।२४।।

तत्स्वप्रमानादिवेद-प्रोक्तधर्मपरान् द्विजान् । नमस्कुरुत भक्त्या ते देवानामपि देवताः ।।२५।।

वेदानुसारिस्मृत्युक्त-धर्मकर्मानुवर्तिनः । पूज्या अतो द्वेषशङ्कां त्यजतेत्याह तान्नृपः ।।२६।।

ततः कालेन कियता स्फोटकोऽङ्के समुत्थितः । तेन राड् व्यथितोऽत्यन्तं मोघाभूत्तत्प्रतिक्रिया ।।२७।।

राजा यातनया त्यक्त-भुक्तिसुप्तिरतिर्द्विजम् । आहूय तत्प्रतीकारं पप्रच्छ विनयान्वितः ।।२८।।

स प्राह नात्र वक्तव्यं भवान्म्लेच्छो द्विजोऽस्म्यहम् । जनश्रुतिभियैकान्ते वक्तव्यं भूपसत्तमम् ।।२९।।

अथापतुरुभौ पाप-नाशतीर्थं द्विजोऽब्रवीत् । भो पूर्वार्जितदुष्कर्म-योगाद्रोगसमुद्भवः ।।३०।।

दानभेषजसत्तीर्थ-देवसेवादिभिर्भवेत् । तच्छान्तिः साधुदृष्ट्यापि सर्वाघहृतिदक्षया ।।३१।।

पुरावन्तीपुरे धर्म-हीनोऽभूद्ब्राह्मणब्रुवः । त्यक्तकर्मा पिङ्गलाख्य-वेश्यासक्तो मदोद्धतः ।।३२।।

त्।।२२।। तर्हि मूर्तिकल्पना किमर्थमत आह यथा **स्थूलाक्षर**परिचयात्सूक्ष्म**लिपिज्ञानं अर्चा** प्रतिमा।।२३।। स्वच्छे**ऽम्ब्वाद्ये** प्रतिबिम्बरूपेण **सतो** विद्यमानस्य **बिम्ब**भूत**स्य** मुखादेः **प्रतीतिः** सा **मलान्विते** आदर्शादौ **न तथाऽत्मनः** प्रतीचः **मलिने** रागादियुक्ते चित्ते।।२४।। इदं ज्ञानं **वेदा**धीनं ते **स्व**तः **प्रमाण**भूता **अनादयः** तदुक्तधर्मपरा**न्नमस्कुरुत** यतस्ते **देवानामपि देवाः**।।२५।। **वेदानुसारि**ण्यः **स्मृत**यः अतो वैदिकवत्स्मार्त**धर्मः अतो** युष्माभि**र्द्वेषो** न कार्यः।।२६।। **अङ्के** उत्संगे **राट्** राजा **प्रतिक्रिया** चिकित्सा।।२७।। **भुक्ति**र्भोगः **रतिः** क्रीडा।।२८।। **स** विप्रः **भिया** भयेन।।२९।। **उभौ** विप्रो म्लेच्छश्च तत्र तं **द्विजोऽब्रवी**त्प्रश्नोत्तरं **भो** राजन् **पूर्वार्जितदुष्टकर्मयोगाद्रोगोद्भवः** नान्यथा।।३०।। पूर्वं दुष्कर्मकर्तुर्मृतस्य कथं तेन कर्मणा जन्मान्तरं रोगसंभवश्चेति न शंकनीयं। स्वारंभकभूतानां वियोगेऽपि तत्स्थः पुरुषः शीर्यमाणेन शरीरेण सह न विशीर्यते किंतु यावत्तत्त्वज्ञानं न भवति तावत्पुनः पुनर्भूत्वा म्रियते। मृङ् प्राणत्याग इति धातुस्मरणात् मरणं नाम देहान्निष्क्रमणं तत्तु जीवस्य नात्मनः। वाङ्मनसि संपद्य इति क्रमेण सजीवं लिङ्गशरीरं शक्त्य-वशेषात्मनि यदा लीयते तदा पूर्वजन्मसमाप्तिर्भवति तदा मरणमित्युच्यते'*प्राणमनूत्क्रामंतं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति तं विद्याकर्मणी समन्वारेभेते पूर्वप्रज्ञा च* ' इति '*अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकमिति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति* ' इति ' *योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन* ' इत्यागमप्रामाण्यात्कर्मफलदेश्वरस्य प्रेरणया जन्मान्तरदुष्कर्मण एव रोगादिदुःखं अन्यथा कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसंगः स्यात्। तर्हि कथं तत्परिहार इत्याह **दानं** पात्रे श्रद्धया धनत्यागः **भेषज**मायुर्वेदोक्तौषधं **संतः** साधवः **तीर्थं** भागीरथ्यादि **देवो** विष्ण्वादिः एषां **सेवा** विधिना सेवनं **आदि**शब्दाज्जपहोमावपि गृह्यन्ते '*तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः* ' इति वचना-त्। सर्वपापहरणकुशलया **साधुदृष्ट्याऽपि तच्छान्तिः**।।३१।। साधुदृष्टेरीदृक्त्वमाख्यायिकयाऽह **अवन्त्यु**ज्जयिनी **ब्राह्मणब्रुवः** ब्राह्मणकुलोत्पन्नमात्रः द्रव्य**मदे**नो**द्धतः**।।३२।।

तत्प्राक्पुण्यचयाद्योगी ऋषभः प्राप तत्र तौ । सेवयामासतुः प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ।।३३।।
स्तुतोऽर्चितो भोजितोऽनु पर्यङ्के शायितोऽमले । पीततत्पादतीर्थाभ्यां तुष्टः सुष्वाप वीजितः ।।३४।।
सुप्तोऽपि नमितः प्रातरुत्थायागात्स संस्तुतः । इयत्पुण्येन तौ प्रेत्य जातौ ब्रह्मकुलेऽमले ।।३५।।
वज्रबाहोर्दशार्णेशो महिष्याः कुक्षिमाप सः । तत्सपत्नी तदा द्वेषाद् गर्भिण्यै गरलं ददौ ।।३६।।
तेन विद्धापि न मृता दैवात्सा सुषुवे सुतम् । बालोऽपि विषविद्धोऽभूदुभौ जातौ व्रणाङ्कितौ ।।३७।।
तदार्तिर्न शशामापि नानोपायैरुभौ सदा । क्रन्दमानौ निराहार-निद्रौ क्षीणौ तु कृच्छ्रतः ।।३८।।
राजैकदा पूतिगन्धि-त्रस्तस्तद्वीक्षणात् क्षणात् । सूतमाज्ञाप्य सार्भां तां गमयामास कानने ।।३९।।
घोरेऽरण्येऽपि तौ त्यक्त्वा राज्ञे सूतः शशंस तत् । ततो रेमेऽन्यभोगिन्या क्रूरो राजातिहृष्टया ।।४०।।
घोरसत्त्वे वने राज्ञी विजने व्रणकर्शिता । अज्ञाताङ्घ्रिगतिस्तन्वी त्रस्ताभूत्कण्टकोपलैः ।।४१।।
धृतार्भा प्राह हा दैव कष्टमीदृक् प्रदर्शितम् । सार्भा खादय हिंस्त्रैर्मा दुःखबन्धाद्विमोचय ।।४२।।
एवं सा विलपन्ती गाः प्रेक्ष्याग्रे मन्दगामिनी । आगत्य प्राह गोपान्भो तृषोत्क्रामन्ति मेऽसवः ।।४३।।
तामूचुस्तेऽम्ब्विहास्त्यारान् मन्दं सृत्यानया व्रज । सापि गत्वाम्बु पीत्वोचे सरस्तीरस्थ योषितः ।।४४।।
कोऽत्र राजा प्रजा हृष्टा भान्ति मे ब्रूत योषितः । ता ऊचुस्त्वत्र राड्वैश्यः साधुः पद्माकरः कृती ।।४५।।

पूर्वपुण्यराशिपाकवशात्**तौ** वेश्याब्राह्मणौ।।३३।। **पीतं तत्पादतीर्थं** याभ्यां ताभ्यां पूर्वं **स्तुतोऽनु** पश्चात्पूजितो**ऽनु** पश्चा**दमले पर्यङ्के शायित**श्चामरव्यजनाभ्यां **वीजितो**ऽत**स्तुष्टः सुष्वाप**।।३४।। **सुप्तोऽपि** यावत्प्रबोधं स्थिताभ्यां ताभ्यां **नमितः स प्रातरुत्थाय संस्तुतो** यादृच्छिको**ऽगात्** एतावता **पुण्येन तौ प्रेत्य** शुद्धे राजकुले **जातौ**।।३५।। तयोर्मध्ये प्रस्तुतत्वाद्विप्रजन्माह वज्रेति। **दशार्णा**धिपते**र्वज्रबाहो**र्ज्येष्ठ**महिष्या** उदरं **स** विप्रः प्राप **तत्सपत्नी** समानपतिका नित्यं सपत्न्यादिष्विति ङीप्।।३६।। **उभौ** मातासुतौ।।३७।। तयो**रार्तिर्नानोपायै**रपि **न** शांता बभूव **कृच्छ्रतः** कष्टात्।।३८।। दुर्गंध**त्रस्तः सूतं** सारथिं **सार्भां** सपुत्रां प्रस्थापयामास।।३९।। **भोगिन्या**ऽनभिषिक्तया **क्रूरो** निर्दयः।।४०।। **घोरसत्त्वे** भयंकरप्राणिव्याप्ते**ऽज्ञाता** चरणगतिर्यया राज्ञीत्वात्।।४१।। गृहीतबाला दैवं प्राह **हा** इति खेदे **ईदृग्व**नवासरूपं अलं **हिंस्त्रै**र्व्याघ्रमुखैः सबालं मां **खादय** कुत एतदौदार्यं तदाह **दुःख**रूप**बंधान्मां मोचय** व्याघ्रादिभिर्भक्षिताऽहं दुःखबंधान् मुच्येयं। इदं शारीरकदुःखावेशादुक्तं यतः सर्वदा*ऽहं भूयासं* कदाचिदपि ममासत्त्वं मा भूदित्येवात्मन आनंदरूपत्वं सर्वैः प्राणिभिरनुभूयते। तस्मादिदं दोषोपलंभनं कष्टनिमित्तमेव नात्मनः अन्यथा दुःखबंधान्मां विमोचयेति कथं वदेत्।।४२।। **भो** गोपाः **तृषा** पिपासया**ऽसवः** प्राणाः।।४३।। **ते** गोपां**स्तां** राज्ञीं **आरा**त्समीपं **सृत्या** मार्गेण।।४४।। प्रजायंत इति **प्रजा** जनाः उपसर्गे चेति डप्रत्ययः **राट्** राजा **वैश्य**जातीयः **साधुः** सद्धर्मवर्ती **कृती** पुण्यवान् **पद्माकरा**ख्यः।।४५।।

अत्रान्तरेऽपि तद्दास्यः प्राप्तास्ताभिः सहाययौ । राज्ञी विट्पं पुरे दीना स तां पप्रच्छ विस्तरात् ।।४६।।
सा शशंसादितः सर्वं दयालुस्तां ररक्ष सः । ततः सुतोऽल्पकालेन व्रणत्रस्तोऽभ्यगान्मृतिम् ।।४७।।
विलपन्ती तदा तन्वी प्रेतमज्ञानतोऽब्रवीत् । त्यक्त्वा शोकार्णवे दीनां मातरं मां क्व गच्छसि ।।४८।।
त्वत्कृतेऽदो मया भुक्तं कष्टं तन्न स्मरस्यहो । त्वदर्थेऽन्तरिता भर्तृ-पितृमातृहितस्वकाः ।।४९।।
त्वदर्थं विस्मृतं दुःखं मया राट्त्यक्तयापि मे । जीवोऽसि त्वयि यातेऽहं मरिष्ये नात्र संशयः ।।५०।।
इति तद्रुदितं श्रुत्वागच्छन्हि ऋषभो मुनिः । विट्पतिं प्राप्य तं पृष्ट्वा तां प्राप करुणार्द्रधीः ।।५१।।
कुतो रोदिषि राज्ञीदं जगन्मायामयं ह्यसत् । भौतिके नश्वरे देहे कुतः पुत्रादिकल्पना ।।५२।।
कीटः कण्टकधाम्नेव यावदायुर्विचेष्टते । जीवः कर्मौघरचित-धाम्नारब्धाशनोऽवशः ।।५३।।
कालकर्मगुणोत्पन्नो नायं सम्बन्धलिङ्गभाक् । चिदंशः सर्वगो नित्यो देहस्त्वाद्यन्तवानचित् ।।५४।।
कोऽपि शुग्विषयो नातो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् । भज प्रारब्धमश्नन्ती यावदायुः परेश्वरम् ।।५५।।
एतावदृषभः प्रोक्त्वा विरराम तदा तु सा । अबोधविक्लवा प्राह प्रणताश्रूत्तलोचना ।।५६।।

तद्दास्यः राजदास्यः **विट्पं** वैश्यपतिं **स** राजा।।४६।। **आदितो** विषदानप्रभृति दयते तच्छीलः स्पृहिगृहीत्यालुच् मातृवद्**ररक्ष**।।४७।। स्त्रीस्वाभाव्यान्मोहाधिक्याच्चा**ज्ञानत** इत्युक्तं तदेवाह **शोक**सागरे दुस्तरत्वात् तस्मिन्**दीना**मनाथां राज्ञा त्यक्तत्वात्।।४८।। **त्वत्कृते** त्वन्निमित्तत एव यतः सपत्न्या विषं दत्तं **त्वदर्थे भर्त्रा**दयो**ऽन्तरिता** वियुक्ताः **हितो** मित्रं **स्वकः** स्वजनः।।४९।। राज**त्यक्तयाऽपि दुःखं** वनवासादि **त्वयि** वियुक्ते**ऽहं मरिष्ये** यतस्त्वं **मे जीवोऽसि**।।५०।। केयं शोचतीति **पृष्ट्वा** ज्ञात्वा चायं मम सेवक इति निरुपम**करुणो मुनिस्तां प्राप** उवाच च। **तां प्राप्योचे कृपार्द्रधी**रिति पाठः साधुः।।५१।। पुत्रादिरूपं **जग**त्सत्यं चेत्तर्हि शोकावसरः तत्त्वसत्यं विकारित्वाद्घटादिवन्नश्वरं **हि** यतः **मायामयं** मायाविकार**मसत्**स्वप्नकल्पं ननु प्रतीयमानस्य कुतोऽसत्वं तत्राह **भौतिकं**।।५२।। ननु भौतिकमपि देहमास्थाय जन्मत आश्मशानान्तं व्यवह्रियमाणस्य कुतः पुत्रादिसंबंधो नेत्यत आह कीटक इति। स्वशरीरोपरि निर्मित**कंटक**देहेन सह **कीटो यावदायुर्वि**विधां **चेष्टां** करोति तद्वत् कंटकस्थानीयस्वोपार्जित**कर्म**जन्मदेहेन कीटकस्थानीय **जीवः** स्वा**रब्ध**भोक्ता **विचेष्टते** स देहाद्भिन्न एवा**वशः** कर्माधीनः।।५३।। **कालः** क्षोभकः **कर्म** निमित्तं **गुणा** उपादानं तेभ्य **उत्पन्नः** स **न** पुत्रादि**संबंधभाक्** न च पुंस्त्वादि**लिंगभाक्** भजो ण्विरिति ण्विः यतः स **चिदंशः** अतः **सर्वग** ईदृशो न शोकार्हः। देहनिमित्तः शोक इति चेत्तदपि न घटते **तु**शब्दो वैलक्षण्यार्थः **देह आद्यंतवान्** जडश्च।।५४।। तस्मात्**कोऽपि** शोक**विषयो न** तस्माद्धृत्या यया धारयत इत्युक्तलक्षणां **सात्त्विकीं धृतिमास्थाय** यावदायुरारब्धं भुञ्जाना **परमेश्वरं भज**।।५५।। **विरराम** तूष्णीं बभूव **अबोधविक्लवा**ऽज्ञानोपहता अश्रुभि**रुत्ते** सान्द्रे **लोचने** यस्याः।।५६।। **अध्यात्मतत्त्वं** ज्ञानं **सत्** समीचीनं श्रोतुर्दुर्लभं तथापि **सदाऽबोधो**ऽज्ञानं **परिचितं** तेन दैवहतकायां **मयि** स्थातुं योग्यो **न** भवति ' *शृण्वं-*

भवताध्यात्मतत्त्वं मे प्रोक्तं कारुणिकेन सत् । सदा परिचितोऽबोधः स्थेयं नैतेन तन्मयि ।।५७।।

येन मे सुप्रसन्नं स्यान् मनस्तद्धि विधीयताम् । ईशेन प्रेरितो दुःख-दशायामपि मे भवान् ।।५८।।

स तच्छ्रुत्वा सकारुण्यं बालं ज्ञात्वा स्वसेवकम् । प्रसन्नोऽभूत्स नत्यैव फलन्त्यत्र हि साधवः ।।५९।।

तपउज्वलितात्मा स साक्षाच्छम्भुरिवापरः । चिक्षेप भस्म तद्गात्रे स सुप्तोत्थितवत्स्थितः ।।६०।।

दत्वासिं शैवकवचं नागायुतबलं मुनिः । भूयादजेयो भद्रायू राजशास्तेत्युवाच सः ।।६१।।

तदा माता सुतोऽपि द्राग् दिव्यगात्रौ बभूवतुः । एतावान् साधुमहिमा तस्मात्तं शरणं व्रज ।।६२।।

।। राजोवाच ।।

साधु श्राव्यं त्वया प्रोक्तं सन्माहात्म्यं द्विजोत्तम । क्वास्त एतादृशः साधुस्तन्मे कथय भूसुर ।।६३।।

म्लेच्छोऽयं कथमस्मै तत्कथनीयमिति प्रिय । न मन्तव्यं हि दासोऽहं ब्राह्मणानां विशुद्धधीः ।।६४।।

।। विप्र उवाच ।।

मया तु भीमामरजा-सङ्गमे कश्चनास्ति सन् । साक्षात् परेश्वर इव श्रुतस्तं शरणं व्रज ।।६५।।

तच्छ्रुत्वा सत्वरं राज्यमेत्य राजा बलान्वितः । प्रतस्थे स्वासनारूढः साधुसंदर्शनाय सः ।।६६।।

गन्धर्वपुरमासाद्य पौरान् पप्रच्छ कश्चन । आस्तेऽत्र तापसस्तं मे भवन्तो दर्शयन्त्वरम् ।।६७।।

म्लेच्छान्दृष्ट्वापि ते भीता नोचुः क्रुद्धोऽब्रवीन्नृपः । तद्दर्शनायागतोऽस्मि कुत्रास्ते स तु कथ्यताम्।।६८।।

तोऽपि बहवो यं न विद्युः ' इति श्रुतेः।।५७।। मनःप्रसादे सर्वदुःखनाशस्मरणात्तदेव प्रार्थयते येनेति **येनो**पायेन।।५८।। मृतं **बाल**कं **स्वसेवकं ज्ञात्वा** अर्थान्तरेण दृढयति **नत्या** नमस्कारेण *न वै देवा नमस्कारमती*ति सूत्रात्।।५९।। **तपसोज्वलित आत्मा** बाह्य आभ्यन्तरश्च यस्य **तद्गात्रे** मृतशरीरे **स** बालः **सुप्तोत्थितव**त्तस्थौ।।६०।। **असिं** खड्गं **नागायुतबलं** च **दत्वा** परै**रजेयो** राज्ञां **शास्ता भद्रायु**श्च **भूयादित्युवाच**। *'पुनश्च भस्म संमंत्र्य तदङ्गं परितोऽस्पृशत्। खड्गशङ्खाविमौ दिव्यौ परसैन्यविनाशनौ। आत्मसैन्य-स्वपक्षाणां शौर्यतेजोविवर्धनौ। एतयोश्च प्रसादेन शैवेन कवचेन च। द्विषट्सहस्रनागानां बलेन महतापि च। भस्मधारणसामर्थ्याच्छत्रुसैन्यं विजेष्यति। प्राप्य सिंहासनं पित्र्यं गोप्तास्ति पृथिवीमिमाम् '* इत्यादि स्कांदे। अत्रायुतशब्दो बहुलवाचक इति ज्ञेयः।।६१।।६२।। हे **भूसुर** विप्र।।६३।। **विशुद्धा** भूतानुकंपादिसद्गुणयुक्ता **धी**र्बुद्धिर्यस्य सः।।६४। **सन्**साधुः स चालौकिककर्मकारी अतएव **परमेश्वर इव** स त्वया दृष्टः न **श्रुतः**।।६५।। **बलं** सैन्यं **स्वासनं** शिबिका।।६६।। **आसाद्य** प्राप्य **स** राजा **पौरान् पप्रच्छ**।।६७।।६८।। **ऊचु**र्लोका

तदोचुः सङ्गमेऽस्तीति तच्छ्रुत्वा सत्वरं नृपः । पादचारी नदीं गत्वा ददर्श श्रीगुरुं परम्   ।।६९।।
तमपि प्रेक्ष्य भगवान् प्राह रे रजकानुग । कुत्र तिष्ठसि कच्चित्त्वं क्षेमी नेहागतः कुतः   ।।७०।।
तच्छ्रुत्वा श्रीपदं ज्ञात्वा लब्धप्राक्स्मृतिरब्रवीत् । त्वद्दत्तराज्यसक्तेन तवाङ्घ्री विस्मृतौ मया   ।।७१।।
योऽहं प्राग्रजकः सार्व-भौमः सोऽभवमीदृशी । त्वत्कृपा सत्यसङ्कल्प मम मन्तून् क्षमस्व भोः ।।७२।।
श्रीपाद रजकं कृष्णा-विहारे पाहि मानुगम् । लोलन्मस्तकबाह्वङ्घ्रिं गलद्धर्षाश्रुमानतम्   ।।७३।।
स्फोटकार्तिनिमित्तेन लब्धं ते दर्शनं हरे । अन्तर्गतापि संविन्मे लब्धैतर्हि निमेषतः   ।।७४।।
स्फोटकं दर्शय क्वास्त इत्युक्तो गुरुणा स तु । सन्तं स्फोटकमप्यङ्के न दृष्ट्वा चकितोऽब्रवीत्   ।।७५।।
स्वामिन्मन्येऽनुगोऽयं ते स्फोटकोऽनयवर्तिनम् । आनीय दण्ड्यमन्यत्र कृतकार्यो ययौ खलु   ।।७६।।
तव जाग्रत्सु वाक्येषु दुःखदोषपरिप्लुते । असारे सति संसारे मग्नं माज्ञं समुद्धर   ।।७७।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

तृप्तं तेऽपि मनो भोगैर् भुक्तं राज्यमपीप्सितम् । लब्धाः पुत्रादयो वापि का वापेक्षास्ति ते वद   ।।७८।।
स प्राह परिपूर्णं मे सर्वं ते कृपयेश्वर । त्वद्दत्ताप्यखिला ते श्रीरर्पणीयेत्यपेक्षितम्   ।।७९।।

इति शेषः **नदीं** भीमां।।६९।। **तं** राजान**मपि क्षेमी** क्षेमवान् किं **कुतो नागतो**ऽसि तद्वद।।७०।। **लब्धा** पूर्वजन्म**स्मृति**र्येन अयं पूर्वदृष्टः **श्रीपाद** इति तं **ज्ञात्वा**।।७१।। एवं वदसि चेत्तर्हि कस्त्वं कोऽहमित्यत आह त्रिभिः **सत्यो**ऽवितथः **संकल्पो** यस्य तत्संबुद्धौ **मंतून**पराधान्।।७२।। भो **कृष्णा**तीर**विहारे श्रीपाद मामनुगं** दासं **लोलन् मस्तकबाह्वंघ्रि**र्यस्य **गलंति हर्षाश्रू**णि यस्य तं **आनतं** दासभावेन नम्रं।।७३।। **स्फोटक**पीडा**निमित्तेन अन्तर्गता** जन्मान्तरेण नष्टा**ऽपि संवि**ज्ज्ञानं **एतर्ह्य**धुना **लब्धा**।।७४।। इति श्रुत्वा श्रीपाद आह येन तवाङ्गे आर्तिर्जाता स **क्वास्ते** तं **स्फोटकं दर्शयेति गुरुणोक्तः स** राजा पूर्व**मङ्के** विद्यमान**मपि** स्फोटकं तदा **न दृष्ट्वा** क्व गत इति शंकितः सन्तद्गमनकारणं स्वबुद्ध्या निश्चित्याह।।७५।। **स्वामिन्नयं स्फोटकस्तेऽनुगः** दूतः **अनयवर्तिनं** दंडार्हं **दंड्यं** दंडादिभ्य इति यप्रत्ययः मा**मत्र** त्वां प्रत्या**नीय कृतकार्यः** सन्न**न्यत्र ययौ खलु** इति **मन्ये**।।७६।। ननु ननु त्वं लोकपालः कुतस्तेऽन्यायो येन दण्डार्होऽस्यत आह तवेति। स्मृत्यादिरूपेषु **जाग्रत्सु तव वाक्येषु** पूर्वजन्मश्रुतेषु सत्सु **दुःखदोष**युक्ते**ऽसति** मिथ्याभूते निः**सारे संसारे मग्नं** अतो**ऽज्ञं मां** ततः **सम्यगुद्धर**।।७७।। **ते मनो भोगैस्तृप्तं किं** एवमग्रेऽपि अधुना **का वाऽपेक्षा**ऽवशिष्टा तां **वद**।।७८।। **त्वया दत्ता श्रीस्तेऽर्पणीया** दर्श-नीया समर्पणीया वे**ति** मया **अपेक्षितम्**।।७९।। गावो हन्यन्तेऽस्मिन्निति **गोघ्नं** यद्वा गावो विधिरूपा वेदोक्ता वाचः हन्यन्तेऽवमन्यन्ते नास्तिक्येनेति **गोघ्नं** तस्मिन् **यते**र्निषिद्धत्वात्

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

यतेर्मे गमनं म्लेच्छ गोघ्ने राज्ये कथं भवेत् । मां वर्णास्त्वामपि म्लेच्छ हसिष्यन्ति न संशयः ।।८०।।

।। राजोवाच ।।

रजकोऽहं भवान्छ्रीपान् न हिंसातःपरं पुरे । इत्युक्त्वा लोलदङ्गस्तं नेतुकामोऽस्तुवद्विभुम् ।।८१।।

स प्राह तुष्ट आयास्ये भक्ताधीनोऽस्मि केवलम् । हेतुनानेन नोपेक्ष्या मद्भक्ता मद्व्रतान्तराः ।।८२।।

स तच्छ्रुत्वोपवेश्येशं प्रतीतः स्वासने नृपः । वाहान्दत्वापि शिष्येभ्यो धृततत्पादुकोऽन्वगात् ।।८३।।

प्राहाङ्घ्रिचारिणं स्वामी तं तदारादितो नृप । गन्तव्यमस्त्यपीदं तु न श्लाघ्यं सार्वभौम ते ।।८४।।

स प्राह सार्वभौमः को रजकस्तेऽनुगोऽस्म्यहम् । त्वयैव न्यस्तभूधूस्त आज्ञयानुचराम्यहम् ।।८५।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

दत्तं ते दिक्पमात्राभी राट्त्वं तेनासि विष्णुवत् । राजन्ममाज्ञयैवाश्वमारुह्य व्रज मा वद ।।८६।।

ततः सोऽप्यारुरोहाश्वं तमाह भगवान्नृप । गत्यानया क्रियालोपो भवेदग्रे व्रजाम्यतः ।।८७।।

एहि मन्दं पापनाश-तीर्थे तिष्ठामि भूपते । इत्युक्त्वार्धक्षणात् पङ्क्ति-योजनायतमापतत् ।।८८।।

सशिष्यः स तु तत्तीर्थे सान्ध्यं कर्माकरोत्तदा । सायंदेवसुतो नाग-नाथो गच्छन् ददर्श तम् ।।८९।।

चकोरश्चन्द्रमिव तं दृष्ट्वा हृष्टः स्वदैवतम् । संप्रार्थ्य स्वगृहं नीत्वा भोजयामास सादरम् ।।९०।।

सशिष्यस्तद्गृहे भुक्त्वा तमाहैष्यति राडिह । स तु म्लेच्छो न साध्वेतत्तीर्थे स्थेयमतो द्विज ।।९१।।

रे **म्लेच्छ**।।८०।। म्लेच्छजातीयोऽ**प्यहं** पूर्वस्मरणानुभवेन **रजको भवां**श्च **श्रीपाद** इतः**परं पुरे** गो**हिंसा**दि **न** भविष्यति। प्रणाममिषेण **लोलं**त्य**ङ्गा**नि यस्य स स्वराष्ट्रं प्रति गुरुं **नेतुकामोऽस्तुवत्**।।८१।। **स** गुरुः **अनेन** भक्ताधीनत्वेन।।८२।। शोभने **आसने** शिबिकायां **ईशं** श्रीगुरुं **प्रतीतः** हृष्टः **धृते** त**स्य पादुके** येन।।८३।। **अंघ्रिचारिणं** पादाभ्यां चरंतं **तं** म्लेच्छराजं **इत आराद्**दूरं इत इति पञ्चम्यर्थे तसिः अन्यारादिति पञ्चम्या अपेक्षितत्वात् भूमिपस्य तवे**दं** पादचारित्वं **न श्लाघ्यं**।।८४।। **त्वयैव न्यस्ता** उपन्यस्ता **भु**वो भूमेर्**धू**र्भारो यस्मै सो**ऽहं** तवा**ज्ञयानुचरामि**।।८५।। **दिक्पा**लांशै राजत्वं **ते** तुभ्यं **दत्तं तेन** त्वं **विष्णुवत्स**त्कार्योऽसि अतो**ऽश्वमारुह्य व्रज** इतःपरं **मा** ब्रूहि युगमानेन जातोऽपि हीनजातीयो राजा सत्कार्यस्तदनुशासनं च नातिक्रमणीयमिति सूचितं।।८६।। **सोऽपि** राजा **अनया** मंद**गत्या**ऽस्मत्कर्म**लोपो भवेद**तो**ऽग्र**तो **व्रजामि**।।८७।। चत्वारिंशत्क्रोशदूरं तत्तीर्थं।।८८।। **सांध्यं** संध्याकालीनं **तं** पापनाशतीर्थस्थं गुरुं।।८९।। गुरुदर्शनौत्सुक्ये **चकोर**दृष्टान्तः।।९०।।**तं** नागनाथं **प्रतीतो राट्** राजा **न साधु** न शोभनं।।९१।। मुहुर्गुरुदर्श-

इत्युक्त्वा स ययौ तीर्थं स राजाप्याययौ तदा । प्रतीतः पादचारी स निन्ये निजपुरं गुरुम् ।।९२।।
अलङ्कृतं शुभं नाना-रत्नतोरणमण्डितम् । पताकाध्वजसङ्कीर्णं पुरं भास्वत्सुशोभनम् ।।९३।।
गीतवाद्यजयध्वान-सङ्कुलं शिष्ययुग्गुरुः । नीराजितो रत्नदीपैः पालकस्थो विवेश सः ।।९४।।
पट्‌ट्कूलच्छन्नसृत्या नीत्वान्तःपुरमीश्वरम् । भद्रासने तूपवेश्य पूजयामास तं नृपः ।।९५।।
शिष्यान् यथास्वपीठस्थान् प्रपूज्य महिषीः स्त्रियः । पुत्रान्पौत्रान्सखीन्स्वांश्च दर्शयामास शंभवे ।।९६।।
गीतं सवाद्यं नृत्यं च छत्रचामरमालिने । तस्मै समर्प्य प्रकृतीर् दर्शयामास सर्वशः ।।९७।।
म्लेच्छा विरुद्धचेष्टं धिक्-चक्रुर्भूपं द्विजार्चकम् । प्रशशंसुर्द्विजा राजा पुण्यश्लोकोऽयमित्यपि ।।९८।।
गुरुस्तमाह हृष्टोऽस्मि दृष्ट्वा ते प्रकृतीः शुभाः । तुष्टोऽस्याभिर्न वा ब्रूहि निःशङ्कं निकटं मम ।।९९।।
स प्राहाभिर्न तुष्टोऽस्मि साम्राज्यं तेऽङ्घ्रिसंस्थितम् ।श्रुत्वा तत्परमं काङ्क्षे दुरापमपि देहि मे ।।१००।।
अद्यैव भवते कुर्वे सर्वस्वात्मनिवेदनम् । इत्युक्त्वा स तथा चक्रे राट् सङ्कल्पपुरःसरम् ।।१०१।।

।। श्रीगुरुरुवाच ।।

कृतं साधु त्वया भूप तुष्टोऽनेन ददामि ते । मन्मनस्काय भक्ताय शुद्धभावाय काङ्क्षितम् ।।१०२।।
इत्युक्त्वा श्रीगुरुर्यूने भूधुरं पार्थिवार्पिताम् । ज्येष्ठायादाद्विनीताय तदौरससुताय सः ।।१०३।।
भूपं प्राह गुरुः शीघ्रं प्रव्रजाहमितो द्रुतम् । गत्वा मठं समाश्वास्य शिष्यान्भक्तानपीतरान् ।।१०४।।

नेन हृष्टः **निजपुरं** वैडूर्याख्यं।।९२।।९३।।९४।। **पट्टकूला**च्छादितमार्गेण **भद्रासने** सिंहासने **पूजयामास** राजोपचारैर्भूषयामास।।९५।। **यथा**योग्यासनस्थान् **शिष्यांश्च महिषीः** कृताभिषेकाः **स्त्रियो** भोगिनीः **स्वान्स्वजनान्**।।९६।। **छत्रचामरैर्मालिते** शोभते **तस्मै** श्रीगुरवे *'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च। सेनाङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेयणोऽपि च* ' इत्युक्ताः **प्रकृतीः**।।९७।।९८।। **समाः** सर्वाः।।९९।। **स** राजा **आभिः** प्रकृतिभिः।।१००।। **सर्वस्वात्मनिवेदनं** विना तद्**दुरापं** चेत्तत्राहाद्येति **सर्वस्वं** चा**त्मा** देहश्चैषां **निवेदनं** संकल्पपूर्वकमनेन विश्वात्मा तुष्यत्विति मनःपूर्वकं निवेदनं **चक्रे**।।१०१।। **अनेन** सर्वस्वात्मदानेन **म**यि सर्वात्मकेऽनन्यवृत्तिकं **मनो** यस्य तस्मै **कांक्षितं** स्वचरणभजनं ननु नीचाय कथं देयमत आह **शुद्धो** रागादिरहितो **भावो** बुद्धिस्वभावो यस्य तस्मै *'मां हि पार्थ व्यपा..'* इति स्मृत्यादौ भगवद्भजने न वर्णादिप्रयोजनं। भक्त्युत्पत्तौ तु चित्तशुद्धिद्वारा स्वाश्रमाद्युचितकर्मापेक्षा यथाकथंचित्पूर्वसंस्कारेण जाताया भक्तेः को विघातकः।।२।। *'विनीतमौरसं पुत्रं यौवराज्येऽभिषेचयेत्* ' इति स्मरणात् राजदत्तां **भूधुरं** त**ज्ज्येष्ठ**पुत्राया**दात्**।।३।।

श्रीपर्वतं गमिष्यामि त्वमप्येहि नगोत्तमे । भवेन्मे दर्शनं तत्र जीवन्मुक्तो भविष्यसि ।।१०५।।

इत्युक्त्वा गौतमीं गत्वा स्नात्वा शिष्यान्वितः प्रभुः । संप्राप्तोऽमरजाभीमा-सङ्गमं योगिजीवनः ।।१०६।।

तत्रत्या अपि तं दृष्ट्वा सर्वे जल्हादिरे तदा । नीराज्य श्रीगुरुं चक्रुस् तदर्थं ब्रह्मभोजनम् ।।१०७।।

सर्वत्र प्रसृता भक्तिर् म्लेच्छा अपि भजन्त्यतः । कलौ घोरेऽत्र न स्थेयं साक्षादेवेत्यमंस्त सः ।।१०८।।

श्रीशैलमुक्तवद्गत्वा म्लेच्छायापि स सद्गतिम् । सर्वस्वात्मार्पणाद्दत्वा पुनः प्रापाव्ययो मठम् ।।१०९।।

तस्थौ भजत्कामधेनुः प्रत्यक्षस्तत्र वै सताम् । अगोचरस्त्वनार्याणां जन्मान्धानामिवोष्णगुः ।।११०।।

कृष्णापञ्चनदीयोगे प्रातः स्नात्वात्र सङ्गमे । कर्म कृत्वाह्निकं भिक्षां मठे भुक्त्वैव तिष्ठति ।।१११।।

दर्शिता विविधा लीला दर्शयत्यप्यनन्तशः । दर्शयिष्यति को वेत्ति प्रभावं तस्य दुर्ग्रहम् ।।११२।।

यो यो यस्य तु कामस्तद्भजनात्सिद्धिमेत्यरम् । भजतोऽनुभजत्येष यतोऽसौ भक्तिभावनः ।।११३।।

जागरूका कलौ प्रायः काचिन्न भगवत्कला । तत्साक्षाद्भगवन्तं तं श्रद्धयाऽसंशयं भज ।।११४।।

इति सिद्धोदितं श्रुत्वा श्रद्धयाऽसंशयं गुरुम् । अभ्यर्च्याऽऽपामृतं द्राक् तच्छ्रवणान्नामधारकः ।।११५।।

तत्संवादमयं ग्रन्थं धर्म्यं गङ्गाधरात्मजः । सच्छ्रीगुरुचरित्राख्यं व्यरचत्तारकं सुधीः ।।११६।।

यत्र क्वापि स्थापितः प्रेतभूत-रक्षोमुख्यासद्ग्रहार्तिघ्न एषः ।
सप्ताहं तत्पाठिने शृण्वतेऽपि दत्तात्रेयोऽभीष्टकामान् ददाति ।।११७।।

इतो राष्ट्राद्बहिः **प्रकर्षेणाहंममतात्यागपूर्वकं** गच्छ **जीवन्मुक्तः** विक्षेपरहितः।।४।।५।।६।। **तदर्थं** श्रीगुरुप्रीत्यै ब्राह्मण**भोजनं**।।७।। **साक्षाद्**दृश्यमानरूपेण।।८।। **अपि**शब्दादन्येभ्यो दास्यत्येव **मठं** निर्गुणाख्यं।।९।। **उष्णगुः** सूर्यः।।११०।।१११।। **अनंतानंत** इत्य(तः) संख्यैकवचनाच्चेति शस् **प्रभावं** सामर्थ्यं।।१२।। **अरं** शीघ्रं।।१३।। ग्रंथमुपसंहरति जागरूकेति। **जागरूक** इत्यकप्रत्ययः। **प्रायः**शब्देन सर्वा अपि निद्रिता इति न तथापि **साक्षाद्भग**वत्वाज्जागरूकत्वादस्यैव भजनं मुख्यं।।१४।। **आप** प्राप।।१५।। **गुरुचरित्राख्यं** महाराष्ट्रभाषया प्रसिद्धं।।१६।।१७।। **स एव** ग्रंथरूपो दत्तः **गां** वाणीं।।११८।। अंते मंगलमाचरति ॐमिति। सर्वे

स एवात्रेयगोत्रोत्थ-गणेशब्रह्मपुत्रगाम् । पुनानोऽर्थ्यो जयत्यत्र ग्रन्थात्मा तारकोऽव्ययः ।।११८।।

वेदा यत्पदमिति काठके मध्यप्रतिपत्तृणां प्रतीकत्वेनालंबनत्वेन चोङ्कारस्य प्रतिपादनात् नामिनाम्नोश्च लोके भेदस्याप्रसिद्धत्वाद्वस्तुतश्चोङ्कारस्य ब्रह्मविवर्तत्वाद्विवर्तानां चाधिष्ठा-नाभेदात् ॐकारं ब्रह्मनामधेयं ब्रह्मदृष्ट्योपास्यं *'ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् '* इति न्यायात् उपासकानवति अविद्यादिभ्योऽनर्थबीजेभ्यो रक्षतीति ॐकारस्य परात्परत्वश्रवणात्स्वोपासकरक्षणं संभाव्यते *'एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म परं चापरं च यदोङ्कार '* इति श्रुतिभ्य ॐकारं ब्रह्म *'ॐमिति ब्रह्म '* इति श्रुतेः तत्संबुद्धौ हे **ॐ भगवन्** श्रौतादौ प्राथम्येन पठ्यमानत्वात् पूजावन्। तद्यथा शंकुनेति श्रुतेर्जगत्पर्णशंकुस्थानीयत्वाद्ब्रह्मणा तादात्म्यं प्राप्तत्वाद्ब्रह्मणो विकारनामधेयत्वाच्च **विश्वहेतु**त्वं। **ब्रह्म**णा वेदेन ॐमित्येतदक्षरमिती**डित**। हे **अज** अकारस्य सर्व-वाक्प्रतिपादनात् पूर्वमाविर्भूतत्वादकारपूर्वं जायत इ**त्यजः**। *'अकारो वै सर्ववाक्सैषोष्मभिः स्पर्शैर्व्यज्यमाना बह्वी नानारूपा भवति अकार उकार मकार इति तानकेधा समभरत् '* इति श्रुतेः, योनिसंबंधं विना ब्रह्मणः कंठभेदेन जातत्वाद्वा**ऽजः** *ब्रह्मणः पुरा कंठं भित्वा विनिर्याता*वित्युक्तेः। **ते नमः**। गायत्र्यादिब्रह्मप्राप्त्यालंबनानां मध्ये श्रेष्ठत्वेन मालतेऽसौ **माली** *'एतदालंबनं श्रेष्ठं '* *'यच्छंदसामृषभो विश्वरूप '* इति श्रुतेः मात्रात्रयरूपेण स्थूलादिदेहत्रयरूपं विश्वं बिभर्तीति **विश्वभृत्**। **लील**याऽनायासेन मात्रोपासकानां ऋगादिभिस्तत्तल्लोकं नयनक्रियया **विहर**तीति तथोक्तं। शैब्यप्रश्ने **आर्या**न्मुमुक्षून्**भाव**यति संवर्धयतीति तथा *'ॐकारः सर्ववेदानां सारः...'* इति वार्तिकात्त्वमेवंभूतोऽसि।।१।। ***ईश्वरपक्षे* -** यस्यकस्यचिन्नि-कटे स्वाभीष्टसंपादनार्थं प्रियनामोच्चार्यते तद्वत्प्रियतमवाचकेन प्रणवेनादौ नमस्यन्स्तौति। प्रणवस्येश्वरवाचकत्वे *'तस्य वाचकः प्रणवः '* इति योगे, *'ॐ तत्सदिति निर्देश '* इति स्मृतौ च प्रमाणम्। उत्पत्त्यादिज्ञातृत्वाद्धे **भगवन्नी**श्वर **ते नमः** हे **विश्वहेतो** *'यतो वा इमानि भूतानि '* इति श्रुतेः। **ब्रह्म**णा विधिना सृष्ट्यादौ **ईडित** हे **अज** ते नमः। ईक्षितृत्वेन वर्तमानत्वा**न्मा** माया तस्याम**लीन**ः असंगत्वात्। अध्याससाक्षित्वेन **विश्वं** बिभर्तीति तथा पोषको वा प्राणिनां तत्तत्कर्मफलदातृत्वात् *' फलमत उपपत्तेः '* इति न्यायात् जगदुत्पत्त्यादि**लील**या **विहर**तीति तथा। **आर्या**न्साधून्**भाव**यतीति *'परित्राणाय साधूनां '*इति स्मृतेः।।२।।अथ **शिवपक्षे** *'शरणद गृणात्योमिति पदम् '* इति पुष्पदंतेनोक्तत्वात् **ॐ नम** इत्युक्तं। रुद्राध्याये *नमः सोमाये*ति विभूत्यनुवाके *नमस्तारायेत्युक्तत्वा***दों नमः**। **भगवन्** विश्वोत्पत्त्यादिकारण भवमृडहरशिवरूपै रजःसत्त्वतमःशुद्धसत्त्वोपाधिभिरुत्पत्तिस्थितिलयमो-क्षहेतुत्वात् श्रुतयश्च *'नमो भवाय च। तोकाय* 'तनयाय *'मृडय।* नमो हंत्रे च'। *'प्रपंचोपशमं शांतं शिवमद्वैतं '* इति। भवत्यस्मादिति भवः रजउपाधिकः स्रष्टा, मृडयति सुखयतीति मृडः सत्त्वोपाधिकः पालकः, हरतीति हरः संहारकस्तमउपाधिकः, विशुद्धसत्त्वोपाधिकः मोक्षानंददः शिव इति क्रमेण ज्ञातव्यं उक्तं च *' बहुलरजस....'* इत्यादि। ब्रह्मणा वेदेन *'विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् सर्वो ह्येष रुद्र '* इतीडित। नृकरोटि**माली इन** ईश्वरः सर्ववंद्यत्वात्। शिवया तन्वा **विश्वं** बिभर्तीति। रुद्रस्येमे तनुवौ घोरान्या शिवान्या *'याते रुद्र शिवा तनूः'* इति श्रुतेः। **लील**या महोक्षादितंत्रोपकरणैः श्मशाने भूतैः सह **विहरती**ति तथा। आर्यान्पाशुपतान्भावयती**त्यार्यभावन** ईदृशो**ऽसि**।।३।। अथ **नारायण**पक्षे **भगवन्ना**रायण **विश्वहेतो** *'नारायणाद्रुद्रो जायते नारायणात्प्रजाः प्रजायन्त '* इत्याम्नातत्वात्। ननु ब्रह्मोत्पादक इति चेत् *'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् '* इति श्रुतेस्तद्द्वारोत्पादकः। *'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम् '* इति वेदेनी**डित**। **अज** अकारण **ते नमः**। त्वं **मा** लक्ष्मीः तस्यां **लीनः** स्वोरसि धृतत्वात्। कच्छपरूपेण **विश्वं** बिभर्तीति तथा। **लील**या अवतार-नटरूपया भक्तानुग्रहलक्षणया **विहर**तीति तथा **आर्यान्**वैष्णवान्**भावय**ति सालोक्यादिदानेन संवर्धयति तथा।।४।। अथ **ब्रह्मपक्षे** अः वासुदेवस्तस्माज्जातो**ऽजः** ब्रह्मा *'अकारो वासु-देवः स्यात् '* *'अक्षराणामकारोऽस्मि '* इति वचनात् *'अथाको वेद यत आबभूव '* इति श्रुतेः हे **अज** हे **भगवन्** पूजावन् प्रथमशरीरित्वात् *'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र '* इति श्रुतेः। हे **विश्वहेतो** *'धाता यथापूर्वमकल्पयत् '* इति श्रुतेः। लोके **ब्रह्मे**ती**डित ते नमो**ऽस्तु। **माल**न्ते तपआदिना शोभन्ते मरीच्यादयस्तेषा**मिनः** स्वामी **विश्वभृत्** *'स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् '* इति श्रुतेः **लील**या जगदुत्पादनक्रियया **विहर**तीति तथा। **आर्या**न्समुच्चयोपासकान् क्रममुक्त्या **भाव**यतीति तथाऽभूतोऽसि।।५।। **अग्निपक्षे** *'स त्रेधात्मानं व्यकुरुत '* इति श्रुतेर-ग्निवाय्व्यादित्यादिस्वरूपेणावस्थितः स्तूयते। अः विराडात्मा ततो जातो**ऽजः** *'अस्मात्त्वमधिजातोऽसि मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च '* इति श्रुतेः हे अजाग्ने **ते नमः** तस्य **विश्वहेतु**त्वादि मंत्रतोऽवगम्यते *'त्वं भूतकृज्जगन्नाथस्त्वं भूतपरिपालन '* इति ब्रह्मणि वेदे *'अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्य '* इतीडित **मालीन**स्तेजस्वितत्वात् जाठरवैश्वानररूपेण **विश्वभृत् लील**या

ॐ नमो भगवन्विश्व-हेतो ब्रह्मेडिताज ते । मालीनो विश्वभृल्लीलाविहार्यस्यार्यभावनः ।।११९।।

इति श्रीगुरुचरिते भक्तियोगे पञ्चमोऽध्यायः ।

आदितस्त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

देवदौत्येन हविर्हवनक्रियया **विहर**तीति **आर्यान्**धर्मिष्ठान्द्वारदानेन संवर्धयति तथा अग्ने नयेति मंत्रलिंगात्।।६।। **वायुपक्षे** अतति व्याप्नोतीति अः आकाशस्ततो जातो**ऽजः** वायुः '*आकाशाद्वायुः* ' इति श्रुतेः तत्संबुद्धौ **ते नमः** वायोः प्राणोपाधित्वेन **विश्वहेतुत्वा**दि प्रश्ने श्रूयते '*प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्* ' इति तैत्तिरीये च मालते व्यापकत्वेन शोभत इति **माली** '*वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्* ' इति श्रुतेः इन्द्रियप्रवर्तकत्वाद्बलदत्वाच्च **इनः** राजाऽयं वृत्तिभि**र्विश्वभृत् लील**या सदागत्या **विहर**तीति **आर्यान्**प्राणोपासकान् **भाव**यतीति।।७।। **सूर्यपक्षे** अः वासुदेवस्ततो जातो**ऽजः** '*चक्षोः सूर्यो अजायत* ' इति श्रुतेः। त्रयीमयत्वा**दोङ्कार**रूपः **भगव**त्त्वं त्रिकालं पूज्यत्वं **विश्वहेतु**त्वं स्मर्यते '*अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपजायते (तिष्ठते)आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा* ' इति '*असावादित्यो ब्रह्म* ' इती**डित ते नमः** सर्वात्मत्वादीडितत्वं '*सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च* ' इति लिंगात् त्वं **मा** शोभा तया**ऽल**तीति व्याप्नोतीति तथा। '*मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्* ' इति **विश्वभृत् लील**या ज्योतिश्चक्रे पौनःपुन्येन भ्रमणक्रियया **विहर**तीति **आर्यान्**गायत्रीजापकान्**भाव**तीति।।८।। **रामपक्षे** '*अजो हरे हरौ कामे विधौ छागे रघोः सुतः* ' इति विश्वः। अजस्य गोत्रापत्यं पुमान् आजः रामः। '*अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रं* ' राक्षसादिनिर्दलनेन **विश्वहेतुः**। ब्रह्मणाऽवतारार्थं रावणवधोत्तरं वे**डित**स्तत्संबुद्धौ **मा**यां जानकीरूपायां लक्ष्म्यां **ली**नः। स्त्रीसंगिनामियं गतिरिति लोके दर्शयितुं तस्यामासक्तस्तत्कृत एव यतो राक्षसा हताः धर्मस्थापनेन **विश्वं** बिभर्तीति तथा **लील**या क्षात्रविग्रहेण **विहर**तीति तथा **आर्या**न्बिभीषणसुग्रीवहनुमन्मुखान् **भाव**यतीति।।९।। **कृष्णपक्षे** '*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्* ' इत्युक्तेः हे **भगवन्** श्रीकृष्ण **ते नमः** हे **अज** '*अजोऽपि सन्नव्ययात्मा* ' इति स्मृतेः। **विश्वहेतु**त्वं स्वयमेवोक्तं *मया ततमिदं सर्वमि*ति। स्वगर्वपरिहारोत्तरं ब्रह्मणे**डित**त्वं वन**माली इनः** क्षात्रः। दैत्यनिग्रहेण **विश्वं** बिभर्तीति तथा **लील**या वृंदावने विलासेन द्वार्वत्यां च षोडशस्त्रीसहस्रैस्तदनुकूलविलासेन वा गोपैः सह क्रीडयाऽर्जुनसारथ्यादिना वा **विहर**तीति तथा। **आर्या**न्यादवान् **भाव**यतीति।।१०।। **गणपतिपक्षे** अजस्य शिवस्य पुत्र **आजः** '*सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायत* ' इत्यादिना **विश्वहेतु**त्वं निर्विघ्नार्थं ब्रह्मणा **ईडित** त्वं प्रवाल**माली** विघ्ने**नः लील**या नरवारणवेषेण **विहर**तीति **आर्यान्** गाणपत्यान् **भाव**यतीति।।११।। **देवीपक्षे** स्त्रीलिंगपरिणामेन योज्यम्। '*स्त्रियः सतीस्तां उमे पुंस आहुः* ' इति श्रुतेः।।१२।। **श्रीदत्तपक्षे** अजस्य ब्रह्मणः पौत्र **आजः** योऽसौ **भगवान्स**र्वैश्वर्यसंपन्नो '*यश्च विश्वं सृजति विश्वं बिभर्ति* ' इति दत्तोपनिषदः अतः भगवत्त्वं **विश्वभृत्त्वं हेतुत्वं** च **मालीनः** योगीशो मायाऽनासक्तो वा **लील**याऽवधूतवेषेण गंगास्नानादौ **विहर**तीति तथा **आर्यभावनः** भक्तपालकः तापिन्यां विष्णुना ब्रह्मणे मामकं सात्त्विकं दत्तात्रेयाख्यं धामोपास्वेत्युक्तत्वात् शांडिल्यायाथर्वणाय च शांतमात्मबुद्धिप्रकाशं दत्तं ध्यायमान इत्युक्तत्वाद्दत्तः परं ब्रह्म एवं श्रीगुरुप्रेरणया यथामतीदं व्याख्यातं।।

संहितेयं द्विसाहस्री त्रिकाण्डाभीष्टदा सती। व्याख्याताऽजोनया प्रीयाच्छ्रीदत्तोऽयं त्र्यधीश्वरः।।

इति श्रीगुरुचरिते भक्तियोगे टीकायां पञ्चमोऽध्यायः।।५।। आदितस्त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

।। इति टीका संपूर्णा ।।

अथ योगरहस्यम्

श्रेष्ठपुंजन्मसाफल्यं कार्यं योगत्रयाश्रयात्। समाख्यातद्विसाहस्त्री-संहितासंग्रहस्त्वयम् ।।१।।

भक्तिं विना न साफल्यं कर्मणः कर्मणा विना । न च ज्ञानं विना ज्ञानान् न मोक्षो यस्य कस्यचित् ।।२।।

न ज्ञानं जीवति प्राणे मनस्यपि लयं नयेत् । यस्तौ गच्छति मोक्षं स योगी नान्यः कथंचन ।।३।।

चले प्राणे चलं चित्तं निश्चले निश्चलं तयोः । नष्ट एकतरे नाशो द्वयोरपि स योगतः ।।४।।

भक्तिक्रियाज्ञानयोगान् मुक्तिरुक्तापि तत् त्रयम् । ज्ञेयं साष्टाङ्गयोगान्तर्गतं द्वैधमतोऽत्र नो ।।५।।

नात्यश्नतोऽनश्नतोऽति-सुप्तस्यैष न जाग्रतः । युक्तचेष्टाहारनिद्रा-गतेर्योगो भवेत्सुखः ।।६।।

तस्माद्वैराग्यतोऽभ्यासं गुरोरग्रे वितन्वतः । योगस्य प्राप्य संसिद्धिं विद्वान्मुक्तो भवेद्द्रुतम् ।।७।।

क्षाराम्लतिक्तकटुरुक्षकदन्नशाक-स्त्र्यग्न्यध्वभाङ् न लभतेऽकुशलोऽस्य सिद्धिम्।
शुण्ठीसितासुमनशालिसदन्नमुद्ग-चक्षुष्यशाकघृतदुग्धसदम्बु पथ्यम् ।।८।।

सद्देशे मठिकामध्ये निश्चिन्तो गुरुशिक्षितः । कुशाजिनांशुकेष्वेव हठयोगं समभ्यसेत् ।।९।।

गुदमेण्ढ्रोर्ध्वस्थगुल्फमासीनो यतगुः समः । भ्रूमध्यदृग्वान्यपीठैः सिद्धं तत्राप्यदोऽस्ति सत् ।।१०।।

वायुं शक्त्येडयापूर्य हृदि स्थाप्य हनुं जपन् । हंसं शक्त्या कुम्भयित्वा पश्चादाकर्षितोदरः ।।११।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ योगाख्यं प्रथमं रहस्यम्।। **श्रेष्ठ**स्य **पुंजन्म**नः **साफल्यं योगत्रयाश्रया**दुक्तात्**कार्यं अयं द्वि**सहस्र**संहितासंग्रहः**।।१।।२।। इडापिंगलाभ्यां वहनं **प्राणजीव**नं संकल्पो **मनो**जीवनं तौ **लयं नये**ल्लीनं कर्तुं शक्नुयात् शकि लुङ् चेति शक्यर्थे लुङ्।।३।। **चले** इडापिंगलाभ्यां वहमाने द्वयोर्मध्ये **एक**स्मि**न्नष्टे**।।४।। **त्रयं** क्रिया भक्तिर्ज्ञानं च यमनियमा**न्तर्गतं द्वैधं** विरोधः।।५।। **युक्ता चेष्टा**दयो यस्य।।६।। **वितन्वतः** कुर्वतः।।७।। **क्षारो** लवणादिः **आम्लं** चिञ्चादि **तिक्तं** कारवेल्यादि **कटु** मरीच्यादि **रुक्ष**मस्निग्धं **कदन्नं** यावनालमाषादि *'प्रायः सर्वाणि शाकानि विष्टंभीनि गुरूणि च। रूक्षाणि बहुवर्चस्कम्* ' इत्युक्तेः। अष्टांगमिथुनेन **स्त्रि**यं सेवने**नाग्निं** गत्या**ध्वा**नं च भजतीति भजो ण्विः अभ्यासे**ऽकुशलः सिता** शर्करा **सुमना** गोधूमा **सदन्न** श्यामाकादि चक्षुषे हितं **चक्षुष्यं** तस्मै हितमिति यत् *'सर्वं शाकमचक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकं। जीवन्तिवास्तुमत्स्याक्षी मेघ-नादा पुनर्नवा* ' इति समाहारद्वन्द्वः।।८।। अल्पो मठो **मठिका**ऽल्पीयसि कन्। *'हकार उच्यते सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यत* ' इति तयोः प्राणापानयोर्योगो **हठयोगः**।।९।। **गुद**स्य **मेण्ढ्र**स्य चो**र्ध्वस्थौ गुल्फौ** यस्मि**न्यत**गुर्यतेन्द्रियः **अद** इदं **सिद्ध**मासनं।।१०।। चतुराङ्गुलान्तरेण **हृदि हनुं, हंसं** गायत्रीं सोऽहमिति वा।।११।। **अहन्यह्नि** दिने दिने **पञ्च**वृद्ध्या**शीत्यन्तैः**

शनैर्विरेचयेदेष प्राणायामः सुसिद्धिदः । पञ्चध्यर्धाह्न्यह्न्यशीत्यन्तैः प्रतिसन्ध्यसुयामकैः ।।१२।।
गन्तव्यमार्गस्थशक्ति-चालनाद् भस्त्रया भवेत् । नाडीशुद्धिस्त्रिमासोर्ध्वं प्राणो याति लयं सहृत् ।।१३।।
लीनः सपञ्चविपल-द्विपलं सोऽसुयामकः। ब्रह्मरन्ध्रे वर्धमानः प्रत्याहारादयः स तु ।।१४।।
स्वकालद्वादशगुणोत्तरकालावधिः स्मृतः। समाधिर्द्वादशदिन-साध्यः परमदुर्लभः ।।१५।।
समासीनो यतास्योऽन्तः-प्राणं दक्षिणया त्यजेत् । सारं लगति हृत्कण्ठ-कपोलावध्यसौ यथा ।।१६।।
लोहकारस्य भस्त्रावच्छक्त्याश्वापूर्य रेचयेत् । वामां मध्यानामिकाभ्यां धृत्वा जाते श्रमे विधेः ।।१७।।
पीत्वा प्राणं कुम्भयित्वा धृत्वाङ्गुष्ठेन दक्षिणम् । वामया रेचयेन्मन्दं तथाथ प्राग्वदाचरेत् ।।१८।।
द्विनाड्यभ्यासाद्यामार्धं शक्तिर्मार्गं ददात्यरम् । भस्त्रेयं सर्वदोषघ्नी रुक्पापघ्न्यपि सिद्धिदा ।।१९।।
शिश्ननाभ्यन्तस्थकन्दं सति वज्रासने पदौ । धृत्वा दृढं प्रपीड्यारं भस्त्रां सिद्धासनस्थितः ।।२०।।
समाकुञ्चितनाभिर्द्राक् कुर्याच्छक्तिश्चलत्यतः । यामार्धाभ्यासतो धैर्यान्मध्यनाड्यां समुद्गता ।।२१।।
ऊर्ध्वाकृष्टा भवेत्किञ्चिच्छक्तिर्नाडीमुखं त्यजेत् ।ततः स्वतो व्रजत्यूर्ध्वं प्राणोऽतस्तां विचालयेत् ।।२२।।
चालनात्सर्वसिद्ध्याप्तिर्-मण्डलाद्योगिनो न तु । रुग्भ्यो भयं यमाच्चापि नेतोऽन्यन्नाडिशोधनम् ।।२३।।
चालितायामपि प्राणो बद्धा चेद्रसना सुखम् । व्रजत्यूर्ध्वं सिद्धिपूर्वं राजयोगपदप्रदः ।।२४।।

प्राणायामैः।।१२।। **भस्त्रया** वक्ष्यमाणा**च्छक्तिचालनात्**।।१३।। **पञ्चविपला**धिक**द्विपलं ब्रह्मरंध्रे लीनः** प्राणः **स** प्राणायामः **स्वकालद्वादशगुण उत्तरा**ङ्ग**कालः**।।१४।।१५।। **समासीन** ईदास इतीकारादेशः पिहितमुखः **सारं** सशब्दं **हृत्कण्ठकपोलावधि यथा लगति**।।१६।। तथा **लोहकारभस्त्रावदाशु आपूर्य रेचयेन्ना**त्र कुंभः **वाम**नासां **मध्यमानामि-काभ्यां धृत्वा**ऽऽपूर्य रेचये**च्छ्रमे जाते विधे**र्विधिना।।१७।। **प्राणं पीत्वाऽङ्गुष्ठेन दक्षिणां धृत्वा कुंभयित्वा वामया रेचयेत् अथ वामया** पुनः पूर्ववत्।।१८।। **यामार्धं** *अर्धं नपुंसकं*। *कालाध्वन* इति द्वितीया। भस्त्रया **द्विनाड्यभ्यासात्**। **अरं** शीघ्रं, कफादि**दोषाः रुग्**रोगः।।१९।। **शिश्ननाभ्यन्तस्थं** नवाङ्गुलं **कन्दं सति वज्रासने पदौ धृत्वा** गुल्फाभ्यां कन्दं ताडयित्वा पुनः **सिद्धासन**ग्रहणमभ्यासार्थं।।२०।। परिधानयुक्तिर्देशिकाज्ज्ञेया तया **समाकुञ्चितनाभिः मध्यनाड्यां** सुषुम्णायां।।२१।। **तां** शक्तिं।।२२।। **मंडला**च्चत्वारिंशद्दिनैः **इतः** शक्तिचालना**दन्यत्** अन्यारादिति पंचमी।।२३।। तस्यां **चालितायामपि** जिह्वा **बद्धा चेत्प्राण ऊर्ध्वं व्रजति** सोऽणिमादि**सिद्धिपूर्वं**

जिह्वां मूलशिरां छित्वा रोममात्रं प्रघर्षयेत् । पथ्यासैन्धवचूर्णैर्गां प्राग्वत्सप्तदिनैर्मुहुः ।।२५।।
षण्मासादिति जिह्वाधः शिराबन्धो विनश्यति । मुद्रा स्यात् खेचरी त्र्यध्वे योजितावाङ्मुखी कला ।।२६।।
सहृज्जिह्वा चरत्यस्य खे कदापि स्पृशन्ति नो । विषार्तिरुग्जराक्षुत्तृण्निद्रातन्द्रामृतिक्रियाः ।।२७।।
स्त्र्याश्लेषितस्यापि बिन्दुर् न क्षरत्यूर्ध्वमेति सः । चलितश्चेद्योनिमुद्रा-बद्धो मुक्तः स भोग्यपि ।।२८।।
सुधान्तःस्रवतीन्दोस्तां ग्रसत्यर्कस्ततो जरा । अधःशीर्षोर्ध्वपात्तिष्ठेद् बह्वाहारः शनैः शनैः ।।२९।।
याममात्रं ततः सिद्धिर्व्यस्तेयं करणीष्टदा । वलीपलितवेपघ्नी मृत्युहर्त्री सुधाप्रदा ।।३०।।
स्वास्येऽग्नौ दीप्तेऽङ्गसादे नाडीशुद्धावनामये । नादस्फुटत्वे सुदृष्ट्याः सिद्धिर्बिन्दौ जिते सति ।।३१।।
विविधा उपसर्गाः प्राक् संभवन्त्यत्र योगिनः । सद्गुरोर्दृढभक्त्या ते प्रणश्यन्ति न चान्यथा ।।३२।।
कारणं कर्मारुरुक्षोर्योगिनो योगमुत्तमम् । शमः कारणमस्याग्रे योगारूढस्य योगिनः ।।३३।।
कामवेगसहोऽन्तर्दृक् सुखारामोऽभितो यतिः । ब्रह्मनिर्वाणमेत्येव ब्रह्मभूतोऽमलः समः ।।३४।।
कश्चिद्धारणयोपास्ते ध्यानात्कश्चित् समाधिना । आत्मानमेवमाप्त्वेमां सिद्धिं मुक्तो भवत्यसौ ।।३५।।
हृद्युपास्यो धारणया वराभयकरो हरिः । प्रादेशमात्रः सुसिद्धः खेचरीमुद्रया युतः ।।३६।।
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं दत्तात्रेयं दिगम्बरम् । ध्यायेत्सिद्धासनासीनं द्युनिशं कण्ठसंस्थितम् ।।३७।।
सहस्त्रदलपद्ॎमस्थं सुसूक्ष्मं शान्तमुज्ज्वलम् । समाधिना द्वादशाहं तन्मयो भावयेत्परम् ।।३८।।

राजयोगपदप्रदः।।२४।। **जिह्वाधः शिरां रोममात्रं छित्वा** हरीतकी**सैन्धवचूर्णे**न **घर्षयेत्** पूर्व**वच्छे**दनचालनदोहनादि **सप्तदिनैः** एवं **मुहुः**।।२५।। **षण्णां मासा**नां समाहारः तद्धितार्थ इति समासः तस्मात्षण्मासेनेति यावत् **त्र्यध्वे** इडापिङ्गलासुषुम्णामार्गे लंबिकोर्ध्वविवरे**वाङ्मुखी** स्वाङ्गाच्चेति ङीप् ऊर्ध्वाग्रा**योजिता कला** जिह्वा खे चरतीति **खेचरी मुद्रा**।।२६।। **हृदा** मनसा **सहृज्जिह्वा**।।२७।। **स्त्रिया**ऽलिङ्गितस्यापि **बिन्दुर्न क्षरति चलितश्चेद्योनिमुद्र**या वज्रोल्या **बद्ध ऊर्ध्वं** व्रजति। **इन्दो**स्तालुनः **सुधा**ऽमृतं **अर्को** जठराग्निः **बह्वाहारः** क्षुदपेक्षयाऽधिकाहारः।।२८।।।।२९।। **व्यस्ता** विपरीता **करणी वली** चर्मसंकोचः **पलितं** केशशौक्ल्यं **वेपः** कंपः।।३०।। शोभने **आस्ये** जाते **अंगसादे** देहकार्श्ये **बिन्दौ** वीर्ये।।३१।। **उपसर्गाः** विघ्नाः।।३२।। **योगमारुरुक्षोः कर्म कारणं**।।३३।। **अंत**रात्मनि **दृग्य**स्य बुद्धिग्राह्य**सुखे आरामो** यस्य **समः** द्वन्द्वातीतः।।३४।।३५।। **हृद्य**ष्टदले।।३६।।३७।। ध्यातृध्यानभावरहितेन **समाधिना**।।३८।। अभ्यन्तरे **लीनः** हृदा **सह प्राणो** यस्या**चलदृग्बहिः** पराग्विषयानपश्यन्तिष्ठेत् **इयं** श्यति दुःखं तनूकरोतीति शं

अन्तर्लीनसहृत्प्राणो पश्यन्नचलदृग्बहिः । मुद्रेयं शाम्भवी शून्याशून्यलक्ष्मपदप्रदा ।।३९।।

तद्वान् दृढासनो दक्ष-कर्णे रुद्धबिलो ध्वनिम् । त्रिग्रन्थिभेदं शृणुयात् सुसूक्ष्मं स समाधिभाक् ।।४०।।

यमेन दशधा नूनं दशधा नियमेन च । आसनाद्येन षट्केन योगोऽष्टाङ्गोऽयमुच्यते ।।४१।।

एतेनाष्टाङ्गयोगेन प्रबुद्धः स्वल्पसंविदा । शुभाशुभविनिर्मुक्तो देही ब्रह्ममयो भवेत् ।।४२।।

इदं रहस्यं परमं नाख्येयं यस्य कस्यचित् ।।४३।।

इति योगाख्यं प्रथमं रहस्यम् ।।

आनन्दः स भवत्यस्मादिति शंभुरात्मा '*एष ह्येवानंदयति* ' इति श्रुतेः तस्येयं **शांभवी** मुदं निर्विकल्पानंदं रातीति **मुद्रा** निषेधमुखेन देहादि**शून्यं** निषेधावधित्वेन चा**शून्यं लक्ष्म** यस्ये-दृशं पद्यते ज्ञानिभिर्गम्यत इति **पदं** वैष्णवाख्यं ददातीति तथा।।३९।। **तद्वान्** शांभवीमुद्रावान् अङ्गुष्ठाभ्यां कर्णौ तर्जनीभ्यामक्षिणी मध्याभ्यां नासामन्याभिर्मुखमेवं **रुद्धा**नि **बिला**नि येन स **ध्वनि**मनाहताख्यं हृत्कण्ठभ्रूमध्यस्थब्रह्मविष्ण्वीश**ग्रन्थिभेद**कं **सुसूक्ष्मं** वंशीनादसदृशं।।४०।।४१।। **सु**तराम**ल्प**स्य सूक्ष्मवस्तुनः **संविदा** स '*एतमेव पुरुषं ब्रह्म* ' इति **प्रबुद्धः**।।४२।। **यस्ये**ति षष्ठी शेषे यस्मै कस्मै अनधिकाराय रहस्यत्वात्।।४३।।

इति टीकायां योगाख्यं प्रथमं रहस्यम्।।१।।

अथ बोधरहस्यम्

सन्तप्त धन्य संन्यासिन् गुरुभक्त गतागतात् । मुक्त्या आत्माप्तये तत्त्व-जडचैतन्यविद्भव ।।१।।
स्वान्याज्ञं जडमन्या चिन्नामरूपात्मकं जडम् । रोमत्वङ्मांसनाड्यस्थि भुवोऽद्भ्यो मूत्ररेतसी ।।२।।
स्वेदोऽस्रलालेग्नेः क्षुत्तृण्-निद्रा तन्द्रा रतिर्गतिः । लौल्यं निरोधः प्रसाराकुञ्चने मरुतोऽथ खात् ।।३।।
कामक्रुड्लोभमोहाभीस्-तदाढ्येयं जडा तनुः । वर्णाश्रमादिद्वन्द्वादि-संबन्धादिपरो भवान् ।।४।।
यन्निर्विकल्पं स्फुरति तदन्तःकरणं मनः । तत्सङ्कल्पविकल्पाभ्यां तत्तु धीर्निश्चयात्मकम् ।।५।।
अनुसन्धानकं चित्तमहङ्कारस्त्वहङ्कृतिः । व्यानाधार्याद्यं श्रुतेस्तु शब्दभुग्वक्ति वाक्सखम् ।।६।।
समानाधारि त्वचान्यत् स्पर्श्याश्यादातृ दातृ च । उदानाधारा धीर्नेत्राद् रूपभुक्सगमागमा ।।७।।

श्रीगणेशाय नमः।। अथ बोधाख्यं द्वितीयं रहस्यम्।। '*कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानम्* ' इत्युक्तं प्रदर्श्य '*प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय* ' इति श्रुतिहार्दं दर्शयितुं गुरुशिष्यसंवादरूपं बोधाख्यं रहस्यं कथयति। कश्चित्संस्कृतो ब्राह्मणोऽधीतवेदः कृतविहितगार्हस्थ्यकर्मापास्तकिल्बिष उपास्तपरमेश्वरोऽपि दैवात्तापत्रयसंतप्तः सन् विरक्त्या श्रीगुरुमुपससाद। तं च तादृशं प्रणतं प्रेक्ष्य कृपालुर्भगवान्श्रीगुरुः पृच्छति संतप्तेति। तापत्रयैः **सम्यक् तप्त धन्य** सुकृतिन् निर्विण्णत्वात्सद्गुरुलाभाच्च पूर्वमनुष्ठितनिष्कामकर्मफलोदयस्तवाधुना जात इति धन्येति संबुद्ध्या ज्ञाप्यते। तादृशस्यात्मविद्यायामधिकारत्वद्योतनाय पुनर्द्वे संबोधने **संन्यासिन्** श्रवणार्थं कृतश्रवणप्रतिबंधककर्मसंन्यास। **गुरुभक्त** हे शिष्य आत्मप्राप्तिरूपायै **मुक्त्यै** त्वं **तत्त्वा**नि सांख्योक्तानि **जडं** अनात्मरूपं **चैतन्यं** स्वात्मरूपं चैतानि वेत्तीति तथा **भव**।।१।। किं जडं किं चैतन्यमित्यत आह **स्वं अन्यं** च न जानातीति तथा त**ज्जडं** ततो**ऽन्या** स्वमात्मानं परं च जानाति सा **चित्** चैतन्यम्। एवं सामान्यत उक्त्वा विशेषत आह **नामरूपात्मकं जडं** अर्थान्नामरूपातीतं चैतन्यं १। तर्हि अचेतनोऽयं देहः कुतो नामरूपात्मभाक्, जडत्वात् इति कथयितुं तस्य पाञ्चभौतिकत्वं दर्शयति। **भुवः** सकाशात् **रोमा**दिपञ्च ५, **अद्भ्यः** सकाशा**न्मूत्रा**दिपञ्च, **अस्रं** रक्तं १०, **अग्नेः** सकाशात् **क्षुदा**दिपञ्च, **रति**र्मैथुनं मतान्तरं कान्तिः १५, **मरुतो** वायोः **गत्या**दि पञ्च २०, **अथ खा**दाकाशात्।।२।।३।। **कामा**दि पञ्च **क्रुट्** क्रोधः २५, **तै**रुक्तैर्भौतिकांशै**राढ्या** युक्ता पञ्चविंशत्या रचितेयं दृश्या स्थूलाख्या **तनुर्जडा** अस्यामेव **वर्णाश्रमाद**यः सुखदुःखादि**द्वन्द्वानि** पुत्रपित्रादयः **संबंधा**श्च **भवां**स्तु देहद्रष्टा त्वमेव वर्णाश्रमादिदेहधर्मेभ्यः **परः**।।४।। ननु तर्हि सुखदुःखाद्यनुभवः कथं अंतःकरणतादात्म्यातदन्तःकरणस्य च स्थूलदेहतादात्म्यापन्नत्वात्परंपरया सुखादिभ्रान्तिरेव साक्षिण इति वक्तुं सवृत्तिकमंतःकरणं निर्दिशति सार्धेन। **यत्तू**ष्णींभूतावस्थायां समाधौ च **निर्विकल्पं** यथातथा **स्फुरति तदंतःकरणं तदे**व जाग्रदादौ **संकल्पविकल्पाभ्या**मुपलक्षितं **मनः**संज्ञकं भवति **तदे**व **निश्चयात्मकं धी**र्बुद्धिरुच्यते।।५।। तदेवा**नुसंधानकं चित्त**मुच्यते तदेवा**हमि**ति यदा मनुते तदा**ऽहंकार** इति। इदं भूतसत्त्वकार्यं अन्यैः सात्त्विकैर्भूतकार्यैर्ज्ञानेन्द्रियै राजसैः कर्मेन्द्रियैः प्राणैश्च सहितं सत् चेतनस्य तव सान्निध्यात्स्वयं जडमपि चेतनवत्प्रतीयते व्यवहरति च। तद्यथा **आद्य**मंतःकरणं व्यानाधारोऽस्यास्तीति **व्यानाधारि श्रुतेः** श्रवणद्वारा नानावर्णस्वरभेदभिन्नान् **शब्दान् भु**नक्तीति तथा **वाक्सखं** वागीन्द्रियप्रवर्तकं च।।६।। **समानाधारि** मन**स्त्वचा स्पर्शे**च्छु हस्ताभ्यां **आदातृ दातृ च उदानाधारा** बुद्धि**र्नेत्रे**ण **रूपभुक्** पादाभ्यां च **सगमागमा**।।७।। **प्राण**युक्तं **चित्तं जिह्वया रसभुक्** उप-

जिह्वया प्राणवच्चित्तं रसभुग्रतिमूत्रकृत् । सापानाहङ्कृतिर्घ्राणाद् गन्धभुग्विड्विसर्गकृत् ।।८।।

कर्मज्ञानेन्द्रियैः पुण्य-पापयोः सुखदुःखयोः । भौतिके पञ्चके कर्तृ-भोक्तृत्वे द्वन्द्वतापि च ।।९।।

तल्लिङ्गदेहतादात्म्यात् कर्तृत्वादि वृथार्जितम् । हेतुदेहपरस्वात्म-ज्ञानान्मुक्तिर्ध्रुवाऽचिरात् ।।१०।।

स्वदिदृक्ष्वरराज्ञान-हेतुसाक्षी परो भवान् । निराकारस्वात्मबुद्धि-महाकारणसाक्ष्यपि ।।११।।

स्थाणुरन्तर्बहिर्भास्वानात्मारामो निराकृतिः । चतुर्देहपरः साक्षी प्रत्यगीशोऽसि विद्ध्यदः ।।१२।।

अन्नासुहृद्ध्यहङ्कार-मयतादात्म्यतो भ्रमः । स्थूलः पञ्चीकृतैर्भूतैः सूक्ष्मः कर्मेन्द्रियासुभिः ।।१३।।

धीन्द्रियैर्हेतुर्महांश्च तद्विदात्मन्यथोद्धृते । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां परं ब्रह्मैव शिष्यते ।।१४।।

भानं स्वप्नेऽस्योर्वभानेऽन्वयः प्राग्विस्मृतिः परः । लिङ्गाभानेऽन्वयः स्वाप-भानं प्राग्विस्मृतिः परः ।।१५।।

स्थेन च **रतिमूत्रकृत् अपानस**हितोऽहंकारः **घ्राणे**न **गंधभुग्**गुदेन मल**विसर्गकृ**च्च।।८।। एवमन्तःकरणप्राणद्वारा **कर्मज्ञानेन्द्रियैश्च** **पुण्यपापयो**स्तत्फलभूत**सुखदुःखयोः** क्रमेण **कर्तृ**त्वं **भोक्तृत्वं च** क्षुत्पिपासाशीतोष्णादि**द्वन्द्व**धर्म**ताऽपि भौतिके पञ्चके** सूक्ष्मपञ्चभूतजन्ये लिङ्गदेह एव न स्थूले मृतदेहे तथात्वादर्शनात्।।९।। यतो द्वैतधर्मा लिङ्गदेहगा**स्तत्त**स्मात्कारणात्त्वया **लिङ्गदेहतादात्म्या**भिमानाद्**वृथा कर्तृत्वादि अर्जितं** अध्यासेन संपादितं तर्हि तत्कथं नश्येदत आह **हेतुदेहा**त्कारणदेहा**त्परो** यः **स्व**रूपभूत **आत्मा** तस्य **ज्ञानादचिरा**च्छीघ्रं ज्ञानसमकाल एव **ध्रुवा** पुनरावृत्तिरहिता **मुक्तिः** अर्थात्कर्तृत्वादिविनाशश्च।।१०।। कोऽसौ हेतुदेहः उच्यते **स्व**रूपं **दिदृक्षो**रन्तरा**ऽररं** कपाटरूपं य**दज्ञानं** देहद्वयबीजभूतं सर्वज्ञानोपसंहारपूर्वकं बुद्धेः कारणावस्थानरूपं स एव **हेतुः** कारणदेहः, स आत्मेति चेन्न तमोऽभिभूतत्वात्, तस्य **साक्षी** '*साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्* ' त्रिभ्यो देहेभ्यस्तदभिमानिभ्यश्च **परः** स त्वं। स कथंभूतोऽहं **निराकारः स्वात्मा**कार**बुद्धिः** स एव **महाकारण**देहः ब्रह्मानंदवानस्मीति किञ्चिदुर्वरिताहंकारशेषत्वात्। तर्ह्यभावरूपोऽहं न, तस्यापि **साक्षी** स्वयंप्रकाशत्वात्।।११।। **स्थाणुः** कूटस्थः किं परिच्छिन्नोऽहं न **अंतर्बहिर्भास्वान्** अतः प्रत्यगभिन्नः परमात्माऽसि **अदः** मयोक्तं **विद्धि** येन **निराकृति**र्निरभिमान**श्चतुर्देहपर आत्माराम**श्च भविष्यसि।।१२।। ननु यद्भवंतो वदंति विद्ध्यद इति तदनादिकालभ्रमोपहतधीरहं कथं जानीयामिति चेज्जपाकुसुमसान्निध्यात्स्फटि-कस्य रञ्जनमिव पञ्चकोशतादात्म्यात्तत्तदाकारभ्रमो मिथ्याभूतः '*अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा* ' इति श्रुत्युक्तप्रकारेण कोशानात्मनः पृथग्विवेचनान्मुञ्जादिषीकामिवात्मानं विद्धीत्यु-पदेष्टुं कोशान् व्युत्पादयति। **अन्नं** अन्नमयः **असुः** प्राणमयः **हृन्म**नोमयः **धी**र्विज्ञानमयः **अहंकार** आनंदमयः एषां **तादात्म्यतो**ऽहं जन्मादिमान् क्षुत्पिपासावान्संकल्पवान् विज्ञानवा-न्कर्ता आनंदवान् भोक्तेत्यादि**भ्रमः**। के ते कोशा यैर्भ्रम इत्यत आह **पञ्चीकृतैर्भूतै**रुपलक्षितः **स्थूल**देहोऽन्नमयकोशः १, राजसैः **कर्मेन्द्रियैः** प्राणैश्चोपलक्षित**सूक्ष्म**देहस्तदेकदेशः प्राणमयकोशः २।।१३।। सात्त्विकै**र्धीन्द्रियै**र्ज्ञानेन्द्रियै**श्च**कारान्मनसा धिया च सहितै**र्हेतु**र्विज्ञानमयो **महा**नानंदमयश्च। मनोमयस्य विज्ञानेऽन्तर्भावः स चाग्रे कथ्यते। अथ **तद्विदा** तेषां कोशानां ज्ञानेन तेभ्यो**ऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मन्युद्धृते** बुद्ध्याऽसंगत्वेन निष्काशिते **परं ब्रह्मैव शिष्यते**।।१४।। कौ तावन्वयव्यतिरेकौ याभ्यामात्मा पृथक् क्रियते तत्राह। अस्मि-न्प्रकरणेऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामनुवृत्तिव्यावृत्ती कथ्येते यतोऽन्वय्येवानुमानं न व्यतिरेकि **स्वप्ने उर्वभाने** स्थूलदेहस्याप्रतीतौ **अस्या**परोक्षस्यात्मनः यत्स्वप्नसाक्षित्वेन **भानं** सो**ऽन्वयः** अपरो व्यतिरेकस्तु **प्राग्विस्मृतिः** स्थूलदेहानवभासनं। एवमन्यत्रापि। तथाहि **लिङ्गाभाने** लिङ्गदेहस्याप्रतीतौ यत् **स्वापभानं** स्वप्नसाक्षित्वेन स्फुरणं अस्यात्मन इत्यनुवर्तते

तद्विदोऽसुमनोध्याख्या गुणावस्थाभिदः पृथक् । सुप्त्यभानेऽन्वयो भानं समाधौ प्रागवदन्यकः ।।१६।।
त्यक्तत्रिदेहसङ्गस्य निष्कल्पस्य सुषुप्तिवत् । स्थितिः परात्परं वस्तु सच्चिच्छर्म निराकृति ।।१७।।
क्ष्माप्कालैर्बीजलीनद्रुर् यथेक्ष्यो जागृतेस्तथा । सुप्त्यवित्स्थजगद्देहौ तत्परत्वाविदः पुनः ।।१८।।
देहान्ते ज्ञस्याहंतास्थ-विश्वाकारोऽनुजन्मदः । अवस्था जागृतिः स्वप्नो निद्रा तुर्या च तुष्टये ।।१९।।
विश्वतेजःप्राज्ञप्रत्यगभिमानिन ईरिताः । दृक्कण्ठहृन्मूर्धसंस्थाः स्थूलसूक्ष्ममुदुन्मुदः ।।२०।।
भोगा रजःसत्त्वतमः-शुद्धसत्त्वगुणाः क्रमात् । वाचोऽत्र वैखरी मध्या पश्यन्ती च परास्त्रिषु ।।२१।।

(मोक्षः) ।। स च स्थूलदेहादिप्रविलापेन तत्प्रकारस्तु ।।

देहः	**अवस्था**	**अभिमानी**	**स्थानं**	**आनंदः**	**भोगः**	**गुणः**	**वाचा**	**देवः**	**लोकः**	**मात्रा**
स्थूलः	जाग्रत्	विश्वः	नेत्रं	विषयानंदः	स्थूलभोगः	रजः	वैखरी	ब्रह्मा	भूः	अः
सूक्ष्मः	स्वप्नः	तैजसः	कंठः	स्वप्नानंदः	प्रविविक्तभोगः	सत्त्वं	मध्यमा	विष्णुः	भुवः	उः
कारणं	निद्रा	प्राज्ञः	हृदयं	निद्रानंदः	आनंदः	तमः	पश्यंती	रुद्रः	स्वः	मः
महाकारणं	तुर्या	प्रत्यक्	मूर्धा	समाध्यानंदः	परानंदः	शुद्धसत्त्वं	परा	आत्मा	महः	अर्धमात्रा

सो**ऽन्वयः परो** व्यतिरेकस्तु तदा **प्राग्विस्मृतिः** पूर्वदेहतदवस्थानवभासनं।।१५।। ननु कोशोपक्रमे देहान्वयादि प्रकृतासंगमिति चेत् कोशानां देहत्रयान्तःपातित्वात् स्थूलदेह एवान्नमयः सूक्ष्मे च प्राणमनोधीमयाः कारणे च प्रियमोदप्रमोदवृत्तिभिः सत्त्वमानन्दमयः। इष्टवस्तुदर्शनं प्रियं, तल्लाभो मोदस्तदनुभवः प्रमोद इति विवेकः। तर्ह्येकस्मिन् लिङ्गदेहे कथं त्रयाणां समावेशस्तत्राह गुणैरवस्थाभिश्च भिद्यन्त इति **गुणावस्थाभिदः असुमनोध्याख्याः** तेषां विदो ज्ञानात्पृथक्कृता इति शेषः। राजसैः कर्मेन्द्रियप्राणैः प्राणमयः, ज्ञानेन्द्रियमनोधियां सत्त्वगुणत्वे बाह्यान्तरावस्थावत्वाद्द्वौ कोशौ, **समाधौ सुषुप्त्यभाने**ऽप्यस्यात्मनो य**द्भानं** समाधिसाक्षित्वेन स्फुरणं स आत्मनो**ऽन्वयः अन्यकः** व्यतिरेकः प्राग्विस्मृतिः पूर्वदेहतदव-स्थानवभासनं।।१६।। एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यां पंचकोशविवेकत**स्त्यक्तत्रिदेहसंगो**ऽभिमानो येन **नि**र्गतः **कल्पः**कल्पना यस्य या सुप्ति**वत् स्थितिः** न तु सुषुप्तिः तदेव **परात्परं निराकृ**त्याकाररहितं **सच्चिच्छर्म** सच्चिदानंदं **वस्तु** परं ब्रह्म '*अयमात्मा ब्रह्म* ' इति श्रुतेः।।१७।। **क्ष्मा** भूमिः **आप** उदकं **कालो** ऋतुः '*ऋतुक्षेत्रांबुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरोद्भवः* ' **देहांते** तस्या**हंकारस्थित**विश्वा**कारोऽनु** पश्चा**ज्जन्मदः**। तस्माज्ज्ञानाभ्यासादेव मोक्षः। स च स्थूलदेहादिप्रविलापेन। तत्प्रकारस्तु देहचतुष्टयक्रमेण यथोपन्यस्तं ज्ञात्वा।।१९।।२०।।२१।। ततः **स्थूलः सूक्ष्म**शरीरे **तत्कारण**शरीरे **तन्महाकारणे** चा**नंदमयः स्वस्थो भवति नान्यथा** कर्मादिना।।२२।। **तस्मा**त्प्रविलापा**द्देहत्रये लीने**

त्रिमात्रा ॐकृतेस्त्वर्धा तुर्ये ज्ञात्वैवमादितः । स्थूलः सूक्ष्मे कारणे तत् तन्महाकारणे क्रमात् ।
प्रविलाप्यानन्दमयः स्वस्थो भवति नान्यथा ।।२२।।
तस्माद्देहत्रये लीने धीलयः स समाधिकः । तत्ते परात्परं रूपं निर्विकल्पमवेहि सत् ।।२३।।
घटादिवद्द्योर्जीवस्याविद्योपाधिस्तु तत्क्षये । खस्थद्योवत्परात्मत्वं जीवत्वं लीयतेऽचिरात् ।।२४।।
ज्ञाते क्षराक्षराहंता-परे तत्त्वे स तन्मयः । सृष्टेः प्राङ्निर्विकल्पैका चिद्ब्रह्मास्मीत्यभूत्त्विह ।।२५।।
स्फूर्तिः खे वायुवत्साद्या मायाद्यस्तज्ज्ञ ईश्वरः । तत्र विश्वोद्गमेहाभूत्सान्या मायाथ तत्र तु ।।२६।।
जगत्स्यामिति सङ्कल्पोऽभून्महत्तत्त्वनामकः । विद्याविद्ये उभे माये तज्ज्ञौ सर्वेशजीवकौ ।।२७।।
जीवोऽविद्याऽऽवृतः स्वाज्ञो महतोऽहंकृतिस्त्रिधा । क्रियाज्ञानद्रव्यशक्ति-रजःसत्त्वतमोगुणैः ।।२८।।
प्राणेन्द्रियान्तःकरण-भूतान्यासन्क्रमात्ततः । ततो लोका विराट् तैश्चिदंशात् कार्यक्षमोऽभवत् ।।२९।।
लोकाङ्गस्य रदास्तारा माया हास्यं निशादिने । निमेषोन्मेषौ कटाक्षः सृष्टिः कुक्षिरपांपतिः ।।३०।।
नाड्यो नद्यो द्रुमाः केशा वृष्टी रेतोऽस्थि पर्वतः । विराजः स्थूलदेहोऽयं चराचरजगन्मयः ।।३१।।

पंचवृत्त्याकारबुद्धि**लयः स समाधिः**। **अवेहि** जानीहि।।२३।। **द्योः**राकाशस्य। **तत्क्षये** उपाधिक्षये।।२४।। **क्षरः** भूतानि **अक्षरः** कूटस्थः **अहंता** संघाभिमान एभ्यः **परे तत्त्वे** ज्ञाते सति तज्ज्ञाना**त्स तन्मयः** तदर्थमुपक्रमोपसंहारौ दर्शयति। **चिच्चै**तन्यं सच्छब्दवाच्यं। **इह** चिति **ब्रह्मास्मी**ति **स्फूर्तिः** आकाशे **वायु**रिवा**भूत् सा** सत्त्वोपाधिका**ऽद्या माया** तत्प्रतिबिम्बित**स्तज्ज्ञ ईश्वर** उच्यते **तत्र** तयोर्मध्ये ईक्षणलेशेन **विश्वो**त्पादनेच्छा**ऽभूत्साऽन्या** मलिनसत्त्वा **माया**ऽविद्याख्या **अथ तत्रे**श्वरे।।२५।।२६।। अहं **जगत्स्यामिति** यः **संकल्पः** स **महत्तत्त्वनामकः**। **तज्ज्ञौ** तदुपाधिकौ।।२७।। **अविद्यया**ऽऽवरणशक्त्या **वृतो**ऽतः स्वरूपानभिज्ञोऽभूत्। **महतो** महत्तत्त्वात् **रज**आत्मकः **क्रिया**शक्तिकः **सत्त्वा**त्मको **ज्ञान**शक्तिकः **तम**आत्मको **द्रव्य**शक्तिकः एवं **त्रिधाहं**कारः।।२८।। राजसात्कर्मेन्द्रिय**प्राणाः** सात्त्विकाज्ज्ञा**नेन्द्रियांतःकरण**देवाः तामसात्पंच**भूतानि ततो** भूतेभ्यश्चतुर्दश**लोकास्तै**र्लोकै**र्विराट् चिदंश**प्रवेशा**त्कार्यक्षमोऽभवत्**।।२९।। **लोका अङ्गा**नि यस्य विराजः, नक्षत्राणि दंताः, रात्रिर्दिवसश्च **निमेषोन्मेषौ**, **सृष्टिः कटाक्षः**, समुद्रः **कुक्षिः**।।३०।३१।। दिशः कर्णौ, **वायु**स्त्वक्, **अर्क**श्चक्षुः, वरुणो जिह्वा, नासा**श्विनौ**, इति **ज्ञाने**न्द्रियाणि, अग्निर्वाक्, **इन्द्रः** पाणी, **उपेन्द्रः** पादौ, **मृत्यु**र्गुदं, प्रजापतिर्लिङ्गं इति **कर्मेन्द्रियाणि, हरिरन्तःकरणं**, चंद्रो मनः।।३२।। **ब्रह्मा** बुद्धिः रुद्रोऽहंकारः **नारायण**श्चित्तं इत्यन्तःकरणानि समष्टेः। व्यष्टेस्तु देवताः। अयं **सूक्ष्मदेहः**। **अविद्या कारणं**, माया महाकारणं, **ईश** एव **प्रत्यक्**। पूर्ववद्**व्यतिरेकाद्देहनिरासतः त्वंपद**मिव लुप्तोपमा **तत्पदं अतस्तत्त्वमसि**।।३३।। निरासप्रकारमाह **भूरप्सु** प्रविलाप्य **ता** आपो**ऽप्यग्नौ सो**ऽग्नि**र्वायौ स** वायुः **खे** आकाशे **तत्खं द्रव्या**त्मके **तमसि प्रविलापयेत्**। **तत्त**मो **रज**श्च **सत्त्वे** तत्सत्त्वं **तमसि**।।३४।। **तत्तमोऽहंकृतौ सा**ऽहंकृतिः सा **अविद्यायां** प्रविलाप्य।

दिग्वाय्वर्कप्रचेतोऽश्वि-वह्नीन्द्रोपेन्द्रमृत्युकाः । ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यन्तःकरणानि हरिः शशी ।।३२।।

ब्रह्मनारायणेशाश्च सूक्ष्मदेहोऽथ कारणम् । अविद्याद्या महत्प्रत्यगीशो देहनिरासतः ।

तत्पदं व्यतिरेकात्त्वं-पदं तत्त्वमसि ह्यतः ।।३३।।

भूरप्स्वग्नौ ताः स वायौ स खे तत्प्रविलापयेत् । द्रव्ये तमसि तत्सत्त्वे रजः सत्त्वं तमस्यथ ।।३४।।

अहंकृतौ तन्महति साविद्यायां लयो द्वयोः । साद्यायां सा ब्रह्मणीत्थं त्वंपदं व्यतिरेकतः ।।३५।।

व्याख्यारूपैकसद्वस्तु सृष्टेः प्राक् चाधुनापि तत् । त्वं श्रोत्रात्मेन्द्रियातीतमस्यैक्यमनुभूयताम् ।।३६।।

सृष्टेः प्राक् सच्चिदानन्द-रूपोऽद्याहङ्कृतेर्लयात् । प्राग्वदूर्ध्वमपीदृक्त्वं या सृष्ट्यस्तित्वकल्पना ।।३७।।

गवाधाराहङ्कृतेः प्राक्-स्थानाभावान्न साद्य चेत् । तद्वत्क्वास्ति त्वमेकोऽतोऽद्वितीयो ब्रह्म चिन्मयः ।।३८।।

ब्रह्मबुद्ध्या द्वयाभावाद् देह्यहंकृतिसंक्षयात् । शिष्यतेऽत्र निराकारः क्वाख्यारूपात्मकं जगत् ।।३९।।

एवं विराजो देह**द्वययोर्लयः सा**ऽविद्या मायायां **सा** च माया **ब्रह्मणि** प्रविलाप्या। एवं सर्वविलापावधिभूतं ब्रह्मावशिष्यते तदेव तत्पदलक्ष्यं। **इत्थ**ममुनाप्रकारेण देहेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्यहंकारप्रविलापेन प्रलयावधिभूतः प्रत्यगात्माऽवशिष्यते स एव **त्वंपद**लक्ष्यार्थः।।३५।। अनयोरैक्यार्थं महावाक्यमाह **वि**गतनाम**रूप**कं **एकं** सजातीयादिभेदशून्यं **सृष्टेः** पूर्वं य**त्सद्वस्तु तदधुना** स्थितिकालेऽपि **च**कारात्प्रलयेऽपि *'वाचारंभणं विकारो नामधेयं '* *'अतोऽन्यदार्तं '* इति श्रुतेः तदेव तत्पदलक्ष्यं यच्च **श्रोतु**स्तवा**त्मा** देहः **इंद्रियाणि** प्रसिद्धानि उपलक्षणमिदं संघातस्य तान्य**तीतं** प्रत्यक् साक्षिचैतन्यं **त्वं** त्वंपदलक्ष्यं असि। अनयोः सामानाधिकरण्यादखंडैकरसत्वेन तत्त्वमेव त्वमेव तत् एव**मैक्यं** निदिध्यासनादिक्रमेण त्वयाऽपरोक्षत्वे**नानुभूयतां**।।३६।। पूर्वं **सृष्टेस्त्वं सच्चिदानंदरूप** आसीः **अद्याहं**कार**लया**द्विगतोपाधिः **प्राग्व**त्सच्चिदानंदरूपोऽसि। **ऊर्ध्वं** विदेहकैवल्येऽपी**दृक् अतो**ऽस्य**द्वितीयः**। ननु यतोऽन्या सृष्टिर्दृश्यतेऽतः कथमद्वितीयत्वं तत्राह **अहंकारात् प्राग्या सृष्ट्यस्तित्वकल्पना** साऽन्तःकरणप्रेरितेन्द्रियाधारा **साऽद्य** बोधे **स्थानाभावात् न** *'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् '* इति श्रुतेः।।३७।। अस्ति **तद्व**त्पूर्ववत्**क्वास्ति** न क्वापि दीपादिना रज्जुदर्शनात्सर्प इव।।३८।। **ब्रह्मा**काराखंड**बुद्धि**वृत्त्या **निराकार** एव **शिष्यते तत्र** पुनः **क्व** नाम**रूपात्मकं जगत्**।।३९।। भोगकाले कदाचि**द्दृष्टमपि स्रग्भोगिव**द्भातु नाम पुनस्तेन **ते ज्ञानदीपाद्भ्रमो न** भविष्यति तर्हि कतिकालं ज्ञानदीपो रक्षणीयो **दृढाभ्यास**पर्यन्तमित्याह **ज्ञान**मिति।।४०।। यथा **स्रजि** मालायां **अहेरभावः** भ्रमा**त्प्राक्** ज्ञाना**दूर्ध्वं** च **ब्रह्मणि** जगद्भ्रमाभावः तर्ह्यभाव एव मोक्ष इति चेन्न द्वैतस्यैवाभावो न स्वानुभवस्येत्याहाभावादिति। **मा एहि** मा गच्छ तमभावं जानातीति **तज्ज्ञः** तत्संबुद्धौ।।४१।। यो**ऽयं प्रबोधः** सोऽद्यैव जात इति न किंतु **नित्यो भास्वांश्च**। नित्यश्चेद्वेदः कुतो बोधयत्यत आह **वेदा भ्रान्ता**नां देहात्मदृष्टीनां **हिते**च्छवः बोधकाः न तु मुक्तानाम्। अस्तु नाम तथा। मयाऽधुना निष्कामयोगोऽभ्यसनीयोऽन्यद्वा साधकं। **साध्याभावान्ने**त्याह **साधकेति**। अतः परं न कुरु *'नैव तस्य कृतेनार्थं '* इति स्मृतेः।।४२।। अथ**वा** *'कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् '* इति **भगवद्वाक्यम्**। तर्हि तेन बंधः स्यात् बुद्धिलेपाभावादनहंकाराच्च **तै**रनुष्ठितै**र्न लिप्यसे**। तर्हि निदिध्यासनादि विधेयं। न। देहेऽहंभावरूपविपर्यासाभावा**न्मनो विनाऽपि ज्ञातास्य**तो **ध्यानादेः किं प्रयोजनम्**। न किमपि *'विपर्यस्तो निदिध्यासेन्न*

स्त्रग्भोगिवद्दृष्टमपि ज्ञानदीपान्न ते भ्रमः । ज्ञानं त्यक्त्वा दृढाभ्यासी भ्रमेणापि न युज्यते ।।४०।।

स्त्रज्यह्यभावः प्रागूर्ध्वं तद्वद् ब्रह्मणि चास्य तु । अभावाच्छून्यता मैहि तज्ज्ञ सच्चित्सुखात्मक ।।४१।।

भास्वान्नित्यः प्रबोधोऽयं वेदा भ्रान्तहितैषिणः । साधकान्यद्य कार्याणि साध्याभावान्न कुर्वतः ।।४२।।

भगवत्वाक्यतोऽसक्तः कुरु वा तैर्न लिप्यसे ।मनो विनापि ज्ञातासि ध्यानादेः किं प्रयोजनम् ।।४३।।

अदेहप्राणहृद्धर्मः प्रारब्धाशीः सुखं वस । इदं रहस्यं बोधाख्यं तज्ज्ञो ब्रह्ममयो भवेत् ।।४४।।

इति बोधाख्यं द्वितीयं रहस्यम् ।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः प्रीयतामनेन श्रीदत्तः ।।

इति श्रीमत्परमहंस परिव्रजकाचार्य श्रीवासुदेवानन्दसरस्वती(टेम्बे)स्वामिविरचितं

।। श्रीगुरुचरितं सम्पूर्णम् ।।

ध्यानमविपर्यय ' इत्युक्तेः।।४३।। '*तस्य तावदेव चिरं* ' इति श्रुतेर्यावत्प्रारब्धं देहस्तिष्ठति तावत् वर्णाश्रमादयः, अमुष्याहं पुत्रो भ्रातेत्यादिसंबंधाः, शौक्ल्यकार्श्यादयो देहधर्माः, क्षुत्पिपासादयः प्राणधर्माः, शोकमोहादयः हृद्धर्माः ते न सन्ति यस्य सो**ऽदेहप्राणहृद्धर्मः** स त्वं **प्रारब्धा**तिवाहकः स**न्सुख**मात्मस्वरूपे **वस**। अथार्धेन ग्रंथालंकारः। **बोध** इत्या**ख्या** यस्य तत् रहस्युपनिषद्भागे भवं **रहस्यं** अधिकारिलभ्यं **त**स्य **ज्ञः ब्रह्ममयो भवे**दिति फलं। '*यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति* ' इति श्रुतेः।।४४।। इति द्वितीयं रहस्यं। संपूर्णोऽयं टीकाग्रंथः। प्रीयतामनेन सर्वान्तर्यामी भगवान्श्रीदत्तसद्गुरुः।।

ज्ञानं त्रयोदशाध्यायैः कर्मयोगं च पंचभिः। पंचभिर्भक्तियोगं च कारयामास योगिराट्।।१।।

पाश्चात्यपाथोधितटे नवानां टीका प्रभासेऽभ्युदिताऽखिलानाम्। श्रीद्वारकायां चरितस्य तस्य श्रीसद्गुरोर्वेदनुतस्य तस्य।।२।।

शालिवाहनशके क्ष्माश्विवसुभूमिमिते(१८२१) त्वियं। टीका संपूर्णतां प्राप्ता चातुर्मास्ये ह्यवर्षके।।३।।

।। संवत् १९५६ ।।

।। श्रीगुरुःशरणम् ।।

द्विसाहस्रीचूर्णिका

श्रीगणेशाय नमः।। ॐ यदज्ञानाद्रज्जुसर्पवज्जगत् उदेति यज्जगत्तत्त्वं च पुनर्ज्ञानान्निमीलति तं सच्चिदानंदसद्गुरुं नौमि।।१।। एकं सदपि यत् बुद्धिभेदेनानेकवद्भाति एकरूपेण ज्ञानेन यस्यैक्यं भवति तद्दत्तसंज्ञितं ब्रह्म सत्यं।।२।। यः स्वतत्त्वं बोधयितुं संभूय दत्ताख्योऽत्रिपुत्रः सन् स्वपदरसपरान्कार्तवीर्यार्जुनप्रभृतीन्सर्वान्बालान्स्वाश्रितान्दिव्ययोगेनोद्दधार पुनः श्रीपादसंज्ञो भूत्वाऽन्यान्भक्तानुद्दधार पुनरपि नरहरिसंज्ञो भूत्वा स्वभक्तान्सिद्धादीनुद्दधार कृष्णाभीमानदीतीरस्थः स्मर्तृगामी परमगुरुरेष दत्तो जयति।।३।। यो जन्मादतीतोऽक्रियो निरिच्छोऽद्वितीयोऽपि बहु स्यामिति संकल्प्य गुणमय्या स्वमायया इदं अभिन्ननिमित्तोपादानकं नामरूपात्मकं स्वानुप्रवेशसहितं जगत्ततान प्रभुर्भगवानीश्वरः।।४।। आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं देहबुद्धीन्द्रियात्मकं चराचरं जगत्ससर्ज तत्र नरोत्तम एव ज्ञानपात्रं।।५।। इन्द्रियविषयस्थितौ रागद्वेषौ येन दैवीसंपत्तिमता जितौ स एव मोक्षं लभेत् तदर्थं स्वयमजोऽपि भगवानवतरति।।६।। अस्य ज्ञानिनो भगवानत्यन्तं प्रियः भगवतोऽपि तथा ज्ञानी प्रियः यतोऽजोऽव्ययोऽपीश्वरो लीलाविग्रहेण तस्य रक्षणायावतरति।।७।। एवं युगेयुगेऽवतीर्य धर्मस्वभक्तपरित्राणकार्यान्ते स भगवान्लीलाविग्रहान् त्यजति एवं ब्राह्मे दिवसे वाराहकल्पेऽष्टाविंशतितमश्चतुर्युगपर्यायो गतः।।८।। अस्मिन्पर्याये दारुणे कलियुगे प्राप्ते स्वांशभूता देवा अपि निर्दया जाता इति ज्ञात्वा स्वयं भगवान्दत्तात्रेय आविरासीत्।।९।। कृष्णामरजातीरसंचारी स भगवान्भिक्षुरूपेण लोकपावनीः सल्लीलाः कृत्वा तत्रैवादृश्योऽस्ति।।१०।। अस्य भगवत्त्वमाह जातमात्रस्योङ्कारोच्चारणं, हस्तस्पर्शमात्रेण लोहस्य स्वर्णत्वसंपादनं, अभ्यासं विना शिष्येभ्यो वेदपाठनं।।११।। मातापित्रोस्तत्त्वोपदेशनं बाल्ये तीर्थपर्यटनं, योगाख्यापनं, संन्यासमार्गस्थापनं च कथं भवेत्।।१२।। क्षणात्त्रिस्थलीयात्राचरणं, मृतपुत्रसंजीवनं, वंध्यामहिषीदोहनं, त्रिविक्रमाय विश्वरूपदर्शनं।।१४।। विद्वद्ब्राह्मणगर्वापहरणं, बुरुडमुखाद्वेदवाचनं, विधवायै सौभाग्यदानं, क्रियामार्गप्रकाशनं।।१५।। जीर्णशुष्ककाष्ठस्योदुम्बरवृक्षत्वसंपादनं, वंध्यायै कन्यापुत्रदानं, दृष्टिमात्रेण कुष्ठहरणं।।१६।। दीपावल्यामष्टरूपैरष्टग्रामगमनं, छिन्नक्षेत्रविवर्धनं चेत्येवमादीन्यलौकिकानि कर्माणि कृतानि करोति करिष्यति च।।१७।। नक्षत्रभूरजोजलकणगणकाः कुत्रचित्सन्तु परन्तु अगणेयोरुगुणगणगणने कोऽपि न शक्तः।।१८।। भगवान्स्वयमरूपोऽपि लीलाप्रकटितगुणरूपेण कर्णद्वारा भक्तस्यान्तः प्रविश्य पापं धुनोति।।१९।। ततः शुद्धान्तःकरणः स भक्तो जीवन्मुक्तो भवेत्। सुखदुःखादिद्वन्द्वरहितस्य प्रारब्धभोक्तुस्तस्य देहः पततु न पततु वाऽज्ञानसमुत्पन्नद्वंद्वलेशोऽपि नैव, स च प्रारब्धान्ते निर्विशेषं परं ब्रह्म याति।।२०।। अयं ब्रह्मसायुज्यप्राप्तिसन्मार्गोऽपि सत्सङ्गविवेकरहितानां आसुरीसंपत्तियुक्तानां मोहान्धानां न दृष्टिगोचरः।।२१।। कृतस्ववर्णाश्रमोचितकर्मा साधु-

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

गुरुदेवभक्तो विवेकी कर्मफलाभिमानत्यागेन संन्यासीश्वरप्रीत्यै नित्यनैमित्तिकानुष्ठानतो योगी च भूत्वाऽनेनैव मार्गेण भुक्तिं मुक्तिं च लभेत्।।२२।। एवं श्रीगुरोरीश्वरस्य सुवृत्तं महिमानं श्रुत्वा संसारतापतप्तोऽत एव विरक्तो नामधारकशर्मा कश्चिद्विप्रो गुरुं स्तुवन्भीमाऽमरजासंगमे आश्रितकल्पवृक्षं शरण्यं भगवंतं प्राप।।२३।। तत्र साक्षाद्दर्शनाकांक्षी स नामधारकविप्रः निर्विघ्नतार्थं गणेशं शारदां च नत्वा नृदेहेन विश्रुतं दुःखहरं गुरुं तुष्टाव।।२४।। स्तुतिमाह- भो सर्वज्ञ मां न जानीषे किं, भो विश्वसाक्षिन्, मां न वीक्षसे किं, भो व्यापक, मम विलापं न शृणोषि किं, अथवा श्रुत्वाऽपि मामुपेक्षसे किं।।२५।। त्वयाहं ज्ञातश्चेत्कुतो वैक्लव्यमवशिष्टं विलापोऽपि श्रुतश्चेत्कुतः शोकोऽवशिष्टः, उपेक्षयेति चेत् भो दयानिधे त्वयि भक्तोपेक्षा उचिता किं।।२६।। देवान्तरं गच्छेति चेत्तत्राह त्वमेव सर्वदेवेश्वरोऽस्माकं कुलदैवतं च त्वां हित्वाऽन्यं कतमं याचे यतस्त्वामीश्वरं वेद्मि त्वमपि सामान्यविशेषतो मां वेत्सि न राजवत्।।२७।। यतः सर्वोऽपि जनो भूपं जानाति तथा स भूपः सर्वं विशेषतो न जानातीत्यल्पज्ञे राज्ञि तत् उचितं, हे प्रभो ' यः सर्वज्ञः सर्ववित् ' इति श्रुतेः सर्वज्ञे त्वयीदं कथं श्लाघ्यं।।२८।। किं च सेवया किंचिदादानेन वा दास्यसीति चेत्तन्नोचितं सेवेच्छुः प्रत्युपकारी वा दाता भवेत्किं अथवा कुत्सितो दाता किंदाता।।२९।। सेवादाननिरपेक्षाः सूर्यादय इह लोके प्रकाशं, मेघो जलं च यथाऽर्पयति त्वयाऽपि पूर्वं निरपेक्षं ध्रुवाय बिभीषणाय च पदं दत्तं अतस्तथैव मह्यं ते प्रियदर्शनं देहि।।३०।। यतो नव निधयस्तेऽनुचराः अष्टौ सिद्धयस्ते दास्यः श्रीश्च ते किङ्करी ततस्तुभ्यं किं देयं हे परिपूर्ण, ते किं वा कार्यं।।३१।। भूमौ नृपा अपि स्वसेवककुलं पालयन्ति हे विश्वव्यापक, त्वं मत्पूर्वार्चितोऽतः कुतो दीनं मामुपेक्षसे।।३२।। हे देवेश, ममापराधैरन्तर्विषादतां यास्यसि चेत् मानुषी अपि माता बालैः पद्भ्यां ताडितापि रुष्यति किं।।३३।। किं च यत्र मातापितरौ भिन्नौ तत्रान्यतरतः शिशोर्जीवनं समुचितं ' पितामहस्य जगतो माता ' इति त्वयोक्तत्वात्त्वमेव मम मातापितरौ हे विश्वव्यापक, त्वयि निर्दये जाते मया किं कार्यं।।३४।। तव दोषनिमित्तं निर्दयत्वमिति चेत्सहजदोषस्यापरिहार्यत्वमाह यथा साहसं मा कुर्वित्युक्त्वा कश्चित्पक्षी स्वयं काष्ठं भिनत्ति तथा साहजिकैर्दोषैः पापं निंदामि करोमि च।।३५।। प्रायश्चित्तं कुर्वित्यत आह- पुण्यवतामल्पपापोत्पत्तौ विधिप्रोक्तं प्रायश्चित्तं मां वीक्ष्य शार्दूलं दृष्ट्वा गौरिव भीत्या दूरात्पलायते।।३६।। किं च मालिन्यदोषभीत्या माषराशेः पृथक्किं कार्यं तथैव हे हरे, जपादिरपि पापरूपान्मत्तः किं पृथक्कुर्यात्।।३७।। हे हरे मादृक् पापो नास्ति अत औदासीन्यं त्यक्त्वा हे ईश अनन्याश्रयं दीनं मां पाहि।।३८।। शिला अपि मद्विलापं श्रुत्वा द्रवन्ति हे दयानिधे, चेतनस्य ते कारुण्यं क्व गतं यतो म्रियमाणमपि मां न वेत्सि।।३९।। एवं मार्गे विलाप्य गुरुध्यानैकतानचित्तः स नामधारकः प्रायोपवेशेन तस्थौ तदा दैवयोगात्स्वप्नोऽभवत्।।४०।। यथा वात्सल्याद्धेनुर्वत्समेति तथा भक्तवत्सलो भगवानवधूतवेषेण स्वप्ने प्राप्य तं नामधारकं पर्यतोषयत्।।४१।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

।। इति चूर्णिकायां प्रथमोध्यायः।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ततो नामधारकः स्वप्नादुत्थाय स्वप्नदृष्टं पुरुषमदृष्ट्वा तमेव ध्यात्वा इतस्ततो व्रजन्नग्रतः कृपालुं द्वन्द्वातीतं योगिनं साक्षाद्ददर्श हर्षेण रोमांचेन च शोभायमानः स नामधारकः प्रेम्णा गद्गदया वाचा च वक्तुमारेभे।।२।। माता पिता भयहर्ता पोष्टा उपदेष्टा च मम भवानेव। कुत आयातोऽसि, क्व वा गच्छसि। अद्य मे दृग्गोचरो भवानेतद्दिष्टया।।३।। पुरुषोऽनुकूलकाले स्वजनैर्युज्यते, प्रतिकूले च तैर्वियुक्तोऽपि सद्भिर्युज्यते। अद्य निःसंगस्य मम भवान्सर्व एव।।४।। तापत्रयतप्तो नामधारकशर्माऽहं विप्रो गुरुदर्शनकामया व्रजन्हे प्रभो, मुमूर्षुरभवं।।५।। ममेन्द्रियशोषशोकं हर्तुं कोऽपि न समर्थः। यस्माद्भवद्दर्शनान्मे हृदयं हृष्टं तस्मात्त्वमेव मे शोकं हर्तुं शक्नोषीति जाने।।६।। सिद्ध उवाच यद्भक्ता भुक्तिं मुक्तिं च यान्ति, यो भीमातटे विद्यते तस्य योगिध्येयस्य त्रिगुणात्मकस्य गुरोः शिष्योऽहं, लोकानुग्रहाय भुवि चरामि।।७।। नामधारक उवाच सोऽपि भगवान्सद्गुरुरस्माकं कुलदैवतं। तं श्रद्धाभक्त्या भजामि तथापि स मां कष्टाब्धौ निमज्जयति।।८।। सिद्ध उवाच अन्येषु रुष्टेषु त्रिगुणात्मकः सद्गुरुः स्वभक्तरक्षणे समर्थः, तस्मिन्रुष्टे न कोऽपि समर्थः। अत एव त्वं गुरोर्नेष्टोऽसीति मे भाति।।९।। अश्रद्दधानः संशयात्मा च क्वापि केनापि नाङ्गीक्रियते पुनश्च त्रिगुणात्मना श्रीगुरुणोपेक्षितस्य संशयात्मनः कोऽनुग्राहकः? न कोऽपि।।१०।। नामधारक उवाच लौकिकेऽपि गुरौ रुष्टे कोऽपि न समर्थ इति यदुक्तं तत्क्वापि वृत्तं चेद्वद किंच एष भगवान् कथं त्रिगुणात्मा एतं मे संशयं छिन्धि।।११।। सिद्ध उवाच पूर्वं सर्वेच्छारहितस्य एकोऽहं बहु स्यामिति मतिरभूत् संजातयोगनिद्रस्य विष्णोः सैव माया।।१२।। तया जगत् सृष्टं। पूर्वं तन्नाभिकमलाद्ब्रह्माऽभूत्। तस्मै वेदान्ददौ। स ब्रह्मा वेदोक्तवज्जगदस्रजत्।।१३।। मनुष्यस्थित्यर्थं वर्णाश्रमविभागेन सधर्मान्कृतत्रेताद्वापारकलींश्चासृजत्।।४।। सत्यवैराग्यज्ञानयुग्यज्ञसूत्रधारि कृतं, यज्ञसंभारयुक्ता त्रेता, द्वापरस्तु शस्त्रधारी।।१५।। पुण्यपापोग्रतादयानैष्ठुर्ययुक्, कलिस्तु लिङ्गजिह्वाभृत्पिशाचवन्मलिनः।।१६।। कृतं १७२८०००, त्रेता १२९६०००, द्वापारः ८६४०००, कलिः ४३२००० एवं नियतकालमेकैकं स्थित्यर्थं भुवि प्रेरयामास। प्रयाणे ब्रह्मणा कलये प्रोक्तां गुरुकथां शृणु।।१७।। कलिरुवाच धर्मवरैः प्रशांतैः सेवितां भूमिं कथं यास्यामि? तां श्रुत्वापि मे चित्तं खिद्यते, देहश्च तप्यते।।१८।। अहं धर्मसेतुछेत्ता शोककलहद्वेषतापकर्ता च, किंच परस्वपरस्त्रीहर्ता मे भ्राता, कामक्रोधादियुक्तो मम प्राणवल्लभश्च।।१९।। क्षतव्रतो नास्तिकोऽधार्मिकश्चापि मे प्राणः। ये भारते खंडे स्थिता धार्मिकास्ते मम शत्रवः।।२०।। गुर्वीशदेवसद्विप्रपितृधर्मपराणामवलोकान्मे प्राणा बहिर्यास्यन्ति, योगिज्ञानीक्षणादपि तथा।।२१।। ब्रह्मोवाच आसुरीसंपत्तिमाश्रित्य भुवं गच्छ ततस्ते लोकास्त्वद्वशा भविष्यन्ति। यस्मात्कलौ शतवर्षाण्यायुः तन्मध्ये कदाचित्कोऽपि धन्यो भूयात्तं न जहि।।२२।। गुर्वादिभ-

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

क्तस्त्वद्दोषैर्न लिप्यते, सर्वेष्वपि विशेषतो गुरुभक्तो न लिप्यते।।२३।। जलेन कमलमिव गुरुभक्तस्त्वद्दोषैर्न लिप्यते। गुरुभक्तं जेतुं देवा अपि शक्नुयुः।।२४।। कलिरुवाच। गुरुर्देवेभ्यः श्रेष्ठः कथं यस्माद्गुरुभक्तः केनापि न पराभूयते इदं क्वापि वृत्तं चेद्वद।।२५।। ब्रह्मोवाच गुरुं विना ज्ञानं न, देवा अपि गुरुभक्त्यैव सिद्धार्थाः अतो देवेभ्योऽप्यधिको गुरुः।।२६।। पुरा गोदातटे बहुशिष्यप्रशिष्यो वेदधर्मा नाम मुनिः शिष्यनिष्ठां ज्ञातुं प्राह।।२७।। भो शिष्यास्तपसा पापं बहु क्षालितं, यत्प्रारब्धं तद्व्याधिरूपेण काश्यां भोग्यं तत्र मे रक्षकः को भविता?।।२८।। गलत्कुष्ठार्दितस्य मम दंशादिवारणैः क्षालनैरन्नदानैश्च प्रेमपूर्वकं मम को रक्षकः भविता?।।२९।। इत्येवं गुरोर्वचः श्रुत्वा ते शिष्यप्रशिष्या भीत्या तूष्णीं तस्थुः। तत्रैको दीपको नाम शिष्यो गुरुं अभिवाद्य प्राह।।३०।। भो गुरो मोक्षविघ्नकरं दोषं न शेषयेत्, भवत्पापमहं भोक्ष्येऽनुज्ञां देहि।।३१।। गुरुरुवाच स्वयमेव पापं भोग्यं, शिष्यादिद्वारा न तन्नाशः। अतः काश्यां कष्टेन तद्भोक्ष्ये, त्वं शक्तोऽसि चेन्मां रक्ष।।३२।। इति गुरूक्तमङ्गीकृत्य शिष्यो गुरुणा सह काशीं ययौ। गुरुः कुष्ठी अंधश्च भूतवा पापं बुभुजे। शिष्यस्तं भेजे।।३३।। गलद्व्रणपीडितो गुरुः कार्याकार्यमजानन् प्रतिकूलाचरणेन पुनः पुनः शिष्यं व्यताडयत्।।३४।। सेवासमये भिक्षां भिक्षासमये सेवां च स गुरुर्ययाचे, याचिताऽप्राप्तौ शिष्यमहनत् तथापि शिष्यो नाखिद्यत।।३५।। दत्तां भिक्षां दोषदृष्ट्या भूमौ प्रक्षिप्य रोषेण स्वादु आनीहीत्युचे।।३६।। भिक्षार्थं गच्छन्तं शिष्यं परावर्त्य विष्ठमूत्रोत्सर्गयुक्तस्य मे क्षालनं न कृतं, मक्षिकाश्चाश्नन्ति क्व यास्यसि।।३७।। ततः क्षालनार्थमुद्युक्तं तं निवार्य क्षुधा कण्ठगतप्राणं मां न वेत्सि किं हे पाप मे द्रुतमन्नं देहि इत्युवाच।।३८।। कदाचिद्भिक्षान्नं भुक्त्वा हे पुत्रक मदर्थं श्रान्तोऽस्यतः स्वपेत्युवाच। तस्मिन्सुप्ते ' उत्तिष्ठ, क्षुधिताय मेऽन्नं देहीत्याह।।३९।। एवं पीडितोऽपि शिष्योऽनिशं गुरुमखेदं भेजे। तेन तं सर्वदेवेश्वरं मत्वा स्वात्मयात्राऽपि विस्मृता।।४०।। गुरुपादोदकं गङ्गा, गुरुः साक्षाद्विश्वेश्वर इति, सर्वानन्दनिधिः इति च मत्वाऽन्यन्मनसाऽपि नैच्छत्।।४१।। एवं गुरुभक्त्या शुद्धं शिष्यं ज्ञात्वा आगत्य चेष्टं वरं वरयेति ते भद्रमस्त्विति च तं विश्वेश्वर उवाच।।४२।। दीपक आह ' वरेण मे किं कार्यं, रोगशांत्यै गुरूणां वर इष्टश्चेत्तान्पृष्ट्वा वृणे'।।४३।। इत्युक्त्वा गुरुमेत्य तच्छशंस। तदा तप्तो गुरुस्तमाह ' भोगादेव पापं क्षयं नेष्ये। मम सेवायां बिभेषि किं ' इति।।४४।। तदा शिष्यस्तथेत्युक्त्वा विश्वेश्वरमेत्य प्राह ' गुर्वसंमतं वरं न कांक्षे ' इति। तच्छ्रुत्वा विश्वेश्वरो दुर्मना इवागात्।।४५।। निर्वाणमंडपं गत्वा विष्ण्वादीन्प्राह ' चण्डो वेदधर्मा रुग्णो मुनिः कम्बलाश्वतरसंनिधौ अस्ति, गुरुभक्त उत्तमस्तच्छिष्यो दीपकनामकः।।४६।। तस्मै वरं दातुं प्रेम्णागाम्। स गुरुतत्परो वरं न स्वीचकार।।४७।। इत्येवमीशवाक्यं श्रुत्वा तं द्रष्टुकामो हरिर्ययौ। विष्णुराह ' हे दीपकाहं वरदोऽस्मि, वरं वृणु।।४८।। तपसाष्टाङ्गयोगैर्मननादिभिः सूपायैरुपवासव्रतैर्योगधर्माचरणैश्च नृणां न तथा गम्योऽस्मि।।४९।। गुरुसद्विप्रभक्तस्य मन्मयस्य निर्द्वन्द्वस्य साध्व्याश्च यथा सदा दृश्योऽस्मि।।५०।। हे सुभग त्वया कष्टेन

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

सद्गुरुः सेवितस्तेनैव परितुष्टोऽस्मि। हे मत्प्रिय वरं वरय ' इति।।५१।। दीपक उवाच ' श्रीगुरुर्देवानां देवः यतो ज्ञानं, ज्ञानान्मोक्षश्च त्वादृशा अपि वशा भवन्ति अस्माकमतोऽधिकं किं।।५२।। यथा विश्वेश्वरो गतस्तथा गन्तुं न रोचते चेद्गुरौ अचलां भक्तिं देहि। अन्यमशाश्वतं न वृणे।।५३।। विष्णुरुवाच ' गुरौ तव श्रद्धाभक्तिः सदा विद्यते। अतो भुक्तिर्मुक्तिः स्मर्तृतापहृत्कीर्तिश्चायाचिताऽपि दत्ता।।५४।। यो वेदादिभिः सद्गुरुं स्तौति तेन गुरुदास्यैश्च मे संतोषः, तस्य सदा मम सान्निध्यं।।५५।। तस्य कालादपि भयं नास्ति, कुतः पुनरन्यस्मात् भयं, सिद्धयस्तस्य दास्यः। अतोऽधिकं किम् ' इत्युक्त्वा विष्णुरन्तरधात्।।५६।। शिष्योऽपि गुरवे सर्वं शशंस। गुरुस्तत्क्षणं प्रीतः सन्तन्मूर्ध्नि सुखाकरं स्वकरं दधौ।।५७।। तेन शिष्यः सद्यो वेदवेदाङ्गपारगोऽभूत् कुशलः, स्मर्तृतापहरो, जीवन्मुक्तो, लोकप्रियश्च।।५८।। काशीप्रभावं ख्यापयितुं शिष्यभक्तिं परीक्षितुं वेदधर्मा कुष्ठी जातः मुनेः कुतः पापशंका।।५९।। हे कले इत्याद्या भूरिशो वक्तृश्रोतृमलहराः गुरुकथा भुवि जाताः। त्वं भुवं व्रज गुरुभक्तं मा प्रेक्ष।।६०।। इति ब्रह्मणादिष्टः कलिर्भुवमेत्य तथाचरत्। लौकिकगुरोरयं महिमा, किं पुनः सद्गुरोः।।६१।। ये सात्त्विकीं धृतिमास्थाय दृढभक्त्या सद्गुरुं भजन्ति ते तथा कृतकृत्या भवन्ति, न तथा संशययुक्ताः।।६२।। तस्मान्नामधारक त्वं श्रेय इच्छसि चेन्निःसंशयं श्रद्धया नृदेहेन क्रीडन्तं गुरुं भज, भवाब्धेः पारमेष्यसि।।६३।।

।।इति टीकायां द्वितीयोऽध्यायः।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

नामधारक उवाच यं परं ब्रह्म ब्रवीषि स त्रिमूर्त्यात्मेश्वरोऽपि भूमौ कुतो नर इव जातः तत्कारणं शुश्रूषवे मे वद।।१।। सिद्ध उवाच त्वं धन्योऽनुगृहीतश्चासि यस्मात्तव भवबंधघ्नी भगवत्यधोक्षजे भक्तिर्जाताऽतो मेऽतीव हर्षो वर्धते।।२।। भुवा पर्यटतं मां कोऽपि गुरुकथां न पृच्छति। अद्य भक्तचन्द्रेण त्वया मे बोधाब्धिः प्रपूरितः।।३।। अनन्तस्यानन्तलीला अपि ताः प्रश्नं विना निजबुद्धपरिणामावधि वक्तुः स्मृतिं न यान्ति।।४।। कलौ नास्तिका मर्त्यास्तत्कथाश्रवणात्मकं प्लवं भवाब्धिँ तरितुं न विदुरत एव ते भवाब्धावेव मज्जन्ति।।५।। यत्र भवाब्धौ अज्ञानं जलं, तृष्णा ऊर्मिः, कामाद्या मकरादयः, सुखदुःखभोगजन्यगानरोदनादिध्वनिः। ईदृशेऽनन्तेऽपारेऽगाधेऽस्मिन्सागरे एषा भगवत्कथा नौः, गुरुर्नाविकः, भगवत्कृपाऽनुकूलवातः।।६।। एतानि साधनानि त्वयाऽयत्नतः प्राप्तान्यत आशु भवाब्धिं तरिष्यसि। अतो भगवत्कथा वक्ष्ये, सादरं शृणु।।७।। इत्युक्त्वाऽमरजाभीमासंगमे गुर्वाश्रिताश्वत्थमूले उप-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

विश्य सिद्धो नामधारकाय सत्कथा आह।।८।। मुमुक्षुभेषजं, कामिनां इष्टदं, मुक्तानां जीवनं गुरुचरितं वाङ्मनसयोरगम्यमपि तेऽल्पं वच्मि।।९।। एकार्णवीभूते जगति शेषपर्यङ्कस्थोऽस्पृहो नारायणः स्वलीनं जगत्स्त्रष्टुं मायामुद्भाव्य।।१०।। ब्रह्माणमसृजत्। ब्रह्मापि सृष्टिवृद्ध्यै मानसान्सप्तर्षीनसृजत्। तत्रैकस्तपस्वीश्रेष्ठोऽत्रिः यस्य पुत्रो भगवानभूत्।।११।। तपोर्थस्यात्रेः पातिव्रत्यविभूषिताऽनसूयाख्या पत्नी आसीत् या त्रिभुवने पतिव्रतेति विख्याता।।१२।। यद्भिया भूर्मृदुला, सूर्याग्नी शीतौ, वायुर्मंदश्च जातः। देवा अपि स्वपदापायभ्रान्त्या हरिं शरणं ययुः।।१३।। एकदा नारदो ब्रह्मविष्णुशिवानेत्यानसूयाचारं प्रशस्याभ्यागतप्रियेदृशी साध्वी क्वापि नेत्याह।।१४।। इति नारदवाक्यं श्रुत्वा उपस्थितास्तद्देव्यो विषीदन्त्यस्तदसहमानाः सद्यो भृशं मूर्छिता बभूवुः।।१५।। ततस्ते देवा पतिव्रतामानिनीस्ता आश्वास्य सतीं शप्तुमतिथीवेषेणात्र्याश्रमं प्रापुः।।१६।। अनसूयापि स्वाश्रमागतान्तान्दृष्ट्वा संमुखं गत्वाऽऽनीयासनेषूपवेशयत्।।१७।। सव्यजनेन वीजितान्कृतपच्छौचान्सुखोपविष्टान्तान्प्राह ' भवतां स्वागतं। अद्य किं कार्यं। मुनिस्तु तपसे बहिर्गतः'।।१८।। देवा आहुः ' हे साध्वि, तपःसक्तमुनिः कदा आयास्यतीति न विद्मः। अत आशु क्षुधितेभ्यो नोऽलमन्नं देहि।'।।१९।। इति श्रुत्वा सा तथेत्युक्त्वाऽन्तर्गृहं गत्वा पात्राण्यासाद्यान्नं परिविष्टमिति तेभ्यो न्यवेदयत्।।२०।। ते प्राहुः ' भो साध्वि, नग्ना भूत्वाऽन्नं देहीति नोऽपेक्षितं। इदं न रोचते चेत्क्षुधिता वयं इतोऽन्यत्र गच्छामः।।२१।। अनसूया इति श्रुत्वा प्रहस्य स्वगतमाह तपस्विन ऋषेः संगात्पवित्राया मे कामेन किं भवेत्? अतिथ्युक्तवन्मया न कृतं चेत्।।२२।। अमी महात्मानः शप्त्वा विमुखा गमिष्यन्ति। एते तु ममपुत्रा! इति विचिन्त्य तथेत्युक्त्वा नग्नाऽभूत्तदैव निर्विकारा अपीश्वरास्ते बाला आसन्। अयं पातिव्रत्यप्रभावो यदुत्पत्तिस्थितिलयकर्तॄणां बाल्यं।।२३।। तथाविधान्तान्दृष्ट्वा साऽपि विस्मिताऽभूत्। तदा प्रसूताया इव तस्याः स्तनतो दुग्धं ववाह।।२५।। सद्यो हृष्टा जातरोमाञ्चा सा प्रत्येकं दुग्धमपाययत्। तेऽपि मुदा पपुः।।२६।। सृष्टिश्रान्त इव ब्रह्मा सत्या दुग्धं पीत्वा परमां शांतिमाप।।२७।। रक्षया त्रस्त इव विष्णुः साध्व्या दुग्धं पीत्वा विपुलां शांतिं गतः।।२८।। संहारेण क्लिष्ट इव हरस्तस्याः पयःपानात्पुष्टिवर्धनत्वं प्राप।।२९।। सा स्वधर्मबलात् सामर्थ्यं ज्ञात्वा पयः पाययित्वा तान्पाले विन्यस्य प्रेम्णा तत्कथां जगौ।।३०।। अत्रिरत्रान्तरे वनादेत्य गीतं श्रुत्वा, सतीमुखात्सर्वं ज्ञात्वा, इमे ईश्वरा इति ध्यानेन ज्ञात्वा, नत्वा चास्तौषीत्।।३१।। उत्पत्तिस्थितिलयकारणं तत्साक्षिणं विश्वमयं विश्वाद्यं विश्वाधारं विष्णुं त्वां वंदे।।३२।। यदर्थं तपस्तप्तं स ईशत्वमेवैकः लीलया त्रिधा भूत्वा स्वगुणैरात्मनाऽऽत्मानं रमयसि।।३३।। अध्यारोपापवादाभ्यामिदं जगत्त्वत्तो न भिन्नं तथापि तत् अहं ममेति मायिकभावनया पृथक्त्वं गतं। अतोऽस्य नान्यत्वं।।३४।। इति तस्मिन्स्तुवति ते बालरूपतः पालकस्था अपि पूर्वरूपैर्मुनिसन्निधौ स्थित्वा तमूचुर्वरं वृणीष्वेति।।३५।। स साध्वीं प्राह हे सुभगे, इमे मनोदूरा अपि त्वद्भक्त्या प्राप्ता अतोऽभीष्टं वृणु।।३६।। साऽत्रिं प्राह भो

सुतप, अमुना सृष्ट्यर्थं भवान्स्रष्टः। अत एनमजं पुत्रत्वेन वृणोतु।।३७।। ऋषिरदमेवेष्टं मत्वा वव्रे। विष्णुराह सर्वात्मनाऽहं ते दत्त इति।।३८।। एवं पतिव्रताप्रभादीश्वरा बाला भूत्वा स्थिता अपि स्वस्वपूर्वरूपतः स्वं स्वं स्थानं ययुः।।३९।। अर्थज्ञोऽत्रिस्तेभ्यो नामानि ददौ। पूर्णत्वेन मयाऽहं ते दत्त इत्युक्तत्वाद्विष्णुं दत्त इति, आल्हादकत्वाद्ब्रह्मांशं चंद्र इति, रुद्रांशं दुर्वासा इति च। अत्र दत्तः साक्षात्स्वयं भगवान् श्रुतिमृग्यः सच्चिदानन्द एव।।४०।।४१।।४२।। यो हि योगज्ञानदो भक्तेष्टदश्च क्षणे क्षणे स्मर्तृगामी अत्र संचरति, अत्यन्तकोपी अपि दुर्वासाः परानुग्रहकृत्, चंद्रस्तु लोकपोषकः।।४३।। अजोऽपि भगवान् दुर्वाससा दत्तं शापमङ्गीकृत्य भूमिदेवरक्षणार्थमनेकावतारान्धृत्वा तान्लीलाविग्रहान्कार्यान्ते जहाति।।४४।। भगवान्परानुग्रहकार्यार्थं दत्तरूपेणावतीर्णोऽपि परानुग्रहकार्यस्य नित्यत्वात् अमुं लीलाविग्रहं न जहौ।।४५।। नामधारक उवाच। कुतो हेतोर्दुर्वाससा भगवान् शप्तः? अव्यक्ते तस्मिन्परावरे कथं शापो लग्नः? अमुं मे संशयं छेत्तुं योग्योऽसि।।४६।। सिद्ध उवाच। भक्ताधीनत्वेन भक्तिभावनो भगवानव्यक्तोऽपि सुव्यक्तोऽभूत्। अतस्तस्मिन्परिपूर्णा सहनशीलता।।४७।। पूर्वमेकादशीव्रततत्परोऽभ्यागतपूजकोऽम्बरीषनामैको भागवतोत्तमो भक्तोऽभूत्।।४८।। एकदा तद्व्रतभङ्गाय पारणादिवसे चंडो दुर्वासास्तद्गृहमागत्य भोजनं मे देहीति ययाचे।।४९।। दास्यामीत्यम्बरीषेणोक्तो स स्नातुं नदीं गत्वा छिद्रान्वेषी सन्पारणातिक्रमाय तत्रैव तस्थौ।।५०।। तदागमं प्रतीक्ष्याभुक्ते मुनौ न भोज्यं, पारणातिक्रमे च व्रतभङ्गः स्यात्, अतस्तीर्थपानादुभयसिद्धिरिति मत्वा तीर्थजलं पपौ।।५१।। तदैवागत्वा मुनिः प्राह यतः क्षुधितं मां हित्वा हे दुर्भग, त्वया पानं कृतं अतो तेन दोषेण भवे भवे भ्रमिष्यसि।।५२।। इति शप्तः सोऽजं स्वकुलदैवतं स्वदासजीवनं विष्णुं दध्यौ। विष्णुरपि तदैवागत्य मुनिं प्राह।।५३।। हे मुने, ते वाक्यं मोघं न, तमेव शापं मे देहि। अयमंबरीषः सोढुं न प्रभुः, भक्तवात्सल्यान्मम सहिष्णुता कथंचित् वर्तते।।५४।। तच्छ्रुत्वा मुनिः स्वमनस्याह अयं विष्णुर्भुवि नृणां दुर्लभः। अंबरीषशापनिमित्ततः।।५५।। अत्र सुलभो भविष्यतीति तं शपामीति मत्वा शशाप। अजो स शापनिमित्तो लोकानुग्रहाय बहुधाऽवतरति।।५६।। अस्य भगवतो मत्स्याद्यवताराः पुराणादौ विश्रुताः। स एव दीनान् जनान् त्रातुं कलौ द्विवारं प्रादुरासीत्।।५७।। कलौ पामराणामगोचरावपि तौ अवतारौ अद्यापि कामदौ स्तः। नियमितकाले कलौ संकल्पमात्रतः पुण्यं सिद्ध्यति, पापं चानुष्ठितं च सिद्ध्यति, न संकल्पमात्रेणात एव बहुगुणत्वात्कलिनिग्रहो न कृतः।।५८।।

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

।। इति टीकायां तृतीयोऽध्यायः।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गद्यं क्षेपकं (अथ हि किल पर्यटन्ययातिपुत्रो यदुराजोऽकुतोभयं सर्वसंगविवर्जितं विजने वने धरोपस्थे शयानं दक्षमवधूतं दृष्ट्वाश्चर्येण तं परिपृच्छति) आयुःश्रीकीर्त्यर्थं पुरुषो धर्मार्थकाममोक्षासक्तो दृश्यते। भवांस्तु अन्यथैव दृश्यते। तदनैपुण्येनाशक्त्याऽज्ञानेन वा भवतोऽकर्तृत्वमिति वक्तुं न शक्यते, यतो हि भवान्निपुणः शक्तः प्राज्ञश्च। तथापि विजने गहने वने कुतः कारणान्निरिच्छः सन् कलत्रादिरहितोऽपि सानंदोऽवतिष्ठते।।१।। इति यदुना पृष्टः स लोकमुक्तये बुद्ध्युपाश्रितगुरुशिक्षितज्ञानमब्रवीत्।।२।। दैववशवर्तिभूतैः पीडितोऽपि नरो भूमिवत्स्वमार्गान्न चलेत्किंतु धैर्यं वहेत्। सदा परार्थ एवोद्भव ईहा चात्मन इति ज्ञात्वा नगात्पराधीनात्मतां शिक्षेत्।।३।। हृदयवाग्विक्षेपपरिहाराय प्राणवृत्तिवदाहारमात्रेण तुष्येत् नेन्द्रियविषयैः। विषयान्भुञ्जानोऽपि तद्गुणदोषवर्जितः शीतोष्णादिविविधधर्मवर्जितश्च गंधानासक्तो वायुरिव गुणाश्रयोऽपि गुणैर्न युज्येत्। एतद्वा कथमित्यत आह स्वानुसंधानवान् भवेत्।।४।। कालसृष्टगुणत्रिवृत्करणविकारदेहविकारासंसृष्ट एव पुरुषः वायुप्रेरितमेघासंसृष्टाकाशवत् तेनात्मना सर्वान्वयव्याप्त्याऽऽकाशवदभेदोऽसंगश्च ज्ञातव्यः प्रत्यगात्मनो ब्रह्मत्वात्।।५।।६।। जलवद्रस्यः स्निग्धः प्रकृतितः स्वच्छः पुरुषः स्वदर्शनस्पर्शनादिना लोकान्पुनाति। अग्निराच्छादितः स्पष्टो वा कामिभिः सेव्यो दातुः पूर्वोत्तरदोषान्परिहरन् यत्र कुत्रापि भुङ्क्ते, तद्वज्ज्ञानी तपस्तेजोदीप्तोऽतएवाक्षोभोऽपरिग्रहश्च सर्वभक्षोऽपि दोषासंसृष्ट एव यथा काष्ठसंयोगात्तद्रूप इवाग्निरिव सुरासुरनरतिर्यगादिदेहेषु तादात्म्येन तिष्ठन्तद्रूप इव प्रतीयते। सा प्रतीतिर्न वास्तवी। अन्यच्च कालवेगेनात्मसंबंधीभूतानामुत्पत्तिविनाशौ प्रतिक्षणं वर्तमानावपि अग्निज्वालावत्स्थूलदृष्ट्या न दृश्येते।।७।।८।।९।। देहस्तु कलावद्विकारी, आत्मा तु ध्रुवः कूटस्थः। आप्यमंडल इव आत्मा देहाद्युपाधौ स्थूलबुद्ध्या तद्गत इव भाति, घटजलप्रतिबिम्बितसूर्य इव स्वस्थो न बुध्यते।।१०।। सूर्यः स्वकिरणैर्यथाकालं जलान्यादत्ते, विसृजति च यथा तथा ज्ञानी विषयानादत्ते काले पात्रे विसृजति च। तत्र मया लब्धं दत्तं चेति अभिमानं न वहति सूर्यवत्।।११।। पुरुषोऽतिस्नेहप्रसंगात् कपोतवन्नश्येत्। कश्चित्कपोतः कपोती च मिथुनीभूय क्रीडादौ प्रेम्णा चेरतुः।।१२।। अशंकं मिथो बद्धदेहान्तःकरणावास्ताम्। स मैथुनादिना तर्पयन्तीं तां श्रमेण पाति। सा बालानजनयत्तौ मुदा तान्पुपोषतुः।।१३।। कदाचिल्लुब्धो नीडाद्बहिस्थान्तान् शिचा जग्राह। ततः क्रोशन्तीं दुःखात्पातितां अपस्मृतिं दुःखितं कपोतं च जग्राह।।१४।। एवं द्वन्द्वसुखारामः प्रियविषयाशांतो गुणबुद्ध्या गृहासक्तः पुमान्कपोतवत् क्रांतापावरणमुक्तिद्वारभूतनरजन्मतः प्रच्युत एव।।१५।। स्वर्गे नरके वा सुखमस्ति तन्नैच्छेत्। अजगरवृत्तिमाश्रित्याक्रियत्वेन यदृच्छया प्राप्तं, स्वल्पं महान्तं वा, सरसं विरसं वा, ग्रासं भक्षेत्।।१६।। अप्राप्तश्चेदशनोऽपि दैवमेव प्रापकमिति दृष्ट्याऽजगरवदविनिद्रः स्वपन्निन्द्रियवानपि निरुद्यमं बलिष्ठं देहं वहन्दर्शनादिव्यापारमपि निवारयेत्।।१७।। समुद्रवज्ज्ञानी पूर्णोऽपि न सर्प-

ति, हीनोऽपि न शुष्यति। निम्नोऽनंतपारो दुरत्ययोऽक्षोभ्यो दुर्विगाह्यः प्रसन्नश्च निश्चलाब्धिवत्तिष्ठेत्। स्त्रीलीलारूपमोहितोऽवशः पुमान् अग्नौ पतंगवन्नश्येत्।।१८।। सर्वतः सारं गृह्णीयात् अल्पाशीरप्येकत्र न रमेत्। मधुकृद्वन्नाशबीजे न रमेत्।।१९।। स्त्रीस्पर्शात्पुमान्हस्तीव बद्धचेताथवा शूरैर्हन्येत्। मक्षिकावत् कष्टेन संचितं न दत्तं न भुक्तं धनं अन्यो भुङ्क्ते।।२०।।२१।। दुःखार्जितं गृहिणोऽन्नं पूर्वं मधुहेव भिक्षुः पूर्वं भुङ्क्ते। पुमान्ग्राम्यगीतान्मृगवद्बध्येत, नृत्याद्यवलोकनाच्च ऋष्यशृङ्गवद्बध्येत।।२२।। पुमानतिप्रमाथिन्या जिह्वया रसमोहितश्चेद्बडिशैर्मत्स्य इव लयं यायात्। साऽनासक्त्याऽल्परससेवनेन च शनैर्जय्या। रसे जिते सर्वं जितं।।२३।। बह्वर्थदकांताशया ध्वस्तनिद्रा पिङ्गला नामैका वेश्या चिंताहेतुं निर्वेदं गत्वा स्वात्मानं धिक्कुर्वती आह स्वात्मस्थं रतिद्रव्यदं।।२४।। आत्मारामं हित्वा कुत्सितवृत्त्या भयशोकमोहदं नश्वचं नरं काङ्क्षेऽतो मां धिक्। इतःपरमात्मानं क्रीत्वाऽऽत्मारामेण रमे इति।।२५।। सा तथाऽरमत् यस्मादेवं तस्मादाशैव दुःखं, नैराश्यं परमं सुखं। परिग्रहो दुःखायेति ज्ञात्वा तद्रहितोऽतिसुखमश्नुते।।२६।। यत आमिषयुक्तं कुररं शूरो हन्तीति। मानावमानचिन्तारहित आत्मक्रीड आत्मरतिर्बालवत्सुखी यतोऽज्ञो वा ज्ञो गुणातीतश्च परमानन्दः।।२७।। काचित् कुमारी रहःकृत्ये विघ्नभूतान्महाशब्दान् शंखानपसार्य द्वौ द्वौ धृतवती ततोऽपि शब्दं श्रुत्वैकैकं धृत्वा सुखमलभत्।।२८।। अतो बहूनां वासे कलहो द्वयोर्वार्ता च तच्छंखवदेव एक एक तपश्चरेत्।।२९।। अप्रमत्त एकचारी मौनी अगृहोऽपि गुहास्थओ गत्याचारालक्ष्योऽहिवच्चरेत्। अध्रुवात्मनो गृहारंभो निष्फलः। सर्प इव अन्यगृहे सुखी।।३०।। आसनश्वासौ जित्वा वैराग्याभ्यासबद्धचित्तं पुरुषेणेश्वरे संयुक्तं वासनां त्यक्त्वा सत्त्ववृद्ध्या निरुपाधिकं सत्।।३१।। निर्वाणं याति मुनिर्बहिरन्तःस्थं न वेद, यथेषुकार इषुदत्तचित्तोऽग्रतो यान्तं सपरिवारं भूपं न वेद। प्रेमादिना निश्चलहृदयेन विष्णोर्ध्यानात्पूर्वरूपमुत्सृजन् कीटः पेशस्कृत इव सारूप्यमेति।।३२।। यथोर्णनाभिः कारकसामग्रीमनपेक्ष्य नाभितो निर्गतां ऊर्णां मुखेन संतत्य विहारं कृत्वाऽन्ते तामत्ति तथाऽभिन्ननिमित्तोपादान ईशः पूर्वं मायासृष्टं जगदुपसंहृत्य प्रलये एक एवाद्वितीयोऽभवत्। स्वशक्त्याखिलाश्रयः सर्वेशः आत्मानुभावतः कालेन सत्त्वादिशक्तीः समतां नीत्वा निरुपाधिकः प्रधानपुरुषेश्वरो मोक्षसंज्ञकः परमानन्द आस्ते।।३३-३४-३५-३६।। ततः स्वानुभावेन गुणात्मिकां स्वमायां क्षोभयन् तया सूत्रं सृजति। सा त्रिगुणाशक्तिर्विश्वं ससर्ज।।३७।। येन पुमान संसरते तद्विश्वमीश्वर ओतप्रोतमास्ते। पारक्यात्सोत्पत्तिक्षयाद्देहाद्बोधवैराग्ये स्तः।।३८।। स्वप्रियाभिलाषी स्वेष्टपोषको देहान्तरबीजं सृष्ट्वा वृक्षवन्नश्यति।।३९।। इन्द्रियाणि स्वार्थाय तं सपत्नीवत्तं लुनन्ति। ईदृङ् नरजन्म दुर्लभं मत्वा ज्ञानं संपाद्य मुक्तसंगोऽनहंकारश्च महीं चरे। यदुस्तच्छ्रुत्वा संगं त्यक्त्वा द्रुतं समचित्तोऽभूत्।।४०।। प्रऱ्हादानुग्रहमाह कष्टरूपसंसारहेतुभूतपाराणार्थाभिलाषापनुत्तये भगवान्प्रऱ्हादाय मधुकराजगरशिक्षितवैराग्यसंतोषदं।।४१।। परमात्मतत्त्वं प्राह। स्वरूपं सुखं तत्सर्वेहानिवृत्तौ भाति। सोपाधिकान्सातिशयानशाश्वतान्भोगान्दृष्ट्वा संविशन्नपि स्वपे।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

इतः पर हितं न।।४२।। विकल्पं भेदग्राहकमनोवृत्तौ हुनेत्, तां मनसि हुनेत्, मनो वैकारिकाहंकारे, तं मायायां, तां च स्वात्मनि हुत्वा विरमेत्।।४३।। इत्युक्त्वा श्रीदत्तो विरराम। प्रऱ्हादोऽपि तथाऽभवत्।।४४।। एवं कार्तवीर्यार्जुनायाष्टाङ्गयोगं निवृत्त्यर्थमाह। सच्छब्दवाच्याविद्याशबलं ब्रह्म ततोऽव्यक्तं, ततो महान्।।४५।। ततोऽहंकारस्ततः पंच तन्मात्राणि ततः पंच महाभूतानि तेभ्यो जगत्। सकार्याणि पंचीकृतपंचमहाभूतानि विराडुच्यते। एतदात्मानः स्थूलशरीरं।।४६।। इन्द्रियैरर्थोपलब्धिर्जागरितं तदुभयाभिमानी विश्वः। सकार्याण्यपंचीकृतभूतानि सप्तदशात्मकं लिङ्गशरारं।।४७।। करणेषूपरतेषु सविषयो जागरितसंस्कारजः प्रत्ययः स्वप्नः। अयं समष्ट्यभिमानी हिरण्यगर्भः। सूक्ष्मदेहस्वप्नयोर्व्यष्ट्यभिमानी तैजसः।।४८।। देहद्वयकारणभूताज्ञानं साभासं अनिर्वचनीयमव्याकृतमुच्यते। सर्वज्ञानोपसंहारो बुद्धेः कारणात्मनाऽवस्थानं सुषुप्तिरनयोरभिमानी प्राज्ञः।।४९।। एभ्यः परं शुद्धादिलक्षणचिन्मात्रब्रह्म महावाक्येन लक्ष्यते। यमादियुक्त आसनज्ञो गुरूपदेशेन इडया वायुमापूर्य कुंभयित्वा पिंगलया रेचयेत्।।५०।। पुनर्विपरीतमेवमभ्यासेनैवं प्राणे जिते मनसा विषयेभ्य इंद्रियाणि प्रत्याहृत्य।।५१।। आत्मन्यचलं मनो धारयेत्। विक्षिप्तं चेत्पुनः पुनरात्मनि स्थिरीकुर्वन् श्रुत्यानुकूलवृत्त्या च वाक्यश्रुतं ब्रह्म ध्यायेत्।।५२।। विजातीयप्रत्ययनिरासेन सजातीयप्रत्यप्रवाहीकरणं भजेत्। गुरूक्तं षड्लिंगैस्तात्पर्येणावधारितं भागत्यागलक्षणया लक्षितं।।५३।। सोऽहमात्मेत्यभेदतो वाक्यार्थं ध्यायेत्। नश्वरं सिद्ध्यादि नोपादेयं। लये चित्तं संबोधयेत्।।५४।। विक्षिप्तं शमयेत्सकषायं जह्यात्। समप्राप्तं न चालयेत्। तत्र रसं नास्वादयेत्। प्रज्ञया निःसंगो भवेत्।।५५।। यदा निवातदीपवच्चित्तो भवेत्तदा शून्यवृत्तिको ब्रह्मात्मा भवेत्। तदा कृतकृत्यः क्षीणकर्मा भिन्नहृद्ग्रन्थिसंशयः।।५६।। यावदारब्धमात्मज्ञो जीवन्मुक्तो भवेत्। सत्यमेतत्। इति दत्तोक्तं श्रुत्वा मत्वा ध्यात्वा कार्तवीर्यार्जुनो गुरूक्तवन्मुक्तोऽभवत्।।

।। इति चतुर्थोऽध्यायः।।

अथ पंचमोऽध्यायः

नामधारक उवाच। पुराणोक्ता ईश्वरावताराः श्रुताः। यद्भवताऽवतारद्वयमुक्तं तत्कथाशश्रूषवे मे वद।।१।। सिद्ध उवाच। रे वत्स त्वया साधु पृष्टं। या अत्र वक्तृश्रोतॄन्पुनन्ति तास्तत्कथाः समाहिततया शृणुष्व।।२।। धर्मं सतश्च त्रातुं दुष्टान्हन्तुं भगवान्लीलाविग्रहेणावतरति नान्यत्प्रयोजनं।।३।। कलौ हीनान्दीनमतीन्दुर्बलान्नॄन्दृष्ट्वा तानुद्धर्तुं भक्तिविधित्सयाविरासीत्।।४।। पीठापुरे पूर्वदेशे राजा नाम द्विजोऽभूत्तद्भार्या च सुमतिस्तावुभौ दत्तार्चनतत्परौ अभूतां।।५।। एकदा तद्गृहे श्राद्धाहेऽतिथिवेषेणागत्य श्रीदत्तोऽन्नं यया-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

चे। अकृतेऽपि श्राद्धे श्राद्धभोक्तायमीश्वर इति बुद्ध्या सुमतिस्तस्मै अन्नं ददौ।।६।। सर्वात्मा भगवान् तदा तद्भावं ज्ञात्वा प्रीत्या स्वरूपं व्यदर्शयत्।।७।। मालाकमण्डलुडमरुशूलशंखचक्रधरस्त्रिमुखो व्याघ्रचर्माम्बरो भस्मभूषितो जटिलो दत्त आह।।८।। भो मातः श्राद्धाहे विप्रभोजनात्पूर्वं श्राद्धान्नं हव्याकव्यादोऽयमिति मत्या मे दत्तमतस्तुष्टोऽस्मि। वरं वृणीष्व।।९।। ब्राह्मण्युवाच यद्योगिदूरोऽपि भवान्दृग्गोचरो भूत्वाऽन्नं जग्राह अतोऽधिकं किं। धन्योऽहं पितरोऽपि धन्याः।।१०।। भो जगत्कारण भक्तकामकल्पद्रुम लोकवंद्य मातरित्युक्तसंबोधनसिद्धिपूर्वं सुप्रजस्त्वं देहि।।११।। एवमत्रिवद्याच्ञां श्रुत्वा स प्राह मातृक्ते पुत्रो भविष्यति, तद्वचनतिरस्कारं मा कुरु।।१२।। इत्युक्त्वा सोऽन्तर्दधे। सा हृष्टा गृहमागत्य पत्ये तच्छशंसोभावपि ननंदतुश्च।।१३।। ब्राह्मण्युवाच भो नाथाद्य मयापराद्धं यच्छ्राद्धात्पूर्वं दत्तात्रेयायान्नं दत्तं तत्क्षन्तुमर्हसि।।१४।। विप्र उवाच यैरन्नैर्ब्राह्मणान्भोजयित्वा विष्णवे तत्कर्म समर्प्यते तान्यन्नानि स्वयं बुभुजे। तस्मात्त्वया सुदुष्करं साधु कृतं।।१५।। मध्याह्ने रूपान्तरेण भक्तोद्धाराय श्रीदत्तोऽर्थिवत्पर्यटतेऽत एव तद्रूपभावनया सदाऽतिथिः पूज्यस्तस्मिन्पराङ्मुखे श्रीभगवान्न लभ्यते।।१६।। हे भद्रे त्वया भद्रं कृतं हि। धन्येऽस्माकं कुलं पावितं यतो लोकस्यापि हितमीदृशो दुर्लभो वरो त्वया लब्धः।।१७।। इत्युक्त्वा ब्राह्मणः शेषान्नेन लौकिकश्राद्धमकरोत्। ब्राह्मणी अपि गर्भिणी भूत्वा कालेऽजमप्यमुं प्रासूत।।१८।। तदा दैवज्ञाः प्राहुः भो ब्रह्मन्सुदुर्लभं त्वत्पुण्यकल्पवृक्षफलमिदं।।१९।। अयं हि लोकवंद्यो भगवान्दत्तात्रेयोऽवतीर्ण इवेति ग्रहवशाद्भाति इत्युक्त्वा ते ननंदुः।।२०।। ततः शोभनपदचिह्नत्वात्तस्य श्रीपाद इति नाम प्रतिष्ठितं। स च शोभनाङ्गैर्बालचंद्रवद्ववृधे।।२१।। तत उपनीतेन तेन शिष्येभ्यस्त्रयी उपदिष्टा। स्वाद्वाहोद्युक्तं तातं निवार्य श्रीपाद उवाच।।२२।। प्रव्रजता मया योगश्रीरेवोद्वाह्या नापराऽपत्यं विनापि साधिकारिणो ममैव सुलभा यतोऽहं श्रीवल्लभः।।२३।। एवमुक्त्वा प्रव्रजन्तं तं दृष्ट्वा साश्रुलोचनौ मातापितरौ ऊचतुः त्वयि याते जलेन विना मत्स्यानामिव आवयोर्मरणं।।२४।। त्वमतीन्द्रियः साक्षाद्भगवान्विष्णुरपि प्राक्पुण्येन पुत्रत्वेन विषयी भूत्वा कुत आवां दुःखाब्धौ पातयसि।।२५।। हे हरे भवपाशविमोचनी अपि तव स्मृतिः पंग्वंधात्मजदर्शनाद्दूरतरा भवेत्।।२६।। इति सकरुणं तद्वाक्यं श्रुत्वा सुखाकरं स्वकरं वात्सल्येन भ्रातृमस्तके दधौ।।२७।। तदैव तौ पादाक्षियुक्तौ जातौ। लीलाविहारिणि भगवतीदं न चित्रं।।२८।। माताप्याश्चर्यवत्तद्रूपं दृष्ट्वा दत्तोक्तं स्मृत्वा गद्गदवाचा प्राह।।२९।। दुरत्यया दैवी तव माया तया भृशं मोहिताऽहं तव स्वरूपं न जानेऽत एव त्वं पुत्र इति मे कल्पना।।३०।। यत्कुक्षौ सावकाशा ब्रह्माण्डलेखाः स त्वं मत्कुक्षिज इति जगति विडंबनं। भो दत्त ते मायां मां नावृणोतु।।३१।। श्रीपाद उवाच त्वया दृष्टमिदं रूपं हृदि नित्यं ध्यायस्व। भो मातः द्रुतं मायासिंधुं तीर्त्वा मत्सायुज्यं गमिष्यसि।।३२।। इमौ शतायुषौ तव सुतौ पितृसेवारतौ विद्याश्रीपुत्रपौत्राढ्यौ लोकवंद्यौ च भविष्यतः।।३३।। तत आत्मानं स्तुवंतौ भ्रातरौ प्राह अहं प्रव्रजामि। युवाभ्यां सदा पितरौ सेवनीयौ यस्मात्तावेव गृहिसत्पुत्रदैवतं।।३४।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

इत्युक्त्वा पितरौ त्रिः परिक्रम्य प्रणम्य च तदनुज्ञातः स काशीं बदरीवनं च जगाम।।३५।। ततः साधूद्धरणकामनया यत्र गणेशेन शिवलिंगं प्रतिष्ठितं, सज्जनाश्रयं तद्गोकर्णं प्रति स ययौ।।३६।।

।। इति पंचमोऽध्यायः।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

नामधारक उवाच। गोकर्णे गणेशेन कुतः शैवं लिंगं प्रतिष्ठितं, तदेव सज्जनाश्रयं कथं, हे मुने तन्मे श्रावय।।१।। सिद्ध उवाच विष्णोराज्ञया रावणतो लिंगमादाय प्रतिष्ठितं तत्प्रभृति तत्र देवाः साधवश्च स्थितास्तच्छृणुष्व।।२।। कैलासप्राप्तये मृन्मयं लिंगं भजन्तीं मातरं निवार्य शंकरेण सह कैलासमानेतुं रावण आययौ।।३।। हठात्कैलासमुद्धर्तुमुद्युक्तं रावणं लोकोत्पातभिया गौर्या स्तुतः शिवस्तं पर्वतस्याधोऽवरोधयत्।।४।। स च मरणोन्मुखीभूतोऽपि शंकरं दध्यौ। ततस्तुष्टेन शंभुनोद्धृतो रावणः शिवतुष्ट्यै साध्वगायत।।५।। सरागं सुस्वरं मधुरं चतुर्विधवाद्यैः सह कलं जगौ।।६।। प्राणिमात्र मनोहारि दिव्यं गानं श्रुत्वा प्रीतः शंकर आह रे रावण, साधु गीतं, इष्टं वरं वरय।।७।। रावण उवाच अन्यदुर्लभा हैमी लंका मम पुरी, श्रीर्दासी, ब्रह्मा ज्योतिषिकः, मृत्युर्दासः, देवाश्च किंकराः तस्मात्क्वापि मे न किंचिद्दुर्लभं।।८।। अद्य कैलासमानेतुं मात्राज्ञप्तोऽस्मि। हे शंभो, वरदोऽसि चेत्त्वया सह कैलासनयनरूपं वरणीयार्थं देहि।।९।। शिव उवाच। कैलासेन किं साध्यं इदं कैलासादप्यधिकं प्राणलिंगं गृहाण। अनेन लिंगेन त्वं मादृशः, ते पुरी कैलासवच्च भवेत्।।१०-११।। इत्युक्त्वा भक्त्याकृष्टः शिवस्तस्मै लिंगं ददौ। स संतुष्टः खलो रावणः लंकां ययौ।।१२।। तज्ज्ञात्वा नारदो ब्रह्मणेऽकथयत ब्रह्मा च विष्णवे। ते त्रयोऽपि शिवमेत्य प्राहुः किमिदं कृतमिति।।१३।। येन देवा बद्धाः स प्राणिमात्रभक्षको लोककण्टको राक्षसः कथं स्वसमः कृतः।।१४।। शिव उवाच। गीतेनाकृष्टेन मया तोषाल्लिंगं दत्तं। सोऽद्यापि पुरं न गतः।।१५।। इति श्रुत्वा कपटेन खलो जय्य इत्युक्त्वा लिंगहरणार्थं नारदं गणेशं च प्रेरयत्।।१६।। नारदो मनोगत्या तदग्रे गत्वा प्राह, रे रावण, कुत आयातोऽसि? क्व वा गच्छसि?।।१७।। रावण आह, शिवं प्रसाद्य लिंगं लब्ध्वा पुरं यास्यामि। इदमुत्तमं लिंगं पश्य।।१८।। नारदस्तद्दृष्ट्वा आह, वन्यमहिषभक्षक एको मृगो ब्रह्मविष्णुहरैर्मृगयायां हतः।।१९।। तच्छृंगेभ्यस्त्रीणि लिंगानि लब्धानि। तान्यात्मवन्मतानि। इदं विभोः सायुज्यदं शिवलिंगं त्वया लब्धं।।२०।। रावण आहाद्य श्रवणानवकाशः, सत्वरं गम्यते। संध्यामतीत्य क्व यासीति नारदेनोक्त उपविवेश।।२१।। अत्रान्तरे वर्णिलिंगी गणेशोऽपि प्राप। रावणस्तं करे कृत्वा प्राह, कस्य त्वं, क्व गच्छसीति।।२२।। बाल आह, उमाशंकरौ मे पितरौ। ताभ्यां किं ते देयं। नो चेत्करं मोचय, त्वत्तो बिभेमि।।२३।। रावण आह, किमपि नादेयं। इदं लिंगं क्षणं वह। गौरवेण ते हैमीं लंकां दर्शयामि। तत्र सुखं वस।।२४।। मया बालेन जडं लिंगं कथं धार्यं? घोरा लंकापि न गम्य-

ते। इत्युक्तवंतमपि तमाश्वास्य लिंगं ददौ।।२५।। स्वयं संध्योपासनाय समुद्रतीरं गतः। बाल आह, त्वां त्रिराहूय त्वयि नागते लिंगं भुवि स्थापयामीति।।२६।। ततः किंचिद्विश्रम्य स्वर्गे देवेषु पश्यत्सु सत्सु तं रावणं त्रिराहूय हरिं ध्यात्वा बालो लिंगं भुवि स्थापयामास।।२७।। रावण एत्य स्थापितं लिंगं दृष्ट्वा बालं संताड्य लिंगं उद्धर्तुमैच्छत्। तदा भूश्चकंपे, तच्चाचलमभूत्।।२८।। तत्प्रभृति तल्लिंगं महाबलेश्वर इति संज्ञितं, गोकर्णाकारं च जातं तेन क्षेत्रस्यापि गोकर्णमिति नामाभवत्।।२९।। अयं क्षितौ कैलास एव यत्र सपरिवारः शिवः सदा जागर्ति। अतस्तत्र देवर्षिसज्जनाः स्थिताः।।३०।। यत्र देवर्षिदैत्यरक्षोनृतिर्यग्भिरपि शंकरादिष्टवरो लब्धः। इतोऽन्यच्छीघ्रपावनं न।।३१।। अज्ञानतः कृतापराधो वसिष्ठशापांते, पूर्ववद्भूत्वा मैथुने कृते मरिष्यसीति तं हतब्राह्मणस्त्री शशाप।।३३।। अथ राजा शापांते पूर्ववद्भूत्वा राष्ट्रमेत्य दुःखितः सन् ब्राह्मणीशापं महिष्यै स्मरातुरायै शशंस।।३४।। ततः उभौ खिन्नौ तीर्थासक्तौ जातौ यदृच्छयोपगतं गौतमं दृष्ट्वा तस्मै सर्वं शशंसतुः।।३५।। गौतम आह राजन्मा भीः पापहरे कामदे गोकर्णे विद्यमाने ब्रह्महत्या किं करिष्यति।।३६।। यत्र सर्वतोयानि तीर्थानि, शिलाश्च लिंगानि तत्र दिव्ये लिंगतीर्थमये नृणां किं दुर्लभं।।३७।। तत्रैका चंडाली मृता मया दृष्टा। तां कैलासं नेतुं शिवदूता आगताः।।३८।। मया पृष्टास्ते प्रोचुः, भो गौतम, पूर्वजन्मनीयं विप्रदुहिता बाल्ये विधवाऽभूत्।।३९।। विधिवशात्कामार्ता तन्वी युवसौंदर्य मोहिता सा सुंदरमेकं वैश्यं जारत्वेन वृत्वा रह औपपत्यं सिषेवे।।४०।। तल्लोकप्रसिद्धं जातं यतः पापं नाच्छादते। संबंधिनस्तां त्यक्त्वा प्रायश्चित्तं चेरुः।।४१।। ततो निःशंकं मदोद्धता पानासक्ता सा कामिनी वैश्येन रेमे।।४२।। एकदा प्रमत्ता सा मेषभ्रांत्या गोवत्सं निहत्य तच्छिरः शिक्ये निधायावशिष्टं मांसं पक्त्वा चखाद।।४३।। परेद्युर्गोशिरो दृष्ट्वा जारभीत्या भुवि निखाय शिव शिव व्याघ्रेण वत्सो हत इति मृषा शुशोच।।४४।। ईदृक्पापानि कृत्वा प्रेत्य पूर्वैः सह दारुणं नरकं भुक्त्वा पापशेषादीदृशी जाता।।४५।। जन्मतो गलत्कुष्ठांधाऽपि पितृभ्यां पालिता। दैवात्तावपि मृतौ। ततोऽनाथा सा शुशोच।।४६।। ततो दैवाद्यात्रिकैः सहात्रागता दुःखिता क्षुधिता चेयं शिवरात्र्या लोकानन्नं ययाचे।।४७।। जनैरन्नाभावात्तस्याः प्रसारितकरे बिल्वं त्यक्तं तत्तयाऽवग्राह्याभक्ष्यं मत्वोत्सृष्टं।।४८।। तल्लिंगे पतितं। सा पूजा जाताऽह्नि सर्वत्र शिवकीर्तनं श्रुतं, अनशनादुपवासो, दुःखान्निशि जागरश्च जातः।।४९।। एवं सांगं व्रतं चीर्णं। तेन सुनिर्मला भूत्वाऽद्यात्र मृता। एतां द्रुतमानेतुं शिवाज्ञप्ताः स्म।।५०।। इत्युक्त्वा तैरमृतं सिक्त्वा तां विमाने निधाय कैलासं जग्मुः। अबुद्धिपूर्वककर्मणोऽत्रेदृग्गतिः।।५१।। विदुषस्त्वाधिकं फलं। अतस्त्वं गच्छ, मुच्यसे। तच्छ्रुत्वा सभार्यो राजा गोकर्णं गत्वाऽऽशु मुक्तो बभूव।।५२।। ईदृशे सत्तमे सज्जनाश्रये गोकर्णे साधुजीवनः श्रीपादस्तस्थौ।।५३।। त्रीन्वर्षान्तत्रोषित्वा लोकानुद्धृत्य कृष्णातीरे कुरुपुरं गत्वा श्रीपादोऽदृश्योऽभूत्।।५४।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

।। इति षष्ठोऽध्यायः।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

नामधारक उवाच। साधूनुद्धर्तुकामोऽसौ लीलाविहारी भगवान् कुतोऽदृश्योऽभूत् इदं श्रोतुं सादरोऽस्मि।।१।। सिद्ध उवाच। अतींद्रियोऽपि स लीलया दृश्यो भूत्वाऽवतारप्रसंगेनादृश्योऽभूत्तच्छृणुष्व।।२।। तत्र कृष्णतीरे वैदिकविप्रपत्नी दैवात् स्तब्धं हीनमतिं जडं कुपुत्रं प्रासूत।।३।। अष्टमेब्दे कृतोपनयनं गायित्र्युच्चारणासमर्थं तं ताडयंतं स्वपतिं निवार्य ब्राह्मणी प्राह।।४।। भो नाथायं जन्मतः पाषाणवज्जडः। अतः खेदहेतुना ताडनेनालं। अतःपरं ताडने कृतेऽहं प्राणांस्त्यक्ष्ये इति।।५।। सोऽपि मेषागलस्तनवत्तं मत्वा स्त्रीवाचोऽङ्गीकृत्य तूष्णीं तस्थौ। स ततः कियता कालेन मृतः।।६।। तत्र पुत्रसहिता माता याच्ञया जीवनमकरोत्। तद्दृष्ट्वा विप्रा निर्भर्त्सयंति स्म।।७।। हे पंडितपुत्र, तवैष वृत्तिर्न रोचते। इतो व्रजासून्वा त्यजेति तैरुक्तः स मात्रा सह कृष्णां विवेश।।८।। तं तथाविधं निषिध्य तीरवासी दयार्द्रः श्रीपाद आह।।९।। ब्रह्मन्साहसं मा कुरु, यस्माद्ब्रह्महत्या दुर्वहाऽत्रैव प्राप्तकष्टसहनं वरं।।१०।। ब्राह्मण्युवाच कुपुत्रत्वकारणेन लोका मां धिक्कुर्वन्ति नेक्षन्ति चातः परं मया किं कार्यं।।११।। श्रीपाद उवाच हत्यया भाविजन्मनि लिप्यसेऽतो दैवादागतं दुःखं निस्तीर्य शिवार्चनं कुरु। भवान्तरे त्वं सुपुत्रा भविष्यसि।।१२।। ब्राह्मण्युवाच भवता साधूक्तं, तथैवाहं कुर्वे। शिवार्चनं कस्मै फलदं जातं तद्वद।।१३।। श्रीपाद उवाच पूर्वमुज्जयिन्यां शैवश्चंद्रसेनराजसखो मणिभद्रश्चिंतामणिमभीष्टदं शिव-वराल्लेभे।।१४।। तमर्घादिनाऽलभ्यं ज्ञात्वा युद्धार्थमागतान्नृपाञ्ज्ञात्वाऽप्यैकाग्रेण प्रदोषे शिवमपूजयत्।।१५।। शनिप्रदोषे शिवार्चकं मणिभद्रं तथाविधं नृपं च दृष्ट्वा गोपसुतास्तद्वत्स्वाङ्गणेऽर्चनं चक्रुः।।१६।। पत्राद्यैर्लिङ्गकल्पनयाऽश्मानं पूजयतस्तान्गोप्यो निवार्य भोजनार्थं स्वगृहान्निन्युः। तत्रैकबालकस्तस्थौ।।१७।। तन्माताऽऽगत्य पूजासामग्रीं त्यक्त्वा तमुद्धृतवती। तदाऽक्षिणी उन्मील्य भग्नां पूजां दृष्ट्वा शंभूपूजाभंगभयेन निर्विण्णो भूमौ पतितो मर्तुमुद्यतोऽभूत्।।१८।। विश्वसाक्षीश्वरस्तद्भावं ज्ञात्वा शोभनं स्वं रूपमावि-ष्कृत्य बालमाश्वास्य वरं वरयेत्याह।।१९।। बालोऽपि दिव्यरूपं तं नत्वा प्राह हे भुवनेश्वर, मात्राऽत्र ते पूजा उत्सृष्टा, तन्मन्तुं क्षन्तुं योग्योऽसि।।२०।। शिव उवाच भक्त्या त्वं मत्सायुज्यभागसि। मात्रा त्वज्ञानात्कृतं तस्या अयं नापराधः। साऽपि मदर्चनविलोकना-द्विष्णुमाता भविता।।२१।। इत्युक्त्वा शिवोऽन्तर्दधे। तल्लिंगं भास्वदभूत्। य आगता भूपास्ते प्राहुः पुण्यश्लोकराजहितार्थमत्र रात्राव-प्यर्कस्तिष्ठति।।२२।। ईदृशेन धन्येन नास्माभिर्योद्धव्यं। इति निश्चित्य ते प्रेम्णा सर्वे तौ द्रष्टुं प्रापुः।।२३।। ततः पूजां समाप्य प्रकाश-कारणं विविच्य राजाऽन्यैर्नृपैः सह तत्र गत्वा दिव्यलिंगावलोकनान्ननंद।।२४।। गोपमुखात्सर्वं श्रुत्वा तुष्टा नृपा गोपाधिपत्यं धनं च

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

तस्मै दत्वा मुदा स्वं स्वं स्थानं ययुः।।२५।। सा माता प्रेत्य यशोदाख्या गोपी भूत्वा हरिं सुतं लेभे। तस्माच्छिवार्चनात्तव तथा भूयात्।।२६।। ब्राह्मण्युवाच दैवात्कृछ्रेण शिवे तुष्टे फलं भावि। अधुनाऽमुना कष्टेन कथमायुःकालो नेतव्यः? भो दयाब्धे, मातृत्वेन मां परिपालय।।२७।। इति निष्कपटं सकारुण्यं तद्वाक्यं श्रुत्वा प्रीतो दयाब्धिः स ॐ ३ इत्युक्त्वा मूर्खपुत्रस्य शिरसि स्वपाणिं दधौ।।२८।। स सहसा बृहस्पतिसमो वक्ता ज्ञाता च बभूव। तं विनीतं मातृसेवायां नियोज्य प्राह हे मातरनेन दुःखं विस्मृत्येश्वरार्चनेनायुःक्षयं कुरु। भाविजन्मनि मादृक्पुत्रस्ते भविष्यतीति।।२९।।३०।। अतिहृष्टा साऽपि विद्वन्यमान्यपुत्रेण सह ग्रामं गत्वेशमानर्च।।३१।। ततो भगवान् मादृङ्नान्यः, अस्याः पुत्रो न भवेयं चेन्मद्वचो मिथ्या। तस्मादहमेवावतीर्योक्तं सत्यं करिष्य इतीश्वरोऽजोऽपि मन्यते स्म।।३२।। कृतावतारसंकल्पोऽपि कार्यानंत्याल्लीलाविग्रहं नात्यजत्। तत्रादृश्योऽपि भजतां कामदोऽस्ति।।३३।। नामधारक उवाच अपूर्णे कार्ये कथं संकल्पवान्? पूर्वलीलाविग्रहं परित्यज्यापि देहान्तरेण कथं भक्तकामदोऽभूत्तद्वद।।३४।। सिद्ध उवाच अव्यये विश्वबीजे भगवति कार्यानंत्यात्संकल्पानंत्यं। स भक्तानां प्रत्यक्षफलदोऽपि तत्र कलिमलांधानामदृश्योऽस्ति।।३५।। कश्चित्कुटुंबवान्द्विजो धीमांद्याद्वणिग्वृत्त्यान्वितोऽपि श्रीपादभक्तोऽभूत्।।३६।। व्यापारेऽधिलाभो भूयाच्चेल्लाभानुसारेण श्रीपादप्रीत्यर्थं ब्राह्मणान्भोजयिष्ये।।३७।। इति संकल्प्य व्यापारार्थे ययौ। स भूरि धनं लेभे। तदादाय संकल्पसिद्धये कुरुपुरं ययौ।।३८।। सायं मार्गे एकाकिनं यान्तं तं दृष्ट्वा चोराः सुहृत्त्वेन तदनुगा भूत्वा तं विजने हन्युः।।३९।। तदैव तत्र सहसा शूलकमंडलुधारी श्रीपाद एत्य शितधारेण शूलेन चोरान् जघान।।४०।। एकस्तं शरणमागत्य प्राहाहं दुष्टबुद्ध्या नागतोऽस्मि, मनसीदं विचार्य प्रभो यथेष्टं कुरु।।४१।। श्रीपादः सकरुणं तद्वचः श्रुत्वा तं निष्कपटं ज्ञात्वा विप्ररक्षार्थँ तं योजयामास।।४२।। भस्ममंत्रितं जलसिक्तं तच्छिरः कबंधे कृत्वा तं सजीवं विधाय स सद्योऽन्तर्दधे।।४३।। स ब्राह्मणः सुप्तोत्थितवद्बुद्ध्वा चोरान्मृतान्दृष्ट्वा हतशेषमुखात्सर्वं श्रुत्वा खिन्नोऽभूत्।।४४।। मत्कृते कष्टं कृत्वा भगवान् चोरगोचरो जातः, सर्वदाराधितोऽपि दैवान्नायं मे गोचरो, हा कष्टमित्युक्त्वा।।४५।। धनमादाय कुरुपुरं गत्वा चतुःसहस्त्रब्राह्मणभोजनमकरोत्।।४६।। ततो भगवत्प्रसादादुभयीं सिद्धिं गतः तत्र तस्मिन्नदृष्टेऽप्येवं कथा वृत्ताः। तस्मिन्नदृश्येऽप्येवमाद्यास्तत्कथा जाताः।।४७।। स तत्र सतां प्रत्यक्षः, मलदूषितानां न गोचरः। स स्वरूपेणान्यत्रावतीर्णोऽपि इह कामदः।।४८।। श्रीपादाधिष्ठानवासिनां वेदयज्ञतपोदानाधिफलं लभेत। यत्र कुत्रापि ये केचिच्छ्रीपादांबुजं स्मरन्ति तेभ्योऽपीष्टान्कामानलं ददाति।।४९।।

।। इति सप्तमोऽध्यायः।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा

अथाष्टमोऽध्यायः

नामधारक उवाच भो ब्रह्मन् भगवान्कुत्रावतीर्य किं चकार? मायाश्रितस्याप्रमेयस्येष्टप्रदं चरितं शुश्रुषवे मे ब्रूहि।।१।। सिद्ध उवाच दीनोद्धारायावतीर्णस्येश्वरस्यास्याल्पचेष्टितं वक्ष्ये यतस्तद्योगिदुर्विभाव्यं।।२।। या श्रीपादाज्ञया प्रदोषे शिवमपूजयत् सा प्रेत्योत्तरदेशे विमले विप्रकुले स्त्री जाता।।३।। सुबुद्धिरूपशीललक्षणा संस्कारगुणयुक्तांबाख्या बभूव।।४।। तत्रैवानुरूपाय माधवशर्मणे गृह्योक्तविधिना दत्ता।।५।। सा पातिव्रत्येन छायेव पतिं भेजे।।६।। तयोश्चक्रवाकवत्परस्पराश्रयो भावबंधः स्नेहोऽभूत्। एवं तयोर्हर्षितयोः सतोरंबा गर्भं दधौ।।७।। सुदोहदचिह्ना सा तत्त्वज्ञानमाह। माधवेनापि यथाकाले पुंसवनादि संस्काराः कृताः।।८।। अनस्तंगतग्रहसूचितससिद्धिप्रव्रज्यायोगे समोष्णशीते प्रणवपाठेन सतोऽनुगृह्णन्भगवानाविरासीत्।।९।। तदा सर्वं शुभशंसि बभूव। लोका ॐकारं श्रुत्वा विस्मिताः। शोभनग्रहयुतभावान्दृष्ट्वा हृष्टा गणका आहुः भो माधवेदं तव पुण्यफलं। श्रीसिद्धयोऽस्य दास्यो भविष्यन्ति, पादः स्पर्शवत्, निधयोऽनुचराः।।१०-११।। पतितपावनो जनोद्धर्ताऽयं गृही न भविता। अस्यानुग्रहाल्लोके वंद्यत्वं।।१२।। इत्युक्त्वा पूजितास्ते गृहं ययुः। अद्भुतं जन्म श्रुत्वा लोका दर्शनार्थमाययुः।।१३।। माधवस्तद्दृग्दोषभियैकान्ते तं संस्थाप्य बालबुद्ध्या मोहेन रक्षाविधिना तं प्रभुं हरिं ररक्ष।।१४।। अयं नरो नरतापाघदैन्यहर्तेति हेतोर्नरहरिनाम प्रतिष्ठितं।।१५।। बालस्यास्य क्षुधा मत्तो न शाम्यत्यतः पयस्विन्यजा धात्री वा मृग्येति मातृवचः श्रुत्वा बालः स्वकरस्पर्शमात्रेण मातृस्तनतो दुग्धमदुहत्।।१६।। तद्बालचेष्टितं दृष्टिदोषभिया माता प्रसिद्धिं नानयदेवमन्यदाश्चर्यास्पदमपि।।१७।। मायया बाल्यादियुक्तस्य तस्य साक्षाद्ब्रह्मरूपता कैरपि ज्ञाता।।१८।। त्रैवार्षिकोऽपि स लीलया मूक इवाभूत्। तदा खिन्नांबा नानोपायानकरोत्।।१९।। रविवारेऽश्वत्थपत्रभोजनेन कुलदेव्यर्चनबालोक्तिपाठनादिसूपायैश्चापि स नावदत्।।२०।। वक्तुं श्रोतुं चायं नाज्ञः, मूकश्चेदन्योक्तिं श्रुत्वा कथमोङ्कारं ब्रूत इति पितरौ मोहमापतुः।।२१।। अयं मूक आवयोः श्रमेणालं। शनिप्रदोषशइवपूजायाः किमिदं फलं? कथमयं संस्कार्य? इति।।२२।। पित्रोर्वचः श्रुत्वा मौंज्यां बद्धायां वक्ष्यामीति संज्ञया प्रदर्श्य तन्मुदे लोहं स्वर्णतां निन्ये।।२३।। तदा जातविश्वासः पिता विप्रानाहूय संभारान्संभृत्य सुलग्ने तमुपानयत्।।२४।। व्रतस्वस्त्ययनसंस्कारोऽम्बया सह भुक्त्वोपनीतः स गुरूपदिष्टां सावित्रीमाददे।।२५।। स्वधर्मानंगीकृत्य मातरं भिक्षां याचयित्वा त्रयीं जगौ। भगवतीदं न चित्रं, शास्त्रयोनित्वात्।।२६।। पितरौ प्रणम्य प्राह देहस्यानित्यत्वाद्विरक्तोऽहं प्रव्रजाम्यनुज्ञा देया।।२७।। धीमतो मम प्रत्यवायारंभनाशश्च न इयं धीः पूर्वसंस्कारजाक्षय्या। वामात्मजा भविष्यन्ति।।२८।। तदा विषीदंती तन्मायामोहिता माता प्राह एक एव त्वं सुतो मां विहाय कथं यास्यसि।।२९।। ब्रह्मचर्यादिक्रमेण संन्यासो न्याय्यः यतस्त-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

त्वज्ञानं मनोभंगो वासनाक्षयश्च।।३०।। श्रीगुरुरुवाच जैह्व्यौपस्थ्यसुखासक्तानामयं क्रमो, न मादृशः पूर्वसंस्कारविरक्तस्य दुःखयोनिभिर्विषयैः किं।।३१।। अत संन्यस्य श्रुतश्रोतव्यनिर्वेदं यास्ये ततः संसिद्धिः सुलभा हि धीमतोऽतःपरं कार्यं न।।३२।। कलौ शतायुरपि स्वापादर्धं हीयते। शिष्टं पराधीनतया बालयौवनवृद्धत्वैश्च हीयते।।३३।। संपत्तीष्टयुक्संसारः स्वप्नवन्मायाकल्पितः, तारुण्यं पुष्पवत्, आयुर्विद्युद्वद्भ्रातः कुतो धैर्यं।।३४।। कालो भ्रूणान् शिशून् यूनो वृद्धानार्तान्सुखस्थान्मूढान्प्राज्ञान्देवांश्चापि ग्रसति।।३५।। यदर्थे ममता तद्धि स्ववंचनार्थं त्वगावृतं मांसास्थिरक्तमयं वपुर्जलबुद्बुदवत्।।३६।। भस्मविष्ठाकीटपरिणामं तंनानुगं किमुतानर्थहेतवो भार्याद्याः।।३७।। देहो जडः परिच्छिन्नः, जीवस्तु सर्वगश्चिदंशोऽव्ययो ध्रुवः दुःखादिसंबंधोऽस्याज्ञानकल्पितः।।३८।। शाब्दपरब्रह्मज्ञसद्गुरोः प्रसादाज्ज्ञेयज्ञानास्त्रेणाज्ञानगहनं छित्वा पुमान्स्वस्थो भवेत्।।३९।। य उत्तमं ज्ञानपात्रं ब्रह्मजन्म लब्ध्वात्मनः श्रेयो नाचरति तेनात्मा वंचितः।।४०।। तस्माद्विघ्नं मा कुरु, ते पुत्रो भविष्यति। मद्ध्यानाद्भवाब्धिं तरिष्यसि, भो मातस्ते नमः।।४१।। इत्युक्त्वा दिव्यस्वरूपं दर्शयामास। माता ज्ञानदृष्ट्या तद्दृष्ट्वा पूर्वजन्मस्मरणेनाह।।४२।। हे देव पूर्वजन्मनि कुपुत्रया मर्तुकामया मया यो दृष्टः श्रीपादस्त्वं। भो भगवन् ते नमः।।४३।। ब्रह्मापि तव गुणरूपाणि न वेद, मोहिताऽहं मानुषी कथं जाने यदद्य ज्ञानं दत्तं तद्दिष्टया।।४४।। हे अज यत्कुक्षौ ब्रह्मांडाः स त्वं मम कुक्षिज इति लोके विडंबनं। अस्माकमुभयं कुलं पावितं।।४५।। भो सत्यसंकल्प ते विघ्नं माऽस्तु। मयीदं रूपं स्थिरीकुरु। यावत्पुत्रो भविष्यति तावत्तिष्ठ।।४६।। भगवान् तथेत्युक्त्वा स्थितः। मातापितृभ्यामीशबुद्ध्याऽन्वहं पूजितः। तत्र विदुषोऽपि शिष्यान् शिक्षितवान्। नेदं चित्रं यतोऽसौ वेदवाक्।।४७।। अंबापि गर्भिणी भूत्वा पुत्रावसूत। ततस्त्रिमासांतेऽम्बां प्राह।।४८।। भो मातः द्वौ जातौ, द्वौ पुत्रौ पुत्री च भविष्यन्ति, मे अनुज्ञां देहीति। ततस्तदाज्ञप्तः प्रचक्रमे।।४९।। शिरस्त्राणछन्नमूर्धा पादुकांचितपादः पादः काषायवस्त्रावृतकोमलगात्रः कौपीनयुग्दंडधरः स सहासं प्रतस्थे।।५०।। बालबुद्ध्या कृतापराधान्क्षमस्वेति भाषिणीं मातरं ते त्रिंशदब्दैः पुनर्दर्शनमस्तु, स्मृतिमात्रात्सान्निध्यं चेत्युक्त्वा सर्वान्परावर्त्य ययौ।।५१।। अयमीशो न मर्त्योऽस्मै नताः स्म, एवं साधुस्तुतो योगिमुनीशोऽपि बदर्याश्रमं गच्छन्मुमुक्षुवेषेण काशीं प्राप।।५२।। तत्र वज्रासनस्थः केवलकुंभकेन खेचर्योन्मन्या तपोऽतपत्।।५३।। भागीरथ्यां स्नात्वा त्रिकालं साष्टांगयोगं युजंतं सिद्धासनस्थं केवलकुंभकेन खेचरीमुद्रया नादानुसंधानेनान्वितं समाहितं तं प्रेक्ष्य, परमेश्वरोऽयमिति बुद्ध्या साष्टांगं प्रणम्य मुनयः प्राहुः।।५४।। भवान्परमेश्वरो, न मर्त्यः। सद्धर्मगोपनायावतीर्णोऽसि। प्राक् शंकराचार्यैः स्थापितः संन्यासमार्गो लुप्तप्रायस्तं कलौ विस्तारयेति।।५५।। कष्टजन्यनश्वरविषयसुखासक्तैरज्ञातात्मसौख्यैः कलिहतचित्तैरयं मार्ग उच्छिन्नः।।५६।। भीरुभयंकरेऽपि सुलभक्षेमेऽस्मिन्कलौ संन्यासमार्गेण नोऽध्यात्मपरमानंदं दातुं योग्योऽसि।।५७।। इति तदुक्तमंगीकृत्य कृष्णसरस्वतीं गुरुत्वेन वृत्वा स नृसिंहसरस्वतीसंज्ञो यतिरभूत्।।५८।। सूत्र-

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

शिखासर्वैषणान्यासं कृत्वा निःसंकल्पो निर्ममोऽद्वंद्वः संन्यासी अभूत्।।५९।। स जगद्गुरुर्मुमुक्षुभ्यः संन्यासपद्धतिमाह- प्रायश्चित्तमष्टश्राद्धानि विरजाहोमो गायत्रीप्रवेश एषणात्यागो भूरादिसंन्यासः।।६०।। शिखासूत्रन्यासो गुरूपसत्तिः प्रज्ञानं ब्रह्माहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि अयमात्मा ब्रह्मेत्यर्थतो महावाक्यग्रहणं।।६१।। पंचीकरणविचारो, योगपट्टः, पर्यंकाशौचं, स्वधर्मविचार एवं संन्यासः श्रेयप्रदः।।६२।। एवं दैवसंपत्तीयुग्वशी संन्यासी शुक्लकृष्णगतिज्ञो योगाभ्यासतः परात्मदर्शनाज्जीवन्मुच्येत। ब्रह्मीभूतस्य गतप्राणदेहः सति संभवे जले क्षेप्योऽन्यथा भूमौ वा निखेयः। उदकदानादि नैव कार्यं। इत्युक्त्वा संन्यसाधिकारिविचारेण संन्यासं ग्राहयामास।।६४।। ततो मोक्षदः संन्यासः प्रवृत्तः। काश्यां पुरुषार्थदान्वेदार्थान्प्रकाश्य।।६५।। मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य स्वयं पवित्रोऽपि तीर्थानि स्नात्वा शिष्यैः सह गंगासागरं प्राप।।६६।। बाह्यविषयान्बहिःकारयित्वा भ्रुवोर्मध्ये दृशं, नासांतरचारिणौ प्राणापानौ च समौ कारयित्वा योगमादिशत्।।६७।। ततः प्रयाग एत्य माधवविप्राय तत्त्वोपदेशं संन्यासं च दत्त्वा मातरं दृष्टुं प्राप्तः।।६८।। नामधारक उवाच यत्प्रसादान्नरा अद्वैतामृतवर्षिणो मुक्ता जातास्तस्याचार्येण किं, कृष्णसरस्वती वा कोऽयं।।६९।। सिद्ध उवाच रामकृष्णादिभिर्वसिष्ठसांदीपन्यादिगुरवो यथा वृतास्तथाऽनेन गुरुः कृतः।।७०।। स्वीकृतमानुषवेषानुसारेण न वर्तेत चेत्तदनुवर्तितया लोके संकरो भवेत्।।७१।। यदीक्षणवशान्माया जगत्सूते तेन स न लिप्यते, उदासीनवत् स्थितस्यासक्तस्य को लेपः।।७२।। प्रथमं शिवस्य विष्णुः शिष्यः, विष्णोर्ब्रह्मा, तस्य वसिष्ठः, तस्य शक्तिस्तस्य पराशरः, तस्य व्यासस्तस्य शुकः।।७३।। तस्य गौडपादः, तस्य गोविंदस्तस्य श्रीशंकरः, तस्य विश्वरूपः, तस्य बोधज्ञानं, तस्य सिंहगिरिः, तस्येश्वरः।।७४।। तस्य नृसिंहः, तस्य विद्यातीर्थं, ततः शिवतीर्थं, तस्य भागीरथीतीर्थं, तस्य विद्यारण्यं।।७५।। तस्य मलयानंदः, तस्य देवतीर्थँ, तस्य यादवेंद्रसरस्वती।।७६।। तस्यायं कृष्णानंदसरस्वती। अयं पारंपर्योत्तमो ज्ञानी वृद्धश्चात एव गुरुत्वेन भगवता वृत इति।।७७।।

।। इत्यष्टमोऽध्यायः।।

अथ नवमोऽध्यायः

नामधारक उवाच भगवान्संन्यासी भूत्वा कुतो जन्मभुवं प्राप्तः? अस्य के शिष्याः? ततः किमकरोत्तद्वद।।१।। सिद्ध उवाच प्रतिज्ञातानुसारी भगवान्महीं प्रदक्षिणीकृत्य मातरं दृष्टुं प्राप्तः यतो यतेरपि माता वंद्या।।२।। बालः कृष्णः उपेंद्रः ज्ञानज्योतिः सदानंदो माधवोऽहं च सिद्धः।।२।। एते सरस्वत्यंतसंज्ञा, अन्येऽपि बहवस्तैः सह जन्मभूमिं प्राप्तः।।४।। पितरौ भ्रातृभगिनीमितरांश्च

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

प्रेक्ष्य, विश्वरूपैः प्रतिग्रहं पूजां स्वीचकार।।५।। मातार्चितं तं दृष्ट्वा पूर्वस्मृत्या पतिं प्राह मर्तुमुद्युक्तां कुपुत्रां मां योऽरक्षत्सोऽयं श्रीपादः।।६।। मादृक् पुत्रो भवेदिति प्रतिज्ञा कृता तत्सिद्धये स्वतुल्यस्यान्यस्याभावात्स्वयमेव मे पुत्रोऽभूत्, अद्वितीयत्वात्सत्यसंकल्पत्वाद्भक्तवात्सल्याच्च।।७।। भो श्रीपाद त्वं न मे पुत्रः। लोकानुसारी वर्तसे चेन्मातृसंबंधं स्मृत्वा नो भवार्णवादुद्धर।।८।। कालकर्मदैवस्वभावजीवभूतशरीरप्राणाहंकारषोडशविकारलिंगरूपोऽसौ प्रवाहस्तव माया। तां निवारय।।९।। श्रीगुरुरुवाच यत्कुले संन्यासी जातस्तत्पित्रोः कुलैकविंशतिस्तरति, तरिष्यति च। पूर्वं दुर्गतिस्थाप्यमृतं गच्छेत्।।१०।। भो मातर्भवत्कुलेऽयं संन्यासी जातः। अथ किं ब्रुवे? संपत्प्रजान्वितानां वो मुक्तिः काश्यां भविष्यति।।११।। भगिन्युवाच इतःपरं का मे गतिः? भवाब्धेर्बिभेमि। यतस्त्वं सद्गुरुः ततः पापिष्ठां मामुद्धर।।१२।।मुक्तिः श्रीगुरुरुवाच स्त्रियः पतिरेव गतिः, नान्या। तस्मात्पातिव्रत्याद्भवाब्धेः पारं यास्यसि।।१३।। जन्मांतरे दंपत्योर्वैरमुत्पादितं, गौश्च लत्तया हताऽतस्ते पतिर्यतिर्भविष्यति, त्वदंगे कुष्ठं चेति।।१४।। ततः खिन्नां तां प्राह ते वार्धक्ये उभयमस्तु, मद्दर्शनात्तदा कुष्ठं गमिष्यति।।१५।। ततो या गौतमेन गोहत्यानिवृत्तये आनीता तां गौतमीं शिष्यैः सह गत्वा।।१६।। स्नात्वा माधवशर्मणे सद्गतिं दत्वाऽग्रतोऽगमत्।।१७।। तत्र गले शिलां बद्ध्वा मर्तुमुद्युक्तं दृष्ट्वा कृपया।।१८।। शूलरागार्तं दीनं दयनीयं तं तीरमानीय प्राह ब्रह्मन्कुतोऽत्र साहसं करोषि।।१९।। विप्र उवाच शूलेन मरिष्ये, मां पृष्ट्वा किं करिष्यसि? अयमन्नवैरी सदा दुःसहो रोगोऽस्त्यतः कथं स्थेयं?।।२०।। उत्पत्तिः स्थितिर्लयः प्राणो जीवनमौषधं चान्नमेव। तद्विरोधे मरणं वरं।।२१।।जन्मांतरेऽत्र वाऽन्नं न दत्तं, अणुमात्रं पुण्यं न कृतं, गोविप्रग्रासो हृतो, गुरुः पितरौ वा निंदितौ।।२२।। देवो नार्चितः, अतिथिविप्रा द्वाराद्धापिताः, धिक्कृता वा। पितरौ त्यक्त्वा स्त्रिया सह वा मिष्टान्नं भुंक्तं।।२३।। एषामन्यतमस्येदं फलं। मया परोपकारो न कृतः, केवलं भूभारोऽस्मि। व्यर्थं मम जन्म।।२४।। श्रीगुरुरुवाच हे विप्र मा भीः अन्नपथ्यं दिव्यमौषधं ते दास्ये इति गुरौ वदति सति कश्चिद्यवनाधीनो दीनो हि कांचीवासी कौंडिण्यगोत्रः सायंदेवाख्यविप्रः आगतः। प्रणतं तं गुरुराह।।२५।।२६।। व्यथितोऽयं विप्रो मर्तुमिच्छत्यस्मै दिव्यौषधं दद्मि। त्वमपि पथ्यं स्वाद्वन्नं देहि।।२७।। सायंदेव उवाच मासेन पक्षेण वा यदाऽल्पान्नं भुंक्ते तदाऽऽत्यन्तिकीं व्यथामनुभवतीति। तस्मादस्मा अन्नदानाद्धत्या भवेदिति भाति।।२८।। श्रीगुरुरुवाच अहं भिषक्तमोऽस्म्यतः शंकां मा कार्षीः। अपूपयुक्तं माषान्नं पायसं च पथ्यं, तद्देहि। चिकित्सां जाने।।२९।। सायंदेव उवाच तथा कुर्वे। सशिष्यो भवानपि मे गृहे भिक्षां स्वीकरोत्वहं ते शिष्यो भवामि। प्रपन्नं मां शाधि।।३०।। तत उदारां प्रार्थनां स्वीकृतवंतं सशिष्यं गुरुं निजगृहं निन्ये।।३१।। चित्रिते रंगवल्ल्याद्यलंकृते गेहे शोभनासनेषु यथायथं तानुपवेश्य देवताबुद्ध्याऽपूजयत्।।३४।। पुंसूक्तरुद्रसूक्तैर्गुरुं संपूज्य नीराज्य श्रद्धया गीतादिभिस्तोषयामास।।३३।। मुक्तिदं पापहरं श्रीगुरुपादोदकं संपूज्य स्वजनैः सह पीत्वा शिष्यांश्चापूजयत्।।३४।। चतु-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

र्विधं स्वाद्वन्नं भक्त्यादरेण च प्रकामं सर्वेभ्यो ददौ।।३५।। यद्भक्ताः संसाररुजं घ्नन्ति तस्य गुरोः सन्निधौ भुक्त्वा रुग्णोऽपि द्विजोऽनामयं भेजे, नेदं चित्रं।।३६।। स विप्रोऽसारसंसारान्निर्विण्णः क्षणाद्गुरुदर्शनादुदासीनो भूत्वाऽच्युतमभजत्।।३७।। सायंदेवो भुक्तान् तान् मुखवासादिभिस्तोषयित्वा पादसेवनपूर्वकं गुरुमाह।।३८।। भवच्चरणवंदनान्मे जन्म कर्म च सफलं जातं। भवदनुग्रहात्पितरोऽपि मुक्ता अतः कृतार्थोऽस्मि।।३९।। गंगा पापं विधुस्तापं कल्पद्रुर्दैन्यं च हरतु, वायुः कार्पासमिव ते दर्शनं तत्त्रयं हरति।।४०।। भवान्परात्माऽधोक्षजोऽमलः साक्षी सर्वांतरोऽपि साधूंस्त्रातुं नररूपेणावतीर्णोस्ति, वस्तुतो भगवानजोऽव्ययश्च।।४१।। श्रद्धान्वितं तवामलं दास्यं मह्यं कुलाय च देहि। कश्चिदाधिरस्ति तं निशामय।।४२।। यदधीनोऽहं स हिंस्रो यवनः प्रत्यब्दं विप्रं घातयति। तदर्थमेवमेवाद्य मामाह्वयतीति श्रुतं।।४३।। श्रीगुरुरुवाच मा भीः। क्रूरमपि यवनं गच्छ। तेनार्चितस्त्वं मुदा पुनरेष्यसि। तावत्तिष्ठामि मा शुचः।।४४।। इति श्रुत्वा स निःशंकं यवनं ययौ। तदा विप्रः शस्त्रैश्छिनत्तीति भ्रान्तः।।४५।। वस्त्रभूषार्थैस्तं तुष्ट्वा प्राह हे द्विज यथासुखं गच्छेति। स ततो गताधिस्तुष्टः श्रीगुरुं प्राप।।४६।। सर्पो गरुडबालं भक्षयेत्किं? गजो सिंहपोतं भक्षयेत्किं? गुरुभक्तं द्रष्टुमतः कोऽपि न क्षमः। अल्पको यवनः किमुत।।४७।। आगतं सायंदेवं श्रीगुरुराह त्वं दासोऽसीष्टं प्राप्स्यसे षोडशवर्षैर्मे दर्शनं भवेदित्युक्त्वा तदनुज्ञातो भगवान्वैद्यनाथं गत्वाऽन्तर्दधे।।४८।। एवं भक्तिवृद्ध्यर्थं ईदृश्यो लीलाः कृताः। लोकाः कथमपि मां भजत्विति भगवदाशयः।।४९।। लोके प्रत्युपकारित्वं वीक्ष्य लौकिकानंदजनकं चमत्कारमकरोत्।।५०।। तेन हेतुना लोका भगवंतं भजन्ति। ततो मुमुक्षवो भवन्ति।।५१।। ततो वैराग्याभ्यासाभ्यां भगवंतमुपासते। ततो भगवत्प्रसादात्।।५२।। महावाक्येन परात्म्यैक्यज्ञानं लब्ध्वा नष्टाविद्यास्ते तत्संस्थां ध्रुवां शांतिं यान्ति।।५३।। ततस्तेन प्रसन्नाः प्रशांता निर्बंधा निर्द्वंद्वाः स्वात्मारामा भूत्वा जडोन्मत्तपिशाचवच्चरन्ति।।५४।। सद्गुरोः स्पर्शनकीर्तनेक्षणानामयं महिमा। यो यत्र स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वाऽचलं मनो धत्ते।।५५।। स पेशस्कृद्ध्यानात्कीटवत्सारूप्यमेति। एते भगवन्मार्गणोपायाः सुलभाः।।५६।। असौ पुरुषैर्बुद्ध्यादिगुणहेतुभिर्मृग्यो, नानुमानैः। अत्रात्मैवात्मगुरुः।।५७।। नामधारक उवाच तेजस्वी भक्तवत्सलो भगवान्कुतोऽन्तर्दधे? तदा शिष्याः क्व गताः।।५८।। सिद्ध उवाच बहुशिष्योपाधिं ज्ञात्वा रहः स्थेयमिति मत्वा शिष्यानाह।।५९।। संस्कारैर्द्विजो भूत्वा ब्रह्मचारी त्रयीं पठन् द्वादशाब्दं सूत्रमेखलाजिनदंडधृक्।।६०।। सायं प्रातः स्वकर्माग्निकार्यं च कुर्वन्, भिक्षां चरन्, भक्त्या गुरुं भजन्, दिवाऽस्वपन्, याचितां भिक्षां गुरवेऽर्पयन्।।६१।। तद्दत्तभुगेवं लब्धपरविद्यो गुरवे दक्षिणां दत्वा समावर्तनं कुर्यात्। अनाश्रमी प्रत्यवायी भवेत्यतः।।६२।। भार्यामुद्वाह्य गृही गृह्यं परिचरेत्, वेदशास्त्रधर्मज्ञः, पोष्यभृद्यज्ञकृत्।।६३।। पुत्राय सर्वं दत्वा, भार्यया वनं गत्वा त्यक्तग्राम्यविषयो वशी अकृष्टपच्याशी यावच्छुद्धिं वसेत्।।६४।। भार्याज्ञयाऽऽत्मन्यग्नीन्समारोप्य यतिधर्मतो निर्ममः संन्यसेत्। विरक्तस्य न क्रमः।।६५।। त्यक्तसूत्रशिखै-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

षणः संन्यासी वशी जपभिक्षाटनध्यानशौचार्चनरतः।।६६।। स्त्रीकथायानखट्वाऽस्पृक् त्यक्ताहःस्वाप आत्मदृक् वेण्वलाबुदारुमृन्मयपात्रः, दंडी, दिवा सकृद्भुक्।।६७।। वर्षां ऋते तीर्थान्यटन् त्र्यहमेकत्र च वसन् स्थिरचित्तः क्वापि तिष्ठेत्। अशक्तो हरिं ध्यायन्महाक्षेत्रे वसेत्।।६८-६९।। एवं स्वाश्रमोचितं कार्यमन्यथा पातः। इत्युक्त्वान्यान् गृहाय प्रेरयित्वा यतीन्प्राह।।७०।। काशी प्रयागो गया श्रीरंगः पुरुषोत्तमः श्रीशैलो नैमिषारण्यं कुरुक्षेत्रं बदर्याश्रमः।।७१।। गोकर्णः कांच्ययोध्या गोकुलं मथुरा द्वारिका मायाऽवंतिका करवीरं।।७२।। गंधर्वपुरं देवकन्यागुहाश्रमः सेतुबंध इत्यादिक्षेत्राणि। गंगायमुनासरस्वतीविपाट्मरुद्विधावितस्ताचंद्रभागासरस्वती।।७३।।७४।। रेवागोदामरजासरयूभीमागकृष्णामलापहा।।७५।। कावेरीप्रवरातुंगाक्षिप्रातापिवेदिकाचर्मण्वतीगंडकीत्याद्या नद्यः, गुरुचारान्महानद्यो गंगास्नानफलदाः।।७६।।७७।। अत्र सर्वत्र पुष्करादिषु च विधिवत्स्नानादि कार्यं। वर्षासु यद्दिने नवांबु तदा ता रजस्वलाः, तीरस्थैर्विना दशाहं न सेव्या।।७८।। मुख्यास्त्र्यहं वापीकूपाद्या अहोरात्रं च न सेव्याः। एवं कृत्वा सर्वैः श्रीशैले बहुधान्येऽब्दे आगन्तव्यं, अहमप्येष्यामीति।।७९-८०।। तान्यात्रायै प्रेरयामास तेऽपि जग्मुः। अहमेक एव सेवार्थी पादाब्जभ्रमरोऽभवं।।८१।। यद्वर्जुनाभ्यां यज्ज्ञानं योगश्चोपदिष्टस्तावेव मह्यं कृपयोपादिशत्। हे विनीत, तौ ते वक्ष्ये, इत्युक्त्वोपादिशत्। याभ्यां स्वानंदः पुमान् वैष्णवं पदं याति।।८२-८३।।

।। इति चूर्णिकायां नवमोऽध्यायः।।

अथ दशमोऽध्यायः

नामधारक उवाच भगवान् शिष्यान्यात्रायै प्रेरयित्वा स्वयं कुहावसत्तच्छ्रोतुमिच्छामि।।१।। सिद्ध उवाच संवत्सरं वैद्यनाथसमीपं उवास अहमपि सेवार्थी अभवं।।२।। तत्रैको मंदो विप्र एत्य नत्वा गुरुं प्राह मया सिद्धये बहु कष्टं कृतं, सिद्धिस्तादृशो गुरुश्च न लब्धोऽतएव त्वां प्रपद्ये, मोक्षोपायं मे उपादिश।।३-४।। श्रीगुरुरुवाच केन ते सिद्ध्युपाय उपादिष्टः? गुरुं विना कथं कष्टं कृतमिति।।५।। विप्र आह कश्चिद्गुरुर्मयाऽऽश्रितः। स चंडः सेवार्थी मां पीडयामास, ततो मया त्यक्तः।।६।। श्रीगुरुरुवाच हंत गच्छ, त्वयाऽसाधु कृतं। त्वा धिक्। गुरुद्रोहिणो मुखावलोकनमपि न भद्राय।।७।। प्रणामसेवाप्रश्नपराङ्मुखे कुतो गुरुकृपालेशः तदन्यस्मिन्नेव प्रसादः।।८।। द्विज उवाच हे प्रभो गुरुः कथं ज्ञेयः, कथं वा सेव्यो वदाज्ञानाद्गुरुद्रोहः कृतोऽतो मामुद्धर।।९।। श्रीगुरुरुवाच साक्षाद्ब्रह्मविष्णुशिवरूपो गुरुर्निरुपमः। स त्वादृशैरंधैर्दुर्ज्ञेयस्तद्वत्सेवापि।।१०।। एतदर्थमितिहासं शृणु। द्वापारे धौम्यो मुनिरासीत्तस्य

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

बैदारुणोपमन्युसंज्ञास्तत्परा सेवाधर्मज्ञास्त्रयः शिष्याः। तेषां भावं परीक्षितुं दयालुर्गुरुराह।।११-१२।। शालेये जलाभावात्सस्यं शुष्येत्तस्मात्कतमोऽपि गत्वा जलमानयतु।।१३।। तच्छ्रुत्वारुणो द्रुतं गत्वा पल्वलाज्जलं क्षेत्रसमीपमानयत्।।१४।। वारिवारणेन क्षेत्रगतोऽपि प्रवाहोऽन्यत्रागात्।।१५।। तत्र न्यस्तोऽपि पाषाणचयः स्थातुं न शशाक। सोऽमन्यत क्षेत्रे जलाभावे गुरुर्मां धिक्करिष्यति।।१६।। अत्र गुर्वर्थं मर्तव्यमिति मत्वोभयत्र देहं निधायोपरिष्टाद्गतेन जलप्रवाहेण क्षेत्रमपूरयत्।।१७।। धौम्य एत्य जलपूर्णं क्षेत्रं वीक्ष्य हे वत्सा ३ इत्याह्वयत्।।१८।। श्रुत्वापि क्लिन्नः स प्रत्युत्तरं दातुमशक्योऽसौ किंचिद्ध्वनिं चक्रे। तदा तत्रागत्य तं दृष्ट्वा।।१९।। कृपयोत्थाप्य भक्तिं ज्ञात्वा प्रसन्नो गुरुस्तस्मै स्वसाम्यं ददौ।।२०।। विद्याविनयसंपन्नः स गुरुं तुष्ट्वाऽनुज्ञातो गृहं गतो। लोके पूज्योऽभवत्।।२१।। गुरुस्तदा बैदमाह सर्वतः क्षेत्रं संरक्ष्य यत्नात्सर्वं धान्यं समानयेति।।२२।। स तथेति गत्वा पशुपक्ष्यादिनिवारणपूर्वकं रक्षां कृत्वा, धान्यराशिं कृत्वा गुरुमेत्य।।२३।। प्राह धान्यमानेतुं सर्षभं शकटं भवान्ददात्विति।।२४।। गुरुर्लुलायेन युक्तं शकटं ददौ। तं नीत्वाऽर्धमार्गं शालीनाहरत्।।२५।। तत्र पंके शकटः संलग्नः। स तदा स्वयं स्वकंठे युगमयोजयत्।।२६।। तदा भारातिरेकतः समहिषः स पपात। तत्र सहसा यदृच्छया धौम्यः प्राप।।२७।। घोरं तत्कर्म प्रेक्ष्य तं मोचयित्वा प्रसन्नो वरं ददौ। तेनेहामुत्र च शिष्यः कृतार्थोऽभूत्।।२८।। अथोपमन्युमाह गाश्चारयेति। स स्वल्पभुगपि तथाऽकरोत्। क्षुधितः स वने।।२९।। विप्रगृहान्दृष्ट्वाऽन्नयाच्ञयाऽऽत्मानं पुपोष। त्वं कथं पुष्ट इति गुरुणोक्तः तन्न्यवेदयत्।।३०।। गुरुराह सा भिक्षा मे देयेति। स तथेत्युक्त्वा प्रत्यहं याचितकं गुरवे दत्वा पुनर्याचितान्नं भुक्त्वा गा अरक्षत्। तदपि ज्ञात्वा।।३१।। गुरुराह द्विर्याचितां भिक्षां मे देहीति। शिष्योऽपि तथाऽकरोत्।।३२।। वत्सपीतावशेषकं गलितं दुग्धं पीत्वा गा अरक्षत्।।३३।। तदपि ज्ञात्वा धीभ्रंशभिया गुरुणा वारितः। ततः सोऽर्कक्षीरमनुच्छिष्टं ज्ञातुं पातुं दधौ। तदक्ष्णोरपतत्।।३४।। सोऽन्धवद्गर्तेऽपतत्। गावो गृहं ययुः। गुरुस्तमन्वेष्य तादृशं दृष्ट्वा तं प्राहाश्विनौ स्तुहीति।।३५।। सोऽश्विस्तवाद्दृष्टिं प्राप। गुरुरपि कृपां चक्रे। ततः स कृतकृत्योऽभवत्।।३६।। तच्छिष्या अपि तत्तुल्या अभवन्। अस्योत्तंकाख्यशिष्यः सत्रेऽहीनदहत्।।३७।। जनमेजयादिष्टः स्वर्गादिंद्रमानयत्। अयं गुरुप्रसादस्तत्तोषात्प्राप्यो, नान्यथा।।३८।। अतः सर्वभावेन तमेव शरणं गच्छ। तत्प्रसादाच्छांतिर्दुर्लभोऽपि मोक्षः सुलभः।।३९।। विप्र उवाच भिन्नधातुपात्रादिसंधिर्युज्यते, तथा भिन्नं मौक्तिकं न संधीयते। तथैव हृदयं। मया गुरोर्हृदयं भिन्नं। अतो न यास्ये। तवाग्रतो दोषापनुत्यै प्राणांस्त्यक्ष्ये।।४०।। इति तन्निश्चयं ज्ञात्वाऽनुतापदग्धाशुभस्य तस्य मूर्ध्नि करं निधाय स्वगुरुं स्मरेति भगवानाह।।४१।। स च स्वगुरुं स्मृत्वा तत्स्वरूपमिव भगवंतं दृष्ट्वा गलत्प्रेमाश्रुर्मुदा तुष्टाव।।४२।। प्रणतं तं श्रीगुरुराह यथाक्रमं कर्मौघं निस्तीर्य शीघ्रं परां सिद्धिमेष्यसीति।।४३।। यत्त्वया मे रूपं दृष्टं तद्भक्त्या स्मर। मदर्थेऽनासक्त्या विहितकर्म कुरु, सिद्धिमेष्यसि।।४४।। इति स्वरूपदर्शनाद्दुर्लभस्वात्मसुखान्वितं कृत्वा कृष्णातीर-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

मेत्य तत्रागतं छिन्नजिह्वं द्विजमुद्दधार।।४५।।।। इति चूर्णिकायां दशमोऽध्यायः।।

अथ एकादशोऽध्यायः

नामधारक उवाच कश्छिन्नजिह्वो विप्र आगतो, भगवता कथमुद्धृतो वद। तत्कथामृतपानेऽतीव तृष्णा वर्धते।।१।। सिद्ध उवाच करवीरे कश्चिद्द्विजपुत्रो जातस्तमन्ये प्राहुः त्वं विपुच्छशृंगः पशुः, यत्तृणं न भक्षितं तत्पशूनां भाग्यं।।२।। यतो विद्यानिधिर्हि-र्तुरलभ्यः, शिष्यायार्पितश्चेद्वर्धते, ऊनमपि श्रेष्ठेष्वर्च्यं करोति, दरिद्रमपि क्वापि धनिनं करोति।।३।। सुखे स्त्रीव, रक्षणे मातेव, कुत्रापि मित्रवत्, हिते पितेव, बोधे गुरुवद्विद्याऽतो विद्याहीनं त्वां धिक्।।४।। इति निर्भर्त्सितस्त्रस्तः स भिल्लवाटीं ययौ। त्यक्तान्नो देवीमानर्च।।५।। अलब्धप्रसादः स जिह्वां छित्वा शिरः श्वः छेद्यमिति निश्चयं कृतवान्। रात्रौ स्वप्ने देवी प्राह कृष्णायाः परकूले यतिरस्ति। तं भजेति।।६।। ततो गलदश्रुर्दुःखितोऽपि स धैर्येण गुरुमेत्य ननाम। गुरुस्तन्मूर्ध्नि करं दधौ।।७।। स्पर्शस्पर्शादयो हेमेव, मानसं गतः काको हंस इव, गुरुकरस्पर्शनात्स सुजिह्वो विद्वांश्च बभूव।।८।। नेदं चित्रं, वज्रादिचिह्नितं यत्पदं हृदये ध्यायन्ति तत्प्र-सादाद्धीजाड्यादि नश्यति, तस्य भगवतः प्रसादात्किमुत।।९।। स गुरोराज्ञया गृहमेत्योभयीं सिद्धिं ययौ। भगवानपि दक्षिणां दिशं ययौ।।१०।। साष्टतीर्थं साधुकृष्णापंचगंगासंगमं दृष्ट्वा पश्चिमतीरे तस्थौ।।११।। सरस्वतीशिवाभद्राकुंभीभोगवत्यः कृष्णावेण्योः संग-ता। उत्तमोत्तमोऽयं संगमः।।१२।। तत्र कुरुक्षेत्राधिपुण्यं कुरुपुरं, संगमः प्रयागः, युगालयं साक्षात्काशी च।।१३।। संगमे उदुंबरः कल्पवृक्षः, विश्वेश्वर इवामरेश्वरः। अत्र चतुःषष्टियोगिन्य एषामर्चनान्नरोऽप्यमरो भवेत्।।१४।। अत्र संगमे माघस्नायी स्वर्याति। दक्षिणप्रवाहेऽत्र महापापहारिणि कोटितीर्थानि।।१५।। मुमुक्षोर्मोक्षदं, कामिनां कामदं, सतां रंजकं चाश्रमं दृष्ट्वोदुंबरे साक्षाद्भगवान्त-स्थौ।।१६।। प्राग्विद्वद्युक्तामरपुरे भगवान्वैदिकं विप्रं भिक्षां ययाचे।।१७।। भिक्षावृत्तेः सात्त्विकविप्रस्य भार्याऽऽतिथेयी अन्नाभावा-च्छाकं ददौ।।१८।।भक्त्या दत्तं शाकं भुक्त्वा तृप्तः प्रभुः शाकलतामुत्पाट्याश्रमं गतः।।१९।। तदा दुःखिता ब्राह्मणी प्राह योगक्षेम-करी लता कुत उत्पाटिता, हंत भिक्षाकापट्यमपि मया न कृतं।।२०।। तां भर्ता प्राह तूष्णीं तिष्ठ न कोऽपि सुखदुःखदः। स्वकर्मसू-त्रग्रथिता लोकास्तु वृथाहंकारं वहंति।।२१।। सर्वं जगदीश्वराधीनं। सुखं दुःखं वा येन यत्प्राप्तव्यं तदन्यथा कर्तुं कोऽपि न समर्थः। येनायुर्दत्तं सोऽन्नमपि ददाति।।२२।। विश्वोत्पत्तिस्थितिलयकर्तुः प्राज्ञऽज्ञे, राज्ञि रंके, वैकदृष्टिरतो मा शुचोऽयमस्माकं तार-कः।।२३।। इति वधूमाश्वास्य वल्लीमुत्खात्य श्रीगुरोः प्रसादाद्धनपूर्णं घटं लेभे।।२४।। स सभार्यो गुरुं गत्वा तत्कथयामास। भग-वान् प्राह भो दंपतीदं गोप्यं, अन्यथा लक्ष्मीर्नश्येत्।।२५।। ऐश्वर्यपुत्रान्वितौ निरामयौ युवां मोक्षं गमिष्यथः, गृहं गच्छेतामिति।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

तथेति तौ जग्मतुः।।२६।। नामधारक उवाच प्रभोः कस्माद्भिक्षावृत्तिः? पूज्येऽश्वत्थे विद्यमाने उदुंबरः कुतो भगवताश्रितः।।२७।। सिद्ध उवाच भिक्षेयं शंभुवृत्तिः। भगवान्लीलया स्वयं भिक्षुः सन् श्रुत्युक्तां पक्वान्नभिक्षां भेजे।।२८।। नृसिंहावतारे दैत्यदारणान्नखा विषार्तास्ते औदुंबरैः शांता। अतः प्रीत्या उदुंबरः श्रितः।।२९।। यत्र क्वाप्ययं पापतापदैन्यहृद्भूयात्कामदोऽहमपि श्रिया सह वसामीति वरोऽपि दत्तः।।३०।। यत्र विश्वात्मा तत्र वेदतीर्थदेवा अप्यतो भुव्ययं कल्पवृक्षः।।३१।। ततौ विश्वभृद्भगवान् कामरूपभिर्योगिनीभिरर्चितस्तत्रैव स्थितः।।३२।। अज्ञा विप्रास्तदज्ञात्वाऽयं भिक्षामकृत्वा कथं जीवतीति मृग्यं।।३३।। इति विचार्य विलीय स्थितास्ते मध्याह्ने भगवन्मायया त्रस्ता ययुः। भगवच्चेष्टितं ज्ञातुं कः शक्यो? न कोऽपि।।३४।। एकदा भाविको गंगानुजाख्यो भक्तोऽमुं द्रष्टुमेत्याश्चर्यं ददर्श।।३५।। तदा जलपूर्णापि कृष्णा मार्गं ददौ। तेन भगवानन्तर्गतः। भक्तोऽपि पश्चादागत्य मध्येद्वीपं दिव्यामिव पुरीं ददर्श।।३६।।३७।। सिंहासनस्थो योगिनीभिर्नीराजितः पूजितश्च देवस्तं दृष्ट्वा कस्त्वं कुत आगतोऽसीत्याह।।३८।। गंगानुज उवाच गंगानुजाख्योऽत्रत्योऽहं। त्वा द्रष्टुमागतोऽस्मि। भवान्परमात्मा सर्वेश्वरोऽपि दैवान्मे गोचरः।।३९।। त्वन्मायामोहितास्त्वां नरं विदुस्तेऽपारे संसारसागरे मज्जंति, नान्ये।।४०।। इति स्तुतो भगवान् तस्मै इष्टवरं दत्वा प्राह यदत्र दृष्टं तन्मय्यत्र विद्यमाने त्वया कस्यचिन्नाख्येयं।।४१।। स नित्यमेत्य गुरुमानर्च। एकदा गुरुं प्राह त्रिस्थलीयात्रा वरेत्याहुस्तां न वेद्मि।।४२।। श्रीगुरुरुवाच प्रयागः काशी गया चेति त्रिस्थली। तादृशी संगमो युगालयं करवीरं चेति त्रिस्थलीत्युभयीमपि ते शीघ्रं दर्शयामि।।४३।। इत्युक्त्वा स्वपादुके धारयित्वा इमामपरां च क्षणाद्दर्शयामास।।४४।। आह च एषान्या च त्रिस्थली दर्शिता। उभयोः साम्यं ज्ञात्वाऽत्र स्वाचारान्मोक्षसे।।४५।। इति गुरुवाक्यं श्रुत्वा तल्लीलां च ज्ञात्वा तद्ध्यानाद्बंधं छित्वा मुक्तोऽभवत्।।४६।। ततोऽत्र महिमा वृद्धः, संतोऽसंतश्चायास्यंतीतोऽन्यत्र गंतव्यं, साक्षान्नेह स्थएयमिति भगवानमंस्त।।४७।। तदाऽस्मान्हित्वा क्व यास्यसीति लपंतीर्योगिनीराश्वास्य प्राह भगवान् वस्तुगत्यात्रैव तिष्ठामि, लोकदृष्ट्या गमिष्य एव।।४८।। अमरेशोऽन्नपूर्णा विघ्नेशो वयं च भक्तेष्टदाः अत्र वस्तुष्टये स्थेयं।।४९।। इतःप्रभृतीदं क्षेत्रं प्रसिद्धं सुखदं बहुलोकनिवासं च भविष्यति।।५०।। सन्निपाताक्षिरोगकुष्ठमेहश्लेष्मक्षयज्वरवातपैत्तिकगुल्मदोषादिजरोगानिदं क्षेत्रं निवारयेत्।।५१।। वंध्यां पुत्रं, भीतोऽभयं, निःस्वो धनं, रोगी आरोग्यं, मुमुक्षुः सद्गतिं चेति यद्यद्यस्येष्टं स स तल्लभेत्।।५२।। पर्वक्रांतिग्रहस्नानेऽत्र सहस्रगोदानफलं अत्राल्पजपहोमद्विजतर्पणफलमनंतं।।५३।। प्रदक्षिणा पदे पदेऽश्वमेधफलदा। दुर्गता अपि पितरः श्राद्धतः परां गतिं यास्यंति।।५४।। इति योगिनीराश्वास्योदुंबरमूले पादुके संस्थाप्य भगवान्प्राहात्राष्टतीर्थस्नानपूर्वकं यो योगिन्यादियुतमत्पादुकेऽर्चेत्सोऽभीष्टं लभत्वित्युक्त्वा भीमातीरं जगामेति।।५५।।

।। इति चूर्णिकायामेकादशोऽध्यायः।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

नामधारक उवाच कृष्णातटाद्भगवति गते सति तत्र भजतां कः फलदः।।१।। सिद्ध उवाच गतिस्थित्यासनस्वप्नाश्चिदात्मनो न, नरानुकृतिकारणस्तस्येयं लीला।।२।। यया भावनया यथा भाव्यते तथा भगवान्प्रतीयते। अत्रेदृक्फलदो देव इति तत्र तादृग्जागर्ति।।३।। योगिनीवरदानादि गंगानुजात् यैः श्रुतं तेऽभजन्, तेषां फलमपि लब्धं।।४।। एवं सति तत्रत्या काचिन्मृतप्रजा ब्राह्मणी ब्राह्मणं शरणं प्राप।।५।। दीनां प्रपन्नां तां देवप्रेरितबुद्धिर्विप्रस्तद्दैवं प्राह।।६।। भो साध्वि पूर्वार्जितान् मृतापत्यत्वदोषान् शृणु, ते च प्रायः प्रेतहेतवः।।७।। गोब्राह्मणश्वासर्पबालहा परस्वापहर्ता जन्मांतरे मृतापत्यः।।८।। लोहाश्मदारुचूर्णं प्रयत्नाज्जरयेत्, ब्रह्मस्वं कः कथं जरयेत्।।९।। हृतस्वार्थाभिलाषेण ब्राह्मणो मृतश्चेत्प्रेतो भूत्वा हर्तृवंशहा भवेत्।।१०।। जन्मांतरे त्वया शौनकगोत्रविप्रस्य शतद्रव्यं हृतं। स प्रेतो भूत्वा तेऽर्भान् हन्ति।।११।। आरब्धकर्मणो भोगादेव क्षयो, नान्यथा। त्वं स्वारब्धं भुंक्ष्व। को निवारयेत्।।१२।। इति कर्णशूलाभं वचः श्रुत्वा त्रस्ता सा प्राह भो ब्रह्मन्मामनुगृह्णीष्व, मुक्त्युपायं कथय।।१३।। विप्र उवाच प्रायश्चित्तपूर्वकं प्रेतौर्ध्वदेहिकं कर्म कृत्वा मासव्रतं चर।।१४।। साष्टतीर्थसंगमस्नानपूर्वकमुदुंबरं पादुकां च पूजय।।१५।। ततो ब्राह्मणान्भोजयित्वा शौनकगोत्राय शतद्रव्यं देहि। तेन ते शुद्धिः।।१६।। ब्राह्मण्युवाच शतद्रव्यं नास्ति। भक्त्या मासमात्रं पादुकार्चनं कुर्यां। स हरिर्भयात्पायात्।।१७।। इति निश्चित्य सा पत्या सह यथोक्तमाचरत्। त्रिदिनांते तत्स्वप्ने पिशाच एत्य।।१८।। तां भीषयित्वा द्रव्यं ययाचे। सा भीत उदुंबरमूले गुरुं ददर्श।।१९।। गुरुस्तामाश्वास्य पिशाचमाह रेऽधम सतीं खेदयसेऽपि कस्त्वं।।२०।। पिशाच उवाच स्वामिन्नयं पक्षपातो भवतो नार्हः। यस्मादनयाऽपहृतं द्रव्यं याचितुमहमीदृशोऽभवम्।।२१।। श्रीगुरुवाच अनेन पीडनेनामंगलयोनेस्ते कथं मोक्षः? येन सद्गतिः स्यात्तच्छणु।।२२।। हृतद्रव्यं जन्मांतरेऽस्ति। दरिद्रवंशेऽत्र फलभागिनीयं जातातः कुतो धनं लभ्यं।।२३।। अतस्तया शक्त्या और्ध्वदेहिकं कारयित्वा त्वद्गोत्राय यथाशक्ति धनं दापयित्वा।।२४।। मोक्षं ते दद्मि। इदं न रोचते चेद्यथेष्टं चरेमां रक्षामि।।२५।। पिशाच उवाच भो देव त्वद्दर्शनान्मे निष्कृतिर्जाता यथेष्टं कुरु।।२६।। इति तन्निश्चयं ज्ञात्वा गुरुर्ब्राह्मणीं प्राह त्वयेदं श्रुतं। तथा निष्कपटमाचर।।२७।। अयं सद्गतिं यायात्ते वंशवृद्धिश्च भविता। इत्युक्त्वादृश्योऽभूत्। सापि बुद्धा जाता।।२८।। तत् पतये कथयित्वा तथैवाकरोत्तेन प्रेतो गतिं लेभे, साप्यदोषाऽभूत्।।२९।। द्वितीयेऽह्नि तत्स्वप्ने द्वे फले दत्वा प्राह भगवान् विप्रान् भोजयित्वा फले भुंक्ष्वेति।।३०।। सा प्रबुद्धा फलेऽपि दृष्ट्वा तथाऽकरोत्। ततो गर्भिणी जाता।।३१।। गुरुप्रसादात्सूर्याचंद्रमसाविव पुत्रावसूत। विप्रो जातकर्माद्यकरोत्।।३२।। ततोऽष्टमेऽब्दे पित्रा ज्येष्ठपुत्रस्योपनयनाय संभाराः संभृताः। तदाद्भुतं जातं।।३३।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

अकस्मात् सन्निपातेन ज्येष्ठपुत्रो ममार। मातोरःशिरस्ताडनपूर्वकं रुदती प्राह।।३४।। रे पुत्र क्व गतोऽसि? वृथा मे पयः स्रवते। वत्स कति शेषेऽचिराद्बुध्यस्व, पयः पिब।।३५।। अयं ते भोजनावसरः। भुक्त्वाऽङ्गणे रंतुं चर। उत्तिष्ठ, मा स्वप, त्वां वयस्या आह्व-यंति।।३६।। त्वं नोत्तिष्ठसि चेत्प्राणांस्त्यक्ष्यामि। ये पंचपुत्रा जातास्तेषां त्वं मम प्राण एव।।३७।। त्वयि मृते मरिष्ये। गर्भप्रभृत्यद्य यावद्दुःखं त्वदीक्षणाद्विस्मृतं। अद्य दुःखाब्धौ मां त्यक्त्वा क्व यास्यसि।।३९।। अयं न ते धर्मः। वार्धक्ये नः कस्त्राता। इति तद्रुदितं श्रुत्वा तत्रत्या एत्य तां प्राहुः।।४०।। हे भीरु कुतः शोचसि? मृत्युर्देवर्षिदानवान्न विस्मरति, मनुष्याणां तु का कथा।।४१।। त्वं विचारय, कृष्णाद्यवतारा अपि कालवशं गताः। अतो वृथा शोकं मा कुरु।।४२।। ब्राह्मण्युवाच हंत पिशाचभयं निवार्य भगवता दत्तं फलं कथं विफलं जातं।।४३।। तत्तस्य वाक्यं वृथा चेत्तं को भजेत्? बिभीषणध्रुवाद्यैरपि कथं विश्वसनीयं।।४४।। एतां तत्कीर्तिं पुत्रेण सह लोकांतरे नेष्ये। इति रुदित्वा संस्कर्तुं शवं न ददौ।।४५।। ग्रामे लोकास्त्रस्तास्तदा कश्चित्तापस एत्य तां प्राह।।४६।। शोकाविषयं सुतं कुतः शोचसि? सुतस्तवैष जीवो वा देहो वा सत्यं वद।।४७।। त्वग्रक्तमांसास्थिमयो देहस्ते पुरतोऽस्ति। जीव-स्त्वजो विभुरनंतश्चात्र कः शोकविषयः।।४८।। कालकर्मगुणोत्पन्नं जगदिदं मायामयमिन्द्रजालोपमं कथं ध्रुवं मंतव्यं।।४९।। तादृ-शस्य कुतः पुत्रादिरूपा स्वकल्पना? सा मृषा, नद्यां काष्ठसंगवच्चंचला।।५०।। त्वया ध्रुवा निश्चिता चेज्जन्मांतरे कस्य त्वं जननी स्त्री वा तव संबधिनश्च? न केऽपि।।५१।। जन्ममृत्यू कालवशाद्दिनरात्रिवदलंघ्यो। देहिनो देहे यथा बाल्यादि तथा देहांतरमपि।।५२।। अयं भ्रमो गुरुप्रसादाल्लीयते। तं विना जातो मृत्यवे, मृतश्च जनुषे कल्प्यः।।५३।। अतोऽपरिहार्येऽर्थे मा शुचः। मृतः शुचोपायांतरैर्वा नागच्छति।।५४।। ब्राह्मण्युवाच वेदांतो मे न रोचते। येन मे सुफलं दत्तं तत्कुत्र गतं? स भुवि कैर्विश्वस्तव्यः।।५५।। तापस उवाच यतः त्वया वरो लब्धस्तं गत्वेदं पृच्छाहं गच्छाम्यलं विस्तरेण।।५६।। तच्छ्रुत्वा सा शवं गृहीत्वा सद्गुरोराश्रमं गत्वा कोपेन पादुकयोः शीर्षं ताडयामास।।५७।। एवमासाद्य शवं संस्कर्तुं न ददौ। विप्रा गृहं जग्मुः। दंपती तत्रैव तस्थतुः ।।५८।। ततो निशीथे तत्स्वप्ने श्रीगुरुस्तां प्राह मया किं तेऽपकृतं।।५९।। प्राणो नामैष वायुः स बहिर्यातः स मया पुनरानीय पूर्ववन्न्यस्तोऽतो मा शोचीः।।६०।। इति श्रुत्वा प्रबुद्धा सा जीवंतं सुतं दृष्ट्वा हर्षशोकाभ्यां भर्तारमाह्वयत्।।६१।। सोऽप्युत्थाय रुदंतं क्षुधितं सुतं दृष्ट्वा मंत्रवत्त्रिरवघ्राय गुरुमस्तौषीत्।।६२।। ततः प्रभाते दग्धुं प्राप्ताः विप्राः सर्वं श्रुत्वा भगवंतमस्तुवन्।।६३।। दंपती स्नात्वेशं संपूज्य नीराज्य ब्राह्मणा-न्भोजयित्वा स्वालयं जग्मतुः।।६४।। स पुत्रो विद्याविनयसंपन्नश्चिरजीवी भाग्यवांश्च बभूव। एवमन्येऽप्यत्र पूर्णकामा अभूव-न्।।६५।। तत्र कलावपि नित्यं नरसिंहसरस्वती जागर्ति, न निद्राति।।६६।। ये विश्वासेन तं भजन्ति ते ब्राह्मणीवत्पूर्णकामा भवं-ति।।६७।। ।। इति चूर्णिकायां द्वादशोऽध्यायः ।।

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा

नामधारक उवाच भगवान्भीमामेत्य किमकरोत् तन्मे श्रद्दधानाय शंस।।१।। सिद्ध उवाच कृष्णापंचगंगायोगतुल्ये भीमामरजासंगमे गंधर्वपुरे भगवान् तस्थौ।।२।। तत्र गुप्तभावेन स्थित्वा भक्तोद्धारार्थं भिक्षां ययाचे।।३।। तदा श्रीविद्याढ्याः दीनभाविकदत्तभिक्षाप्रियं श्रीशं हरिं हसंति स्म।।४।। अभ्रछन्नेऽर्केऽपि यथा प्रभा प्रसरति, संपुटस्थकस्तूर्या वा गंधः प्रसरति, तद्वद्भगवतोऽपि गुणाः।।५।। एकदा दीनविप्रगेहं गत्वा दंतहीनां महिषीं दृष्ट्वाऽपि तत्क्षीरं देहीति ब्राह्मणीं ययाचे।।६।। सा प्राह इयं भारवाहिनी वशा गुणोता, जन्मतोऽपि लुलायवत्पालिता। इतोऽस्माकं योगक्षेमं।।७।। गुरुराह मृषा मा वद। तां दुग्ध्वा क्षीरं देहीति। तदा काष्ठपात्रमादाय ब्राह्मणी तां दुग्ध्वा पयो लेभे।।८।। विस्मिता सा पयो मंदोष्णं कृत्वा तस्मै ददौ। गुरुस्तत्पीत्वा संगमं ययौ।।९।। ततो गृहेश एत्य सर्वं श्रुत्वा सस्त्रीको गत्वा गुरुं संपूज्य लब्धेष्टवरो गृहं ययौ।।१०।। अन्येद्युर्भारवाहार्थं वशां नेतुमागताः शूद्रा दोहं प्रेक्ष्य नृपायाकथयन्।।११।। नृपोऽपि ब्राह्मणात्सर्वं श्रुत्वा गुरुमानेतुं शिबिकादि गृहीत्वा चतुरंगबलान्वितः संगमं ययौ।।१२।। गुरुमेत्य दंडवत्प्रणिपत्य सात्त्विकाष्टभावैः प्राह दीनं किंकरं मां पाहीति।।१३।। श्रीगुरुरुवाच दंडी वनचरो भिक्षुरहं, राजन्, संरभात्ससैन्यस्त्वं कस्मादागतोसि? किं ते कार्यं।।१४।। राजोवाच परमेश्वर त्वं मायानरो न भिक्षुः। अरण्यवासं त्यक्त्वा पुरं पावय।।१५।। इति सकारुण्यमुदारं वाक्यं श्रुत्वा तथेति पुरं ययौ।।१६।। राजा विप्रवाहितशिबिकोपविष्टं गुरुं छत्रचामरैर्वाद्यैश्च भेजे।।१७।। विप्रा वेदघोषं मागधाः स्तोत्रं अन्ये जयशब्दं च चक्रुरेवं पुरद्वारमागतः।।१८।। पुर्याः पश्चिममार्गमेत्यातीन्द्रियो भगवानश्वत्थे घातुकं ब्रह्मराक्षसं ददर्श।।१९।। गुरुदर्शनाद्ब्रह्मराक्षसः शांतो भूत्वाऽवरुह्य गुरुं नत्वा कुयोनेर्मामुद्धरेत्याह।।२०।। गुरुणा तन्मूर्ध्नि करो दत्तः ततः सनृवज्ञातः। गुरुः प्राह संगमस्नानाच्छीघ्रं मुक्तो भविष्यसीति।।२१।। तच्छ्रुत्वा नत्वा संगमं गत्वा स्नात्वा भौतिकाङ्गं त्यक्त्वा कर्मबंधनान्मुक्तः।।२२।। राजा तद्दृष्ट्वा गुरुं तुष्ट्वा पुरं नीत्वा मठिकां निर्मायावासयत्।।२३।। राजा पूजार्तिक्यगानाद्यैस्तदनुगो भूत्वा घोरं सांसारिकं खेदं जहौ।।२४।। आह्निकं संगमे, ग्रामे भिक्षां, मठे वसतिं च कृत्वा भक्तवात्सल्याद्राजाधीनो भगवानभूत्।।२५।। अल्पधीस्त्रिविक्रमभारती आश्रमानर्हचेष्टा श्रुत्वा तं भ्रष्टोऽयं दांभिकमिति मेने।।२६।। सर्वांतरस्थः साक्षी भगवान् तज्ज्ञात्वा नृपं प्राहाद्य निंदकशिक्षार्थं गंतव्यं।।२७।। कुमसीग्रामे मन्निंदको भिक्षुस्त्रिविक्रम इति। इत्थं श्रुत्वा हृष्टो राजा गमनायोपचक्रमे।।२८।। नृपचिह्नैः परिष्कृतं गुरुं शिबिकायामारोप्य राजा यत्र भारतिः स्थितस्तद्ग्रामं गुरुं निन्ये।।२९।। स नृसिंहध्याननिष्ठोऽपि तदा चंचलचित्तो भूत्वाऽस्तौत्।।३०।। हे दयाब्धे भक्तपते नृसिंहाद्य कुतस्ते सामीप्यं न घटते भो दयस्व त्वां वंदे।।३१।। एवं स्तुत्वा ध्यात्वा नदीतटगं ज्ञात्वा त्रस्तः स द्रष्टुं ययौ।।३२।। स शीघ्रमागत्य माययोच्चावचान्यतीन्दृष्ट्वा मुमोह।।३३।। स परितः प्रशांतानमितान्

दंडिनो ददर्श।।३४।। ततो विस्मितं तं श्रीगुरुराह यं धिक्करोष्यस्मि स दांभिकोऽहं भ्रष्टः मया मायामुद्भाव्य परीक्षितोऽसि।।३५।। त्वं नृसिंहभक्तः स्वधर्मज्ञः ख्यातः संन्यासी चेत्त्वया किं संन्यस्त ब्रूहि।।३६।। शिखासूत्र इति चेत्तथाविधो दंडी रागद्वेषाकुलो वेषानुकारी धर्मज्ञोऽपि संन्यासी भवेत्किं।।३७।। त्रिविक्रम उवाच हे भगवन्नीश ते मायया कुंठितोऽहं वक्तुमपि न शक्यः हे दयाब्धे हृषीकेश पाहि।।३९।। ध्यानपुण्यादुपगतस्त्वं नृसिंहस्त्वां प्रपन्नोऽस्मि मेऽपराधान्क्षमस्व।।४०।। इति स्तुतो भगवान्स्वरूपेण प्रादुरास राजा मंत्री सैन्यं चापि प्रादुरास।।४१।। तत्र राज्ञा वीजितं विश्वरूपं तं द्रष्टुं त्रिविक्रमो नाशकत्।।४२।। भगवान् तमाह दिव्यदृष्ट्यापि दुर्दर्शँ रूपं ध्यानहृष्टेन मया दर्शितं पश्येदं लौकिकमिति।।४३।। ततः शांतयतिरूपेणावस्थितं तं दृष्ट्वा स शांत आह।।४४।। हे विश्वात्मन् वाङ्मनःकायैरसत्कृतोऽस्यतः क्षामये।।४५।। अद्यानुगृहीतो धन्योऽहं कृतकृत्योऽस्मि यस्मादर्जुनवन्मे विश्वरूपं दर्शितं।।४६।। हे हरेऽविद्याप्रवाहे मज्जन्तं मां सकरुणं ज्ञाननावा स्वरूपतटं नय।।४७।। ज्ञानेनाविद्यां तीर्त्वा परं पदमाशु यास्यस्यत्रैव तिष्ठेति तमुक्त्वा सपरिवारो भगवान्मठमेत्य कर्ममार्गं ततान।।४८।।

।। इति त्रयोदशोऽध्यायः।। ज्ञानयोगः समाप्तः।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

नामधारक उवाच मोक्षसिद्ध्यै उत्तमं ज्ञानयोगमुक्त्वापि प्रभुः कर्मयोगं ततान।।१।। अविद्यानाशायेति चेत्तज्ज्ञं कर्माविद्यानाशकं कथं तद्वद।।२।। सिद्ध उवाच कर्कटीं तद्भवा यथा घ्नन्ति, मृदा भाण्डलग्नमृत्प्रक्षालनं च यथा तथा कर्मणा योगसंज्ञितेनाविद्यालयः।।३।। फलाभिमानरहितं कर्म साधनावधि कृत्वा ततः संन्यस्य शममास्थाय पुमान्नैष्कर्म्यसिद्धिभाग्भवेत्।।४।। कदापि कोऽपि प्रकृतिगुणक्रियैरक्रियो न तिष्ठेत्। तत्राज्ञानी सक्तः ज्ञानी असक्तश्चेदं ज्ञानिनः स्वार्थाभावेऽपि लोकसंग्रहार्थमेव।।५।। अहं यथानुतिष्ठामि लोकोऽपि तथानुतिष्ठेन्नेदं साध्विति प्रभुः कर्मयोगमाह।।६।। कर्मयोगमयं गुरुचरितं शृणु यच्छ्रुत्वा भवबंधं छित्वा परपदं याति।।७।। कश्चित्खलो हिंस्रो ब्रह्मद्वेष्टा यवनराजोऽभूत्स संसदि विप्रानाहूय स्वाग्रे वेदानपाठयत्।।८।। स वेदपाठकेभ्यो धनं दत्त इति श्रुत्वा द्रव्यलुब्धास्तथा चेरुः।।९।। वेदार्थं श्रुत्वा ब्राह्मणान् श्रुतींश्च विनिन्द्य स सर्वमाचारमतथ्यं मेने।।१०।। एकदा दीनौ मत्तौ विद्वांसौ तमेत्यावां वेदशास्त्रज्ञौ।।११।। अस्मत्तुल्या त्वदधीनाश्चेत्तानानयेत्यूचतुः।।१२।। तदा राजा पराङ्मुखान् स्वाश्रितान् ज्ञात्वा तदाज्ञया तौ गजमारोह्य भूषितौ पूजयामास।।१३।। अधःपातभीतिरहितानां विषयासक्त्या वेदज्ञानामपीयं स्थितिः।।१४।।विप्रा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

ऊचतुः राजन् वादं विनाऽस्मद्विद्याभ्यासो न सफलोऽतो विद्वद्द्विजान् जेतुमादिश।।१५।। इति श्रुत्वा स विप्रपराभवपरो राजा तथाऽऽदिशत्। तौ विप्रान् जित्वा जयपत्रं गृह्णन्तौ चेरतुः।।१६।। त्यक्तवादान्विप्रान्वावदूकतया वर्जयतोस्तयोर्जयोऽभूत्।।१७।। त्रयीज्ञं त्रिविक्रमं ज्ञात्वाऽऽगत्य वेदज्ञोऽसि चेद्वादं कुरु जयपत्रं वा देहीत्यूचतुः।।१८।। त्रिविक्रम उवाच वेदज्ञा भवादृशाः पूज्या न तथाविधोऽहं जयाजयसमे यतौ जिते वा किं फलं।।१९।। इति श्रुत्वा तौ आहतुः इमानि जयपत्राणि पश्य, पत्रं देहि वादं वा कुर्विति। गुरोरग्रे दास्य इत्युक्त्वा तदा त्रिविक्रमः पर्तस्थे।।२०।। मत्तौ शिबिकारूढौ तौ तमनुजग्मतुः। मठे श्रीगुरुमेत्य प्रणम्य त्रिविक्रमोऽब्रवीत्।।२१।। ॐकाररूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ते नमः भो भक्तवत्सल कृपालो जगद्गुरो।।२२।। घूकोऽर्कमिवाज्ञानांधस्त्वां न वेत्ति स त्वमेतौ मत्तौ जहि।।२३।। एवं विज्ञापितो भगवान् तौ प्राह केमनेन साध्यमिति।।२४।। विप्रावूचतुः आवां विद्वत्तमौ द्विजान् जेतुं राज्ञाज्ञप्तौ अनेनात्रानीतौ युवां वेदपारगौ किम्।।२५।। श्रीगुरुरुवाच गर्वेणैवासुरराक्षसा नष्टाः कोऽप्यनाद्यानंतान्वेदान्कृत्स्नशो न वेद।।२६।। पूर्वं भारद्वाजो ब्रह्मचर्येण वेदान्पठितुं तपोऽतपत्। प्रीतो विधिस्तस्मै भास्वद्वेदराशीनदर्शयत्।।२७।। स दृष्ट्वा शंकितोऽभूत्। ततो विधिना दत्तान्त्रिमुष्टिमितान्वेदान्पठ्यमानः सोऽद्यापि न पारगः।।२८।। पैलो ऋचं, वैशंपायनो यजुः, जैमिनिः साम, सुमंतुरथर्वाणं चाशिक्षन्त एषां गुरुर्व्यासः साक्षाद्धरिः यतो वेदाः प्रसृताः।।२९।। युगांतरे आयुष्मद्भिः केचिद्वेदाः पठिताः, कलौ तु मंदा अल्पायुषः शाखया वेदमानिनः।।३०।। प्रतिग्रहपरान्नस्त्रीसक्ता अतः सिद्धिविवर्जिताः।।३१।। सशाखाङ्गोपाङ्गा वेदा व्यासेनोक्ताः। ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदः स्वर्णाभोऽत्रिगोत्रो गायत्रछंदा ब्रह्मदैवत्यः द्व्यरत्निमितो दीर्घाक्षो व्यक्तकण्ठ ऋग्वेदः।।३२।।३३।। शाकला बाष्कला सांख्यायन्याश्वलायनी मांडूक्येति पञ्चशाखा, अष्टौ विकृतयः।।३४।। निरुक्तं, व्याकरणं, ज्योतिषं, छंदः, सूत्रं चेति षडङ्गानीमं कृत्स्नशः को वेत्ति।।३५।। पञ्चारत्निमितोऽर्काभः, कपाली, कृशदीर्घकः, धनुर्वेदोपवेदो यजुर्वेदः।।३६।। त्रिष्टुप्छंदा, भारद्वाजगोत्रो, विष्णुदैवतोऽष्टादशपरिशिष्टः, षडशीतिभेदः।।३७।। षडुपाङ्ग इति। सामवेदस्तु दांतः शुचिः स्रग्वी चर्मदंडभृत्।।३८।। षडरत्निमितो, गानोपवेदो, रुद्रदेवतो, जगतीछंदः, काश्यपगोत्रः।।३९।। सप्तदशभेद एनं साङ्गोपाङ्गं को वेत्ति।।४०।। अथर्वा तु चंडो, सितः, कामरूपो, शुभः, स्वदारातुष्टो, यंत्रोपाङ्गः।।४१।। बैजानगोत्रोऽनुष्टुप्छंदा, इन्द्रदेवः, नवभेदः, पञ्चकल्पः।।४२।। भारतेऽत्र वर्षे भ्रष्टा द्विजा अंत्यजाग्रे पठन्त्यतः सत्त्वहीनाः।।४३।। उत्सर्जनोपाकर्मादिना गुप्तो वेदमंत्रः कामधेनुवत्किं न दास्यति।।४४।। देवाधीनं जगन्मंत्राधीना देवा विप्राधीना मंत्रास्ते विप्रा विष्णोर्देवाः।।४५।। पुरा ते दत्तं सर्वस्वमपि न गृह्णन्ति ते महाशक्ताः।।४६।। वशे देवा अपि ते विनीताः। भ्रष्टौ स्वल्पज्ञौ युवां तु प्राज्ञमानिनौ निजस्तुतिपरौ आत्मवंचकौ ब्रह्मद्विषौ।।४७।। ये भवादृशाः पूर्वे ते ब्रह्मराक्षसाः जाताः।।४८।। विप्रावूचतुः नेदं श्राव्यं, विवादं कुरु पत्रं वा देहीति।।४९।। तथेत्युक्त्वा गच्छन्तमन्त्यजमानयित्वा सप्तरेखा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

उत्क्रामयन्नपृच्छत्तं कोऽसीति।।५०।। रेखास्पर्शनादतीतसप्तजन्मज्ञोऽभूत्। आद्यां गत्वा मातंगाख्यो बुरडोऽस्मीत्याह।।५१।। द्वितीयां रावणाख्यः किरातः। तृतीयां गाङ्गेयः, चतुर्थीं कृषीवलः शूद्रः।।५२।। पंचमीं सोमदत्तगुप्तो वैश्यः।।५३।। षष्ठीं गोवर्धनवर्मा क्षत्रः। सप्तमीं वेदशास्त्रज्ञो विप्र इति।।५४।। प्रभुस्तदङ्गे भस्म क्षिप्त्वा प्राह वेदज्ञोऽसि चेद्विप्रौ वादेन पराजहि।।५५।। इति वाक्यं श्रुत्वा भिया कुण्ठितधियौ तौ वेपितौ गुरुं शरणं गत्वोचतुः।।५६।। ब्रह्मद्विषौ दुष्टसंगतौ भ्रांतौ पापौ मूढौ दुर्गतिं यांतौ नौ हरे समुद्धर।।५७।। श्रीगुरुरुवाच म्लेच्छाग्रे वेदाः पठिताः यतिविप्रा धिक्कृता अतस्तन्निष्कृत्यै राक्षसौ भविष्यथः।।५८।। अनुतप्तत्वाच्छांत्या द्वादशाब्दानुषित्वा पठ्यमानानुवाकोपदेशाद्वां सद्गतिः।।५९।। इति गुरुणोक्तौ तौ भीमां गत्वा मृतौ राक्षसौ भूत्वा तत्रैव तस्थतुः।।६०।। तत्र द्वादशाब्दांते कश्चिद् द्विजो मंत्रं विसस्मार तस्मै तं कथयित्वा तौ मुक्तौ बभूवतुः।।६१।। यो मत्ता धर्मत्यागिनो द्विजगुरुद्विषस्ते वने राक्षसा भविष्यन्ति। पापोऽप्यनुतप्तश्चेद् द्विजवत्कनिष्ठशिक्षो भवेत्।।६२।।

।। इति चूर्णिकायां चतुर्दशोऽध्यायः।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

नामधारक उवाच यो हीनोऽपि भगवदनुग्रहादहं विद्वान्ब्राह्मण इत्याह तस्य पतितस्य किं जातं।।१।। सिद्ध उवाच गुरुप्रसादाज्ज्ञानी सन्नाह ब्राह्मणस्य मे कुतोऽधोगतिर्जातेति।।२।। श्रीगुरुरुवाच यंत्रवत्पुण्यपापतो भ्रममाणस्योर्ध्वाऽधोगती।।३।। सोच्यते गुरुमातृस्त्रीबालकुलधर्मत्यागी हिंस्रोऽनृतवक्ता।।४।। साधुविप्रदेवतीर्थवेदशास्त्रनिंदकः तडागकूपाराममार्गयज्ञध्वंसकः व्रताहभुक्।।५।।६।। पर्वश्राद्धाहेषु स्त्रीभुक् विश्वासघाती दत्तदानहरः स्वोक्तव्यस्ताचारः परकर्मकृत्।।७।। स्वपुण्यपरपापवक्ता दांभिकः खलहिंस्रस्तेयिसंगी घातको मारणादिकृत्।।८।। ज्ञानं विनौषधदः कर्मभ्रष्टस्तापकरश्चेत्येवमादयः प्रेत्य यातनां भुक्त्वा चंडालयोनिं यान्ति।।९।। क्रोधी शूद्रीरतस्त्यक्तनित्यनैमित्तिकक्रियः वृषारोही वृषलीसक्तः रसगोवेदविक्रयी।।१०।। ईशायादत्वा कपिलादुग्धपः निषिद्धभुक् दुष्टप्रतिग्राही परोपजीविकाहारी संध्याशयी ब्राह्मणोऽपि तद्वच्चंडालतां यायात्।।११-१२।। पापभुक्तये यमलोके ८४००००० नरकास्तेषु मुख्या एकविंशतिः पापभुक्तये यम एतान्क्षिपति।।१३।। पापीह पुष्टदेहं त्यक्त्वा यमदूतैर्बद्धो यातनादेहेन दुर्गमे मार्गे क्षुट्तृट्प्रपीडितस्ताडनादिभिस्तर्जितो मूर्छितो वैतरिण्यां मज्जनवशो याम्यपुरं नीतस्ता नारकीर्यातना भुङ्क्ते।।१४।। ततः पापांशतो योन्यंतरे याति प्रायो वासनाभूयस्त्वे भूतप्रेतपिशाचतां वा।।१५।। गुरोर्हुंकाराद्विप्रपराभवाच्च ब्रह्मराक्षसः, हीनसेवी खरः, अतिथिहापकः कुक्कुटः।।१६।। द्रव्यहृदुष्ट्रः, फलपत्रहृत्कपिः, मधुहृद्दंशः, मांसहृद्गृध्रोऽन्नहृन्मूषकः, जलहृच्चातकः।।१७।। गंधहृच्छुच्छुंदरी, धान्यहृच्छलभः, विषहृद्वृश्चिकः, स्वर्णहृत्कृमिः, कीटः पतङ्गश्च, तृणहृत्पशुः।।१८।। निर्मंत्रभुक्काकः, मित्रध्रुग्गृध्रः, दांभिको बकः, एवं

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

पापं भुक्त्वा पापांशतो रुग्णा नरास्ते भवन्ति।।१९।। परहृद्भेत्ता हृद्रोगी, गुरुत्यागी गलत्कुष्ठी, ब्रह्महा क्षयी, स्वर्णहृत्कुष्ठी, पुस्तकापहोऽन्धः।।२०।। विश्वासघाती वमी, गणार्थहृद्व्रण्डी, अन्यार्थहृदपुत्रो, वस्त्रहृत्कुष्ठी, अनृती कुवाक्।।२१।। अन्नहृद्गुल्मी, मांसभुक् कुरुक्, तैलहृत्कास्यः, फलहृत्पामी, कांस्यकार्पासलोहहृत् श्वेतकुष्ठी।।२२।। देवार्थहृत्पाण्डुरोगी, सर्वेऽत्र रोगाः पापत एव। परस्त्र्यालिङ्गनाज्जन्मशतं श्वा, तद्भगेक्षकोऽन्धः।।२३।। बंध्वङ्गनाभोगी गर्दभोऽहिश्च, दुर्बुद्ध्या परस्त्र्यालिङ्गनाद्धृद्रोगी अतोऽष्टविधमैथुनं वर्ज्यं।।२४।। मातुलसखिस्त्रीभुक् श्वा, औपपत्यात्कृमिः, स्वैरिण्यः स्त्रियोऽपि श्वादियोनिं गत्वाऽलं व्यथन्ति।।२५।। इति श्रुत्वा त्रिविक्रम आह ज्ञानादज्ञानाद्वा जातस्य पापस्य कथं निष्कृतिः।।२६।। श्रीगुरुरुवाच पश्चात्तापेन प्रायश्चित्त्या च शुद्धिः। सदसि ब्रह्मदंडं निधाय स्वपापमुच्चार्य।।२७।। सभ्याज्ञया क्षौरपूर्वं पापानुसारेण कृच्छ्रादि चरेत्। अशक्तो गोदानेन तन्मूल्यदानेन वा निष्कपटं चरेत्।।२८।। दशस्नानाद्.द्विशतप्राणायामतः स्वर्णदानाद्वाऽल्पपापनाशः, सद्गुरुसेवया महापापनाशः।।२९।। त्र्यहं दिवा, त्र्यहं रात्रौ, त्र्यहं अयाचितं, त्र्यहमुपवासः अयं प्राजापत्यकृच्छ्रः। तत्प्रत्याम्नायाः दशसहस्रगायत्रीजपः।।३०।। गायत्र्या सहस्राज्यहोमः, द्वादशब्राह्मणभोजनं, गोदानं, शक्त्या तन्मूल्यं, गुञ्जमात्रस्वर्णदानं वा।।३१।। दिवा रात्रौ च द्वादश पञ्चदश ग्रासा भोज्याः मासं स्वल्पभोजनात्क्षीराज्यपानाद्वा शुद्धिः।।३२।। बिल्वाश्वत्थाब्जदर्भाम्बुपानात्तीर्थाटनाद्गङ्गास्नानाच्च ब्रह्महत्यादिनाशः।।३४।। मद्यपस्य लक्षगायत्रीजपाच्छुद्धिः, कोट्या ब्रह्मघ्नोऽष्टलक्षैर्गुरुतल्पगतस्य च।।३५।। सप्तलक्षात्स्वर्णहर्तुश्च शुद्धिः सर्वेषां पावमानीभिश्च ६१०।।३६।। इंद्रमित्र २ कश्यनूनमिति शुनःशेपसूक्तानि, शन्न इंद्राग्नीति शांतिसूक्तं त्रिसुपर्णं पौरुषं नाचिकेतमघमर्षणं विष्णुसूक्तं च मासं जपेन्महापापे च षण्मासं।।३७।।३८।। शुक्ले प्रत्यहमेकैकं वृद्ध्या ग्रासांश्चरेत्कृष्णे ऱ्हासयेदनेन चांद्रायणेन शुद्धिः।।३९।। सर्वपापशांतये सकुशोदकं पंचगव्यं वा विधिना पिबेत्।।४०।। स्त्रीपुंसयोः परस्परं पापसंसर्गादुभाभ्यां प्रायश्चित्तं कार्यं महापापिसंसर्गी अपि तद्वत्।।४१।। चीर्णान्यपि प्रायश्चित्तानि नदीछन्नसुराघटमिव हरिपराङ्मुखं न पुनन्ति।।४२।। इति यतिं प्रोक्त्वा पतितमाह प्राङ्मातापितृसंत्यागादियं चंडालता प्राप्ता। मासं नदीस्नानाच्छुद्धो भविष्यसीति। स प्राह त्वदृक्पूतं मां द्विजैर्योजयेति।।४३।।४४।। श्रीगुरुरवाच हीनजातो वृद्धश्च ते देहोऽशुचिर्दूरात्त्याज्यः किमन्यत्।।४५।। पुरा क्षत्रो विश्वामित्रो ब्रह्मर्षित्वं ययाचे। देवैरुक्तं वसिष्ठात्स्वीकुरुष्वेति।।४६।। वसिष्ठेन हीनत्वान्न दत्तं। विश्वामित्रः शतं तत्सुतान्हत्वा तं हंतुमुद्युक्तोऽपि शंकितः।।४७।। वसिष्ठाज्ञया तपस्तप्तं तन्मेनकया हृतं। स पुनस्तप्त्वा यत्नाद्ब्रह्मर्षिरभूत्।।४८।। रे पतित जन्मान्तरे त्वं विप्रो भविष्यसि। स प्राह अयसः स्वर्णत्वे पुनः कुतोऽयस्त्वं तद्वदहमपीति।।४९।। सिद्ध उवाच विप्रंमन्यमानं स्वस्त्रीपुत्रान्वारयन्तं तं दृष्ट्वा शिष्यं प्राह गुरुरमुं स्नापयेति।।५०।। ततः स्नापितः स सर्वं विस्मृत्य स्वजनैः सहागात्।।५१।। त्रिविक्रम उवाच कृपादृष्ट्या पावितोऽपि स पतितः कथं पूर्ववज्ज्ञातः।।५२।। श्रीगुरुरुवाच भस्म क्षिप्त्वा ज्ञानमर्पितं

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

तत्क्षालनान्नष्टं एतावान्भस्ममहिमा।।५३।। पूर्वं निःसंगो वामदेवो मुनिर्वने चचार तं चात्तुं वने ब्रह्मराक्षसोऽगात्। स स्पर्शमात्राच्छांतः पूर्वजन्मविच्च भूत्वोवाच।।५४।। पुराहं श्रिया मत्तः कामी राजाऽऽसं। मया ब्राह्मणाद्यंतजातिजा अल्पाः श्रेष्ठा अपि स्त्रियो भुक्ताः। हठाद्दानेन वा बहुश आनीताः। तदा मद्राष्ट्रसंस्थिता नरा दोषकातराः सस्त्रीका राष्ट्रांतरं जग्मुः।।५५।।५६।। ततो रुग्णस्य मे राज्यं शत्रुभिराक्रान्तं। ततः प्रेत्य मया पितृभिः सह दुर्गतिर्भुक्ता।।५७।। प्रेतः व्याघ्रः अजगरः सालावृकः सूकरः शरठः श्वा क्रोष्टो मृगः वनकुक्कुटः कपिः चिल्लः।।५८।। नकुलः काकः ऋक्षः कुक्कुटो ग्राम्यः खरः मार्जारः भेकः कूर्मः मत्स्यः आखुः घूकः हस्ती विद्यमानब्रह्मराक्षसश्च।।५९।। एता योनयः कृच्छ्रान्मया भुक्ताः। अद्य त्वामत्तुमागतस्य मम कथं शांतिरुपस्थिता।।६०।। वामदेव उवाच ममाङ्गस्य भस्मनोऽयं महिमा तत्स्पर्शादादितस्तव ज्ञानं जातं। यच्छंकरः स्वयं दधौ तस्य माहात्म्यं को वेद? न को वेद।।६१।। पुरा औपपत्ये हतं बहिस्त्यक्तं भस्माक्तं श्वस्पर्शाद्भस्मभूषितं म्रियमाणं द्राविडं विप्रं नीतुकामानागतान्याम्यान्दूतान्निवार्य भस्मदग्धामलं तं शिवदूताः कैलासं निन्युः।।६२।।६३।। राक्षस उवाच ईदृग्भस्ममाहात्म्यं तद्धर्तुं समुत्सहे तन्निर्माणप्रकारं धारणप्रकारं च मे कथय।।६४।। पूर्वं ब्राह्मणेभ्यो जीविका दत्ताः निर्जलस्थले वाप्याद्या रचितास्तत्फलं त्विदमेव पापान्ते भवद्दर्शनं।।६५।। वामदेव उवाच त्र्यक्षं पंचवदनं सायुधदशहस्तं नागोपवीतं कपर्दिनं सस्मितं व्याघ्राम्बरं चंद्रमौलिं गङ्गाधरं सांबं नत्वा सनत्कुमार आह।।६६।। भो जगन्निदानेश्वर हर मोक्षायाल्पसाधनमुपादिश यानि पूर्वं प्रोक्तानि साधनानि दुष्कराणि।।६७।। शिव उवाच भस्मैव दर्शनात्पापं हृत्वा धारणाज्जीवन्मुक्तिं ददाति।।६८।। यज्ञोत्थं करीषोत्थं वा भस्माग्निमित्यादि मंत्रैरभिमंत्र्य त्र्यायुषमित्येतैर्वितर्जन्यङ्गुलीभिर्ललाटादिषु धार्यं।।६९।। त्रिपुंड्रा भ्रूसमा रेख्याः ते च त्रिवर्णास्त्रिदेवास्त्रिगुणास्त्र्यात्मानस्त्रिशक्त्यस्त्रिछंदसस्त्रिवेदास्त्रिषवणाः।।७०।।७१।। पापघ्नमिदं सर्वैर्विधिवद्धार्यं अज्ञेनापि भक्त्या धार्यं नातः परं तारकं।।७२।। परस्त्रीगोनिंदकः क्षेत्रहृत्पीडकः गृहदाही मृषावादी वेदरसक्रयी नीचाद्दुष्प्रतिग्राही वृषलीविधवादिगो ज्ञानाज्ञानकृताघोऽपि भस्मधारणान्मुच्यते।।७३।।७४।। पुरुषार्थदैर्भस्मरुद्राक्षैः स्वर्गेऽपि पूज्यः सहस्त्रजन्मदोषघ्नं व्याधिहरं तीर्थस्नानजपाधिफलं भस्म स्वरादिलोकं नीत्वांते कैलासे स्थापयति। इदमेव सुलभं साधनमिति।।७५।।७६।। एवं सनत्कुमारेश्वरसंवादोऽयं मयोक्तः तस्मात्त्वं धत्स्वेति भस्म ददौ।।७७।। राक्षसोऽपि तद्धृत्वा राक्षसीं तनुं हित्वा क्षणान्मुक्तो बभूव।।७८।। ततः प्राप्तेन विमानेन स्वर्गतः। हे त्रिविक्रमेदं ज्ञात्वाऽऽधेहि मुच्यसे।।७९।। इति गुरूक्तमङ्गीकृत्याभिवाद्यागात्। अन्येऽपि श्रुत्वा तथैव चेरुः।।८०।। एवं क्रियाविपाकः यमयातना च श्रोतुर्भीतिदाऽतः श्रेय आचरेत्।।८१।।

।। इति पञ्चदशोऽध्यायः।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

अथ षोडशोऽध्यायः

नामधारक उवाच अद्भुतकर्मणा हरेश्चरितं ब्रूहि अमृतं पिबत इव तच्छृण्वतोऽपि मे न तृप्तिः।।१।। सिद्ध उवाच वत्स साधु पृष्टं धन्योऽसि त्वया भवाब्धिर्जितः यत्ते चित्तं तच्चरितेन रंजितं तेन तुष्टोऽस्मि।।२।। तत्साकल्येन को ब्रूयात् कति चित्राणि ब्रुवे यदीक्षणान्मूको ब्रूतेऽन्धो वीक्षते मृतोऽपि जीवति।।३।। माहुरे गोपीनाथविप्रस्य पुत्रा बहवो बाल्य एव मृता, एको दत्ताराधनेन जीवितः।।४।। चिरजीवितस्य तस्य दत्त इति नाम प्रतिष्ठितं स कांतः सुलक्षणो धीमान्पित्रोर्दुःखहरोऽभूत्।।५।। तत उपनीतस्य तस्य दैवाद्धीगुणशीलशालिनी वधूः स्मरस्य रतिरिव लब्धा। चक्रवाकवत्तयोः प्रेमाभूत्।।६।। सरूपौ वियोगासहनौ दक्षौ अन्योन्यभद्रेच्छू आसतुः। पतिसेवायां साध्व्यस्तंद्रा निद्रा च नासीत्।।७।। पत्युर्वियोगे लेपवातचंद्रशय्यास्रग्भूषासुवागन्नमपि दुःखकरमभूत्।।८।। एवं सति पतिरपरिहार्यक्षयग्रस्तोऽतः क्षीणोऽरुचिः श्वासकफार्तस्त्यक्ताहारनिद्रो मंदवागभूत्।।९।। स यथा भुङ्क्ते शेते क्षीयते च तथा तत्पत्नी छायेवाभूत्।।१०।। कुगंधशंकया वैद्येन त्यक्तमपि तं साध्वी न जहौ पादाङ्गसंवाहनभेषजादिना भेजे।।११।। शांतिहोमजपार्चनदानौषधैरशांतो रोगो राहुश्चंद्रज्योत्स्नामिव तन्मुखस्मितहरोऽभूत्।।१२।। तौ तथा दृष्ट्वा पितरौ दुःखितौ लोकैर्निवारितापि साध्वी भार्कमिव तं न जहौ।।१३।। विप्र उवाच भो पितरौ प्राग्वैरत इदं कष्टं दत्तं प्रारब्धं मत्वा शोको न कार्यः। हे प्रिये पूर्ववैरिणं मां हित्वा पितृगृहं गच्छ।।१४।। सावित्र्युवाच अनन्यशरणेयं न त्याज्या अर्धदेहभागिन्यस्मि जीवनभूते भवति वियुक्ते कथं स्यात्।।१५।। भवतो मम च मुखश्रीरमलातो नारिष्टं प्रभवति सर्वसुखदो दत्तो नौ त्राता।।१६।। भो श्वशुरौ वां नमः गंधर्वस्थगुरुदर्शनाद्भर्तुरारोग्यं भविष्यतीति मे मतमिदं वां रोचते किम्।।१७।। तौ प्रोचतुस्तव श्रमेण यत्र शं स्यात्तत्र गच्छेति ततस्तौ नत्वा सा प्रतस्थे।।१८।। आंदोलिकास्थं मंथरवाहितं हस्तिनीभमिव साऽङ्घ्रिचारिण्यनुगता।।१९।। कतिचिद्दिनैर्भीमातटमेत्य स ममार सा मर्तुमुत्काऽप्यन्यैर्निवारिता रुदती आह।।२०।। भो नाथ संध्याकालोऽयं कति शेषे संध्यामपास्वोत्तिष्ठ कुतो न ब्रूषे ते वचः किं व्यलंघयं।।२१।। त्वत्प्राणा मनश्च क्व गतं तानाश्वावर्तय नो चेत्पितृदारहत्यालिप्तो भविष्यसि।।२२।। उद्वाहितां मां विहाय क्व गच्छसि? पुत्राननुत्पाद्य कथंमानृण्यं मया कथं स्थातव्यं? किमपि न भाषितं। राक्षसीप्रायाहं गुरूणां गृहं कथं व्रजेयं।।२३।। त्वयि जीवति सर्वत्राऽहं पूताऽद्य कोऽपि मुखमपि न पश्येत्। पृष्टं कुतः शेषे? ऋतुं विना न पृथक् सुप्तोऽसि।।२५।। तृषितं नक्रः, श्रांतं द्रुमः, तृणगां गां हिंस्रश्च यथा घातयति तथा मे गुरुदर्शनम्।।२६।। रे इश्वरेदं कथं कृतं रुक्शांतिशक्तिर्यदि ते न चेद्गच्छेति त्वयोक्ते त्वामर्दितुं कः क्षमः।।२७।। त्वया साधु कृतं ते यशो भर्त्रा सह लोकांतरं नेष्ये। भो मातस्तेऽवैधव्यदानशक्तिः क्व गता, भो व्रतेश्वरि विस्मरसि किम्।।२८।। मांगल्यसूत्रं हरिद्रां कुंकुमं च हर्तुं चोरोऽत्र कुतो आगतः मम सौभाग्यनौः कालमीनेन कथं लीढा।।२९।। एवमुरुत्रुट-

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

त्पटा तच्चेष्टितं संस्मृत्य संस्मृत्य प्रत्यङ्गमालंब्य मोहेन रुरोद तदा कश्चित्साधुराप।।३०।। शूली भस्मरुद्राक्षजटाभृत्स तां प्राह बाले मृतः शुचा नैति मुधोच्चैः कुतो रोदिषि तूष्णीं तिष्ठ।।३१।। अपरिहार्यो मृत्युः कं न ग्रसति देवानामपि जले काष्ठयोगो वृक्षे पक्षियोगश्च यथा तथाऽत्र धवादियोगः।।३२।। अयं शाश्वतो मतश्चेत्पूर्वं कस्य का वासीः अद्वयत्वान्नायं संबंधः जीवस्तु चिदंशो विभुरजोऽव्ययश्च।।३३।। पञ्चात्मके संगते तस्मिन्भर्त्रादिधीरध्यस्ता सा न तात्त्विकी काष्ठाग्निवत्प्रकृतिगमलिंगमपि भर्त्रादित्वेन कल्पयन्ति।।३४।। अयं प्रकृतिगुणैर्देहतादात्म्यं प्राप्य द्वंद्वप्रतीतिं प्राप्तः सात्वमलेऽजे न तदभिमान एव भवः।।३५।। कर्मणो भवो भवात्कर्म चोभयमज्ञानात् येन धीरेणोभयं तत्त्वासिना कृत्तं तस्य न भ्रमः।।३६।। आकाशस्य घट इवास्याविद्योपाधिस्तदपाये परात्मत्वमेव रज्जुसर्पवत्कल्पितोऽयं भ्रमः सद्दर्शिततत्त्वदीपान्नश्येत्।।३७।। यावन्न बोधस्तावद्दिनरात्रिवज्जन्ममृत्यू नियतौ अतो बुद्ध्यस्व त्वग्रक्तमांसास्थिमयदेहशोकतः कुतः स्वार्थः।।३८।। तस्माच्छुचं मुंच येन तरिष्यसि तत्साधय अयं तत्समयः प्रमादतो नृयोनिर्गता चेत्पुनस्तत्कथापि न।।३९।। साध्व्युवाच आरोग्यहेतुना प्राप्तायाः मम धवोऽत्र मृतः संबंधिनोऽप्यंतरितास्त्वमेव मे सर्वोस्यतो मां दुःखसागरादुद्धर।।४०।। साधुरुवाच नृवत्साध्व्या न नानोपायाः पातिव्रत्यमेकमेव तारकं तच्च देवोक्तं शृणु।।४१।। विंध्योत्कर्षभियाऽगस्त्यमेत्य देवैः सह गुरुः लोपामुद्रामाह रमासावित्र्युमाऽरुंधत्यादिषु त्वमेवोत्तमा भर्तरि छायेव परिचारिणी पतिरेव यस्या अखंडव्रतं सा पतिव्रता।।४३।। भर्तुः पादाम्बु तीर्थं, उच्छिष्टं प्रसादः, तत्सेवा देवार्चनं, संतोषोऽनुज्ञापालनं, धर्मः।।४४।। वशानुवर्तनं, देहयात्रा श्वश्र्वादिगौरवं, लोकयात्रा भर्तेश्वरः पोष्यपोषणं करणं।।४५।। नाज्ञां विना किञ्चित्कार्यं पत्यौ स्थिते स्थेयं सुप्तोत्थितात्प्रागुत्थायाश्रांतं पतिर्मुदा सेव्यः।।४६।। गृहसंमार्जनादि कृत्वा स्नात्वा भर्त्रे इष्टसंभाराः सुभोज्यं च देयं।।४७।। क्रुद्धश्चेत्क्षमापनीयः परगृहे न गन्तव्यं गुरुगृहेऽपि नाज्ञां विना नान्यैर्वक्तव्यं।।४८।। श्वश्र्वादिसंनिधौ मंदं पत्युश्च संधया वक्तव्यं परवक्त्रत इष्टं देहीति वाचयेत्।।४९।। भर्त्रा यथा दत्तं वस्त्रभूषादि स्वीकार्यं। दुर्भगो दीनो दुःशीलोऽपि शिवोपमो न निंद्यः।।५०।। स्वैरिणीसख्यं वर्ज्यं, स्वीयैर्भेदो न कार्यः, नित्यं सौभाग्योपचारा धार्याः, प्रोषिते पत्यौ भूषा न धार्याः।।५१।। ऋतौ मुखं न दर्शितव्यं, वेदादि च न श्राव्यं। चतुर्थेह्नि स्नात्वा भर्ताऽसंभवे सूर्यः प्रेक्ष्यः।।५२।। प्रोषिते पत्यौ गुर्वाज्ञया स्थेयं, आगते च प्रत्युद्गन्तव्यं। स च व्रीडहावादिना संतोषणीयः।।५३।। तस्मिन्सुप्ते स्वपेत्तन्नाम नोच्चार्यं नान्यत्र भोक्तुं गन्तव्यं, क्वापि याच्ञा न कार्या।।५४।। वैषम्येऽपि नोद्विजेत् पत्यौ दुःखिते न हृष्येत् धवाद्यग्रे हास्योच्चासनलीलास्त्याज्याः।।५५।। भर्तुः प्रतिवादाच्छुनी, गुरुवंचनादुलूकी, पतिं विना स्वादुभुक्त्या वराहोलूकयोनिगा।।५६।। रोषोक्त्या मूका, कृतताडनजल्पनाद्व्याघ्री, सपत्नीवैराद् दुर्भगा, औपपत्यात्कृमिश्च भवेत्।।५७।। पत्यौ मृतेऽनुगन्तव्यं विधवाधर्मे वा स्थेयं। शवाभावे गर्भिणीत्वे च वैधव्यपालनं मुख्यं।।५८।। शिरसो वपनं, भूशय्या, दिवैव सकृद्भुजिः, तांबूलगंधभोग-

मंगलस्नानादि वर्ज्यं।।५९।। सौभाग्योपचारा वर्ज्या, गौरांशुकं धार्यं, कार्तिकमाघवैशाखेषु स्नानादि कार्यं।।६०।। शक्तौ चांद्रायणं कार्यमाज्यफलादि वा भोज्यं सति पत्यौ यत्प्रियं तद्विप्राय देयं।।६१।। कल्पोक्तं मासव्रतं च कार्यं यद्यद्वर्जितं तद्विप्राय देयं। तैर्थिकः सत्कार्यः।।६२।। पुत्रे सति तदाज्ञया स्थेयं। पतिवद्धरिः पूज्यो गुरुगोऽतिथिसद्विप्राः पूज्याः। कुभोजनं वर्ज्यं।।६३।। हरिलीला श्राव्याऽपुत्रा पितृंस्तर्पयेत्। स्वशीलं गोप्यं, वैगुण्यात्पूर्वैः सहाधोगतिः।।६४।। एवमाचाराद्दुर्गतिस्थमपि पतिमुद्धृत्य स्वर्विशेत्।।६५।। एवं लोपामुद्रानिकटे देवैर्धर्म उक्तः, स ते कथितः। अनुगमो रोचते चेद्धेवार्कं पतिमनुयाहि।।६६।। येन यमादपि पतिमुद्धृत्य स्वर्याति, प्रतिपदमश्वमेधफलं, सार्धत्रिकोटिरोमहोमतः प्रतिरोम भर्त्रा सह कोटिवर्षाणि स्वर्वासः।।६७।।६८।। गृहे गृहे रूपलावण्यसंपन्नाः स्त्रियस्ताभिः किं एकैव साध्वी त्रिकुलपावनी।।६९।। यतो भूवातार्काग्निर्बिभेति स्वपदच्युतिशंकया देवाः प्रणतास्तिष्ठन्ति।।७०।। अयं साध्व्याः प्रभावोऽसौ पितृतारका धन्या या स्वैः सह नरके याति तां दुःशीलां धिक्।।७१।। साध्व्युवाच वैधव्यपालनं कष्टं तारुण्याद्यत्र घातकं अतोऽनुगमने मे प्रीतिः।।७२।। साधुरुवाच साधु साध्वीदं ते योग्यं। दैवं दुर्जेयं भीष्मरावणाद्या अपि कालग्रस्ताः।।७३।। कालो देवैरप्यजय्यः सद्गुरुं विना दुर्धरः। दूराद्गुरुदर्शनेच्छयागतास्यतो गुरुदर्शनं कुरु।।७४।। स्नात्वा सुवस्त्रं वसित्वा प्रायश्चित्तपूर्वं सौभाग्यदानानि सपत्नीकविप्रेभ्यो दत्वा।।७५।। कर्णयोर्गले चेमान् रुद्राक्षान् बध्वाङ्गे भस्म लिप्त्वा पतिं गुरुपादाद्भिः प्रोक्ष्यानुयाहि।।७६।। इत्युक्त्वा भस्माक्षान् दत्वा सोऽगात्। सापि द्विजानाहूय मुदा दानानि दत्वा।।७७।। गृहं प्रतियात उमेशौ मे पितरौ तत्राहं यास्येऽत्र सुखं स्थिताविति गुरुभ्यः कथ्यतामित्यनुगान्प्रोक्त्वा।।७८।। नीयमानस्य पत्युरग्रतोऽग्निकरा मंथरा गच्छन्तीश्वरीव रेजे।।७९।। षोडशाब्देयं भर्तृसौख्यानभिज्ञा सुंदरी कुलोद्धर्त्री धन्येति जनैः स्तुताऽगात्।।८०।। स्मशानमेत्याग्निं संस्कृत्य सुवासिनीस्तोषयित्वा गुरुभाषितं सस्मार।।८१।। भस्मधारणादि कृत्वा विप्राज्ञया गुरुं द्रष्टुकामा तं स्तुवन्ती संगमं ययौ।।८२।। हे भगवन् त्वं दाता सर्वेशः सतां शरणं त्रिमूर्तिर्जगत्सृष्ट्यादिकारणं दयाब्धिरसि। मत्तुल्यास्त्वत्कृपांशात्पुत्रादिफलभागिन्योऽहं तु पूर्णकामा भूत्वा कीर्तिमादाय स्वर्यास्ये।।८३।। अत्र मृतो जीवितः, रुग्ण आरोग्यं गतः, भीतः शं गतः, दीनो धनितां यातः, अज्ञः प्राज्ञतां गतः, अहं च भर्त्रा सह ते सायुज्यं यास्ये।।८४।। एवं स्तुवन्ती गलदश्रुः सा पत्या सहात्मानमुद्धर्तुकामा जवेनैत्य गुरुं ननाम।।८५।। तादृशीं तां सौभाग्यवती पुनरष्टपुत्रा भवेति प्रीतो भगवानाह।।८६।। तच्छ्रुत्वा चकिता लोकाः सर्वमादितः शंशसुः। प्रभुः प्राह मे वाक्यं मृषा नैवात्र शवमानय।।८७।। अत्रान्तरे विप्रा एत्य रौद्र्या गुरुमानर्चुः तदानीतं शवं सुधादृष्ट्योद्वीक्ष्य।।८८।। स्वसंनिधौ स्थापयित्वा रौद्रमंत्रिताद्भिः स्नापयामास तदा सोऽकस्मात्सुप्तोत्थितवदुत्तस्थौ।।८९।। तदा हर्षाश्रुपूर्णाक्षी सा लज्जितं पतिं प्रेक्ष्य प्रेम्णा सर्वं कथयित्वोभौ प्रांजली भूत्वोचतुः।।९०।। आवां दुर्धियौ पापौ भवत्पराङ्मुखौ भो सच्चिदानंद तथापि त्वं न हंसि।।९१।। जगद्गुरो विश्वमूर्ते

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

परात्मन्विश्वरूप विश्वसाक्षिन्विश्वसंस्थ सर्वानंदनिधे हरे।।९२।। कर्ताकर्तान्यथाकर्ता पुमर्थदस्त्वमेव नौ अपराधः क्षन्तव्यः।।९३।। इति स्तुत्वा प्रणतीश्चक्रतुः। तद्दृष्ट्वा लोकोऽपि गुरुं तुष्टाव।।९४।। तत्रैको धूर्त आह भाले ब्रह्मलिपिरस्ति नास्ति वा? साऽस्ति चेद-स्यायं महामृत्युः कथं नष्ट इति।।९५।। श्रीगुरुरुवाच धात्राऽस्मिन्जन्मनि त्रिंशदायुर्लिखितमेष्यजन्मलभ्यशतायुरत्र गृहीत्वेदमग्रतः स्थापितमेवं विपरीतं कृतं।।९६।। तच्छ्रुत्वा लोका उच्चैर्जयध्वनिं चक्रुः स ध्वनिर्दिवं गतः।।९७।। भगवान् दंपती प्राह पुत्रधनकीर्ति-युजौ लोकवंद्यौ निरामयावायुष्मंतौ भवतम्।।९८।। इति गुरुवाक्यं श्रुत्वाऽऽनंदितौ तौ स्नात्वा गुरुमानर्चुरर्कोऽस्तं गतः। प्रभुराह्निकं कृत्वा सर्वैः सह मठं प्राप।।९९।।

।। इति चूर्णिकायां षोडशोऽध्यायः।।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

सिद्ध उवाच परेद्युः सावित्री गुरुं नत्वा प्राह गतदिने कश्चनैत्य तत्त्वज्ञानेन मामाश्वास्य भस्माक्षान्ददौ।।१।। गुरुं दृष्ट्वा तीर्थेन शवं प्रोक्ष्यानुगच्छेत्युक्त्वाऽगात्स कः को वा तीर्थाक्षमहिमेति।।२।। श्रीगुरुरुवाच मयैव रूपान्तरेण ते भावः परीक्षितः। सुभगे त्वं धन्यासि। अयं तीर्थाक्षमहिमा।।३।। तन्माहात्म्यं कोऽपि न वेद ईशभूषेयं मोक्षदा एकादिमुखा अक्षा गङ्गास्नानफलदाः।।४।। ते धातु-युक्ता वराः सहस्रधृक् शिवः तैर्विना न पुण्यं न पापक्षयः।।५।। भस्माक्षरुद्रयुग्देवैरप्यजय्यः जपेऽक्षा भूरिफलदास्तैर्हीनः पशुरे-व।।६।। कण्ठे ३२, मूर्ध्नि ४०, कर्णयोः १२, बाह्वोः १६, शिखायां १, दृष्ट्योः १, करयोः २४, उरसि १०८,धार्याः।।७।। काश्मीरे भद्रसेनस्य तन्मंत्रिणश्च पुत्रौ भूषाश्मवन्मत्वाऽक्षान्दधतुः।।८।। राज्ञा पृष्टस्तत्कारणं पराशर आह पुरा नंदिग्रामे चार्वी वारमुख्याऽभू-त्।।९।। सगजाश्वधनाढ्या दात्री तन्नाट्यमंडपेऽभूषितौ मर्कटकुक्कुटौ।।१०।। तत्पातिव्रत्यपरीक्षायै कङ्कणं लिङ्गं च धृत्वा वैश्यरूपेणा-गतं शिवं दृष्ट्वा वेश्या सखीमाह।।११।। मूल्येन रत्या वेदं दास्यति चेत्यहं साध्वीधर्मेणामुं रमयामि पृच्छैनं।।१२।। स पृष्ट आह स्वैरिण्याः केवलं व्यभिचारः क्व सत्यं।।१३।। वेश्योवाच लिङ्गोपरि शपे त्र्यहं सर्वभावतः साध्वीत्वेन त्वां भजे।।१४।। सूर्यचंद्रौ साक्षिणौ। स्ववाक्यं पालयेत्युक्त्वा स करे कङ्कणं बध्वा लिङ्गमदात्। साऽपि मण्डपे लिङ्गं निधाय साध्वीत्वेन तं भेजे।।१५।।१६।। ततौ रतिक्षणे सलिङ्गमर्कटकुक्कुटो मण्डपो दग्धः तदा वैश्योऽग्निं विवेश।।१७।। कुलाचारविरुद्धं मा कुर्विति स्वैर्निषिद्धापि भर्तृना-शार्ता साऽनुगन्तुमुद्युक्ता।।१८।। सर्वस्वं दत्वाऽर्कं नत्वेशं ध्यात्वाऽग्निं विवेश तदा स्वरूपेण शिवः प्रादुर्भूयाह।।१९।। मायामुद्भाव्य

परीक्षितासि त्वं साध्वी किलेष्टं वरयेति।।२०।। सा प्राह क्वापि जैह्व्यौपस्थ्यसुखं न कांक्षे स्वैः सह मे ते सायुज्यं देहीति। शिवोऽपि तथा ददौ।।२१।। तौ मर्कटकुक्कुटावेतौ पूर्वसंस्कारादक्षप्रियौ शैवौ जातौ।।२२।। अनयोः किं भावीति राज्ञा पृष्टो मुनिराह सप्ताहे त्वत्सुतो मरिष्यतीति।।२३।। पुनः खिन्नेन राज्ञा पृष्टो मुनिराह राजन् मा भी रुद्रस्त्राता।।२४।। स्त्रष्ट्रा धर्माधर्मौ सृष्टौ तत्पतींद्रियमौ तौ धन्यपापिनौ स्वराधौनेतारौ।।२५।। कामाद्या यमभृत्यास्तत्सहाद्यमः पापानदुर्गतिं नयति।।२६।। धीन्द्रियमनःसंस्था एतेऽबलान्भीरून् घ्नन्ति यतात्मनो न।।२७।। दक्षिणास्याद्ब्रह्मा यजुः ससर्ज तस्मान्मुनिभिः पापहा रुद्रो लब्धः।।२८।। तत्पाठका यत्र कामाद्या न यान्ति यमपुरं शून्यमासीत्।।२९।। यमस्तद्धात्रेऽकथयत्स आह स्वपन्तिष्ठन्व्रजन्मत्तोऽभक्तिर्जपेच्चेत्स पापी तं शाधि।।३०।। तदन्यान्जापकान्रुग्णान्मृतिगानपि मा प्रेक्ष ते श्रीविद्यायुरारोग्यादिभाज इति।।३१।। तस्मान्मृत्युंजयस्त्राता मा भीः सद्ब्राह्मणद्वारा रुद्रेऽतिरुद्राभिषेकादसावयुतायुर्भवितेति।।३२।। ततस्तादृशान्विप्रानाहूय श्रद्धया विधिवद्राजाऽनुष्ठानमारेभे।।३३।। ततः सप्तमेऽह्नि पाशदंडधरा अदृश्ययमचराः प्राप्तास्तदा पुत्रौ मूर्छितः।।३४।। तदुपरि रौद्राम्बु सिक्तं तदाकस्माद्रुद्रचरा अदृश्यतयैत्य तं जिग्युः। सुतोऽप्युत्थितः।।३५।। प्रीतो राजा विप्रान्संतोष्य सदसस्युच्चासनस्थं पराशरं भेजे।।३६।। अत्रांतरे रणद्वीणो नारद एत्य सत्कृत आह।।३७।। महामृत्युस्त्वत्पुत्रं हर्तुमागतः शिवदूतैः पराभूतो यमं गत्वा तच्छशंस।।३८।। यमोऽपि तानेत्यायं को न्याय इत्यूचे। ते तमाहुरिदं चित्रगुप्तं पृच्छेति।।३९।। ततश्चित्रगुप्तो पट्टे द्वादशेऽल्पमृत्युं तीर्त्वाऽयुतायुर्भवितेत्यदर्शयद्भ्रांतो यमस्तदा शैवान् क्षमाप्य गत इदं दृष्टं शाक्तेनायं त्रातः।।४०।।४१।। इत्युक्त्वा दत्ताशीर्नारदोऽगात्, पराशरोऽपि गत इति तीर्थाक्षमहिमेति।।४२।। सावित्र्युवाच भवद्दृशा धन्यास्मि भवत्स्मृत्यै मे मंत्रमुपादिश।।४३।। श्रीगुरुरुवाच स्त्रीणां पतिभक्तिस्तारिणी मंत्रोऽदेयः शुक्रवद्दातुरपि हानिः।।४४।। पुरा युद्धे देवहतान्दैत्यान् शुक्रो विद्यया जीवयत्।।४५।। इंद्रार्थनयानीय शुक्रं शिवोऽभक्षयत्स मूत्रान्निःसृतः।।४६।। दैत्यानेत्य प्राग्वत्तानजीवयत् तदेंद्रो धीमन्नः पाहीति गुरुं शरणं गतः।।४७।। स आह व्याजात्तन्मंत्रे भ्रंशिते वो जयो दैत्योत्कर्षादिदं वरं।।४८।। इत्युक्त्वा स्वसुतं कचमाह विद्यार्थित्वेन शुक्रं गत्वा तन्मंत्रसारं तिरस्कुर्विति।।४९।। कचोऽपि तथा शुक्रं गत्वा प्राह प्रणतं मां शाधि मया पक्षत्वं मा निधेहीति।।५०।। तं दृष्ट्वा मोहिता शुक्रजा देवयानी तातमाहामुं शिष्यत्वेनाङ्गीकुर्विति।।५१।। शुक्रेणापि तद्वात्सल्यादूरीकृतः कचोऽपि तं भक्त्याऽतोषयत्।।५२।। तच्छाठ्यं ज्ञात्वाऽसुरास्तं वने जघ्नुः। देवयानी तमदृष्ट्वा शुक्रमाह क्व प्रिय इति।।५३।। शुक्रोऽपि तं ध्यानेन हतं ज्ञात्वा जीवयित्वानयत्। कन्या जहर्ष।।५४।। पुनर्दैत्यास्तं हत्वा हिंस्त्रेभ्योऽर्पयन्। तमदृष्ट्वा शोचन्तीं कन्यामाश्वास्य।।५५।। शुक्रो हिंस्त्रोदरादपि निष्काश्यैक्यं कृत्वा संजीवन्या पूर्ववच्चक्रे।।५६।। पुनर्दैत्यास्तं हत्वा मद्यमिश्रं तद्भस्म शुक्रायापाययन्।।५७।। पुनः कुमारी शुशोच शुक्रोऽपि ध्यानात्स्वोदरगं ज्ञात्वा ब्रह्मघ्नान्दैत्याञ्छशाप।।५८।। कन्यामाह दैत्यैर्मत्कुक्षौ क्षिप्तस्य

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा

तस्योद्धारतोऽहं मरिष्ये यतोऽमुं मंत्रं कोऽपि न वेद।।५९।। कन्याऽऽह मे मंत्रं दत्वा तं जीवय मृत्युरेष्यति चेदहं त्वा जीवयिष्यामि।।६०।। नो चेन्मरिष्यामि इति निर्विण्णासीत्। स तस्यै मंत्रं दत्वा कचं जीवयित्वा ममार।।६१।। कन्या शुक्रोदरान्निर्गतं कचं शुक्रं मृतं च दृष्ट्वाऽजीवयत्तदा मंत्रोऽतेजा अभूत्।।६२।। ततः कृतकृत्यः कचो गुरुं नत्वा प्रतस्थे।।६३।। देवयानी तमाह मया त्रिर्जीवितोऽस्यतो मामुद्वाहयेति।।६४।। स आह गुरुपुत्री स्वसा, प्राणदात्री माताऽत एवाम्बाऽस्वर्ग्यं विरुद्धाग्रहं त्यज।।६५।। तदा सा विद्यां विस्मरेति तं शशाप सोऽपि ते मौर्ख्यात्त्वां हीनो वरिष्यति ते गुरोर्मंत्र नष्ट इति च।।६६।। तदा मंत्रो हीनः शुक्रोऽपि दीनश्चाभूत्। तस्मात्स्त्रियै मंत्रोऽदेयस्ततः गुर्वाज्ञया व्रतं कार्यं।।६७।। सावित्र्युवाच एवं चेत्ते स्मृतिदं तारकं व्रतं कथय।।६८।। श्रीगुरुरुवाच सुलभं तारकं सोमवारव्रतं सर्वेऽप्यस्याधिकारिणः।।६९।। यतः सीमंतिन्या नष्टोऽपि पतिर्लब्धः। आर्यावर्ते ख्यातश्चित्रवर्मा राजाऽभूत्।।७०।। स शिवप्रसादात्सुलक्षणां कन्यां लेभेऽसौ भर्त्राऽयुताब्दं राज्यभोक्त्रीति गणका ऊचुरेकोऽस्या बाल्ये वैधव्यमिति च।।७१।। राजाऽखिद्यत द्वादशाब्दका सा भावीवैधव्यं श्रुत्वा दुःखिता।।७२।। मैत्रेयीं शरणं गता सा तामाह सोमवारव्रताच्छंकरस्त्राता।।७३।। सोमवार उपोष्य नक्तं भुक्त्वा वा भक्त्या वाङ्मनःकायैः सदाशिवोऽर्च्यः।।७४।। प्राप्तमपि भयं नश्येत् त्यक्ते व्रते शंकरः कुप्येत्।।७५।। अभिषेकात्पापक्षयः पीठार्चनात्साम्राज्यं गंधादेः सौभाग्यं धूपात्सौगंध्यं।। दीपात्कांतिर्भोज्याद्भुक्तिस्ताम्बूलाच्छ्रीर्नत्या पुरुषार्थाः जपादैश्वर्यं विप्रभोजनात्सर्वतृप्तिः।।७६-७७।। होमात्कोशवृद्धिः स्तवात्सर्वाप्तिरिति तदुक्तं व्रतं सीमन्तिन्यकरोत्।।७८।। भावि भूयादेषा देयेति निश्चित्य नलगोत्रजानुरूपचित्रांगदवरायाऽदात्।।७९।। गजादि दत्वाऽरि स्वराष्ट्रे स्थापयामास।।८०।। स एकदा कालिंद्यां मज्जति स्म। तच्छ्रुत्वा पितरौ श्वशुरौ चैत्यान्वेष्यापि नापुः। अनुगन्तुमुद्युक्तां कन्यां शवाभावान्निवार्य राष्ट्रं जग्मुः।।८१-८२।। शोकार्तापि सा व्रतं चक्रे। पुत्रशोकाकुलं इंद्रसेनं निग्रह्यारी राष्ट्रं बुभुजे।।८३-८४।। मग्नं तं नागिन्यो वासुकये ददुः सोऽमृतेन तं जीवयित्वाऽपृच्छत्कस्त्वं कस्य भक्त इति।।८५-८६।। चित्राङ्गद उवाच नलवंशीयश्चित्रवर्मजामाता चित्राङ्गदराजोऽहं नद्यां पतितोऽपि पाताले दैवाद्वोऽद्राक्षमतोऽहं धन्योऽस्मि। जगत्कारणभूतकैलासस्थशंकरभक्तोऽस्मीति।।८७-८८।। वासुकिरुवाच त्वं पूतोऽस्यतो दिव्यभोगान्भुञ्जन्निरुपद्रवेऽत्र लोके तिष्ठेति।।९०।। चित्राङ्गद उवाच मां मृतं मत्वा पितरावधुनोद्वाहिता भार्या च मरिष्यन्ति।।९१।। तर्हि याहीत्युक्त्वा वासुकिर्नागाश्वौ भूषामृतादि च दत्वा प्रस्थापयामास।।९२।। स मनोजवो गच्छन्कालिंद्यां विरूपां स्वस्त्रियं दृष्ट्वाऽपृच्छत्काऽसीति।।९३।। तदाज्ञया सख्युवाच।।९४।। चित्रवर्मजेयं सीमंतिनी अत्रास्याः पतिर्मग्नस्तच्छोकार्तेयं सोमवारव्रतं चरति।।९५।। अस्याः श्वशुरौ निगृह्यारी राज्यं भुङ्क्ते।।९६।। सीमंतिन्यपि कोऽयं धूर्तो यक्षो वाऽथवा मे भ्रमः स्वप्न इति मत्वा शुशोच।।९७।। तदा तामाश्वास्य त्वत्पुण्यात्ते भर्ता श्व एष्यतीत्युक्त्वा चित्राङ्गदोऽगात्।।९८।। साऽपि तूष्णीं पित्रालयं गता। राजपुत्रोऽरिं स्वागमं श्रावयामास

दि
गं
ब
रा

दि
गं
ब
रा

श्री
पा
द
व
ल्ल
भ

दि
गं
ब
रा

स भीतो नृपममोचयत्।।९९।। द्विषा क्षमापितश्चन्द्रसेन आगतं पुत्रं श्रुत्वा प्रेमाश्रुक्लिन्नोऽभूत्।।१००।। अलङ्कृतं पुरं प्रविश्य पितरावालिङ्ग्य सर्वं शशंस।।१।। नागं सत्कृत्य प्रस्थापयित्वा श्वशुरराष्ट्रमेत्य भार्याशोकं जहार।।२।। आनीतानर्घवस्तूनि तस्यै दत्वा तया सहैत्य राज्येऽभिषिक्तचित्राङ्गद इंद्रवदिहैश्वर्यं भेजे।।३।। ईदृग्व्रतप्रभावोऽतः कुर्विति गुरुणोक्ता सावित्री भर्ता सह सोमवारव्रतं चकार।।४।। गुर्वाज्ञया पतिगृहं गत्वा प्रत्यब्दं गुरुदर्शनं कृत्वा श्रीपुत्रपौत्राढ्यौ भूत्वोभयीं सिद्धिं गतौ।।५।। एवं जगन्मंगलमंगलात्मा मनुष्यभावात्परिगृह्य भक्तान्। संचारपूतां जगतीं विधाय ततान लीलाममलामघघ्नीं।।६।।

।। इति चूर्णिकायां सप्तदशोऽध्यायः।।

अथाष्टादशोऽध्यायः

नामधारक उवाच मोहरात्र्यामहंकारघूर्णितं बोधार्कोदयप्रबुद्धं मे मनो भगवत्कथामृतं पातुमैच्छत्।।१।। सिद्ध उवाच वत्स प्रबुद्धोऽसि यच्छृण्वतोऽपि ते न तृप्तिस्तस्मात्त्वयि भगवत्प्रसादोऽस्तीति मन्ये।।२।। तत्र त्यक्तपरान्नप्रतिग्रहो दैवभुक् शांतः कर्मपरो विप्रोऽभूत्।।३।। तत्स्त्री परगृहे स्वन्नवस्त्रान्लभंत इति दृष्ट्वा पतिमगर्हयत्।।४।। एकदा सैकेन धनिना भर्त्रा सह भोक्तुमाहूताऽप्यकामेन पत्या निषिद्धा गुरुमेत्योचे।।५।। दीनां कुचैलां क्षुधितां मां भर्त्रा सह भोक्तुं दाताऽऽह्वयति पतिर्न यास्यत्यतो गच्छेति तमुपादिश।।६।। तदा प्रभुर्द्विजमाहूयाद्य नियमं हित्वा पत्न्या सह भोक्तुं गच्छेत्युपादिशत्स तथेत्युक्त्वा तया सहागात्।।७।। तत्र भुञ्जाना सा श्वशूकरोच्छिष्टपाकतोऽन्नं ददत इति दृष्ट्वा भर्त्रे शशंस।।८।। तत उभावुत्थाय खिन्नौ गुरुमेत्य तदूचतुः। ब्राह्मणीं गुरुराह परान्नसुखं लब्धं किमिति।।९।। सा प्राह मेऽपराधः क्षन्तव्यः। तां गुरुराह पत्युराज्ञानुगा भवेति।।१०।। विप्र उवाच दुष्टया मे निष्ठाऽन्यथा कृता आजन्मेदं न कृतं।।११।। मा भीर्नैष दोषः पत्न्या मनःशांतिर्जाताऽतः साऽपीदृङ्नैच्छेत्त्वमपि परान्नं त्यज।।१२।। कदाचिद्ब्राह्मणाभावे कस्यचित् कर्माभाव उपस्थिते भोक्तुं गन्तव्यम्।।१३।। विप्र उवाच कस्यान्नं पवित्रं कुत्र न भोक्तव्यं कस्माद्दानमादेयं किं निषिद्धं चेति वद।।१४।। श्रीगुरुरुवाच सद्विप्रवैदिकगुरुस्वजनशिष्यमातामहगेहे भोक्तव्यं। आचारहीनपरकर्मकृत्क्रोधिकदर्यापांक्ताशुद्धस्वजनपीडकगृहे नाद्यात्।।१५।। नित्यं परान्नं भुक्त्वा स्वपुण्यं दातरि तत्पापं च भोक्तरि संक्रमेत्। दर्शे परान्नं मासपुण्यहृत्। शूद्राह्वानतोऽमंत्रतो वाऽशनात्पापं।।१६।। प्रजोत्पत्त्यूर्ध्वं कन्यालये भोज्यं। नित्यं परान्नगृहवासे लक्ष्मीर्नश्येत्। सज्जनाद्दानं ग्राह्यं तदपि ग्रहणे तीर्थे क्षेत्रादौ निंद्यं च दानं वर्ज्यं।।१७।। दीक्षितब्रह्मनिष्ठान्नं यज्ञशेषं

चोत्तमं स्वार्थं पक्वं नाद्यात्।।१८।। आपदि गायत्रीजपान्न दोष आपदादिविचारपूर्वकं ये धर्मं चरन्ति तेषां नाधिदैन्यर्णरोगाः।।१९।। स्वधर्महीना परधर्मसक्ताः परत्रात्र च दुःखभाजः। तस्मात्त्वमनासक्त्या धर्मं चर।।२०।। विप्र उवाच भो देव सद्गुरो दयया सर्वमाचारं कथय।।२१।। श्रीगुरुरुवाच आचारो मुनीनामपि दुर्ग्रहः ततः पराशरादिमतं सद्गतिदं सारभूतं शृणु।।२२।। आचारोत्थो धर्मः स उभयसुखदः श्रुत्याद्युक्तचरणं विष्णुध्यानं शक्त्या दानं दयाक्षमानसूयाऽनायासानीहाकार्पण्यं शौचं मंगलं एतद्युक्तो धर्मः।।२३-२४।। धर्माच्छ्रैष्ठ्यं कर्म ततो ज्ञानं ततो मोक्षः।।२५।। श्रुतिस्मृतिपुराणमूलो धर्मः त्रयाणां विरोधे श्रुतिर्वरा, श्रुत्योर्द्वैधे द्वौ धर्मौ, स्मृत्योर्वैरे लौकिकी वरा।।२६।। वर्णाश्रमदेशकालार्हो लौकिकश्च धर्मो ग्राह्यः।।२७।। न्यूनोऽपि स्वधर्मः परधर्माच्छ्रेष्ठः। स्वगृह्याविरुद्धः स्मार्तोऽपि ग्राह्यः।।२८।। काम्यमैच्छिकं ज्ञं विना नित्यनैमित्तिकत्यागी न क्वापि सुखी।।२९।। प्रमादात्कर्मलोपे प्रायश्चित्त्या शुद्धिः। बुद्ध्या दुःसंगत्या वा प्रयत्नाच्छुद्धिः।।३०।। तस्माद्भक्त्या धर्मं भजेद् ब्राह्मणस्तु विशेषतः।।३१।। दानप्रतिग्रहो यजनयाजनेऽध्यापने च स्नानसंध्याजपहोमपाठयज्ञकृच्चरेत्।।३२।। तंत्रमिश्रां वैदिकीं वा क्रियां चरेत्। कृताशौचः सुमुखः स्नात आचांतोऽथ पंचकच्छी सद्धौतः शुष्कद्विवस्त्रः यतकरणो बद्धशिखः मृद्भस्मान्यतरलिप्तः सपवित्रः।।३३-३४।। आसनस्थोऽन्तर्जानुकरो नैशं विनोपोषितो गुरूक्तवत्कर्म कुर्यात्।।३५।। गव्यौषधांबुफलाशने न दोषः। संकल्प्य कर्म कार्यं ईशार्पणात्तत्सांगता। सूर्योदयास्ततः प्राक् प्रत्यक्च।।३६।। दिवा प्राङ्मुखो, निश्युदङ्मुखः, होमादौ अग्न्यादिसंमुखः, अनुक्ते पूर्वोत्तरैशान्यो दक्षाङ्गः उपवीतं आसीनत्वं मध्यपाठो देवतीर्थं च कंठलंब्यार्षं निवीतं दक्षांसगं-।।३७-३८।। पित्र्यं प्राचीनावीतं वामांसगमुपवीतं। भ्रष्टं त्रुटितं वा त्यक्त्वाऽन्यद्धार्यं।।३९।। षण्णवतिकरसूत्रं गायत्र्या त्रिगुणीकृत्य पुनस्त्रिरावृत्य ततस्त्रिदोरकं सग्रंथिकमब्धिगैः प्रोक्ष्य १० गायत्र्याभिमंत्र्य समंत्रं धार्यं।।४०-४१।। अग्निमंत्रदर्भासनद्विजाः पुनर्योज्याः पिंडादिगा दर्भाः, प्रेतश्राद्धभुग् विप्रश्रिताग्निनाशे नीचगमंत्रगोतुलस्यश्च वर्ज्याः।।४२।। सदा सोंकारा मंत्राः होमे स्वाहान्ताश्च वामहस्तहृत्तान् जपेत्।।४३।। ऋषिछंदोदेवताज्ञश्च जपेत्। शूद्राहृतं द्विजक्रीतं समिज्जलपुष्पाद्यसत्।।४४।। हस्तनखास्पृष्टानफेनानुच्छिष्टांबु सत्। कुशकाशयवोशीरगोधूमव्रीहिकुंदकमौंजदूर्वातृणानि दश दर्भा श्रावणामायां स्वीकृताः शुभाः तन्मूलाग्रेषु ब्रह्मविष्णवीशा, अभितः सर्वे देवाः।।४५-४६।। उत्तरांतं प्राक्संस्थं व्यस्तं कर्म पित्र्यं अग्निगमाग्रेयांतं तद्वन्मुखं चाङ्गे वामतः क्रमः।।४७।। दक्षहस्तस्य तर्जन्यधः पितृतीर्थं कनिष्ठाध ऋषितीर्थं अग्रे देवतीर्थं मूले ब्राह्मं मध्ये आग्नेयं।।४८।। क्रमात्तैः पित्रर्षिदेवाचमनादानकार्याणि सर्वत्र वामान्वारब्धान्यहस्तः आद्यंतयोरम्बुदानं च।।४९।। त्वक्फलकृमिरोमवस्त्राणि श्वेतरक्तपीतकृष्णानि द्विजादेः परकीयमधौतस्फाटितं च वर्ज्यं।।५०।। ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय गणेशादीन् ग्रहान्गुरुं गांश्च नत्वा पुण्यश्लोकान्स्मरेत्।।५१।। ग्रामाद्बहिर्नैर्ऋत्यां देवसद्वृक्षाध्वहीने दूरेऽम्बुसं-

स्थाप्येन्द्रियाणि नियम्य।।५२।। दिवोङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखस्तृण आसीनः कर्णे सूत्रं कृत्वा मूत्रविशौ त्यजेत्।।५३।। तत एक- वारं लिङ्गं, द्विर्गुदं, दशवारं वामकरं, हस्तौ पादौ च प्रत्येकं सप्तवारं धात्रीमात्रमृदाऽम्बुना च क्षालयेत्।।५४।। मूत्रे तदर्धं रेतसि द्विगुणं ब्रह्मचारिवनस्थभिक्षुणा द्वित्रिचतुर्गुणम्।।५५।। मार्गेऽर्धं संकटे तदर्धं स्त्रीबालानां गंधलेपांतं शौचे द्विजैर्द्वादश गंडूषा वामतस्त्याज्याः।।५६।। अन्यैरल्पाः तर्जन्यास्यं न शोध्यं द्वादशाङ्गुलेन निंबापामार्गादिकाष्ठेन।।५७।। अन्यैरल्पेन समंत्रं दंताः शोध्याः १६ गंडूषांश्च कार्याः। जले गोमयेन प्रातर्मध्यंदिने मृदा च।।५८।। भिक्षुर्व्रती त्रिकालं स्नायात् चिरंटी न शिरसा शीता- म्ब्वभावे शीतसंपुटितोष्णाम्बुनाऽब्लिङ्गमंत्रेन स्नानं।।५९।। गृह आचमनसंकल्पाघमर्षणतर्पणं न दीपावल्युत्सवमांगल्यवर्षारंभेषु नित्योऽभ्यंगः।।६०।। अनिंद्याहे ऐच्छिकः न विधवायत्योः मांगल्ये न शीताम्बुस्नानं पुत्रोत्पत्तिपर्वक्रांतिश्राद्धाहादौ नोष्णदकस्ना- नं।।६१।। वांत्यशुचिस्पर्शदुःस्वप्नरतिदुर्गमे स्नानं नद्यां प्रवाहाभिमुखो वरुणं प्रार्थ्य स्नात्वा।।६२।। जलमालोड्योन्मार्ज्याघमर्षणं कृत्वा स्नात्वा देवर्षिपितॄंस्तर्पयित्वा।।६३।। उदग्दशं वस्त्रं संपीड्य शोधिताङ्गो व्रजेत्। सरंध्रो देहः स्रवत्यतः प्रातः स्नाया- त्।।६४।। त्रिसप्तद्वादशाहं संध्यास्नानाग्निहीनो द्विजोऽपि शूद्रो भवेत् अशक्तश्चेद्ध्यानाख्यं मानसं, मृदा भौमं, भस्मनाग्नेयं, गोरज- रूपमानिलं, सातपवर्षाख्यं दिव्यं वा चरेत्।।६५-६६।। मेधालोलुपताऽऽरोग्यरूपतेजोयशोबलशौर्यदुःस्वप्ननाशायुष्मत्त्वं स्नातस्या- स्नातस्य तदन्यच्च लभेत्।।६७।। स्नात्वा मृत् हुत्वा भस्माभ्यर्च्य चंदनं च।।६८।। शुक्ले केशवाद्यैः कृष्णे संकर्षणाद्यैश्च ललाटा- दिषु धार्यं।।६९।। भस्म तु षडक्षरेण धार्यं मृताशौचे न गंधो मांगल्ये न च भस्म धार्यं।।७०।। गयाश्राद्धाधानोत्तरीयप्रेतकृत्यपा- दुकारौप्यमुद्रादि जीवत्पिता वर्ज्यं।।७१।। रौप्यहैमीखड्गमुद्रावत्तर्जन्यनामिकाकनिष्ठः साग्रागर्भदर्भपवित्रो वा।।७२।। मुक्ताङ्गुष्ठक- निष्ठगोकर्णाकारहस्तेन केशवाद्यैः स्त्रिःपीत्वा गोविंदविष्णुभ्यां करौ प्रक्षाल्य मधुसूदनत्रिविक्रमाभ्यामङ्गुष्ठमूलेनोष्ठौ संमृज्य वामन- श्रीधराभ्यां तथैव मुखमुन्मार्ज्य हृषीकेशेति वामकरं प्रोक्ष्य दामोदरेति मूर्ध्नि प्रोक्ष्य संकर्षणेति संहताङ्गुलित्रयेणास्यं स्पृष्ट्वा वासुदेव- प्रद्युम्नाभ्यामंगुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटे स्पृष्ट्वाऽनिरुद्धपुरुषोत्तमाभ्यामंगुष्ठानामिकाभ्यां नेत्रे स्पृष्ट्वाऽधोक्षज नारसिंहाभ्यां तथैव कर्णौ स्पृष्ट्वा जनार्दनेति पाणितलेन हृदयं स्पृष्ट्वोपेन्द्रेति सर्वाभिः शिरः स्पृष्ट्वा हरिकृष्णाभ्यां तथा बाहू स्पृशेत् असंभवे त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां हस्तौ प्रोक्ष्य कर्णं स्पृशेत्।।७३-७६।। पानेमाषमज्जनमात्राम्बु। मूत्राद्युत्सर्गशुद्ध्यूर्ध्वं स्नाने दानेऽर्चने कर्मण आद्यंतयोः सुप्ते वस्त्रपरिधाने क्षुते कासश्वासाद्येऽध्ययनेऽशुद्धभाषणे।।७७-७८।। स्नानपादशौचश्मशानगतौ च द्विराचामेत्। हीनसंभाषणे स्त्रीशू- द्रोच्छिष्टभाषणे।।७९।। उच्छिष्टस्पर्शेऽपाने याते चाचामेत्कर्णं वा स्पृशेत्। विप्रदक्षकर्णे वरुणार्केन्दुवाय्वम्ब्वग्निदेवाः।।८०।। संध्याऽज्ञानाच्छूद्रः, संध्याहीनोऽशुचिः, संध्यावंदनं विना नान्यकर्माधिकारः।।८१।। सम्यग्ब्रह्मात्र ध्यायन्त्यतः संध्या भाढ्या भही-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

नाऽर्कयुक्ता प्रातःसंध्या क्रमादुत्तमामध्यमाऽधमा, सार्कांकोना भान्विता सायंसंध्याऽपि तथा। त्रिघटिपर्यंतं न कृता चेच्चतुर्थार्घ्यं दद्यात्।।८२-८३।। सार्धप्रहरादासायं मध्याह्नसंध्या यतिब्रह्मचारिभिरनामिकाकनिष्ठाङ्गुष्ठैः अन्यैः पंचभिर्नासा धार्या।।८४।। सव्य-नाड्यापूर्य सव्याहृतिकां गायत्रीं सशिरस्कां त्रिर्जपेत्।।८५।। कुंभितवायुं दक्षनाड्या रेचयेत् पुनर्विपरीतं अत्र मूलबंध आवश्यकः जालंधरोड्डियाणौ पूरकरेचकहितौ प्राणायामोऽघघ्नोऽयं सर्वकर्मसु कार्यः।।८६-८७।। ग्रामाद्बहिर्द्विगुणं, नद्यां शतगुणं, तीर्थे सहस्रं च संध्याफलं।।८८।। गृहाद्बहिः कृता चेत्सुरापानादिदोषहारिणी। संध्यामुपासिष्य इति संकल्प्यांबु पात्रे करे वाऽऽदाय वरांतैर्मूर्ध्नि, नांतैः पादयोः, सथांतैर्हृदि च मार्जयेत्।।८९-९०।। आपोहीति पच्छः। प्रातः सूर्यश्चेति, मध्याह्ने आपः पुनन्तु, सायमग्निश्चेति प्राश्य।।९१।। सव्याहृतिगायत्र्याऽप्सूक्तेन प्रतिमंत्रं मूर्ध्नि मार्जयित्वा ऋतं चेति तृचा।।९२।। पापपुरुषं स्मृत्वा पिंगलया बहिर्हस्त-जले निःसरणं भावयित्वा नावलोक्य वामभागे।।९३।। क्षितौ क्षिप्त्वाऽऽचम्य व्यङ्गुष्ठतर्जन्यञ्जलिना गायत्र्याऽर्कसंमुखं तिष्ठन् त्रिरर्घ्यं दद्यात् असावादित्येति प्रदक्षिणमासिच्याचामेत्।।९४-९५।। मध्याह्ने हंसर्चा नतोऽर्घ्यं दद्यात्। जपे गृहाद्बहिर्द्विगुणं नदीगोष्ठवना-ग्निहोत्रहरिहराग्रतो यथोत्तरं फलं।।९६।। काष्ठासनेऽपकीर्त्यृणं पल्लवे दौरात्म्यं वस्त्रे दैन्यं पाषाणे रोगः भस्मन्यारोग्यं कम्बले सुखं।।९७-९८।। कृष्णाजिने ज्ञानं व्याघ्रचर्मणि मोक्षः कुशे प्रज्ञायुश्च।।९९।। व्याहृत्या पद्मासनेनोपविश्य भूमिं प्रार्थ्य।।१००।। भूतान्युत्सार्यैकाग्रेण देव्या यथाङ्गमात्मानं भावयेत्। ऋषिछंदोदेवतास्मृतिपूर्वकं।।१।। न्यासान्कृत्वा मुद्राः प्रदर्श्य बालामिति यथा-कालं ध्यात्वा।।२।। आगच्छ वरद इति समाहितस्तिष्ठन्प्राङ्मुखो मंत्रार्थमनुसंदधानोऽन्तरिक्षदृष्ट्या गायत्रीं शनैर्जपेत्। मत्रकाराख्य-मनस्त्राणान्मंत्रः।।३-४।। जन्मविच्छेदपापहृत्त्वाज्जपः सर्वयज्ञेषूत्तमः।।५।। वाचिकोऽल्पफलः मानसिकोऽतिफलोऽन्यो मध्यमः। अङ्गुलिरेखाशङ्खमणिप्रवालस्फटिकमुक्तापद्माक्षीस्वर्णाक्षैर्यथोत्तरगुणं जपफलं। संस्कृता माला ग्राह्या। जपे मेरुलङ्घने मालापाते वा।।६-७।। तन्द्र्यादौ वा पुनर्जपाच्छुद्धिः। यतिः षडोङ्कारसहस्रमन्यः सप्रणवव्याहृतिमष्टोत्तरमष्टाविंशतिं दशवारं वा नासाग्रदृष्ट्या जपेत्।।८।। द्रव्यलोभेन न जपेत्। क्रमान्मैत्रैः सौरैर्वारुणैः सदा जातवेदसे तच्छंयोस्त्रिर्नमो ब्रह्मण इत्युपस्थाय दिक्पं देवविप्रान्नत्वा संध्यां विसृज्य।।९-१०।। प्राङ्मुखोपविष्टं गुरुं स्वकर्णस्पर्शपूर्वकं दक्षिणवामपादौ दक्षिणवामकराभ्यां स्पृष्ट्वा पादयोर्मस्तकं न्यसेत् अभिवादनमेतत् अष्टाङ्गैर्देवान्नमेत्।।११-१२।। श्रेष्ठानल्पानपि ज्ञान्सद्विप्रान्पाणिभ्यां नमेन्नाशुचीन् कर्मस्थानगृह्यादिहस्तान्स्वयं च तथाभूतो न नमेत् हीनांस्तु करेण।।१३।। विवाहोर्ध्वं सायं प्रातरौपासनं स्वयं पत्नीशिष्यादिद्वारा वाऽऽचरेत्। धमन्याऽग्निं प्रबोध्य।।१४।। प्रादुष्कृताग्निं ध्यात्वाऽलङ्कृत्य हौम्यं संस्कृत्य ज्वालायां समिधं हुत्वा।।१५।। प्रातः सूर्याय सायमग्नये द्वितीयां तूष्णीं चोभयत्र हुत्वा क्रमात्सूर्याग्निमंत्रैरुपतिष्ठेत्।।१६।। उभयत्रापि कायाभ्यां च षष्ठिधान्याहुतिः पयोदध्याज्यनीवारयवव्रीह्यादि

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

हौम्यं।।१७।। गृह्यं श्रौतं वा परिचरेत् नित्यमासिकवार्षिकयज्ञान्नातीयात्।।१८।। दानं विनाऽहो नातीयात्किमपि शक्त्या दद्यात्स-
दाऽसकृद्विष्णुं स्मरेत्।।१९।। संस्कृते सद्वारे छन्ने गृहे वसेदुपलिप्ता भूः पुनर्लेपेन शुध्येत्।।२०।। अलिप्ते प्रेतादि वसति अत्र
कांस्यपात्रवस्त्रे गर्ह्ये गोमयेन नैर्ऋतित उपलिप्य।।२१।। रंगवल्ल्यादिनाऽन्वहमलङ्कार्यं गव्यं तिलांश्चर्म मणिश्रीखंडे धेनुः
स्थाप्या।।२२।। त्रिसंध्ये देवः पूज्यः प्रातर्विस्तरान्मध्याह्ने पंचोपचारैः सायं नीराजनेनार्च्यस्त्रिकालं तुलस्या च।।२३।। गुर्वर्काग्न्य-
म्बुगोविप्राष्टधामूर्त्यन्यतममर्चेत्। कलौ विष्णुसान्निध्याच्छालग्रामं वा।।२४।। गुर्वाज्ञया भक्तिमान्यं पूजयेत्स प्रसीदति। देवो भक्तत-
पसाऽर्चनाद्बिम्बभिरूप्याच्च सान्निध्यमेति।।२५।। संशयात्माऽश्रद्दधानो नास्तिकश्चार्चने नाधिकारी। येभ्यो मातेति पुंगंधं निवा-
र्य।।२६।। सर्वसंभारानादाय देवाग्रे उपविश्य दक्षभागे कलशं निधाय वामे शंखं च संपूज्य प्रोक्ष्य।।२७।। भूभूतशुद्धिं कृत्वा
प्राणान्प्रतिष्ठाप्यांतर्बहिर्मातृकादिभिर्देहे देवे च पुंसूक्तैश्च न्यसेत्।।२८।। एवं देवो भूत्वाऽर्घ्यपात्राण्यासाद्याद्भिरापूर्य।।२९।। हृत्स्था-
मीशकलामापादतलमस्तकं ध्यात्वाऽञ्जलिस्थपुष्पं मूर्तौ न्यसेद्वा साक्षात्प्रतिमागतां देवतां विभाव्य।।३०।। मंत्रतंत्रविधानतः पीठा-
द्वारदिक्पूजापूर्वकमर्चेत् पुंसूक्तेन वाऽऽवाहनासनपाद्यार्घ्याचमनस्नानवस्त्रसूत्रगंधपुष्पधूपदीपनैवेद्यनतिप्रदक्षिणापुष्पाञ्जलीन्भक्त्या
दद्यात्। स्त्री शूद्रश्च द्विजोक्तपौराणिकमंत्रैः पूजयेत्।।३१-३२।। सति संभवे पंचामृतं गंधोर्ध्वं भूषा नैवेद्ये चतुर्धाऽन्नं च।।३४।।
राजोपचारताम्बूलदक्षिणाऽऽरार्तिकस्तोत्रगीतवाद्यविप्रभोजनैर्देवं तोषयेत्।।३५।। आदौ स्नाने धूपदीपयोश्च घंटानादं चरेत्। नैवेद्ये
वस्त्रसूत्रयोराचमनं प्रत्युपचारं जलं च दद्यात्।।३६।। शिवं विना स्नाने शंखांबु देयं। स्वारामारण्यक्रयाप्तं श्वेतरक्तकृष्णं पुष्पमुत्तमं
मध्यमाधमं च। पर्युषितं सच्छिद्रं शीर्णं स्वयंच्युतं।।३७-३८।। समलं वामहस्तांघ्रिस्पृष्टं जले क्षालितं च न देयं बकुलाब्जाशोकजा-
तीदूर्वाबिल्वशमीकुशतुलसीकरवीरमल्लिकाः श्रेष्ठाः कोविदारार्कधत्तूरशाल्मलीकुटजैर्हरिर्नार्च्यः।।३९-४०।। तुलस्या गणेशो दूर्वये-
श्वरी कृष्णरक्तकेतकनिंबैश्च शिवो नार्च्यः, बिल्वं श्वेतं चास्य प्रियं।।४२।। गणेशस्य दूर्वा, विष्णोस्तुलसी चेति ज्ञात्वा पुष्पाणि
श्रद्धया देयानि।।४३।। पुंसूक्तेन प्रत्यृचं हुत्वा पुष्पाणि दत्वा प्रार्थ्य तद्गतहृन्मंत्रं जपेत्।।४४।। द्विजदेवांघ्र्यब्जतीर्थं पेयं, मूर्ध्नि
धार्यं च। चतुर्धाऽध्ययनं स्ववृत्त्या पोष्यपोषणं कुर्यात्।।४५।। स्ववृत्त्या जीवनाभावादापद्यनिंद्यया वृत्त्या जीवेत्। कुटुम्ब्यपि न
हीनवृत्त्या।।४६।। कृतसंध्य उपस्थं कृत्वा जानुस्थसकुशाञ्जलिर्मध्यदृक् सोङ्कार व्याहृतिं पच्छोर्धर्चः सर्वां गायत्रीं जप्त्वा तिष्ठन्ना-
सीनो व्रजन्वानध्यायेऽल्पमेवं सांगान्वेदान् शक्त्या पठित्वा।।४७-४८।। त्रिर्नमो ब्रह्मण इति च साक्षताञ्जलिर्देवानृषींस्तिलैः पितॄ-
न्गृह्योक्तवत्तर्पयेत्।।४९।। आशौचे यज्ञादिवर्ज्यं कर्म मानसिकं चरेत्। कृत्तिकाभरणीमघाऽर्कशुक्रजन्माहे।।५०।। विवाहव्रतचौल-
तोऽब्दतदर्धार्धं निमित्तं विना तिलैर्न तर्पयेद्गृहे तु नैव।।५१।। माघकृष्णाष्टम्यां भीष्मं, दीपावल्यां यमं च तर्पयेत्। नित्यनैमित्तिक-

श्राद्धैः पुत्रस्य पुत्रत्वं।।५२।। पंचसूनाहत्यै वैश्वदेवः कार्यः। कुंडे ध्यात्वा दीप्तेऽन्नाहुतिर्हुनेत्।।५३।। प्रातःसायं बलीन्पितृभ्यो बहिर्भूतेभ्यश्च दत्वाऽऽगतायातिथयेऽन्नं दद्याद्भिक्षवे चाद्यांतजलदानपूर्वं दत्तं चेदद्रिसिंधुवत्।।५४-५५।। बलावनुद्धृते नाद्यात्स्वयं नोद्धरेच्च। नित्यश्राद्धं कृत्वाऽन्नं वा दत्वा पोष्ययुग्भुञ्जीत।।५६।। आर्द्रपादहस्तास्योऽविदिङ्मुखः परिषिच्य दक्षभागे बलिं दत्वाऽहं वैश्वानर इति।।५७।। स्मृत्वापो मंत्रवत्प्राश्य धृतपात्रः प्राणाहुत्यूर्ध्वं शीघ्रं भुञ्जीत।।५८।। प्राणाहुत्यूर्ध्वं पात्रधारणमौने विकल्पिते। तैजसे राजते हैमे ताम्रे जम्ब्वाम्रचम्पकरम्भामधूककुटजपनसोदुम्बरपत्रे मंडलस्थेऽद्यात्। न तैजसे विधवाव्रतिभिक्षुभिः सर्ववल्लीपलाशार्कवटादिषु नाद्याच्च नासनारूढपादः।।५९-६०।। न बालैर्विवाहं विना वध्वाञ्चाद्यात्, न दुष्टपंक्तौ, संशये द्वारभस्मास्तंभैः पंक्तिं भिंद्यात्।।६१।। पाकाग्निदेवासद्गृहे महारात्रौ च नाद्यात्। पीतशेषं, ग्रासशेषं, तैलगव्यपक्कं विना पर्युषितं, शूद्रान्नं, रजस्वलादृष्टं, केशकीटादियुक्पक्कं पक्ष्याद्युच्छिष्टं कुसुंभालाबुवृंताककोविदारादि कुस्थानोत्थादिपलाण्डुलशुनाद्यसत्।।६२-६३-६४।। सवत्सस्तनगोमहिषीदुग्धादि सत्, खरादिदुग्धादिं च वर्ज्यं। कास्ये नारिकेलेक्षुरसः, ताम्रे गव्यं।।६५।। सदध्यार्द्रको गुडः, केवलं लवणं चासत्। श्वरजस्वलापतितशब्दश्रवणे तद्विलोकने, भुक्तौ परस्परस्पर्शे नाद्यात् गुरुं विना पंक्तिस्थ उत्थिते नाद्यात्, उलूखलादेर्यावद्ध्वनि नाद्यात्।।१६६-६७।।नष्टे दीपे मूत्राद्युत्सृतौ न च भोज्यं। लेह्यादि हस्तदत्तमसत्। नोच्छिष्टं पात्रे न्यसेत्।।६८।। आस्याविकारेण अष्टौ यतिः, षोडश वनी, द्वात्रिंशत् गृही, वर्णीष्टमद्यात्। प्राङ्मधुरं द्रवं, मध्येऽम्लादि कठिनं, तिक्तादि द्रवमन्त्ये चाद्यात्। पायसाज्यलवणं विना सशेषमद्यात्।।६९-७०।। व्रताहार्कपर्वरात्रिभूतदिने नाद्यात्। तलप्रसृतशाखाभिः फूत्कारतोऽपि भुक्तं न सत्।।७१।। उच्छिष्टं त्यक्त्वा पीतापोशनः शेषं भुवि क्षिप्त्वा शुद्धकरास्यपादः।।७२।। हस्तोद्घृष्टाम्बु शर्यातिमित्यक्ष्णोः क्षिप्त्वा, आतापिं चेति जपित्वा सांगं तांबूलं विप्राय दत्वाऽद्यान्नाधवा यतिः। अङ्घ्र्यग्रशिरोनं पर्णं सत्। अहःशेषं श्रवणादिना नीत्वा नक्तं कृतक्रियो यामोर्ध्वं द्वियामं स्वपेत्। कृतं विष्णवे निवेदयेत्।।७३-७५।। सुखशायी सर्पनिशा नत्वा सुमुहूर्तकृते तल्पे शयीत। भूत्यां, धान्येऽह्नि, देवगोगृहे, श्मशानाध्ववल्मीकघोरदेशे न। प्रवासे प्राक्पदः स्वपेत्।।७६-७७।। दिवाकर्म संकटे रात्रौ प्रहरपर्यन्तं, नैशं च निशीथपर्यन्तं कार्यम्। ततः प्रायश्चित्तं।।७८।। कर्मवैगुण्ये लोपे च प्रायश्चित्तं विना न शुद्धिः।।७९।। सुदिने रह ऋतौ स्वजायां गच्छेत्। प्राक् चतुर्निशाश्राद्धतत्प्राग्दिनाहोव्रपर्वसु जन्माहाष्टमीचतुर्दशीमूलमघारेवतीषु न। ऋतुगः सदा ब्रह्मचारी।।१८०-८१।। सपुत्रां विना ऋतौ विदेशं व्रजेत्, द्वेषादिना न गच्छेत्स भ्रूणहा।।८२।। षोडशाहमृतुः। विषमे हि कन्या समे सुतः। रतौ यादृक्कल्पना तादृक्सुतः अतः सुपुत्रार्थं सत्त्वं धार्यं। प्रायोऽपुत्रोऽधः पतति।।८३-८४।। सत्पुत्रः एकोऽपि ध्रुववत्तारकः। धार्तराष्ट्रशतोपमैः किम्।।८५।। पराशरादिमतोऽयमाचारः। विचाराचारकृत्सुखी।।८६।। आचारादुभयसिद्धिः। तदूना

दण्ड्याः। ब्राह्मणस्तु विशेषतः।।८७।। इति गुरुमुखलब्धं धर्मं चरन् द्विजो मुक्तः। ततो लुप्तोऽप्याचार उदितः। भगवतान्यो भक्ति-योगोऽप्युक्तः।।१८८।।

।। इति चूर्णिकायां अष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

नामधारक उवाच। ज्ञानयोगार्थं कर्मयोगमुक्त्वापि कुतो भक्तियोगं जगौ।।१।। सिद्ध उवाच भक्तिरेवोत्तमोत्तमा सर्वसाधिकाऽभक्तस्य कर्मापि मोघमिति भक्तिं जगौ।।२।। त्रिभिः परस्परसहायकैर्योगैर्ब्रह्म गम्यते नैकयोगतः।।३।। श्रद्धालुः सात्त्विको भक्तो भगवत्प्रियः, अभक्तं कर्मठमपि भवप्रवाहे क्षिपति।।४।। कर्मण्यकर्माकर्मणि कर्म यः पश्येत्स भक्तः कर्मबंधान्मुच्यते।।५।। यच्छ्रुत्वा दृढभक्तिः स्यात्तद्भक्तिगम्यस्य भक्तियोगमयं चरितं शृणु।।६।। तत्र सशिष्यगुरुवे प्रत्यहं भिक्षां दद्युः। एकदा दीनो भास्करशर्मा भक्तः।।७।। त्रिपुंपर्याप्तं तंडुलाद्यानीय गुरवे भिक्षां दातुमागतः।।८।। तदा गुरुणा सहान्येनाहूतो भोक्तुं गतः।।९।। सायं द्रव्यमादाय सुष्वापैवं त्रिमासं तस्थौ।।१०।। प्राज्यशिष्याय गुरवेऽल्पान्नेन भिक्षांदातुमेत्यात्मानं पुष्णातीतीत उपहसन्ति स्म।।११।। तज्ज्ञात्वा भक्तिवृद्धये प्रभुस्तमाह सशिष्यभक्ताय मे भिक्षां देहीति।।१२।। स श्रुत्वा हृष्टः शाकाद्यानीय पाकमकरोत्।।१३।। तदान्यं भिक्षां दातुमागतं निवार्य प्रभुः सर्वान्भोक्तुमाह्वयेति प्राह।।१४।। तथाऽऽह्वयत्ते तमूचुः पक्वान्नकणाधिकानाहूय किं करिष्यसीति।।१५।। स सद्गुरवे शशंस। गुरुस्तानानयित्वात्र सर्वैर्भोक्तव्यमित्यूचे।।१६।। शंकिता अपि ते तूष्णीं स्थित्वा भुक्तिपात्राणि निर्माय स्नात्वाऽऽजग्मुः।।१७।। गुरोराज्ञया मंत्रितं सिद्धान्नं शाट्याच्छाद्य नीत्वा नीत्वा।।१८।। सशिष्यभक्ताय गुरवेऽदात्तान् स्त्र्यपत्येष्टयुजो द्विजान्यथेष्टं भोक्तुं प्रार्थयामास।।१९।। स्वल्पपाकतः परमान्नपौल्यादि नीत्वा नीत्वा दत्तम् तथापि तत्र पूर्ववत्। भगवत इयं चेष्टा।।२०-२१।। सशेषमाकंठं भुक्तं तृप्ताः स्म इत्युक्त्वा ते उत्थिताः। गुर्वाज्ञया शूद्रान्हीनांश्चाहूयादात् पशु-पक्ष्यादिभिश्च।।२२-२३।। तत्र न केऽप्यवशिष्टा इति श्रुत्वा भास्करो गुर्वाज्ञया भुक्त्वान्नं जलचरेभ्योऽदात्तदा निःशेषमभूत्।।२४।। सुरसान्नस्य किं माधुर्यं न स्वप्नेऽपि न श्रुतमिदं देवानामपि दुर्लभं तृप्तिरप्यलौकिकी।।२५।। प्राक्पार्थसंकटे कृष्णो ऋषिभ्योऽन्नं ददाविति श्रुतमिदं तु दृष्टं।।२६।। स्वल्पपाकतः चतुःसहस्रं जीवाश्चामिता भुक्ता मायाऽतर्क्येयं।।२७।। येन त्रिमासं भक्त्या भगवान्सेवितः स भास्करः प्रियो भक्तोऽन्यथा कथं प्रसाद इत्युक्त्वाऽन्ये प्रभुं तुष्टुवुः।।२८-२९।। भास्करायेष्टं दत्वा प्रभुर्गमयामास

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

तत्प्रसादादुभयीं सिद्धिं गतः।।३०।। अन्यच्छृणु वृद्धा गङ्गाख्या वंधअया प्रभुं प्रत्यहमानर्चैकदा तामाह किमिच्छसीति।।३१।। गङ्गोवाच नापुत्रस्य लोकः स्वस्थाः पिकरोऽप्यधः पतन्तीति श्रुत्वा बिभेमि।।३२।। भवान्तरे सुपुत्राप्त्या गतिर्भूयादितीहया तेऽर्चनं कृतं मां पाहीति।।३३।। श्रीगुरुरुवाच कर्मावर्तेन मायाब्धौ क्व भ्रमिष्यसि क्वेयं स्मृतिरतोऽत्रैव पुत्रौ भविष्यतः।।३४।। इति श्रुत्वा सा निष्कला जातिवंध्यापि ते प्रसादात्सुपुत्रा भवेयमित्युक्त्वाऽञ्चले ग्रन्थिं बध्वाऽऽह।।३५।। व्रतादौ मे वयो यातं मौर्ख्यात्पुत्रकामयाऽश्वत्थः सेवितः स किं दास्यतीति।।३६।। श्रीगुरुरुवाच यद्ब्रवीषि तदसत्। ब्रह्मनारदसंवादं शृणु। ब्रह्माह हे नारदाश्वत्थमूलेऽहं, मध्ये विष्णुरग्रे शिवः सर्वे देवास्तीर्थाब्धयो गोयज्ञर्षिवेदाद्याः अङ्कुरादिष्वीदृशोऽश्वत्थः। शोभने काले संस्कृत्याच्र्यः।।३७-३८।। रात्रिसंध्याकुयोगादिषु न स्पृशेत् ब्रह्मचर्यमौनादियुक् तं भजेत्।।३९।। गोमयलिप्ते तन्मूले स्वस्ति वाचयेत् तं संस्नाप्य स्वाधिकारतः पूजयेत्।।४०।। अष्टबाहुं विष्णुं ध्यात्वा वस्त्रेण सूत्रेण वाऽऽच्छाद्य नाममंत्रैर्मंदं प्रदक्षिणाः कार्याः।।४१।। प्रदक्षिणाद्यंतसमाप्तिषु नमेत्। प्रदक्षिणा पदे पदे मेधफलदा, दैन्यर्णार्त्यघतापहर्त्री च।।४२।। तत्र शनिनामोच्चारणं ग्रहार्तिघ्नं, रुद्रजपात्कालमृत्युनाशः।।४३।। विप्रभोजनस्नानजपयागाः अनंतफलाः अक्षय्यपुण्यदात्पुत्रकामसिद्ध्यै न विलंबः।।४४।। येनाश्वत्थः स्थापितस्तेन स्वर्गे कुलं स्थापितं येन छिन्नस्तेन वंशोऽपि छिन्नः।।४५।। प्रदक्षिणादशांशेन हवनं तद्दशांशतो विप्रभोजनं कृत्वा हैमाश्वत्थार्थगोतिलान् दद्यात्।।४६।। तेनेष्टं लभेदिति विधिर्नारदमूचे तस्मात्तं विधिना भज स शीघ्रफलदः।।४७।। संगमे षट्कूले स्नात्वा तत्रत्यमश्वत्थं भज ते पुत्रौ भविष्यतः।।४८।। षष्ट्यब्दापि तथा कुर्वे इत्युक्त्वा सा सेश्वरमश्वत्थमानर्च।।४९।। चतुर्थेऽह्नि तत्स्वप्ने प्रभुराहाश्वत्थमभ्यर्च्य गुरुदत्तं फलं भुंक्ष्व ते पुत्रो भवेदिति।।५०।। ततः सोत्थाय स्नात्वाऽश्वत्थमानर्च। तस्यै द्वे फले दत्वा।।५१।। गुरुराह व्रतं समाप्य दानं दत्वाऽभीष्टदे फले भुंक्ष्वेति।।५२।। पूर्वयुगेऽनेके पुत्राः कलौ औरसो दत्तकश्चानयोरौरसो दर्शनादपि पितृमुक्तिदः।।५३।। तस्मादौरसौ पुत्रौ ते भविष्यत इदं मदर्चनफलं।।५४।। तथेत्युक्त्वा सा गेहं गत्वा तथा चक्रे। निष्कलापि सा ऋतुमत्यासीत्।।५५।। शुद्ध्यूर्ध्वं पत्या सहेशमेत्य नत्वा गृहं गत्वा तन्निशीशप्रसादाद्गर्भं दधौ।।५६।। स्वतंत्रस्य भगवतो लीलां को वेत्ति यत्स्तुतौ शेषः कुंठितः श्रुतिश्च चकिता।।५७।। वलीपलितवेपैर्विद्धो यद्देहो जराकृशः सा गर्भं दधौ। चित्रमिति लोकाः प्रशंशसुः।।५८।। तद्भर्ता पुंसवनाद्यकरोत्ततः काले सा पुत्रामसूत।।५९।। कन्येयं साध्वी शीलगुणशालिनी पुत्राढ्या कुलोद्धर्त्री भविष्यतीति गणका ऊचतुः।।६०।। सोमनाथस्तेभ्यो धनाद्यदात्। द्वादशाहेऽह्नि कन्यामादाय दंपती गुरुमेत्य।।६१।। तदग्रे कन्यां निधाय नत्वा 'वंध्यो द्रुमस्ते दृशा फलितः।।६२।। सुफलश्चेत्पांथैः सेव्यते, मोघफलतो वंध्यो वरमिति भाति हे ईश वेत्सि तत्' इत्यूचतुः।।६३।। गुरुः कन्यामादाय तौ प्राह सुशीलगुणधीपुत्राढ्या मान्येयं साध्वी कुलोद्ध-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

त्री।।६४।। कन्या वां लब्धा पुत्रेच्छा चेच्छतायुर्मूर्खोऽल्पायुर्वा पंडितो वामभिमत इति।।६५।। अल्पायुरपि सार्थो विद्वान्प्रिय इत्युक्तो भगवान्तथेत्युक्त्वा तौ गमयामास।।६६।। साऽल्पकालाद्गर्भं धृत्वा पुत्रं सुषुवे। एवं श्रद्धया निष्कलापि फलं लेभे।।६७।। स पुत्रो विद्याविनयवान्भूत्वा पंच पुत्रान्लब्ध्वा सद्गतिं यातः।।६८।। कन्यापि गुरूक्तवद्ब्रह्मवादिनी भूत्वा साऽपि सपतिः सद्गतिं गता।।६९।। अयं योगः श्रद्धावत्सु दृश्यते, जन्मांधैरर्क इव नाश्रद्दधानैर्लभ्यः।।७०।। दंडकमंडलुधरकाषायवस्त्रं गुरुं भजतौ दंपती मुक्तौ।।७१।। एवं गुरुवाक्यविश्वासादुभयी सिद्धिः अन्यच्छृणु।।७२।। तत्र कुष्ठी नरहरिशर्मा गुरुं शरणमेत्य गद्गदं प्राह।।७३।। हरे परानंदमूर्ते भक्तवत्सलाच्युत ते कीर्तिं श्रुत्वाऽऽगतोऽस्मि।।७४।। यजुर्विदोऽपि मे कुष्ठिनो मुखं नेक्षन्ति। तीर्थाटनजपादिनापि तत्कुष्ठं नापैति।।७५।। कृपया तदपाकुरु। प्रतीकारो नास्ति चेत्तेऽग्रतोऽसूंस्त्यक्ष्ये।।७६।। गुरुराह प्राक्कर्मतोत्थं कुष्ठं नश्येत्। मद्वाक्ये विश्वासश्चेच्छुष्कौदुम्बरकाष्ठं संगम आरोप्याभिषिंच तस्मिन्पल्लविते शुद्धो भविष्यसि।।७७-७८।। द्विजस्तथा कृत्वाऽऽधा-रबंधं दत्वाऽम्बुनिषेचनैः सिषेवे। तदा लोका ऊचुः गुरोः कृपा सद्यः तव शुद्ध्यभावादिदं निर्दिष्टं कुतोऽत्राङ्कुशंकेति निषिद्धोऽपि स काष्ठमभजत्।।८०।। तदा ते गुरुमेत्योचुर्भवदादिष्टो द्विज उपोषणान्मरिष्यति तं बोधयेति।।८१।। श्रीगुरुरुवाच स साधु करोति दृढभक्त्या तरिष्यति अत्र हि भक्तिस्तारका।।८२।। मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भिषजे गुरौ यस्य यादृग्भावना तादृक्सि-द्धिः।।८३।। तदर्थं सूतर्षिसंवादं शृणु। सूत आह सिंहकेतुनृपपुत्रो धनंजयः।।८४।। एकदा वनं गतः स श्रान्तो जीर्णशिवालयं दृष्ट्वा।।८५।। तत्र शबरेण किङ्करेण सह तस्थौ तदैकं लिङ्गं गृहीत्वा शबरो नृपमाह।।८६।। लिङ्गं पूजयितुमाकांक्षे मामनुशाधि यदाज्ञापयसे तत्करिष्यामीति।।८७।। राजपुत्र उवाच सत्स्थले लिङ्गं संस्थाप्य स्त्रियान्वितो भक्त्या पूजय।।८८।। चिताभस्मान्वहं देयं प्रसाद आदेयश्चेत्युक्त्वा पूजाविधिमुपादिशत्।।८९।। शबरस्तुष्टो लिङ्गं गृहीत्वा गृहं गत्वा यथोपदेशमपूजयत्।।९०।। एकदिने क्वापि स भस्म न लब्ध्वा दुर्मना अभूत्। तद्भार्या प्राह मां दग्ध्वा शंभवे भस्मार्पय।।९१।। कृमिविड्भस्मरूपक्षणभङ्गुरशरीरसा-फल्यं कुरु।।९२।। शबर उवाच सूर्यादिसाक्षितो भार्यात्वेन वृतास्यतोऽन्यथा कथं कुर्यां। हे सुभगेऽलब्धैहिकसौख्यासि।।९३।। सा प्राहायं व्यर्थो मोहोऽध्रुवेण ध्रुवं साध्यते तत्साधयेदं तवार्धाङ्गं न परकीयं।।९४।। स तथेत्युक्त्वा गृहे तामवरुध्य गृहेण सह दग्ध्वा तद्भस्म नित्यवच्छिवायार्पयत् प्रसादक्षणे च तामाह्वयत्।।९५।। दग्धापि सा प्राप। तां सद्म चालोक्याह दग्धापि 'कथमागतासि', 'सुप्तोत्थितस्मी'ति सा प्राह।।९६।। तर्हि शंभुप्रभाव इत्युक्ते शिव आविर्भूय तद्दोषं हत्वोभयसिद्धिं ददौ।।९७।। भक्तेः प्रभावोऽयमित्युक्त्वा कदाचित्स्नातुं स गच्छन्काष्ठसेविनं विप्रं दृष्ट्वा।।९८।। कमंडलुजलं सिषेच तदासेचनाद्दिव्यदृष्ट्या चाङ्कुरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

आविरासन्।।९९।। दिव्यदेहमङ्कुरितं काष्ठं च दृष्ट्वा प्रेमभरानताङ्गो द्विजो गुरुं तुष्टाव।।१००।। कोटिसूर्याभं कोटिचंद्रशांतं विश्वाश्रयं देवार्च्यं भक्तेष्टदत्तं त्वां वंदे, नृसिंहेश्वर मां पाहि।।१०१।। मायातमोर्कं विगुणं गुणाढ्यं भक्तसेव्यं वरदं त्वा वंदे।।२।। कामादिरिपुं परानंदं सद्धर्मगुप्त्यै धृतावतारं त्वां वंदे।।३।। चंद्रसूर्याक्षं कामदं जगत्कारणं त्वां वंदे।।४।। कमलपत्राक्षं दंडकमंडलुधरं कृपालुं त्वां वंदे।।५।। वेदांतवेद्यं नादबिंदुकलारूपं तापहरं त्वा वंदे।।६।। दैन्यादिभयकष्टहरं योगदं कृष्णापंचनदीतटस्थं त्वा वंदे।।७।। अनादिमध्यांतमतर्क्यशक्तिं परात्मानं वाङ्मनसातीतं त्वां वंदे।।८।। तव स्तोत्रे ममाशक्तिश्चतुर्मुखोऽत्र विमुखो जातः शेषश्चकितो वेदा कुंठिताश्च।।९।। एवं स्तुत्वा नमंतं तं प्रभुराह मत्प्रसादान्महत्त्वश्रीकीर्तिसत्पुत्रवान्भव।।१०।। हे शिष्योत्तम त्वं योगज्ञो भविष्यसि कुलमपि ते तथा वधूमानीयात्र तिष्ठ।।११।। तथेत्युक्त्वा भार्यामानीय तत्र स्थित्वा सत्तमान्पुत्रान्पुत्रींश्च लेभे।।१२।। विद्यासरस्वतीमंत्रं गुरुदत्तं जपन्ननासक्त्या जीवन्मुक्तोऽभवत्।।१३।। तत्कुलमपि तथा जातं अयं भक्तेर्महिमा त्वत्पूर्वजोऽपि तथाविधोऽतस्ते मतिरीदृशी।।१४।। श्रीगुरुप्रसादोयं ते कुले वर्धमानो भविष्यतीति मे ध्रुवा मतिः।।१५।।

।। इति चूर्णिकायां एकोनविंशोऽध्यायः।।

अथ विंशोऽध्यायः

नामधारक उवाच को मत्पूर्वः कथं तेन भगवान्सेवितः यत्प्रसादान्ममेदृग्धीस्तत्कथां श्रोतुं सादरोस्मि।।१।। सिद्ध उवाच यो गुरुणा त्रातः सायंदेवः स ते पूर्वो गंधर्वस्थं गुरुमश्रोषीत्।।२।। प्रणतस्तमेत्य परं दृष्ट्वा दंडवन्नत्वा गद्गदाक्षरोऽस्तौत्।।३।। परमात्मन्परंज्योतिः श्रीनृसिंहसरस्वति तीर्थाश्रयं तव पदं चिंत्यं।।४।। त्वं त्रयमूर्तिर्न मर्त्यो जीवनक्षमाम्बुपूर्णकमंडलुर्ब्रह्मा त्वं।।५।। दुष्टनिग्रहसद्रक्षाक्षमो दंडी विष्णुस्त्वं पापतापनाशनक्षमोग्रदृष्टिः शिवोऽपि त्वं।।६।। येन मृतो जीवितः, वशा महिषी दुग्धा, शुष्ककाष्ठं तरुत्वं नीतं, हीनोऽप्युद्धृतः त्वां को वेद।।७।। श्रीगुरुरुवाच स्तुत्यानया तुष्टोऽस्मि तव वंशस्यापि मयि भक्तिर्भूयात्।।८।। तव स्त्रयादेः क्षेमं किं क्व तिष्ठसि बहुकालेन संगतोऽसि।।९।। सायंदेव उवाच भगवत्प्रसादात्सर्वेषां क्षेमं काञ्च्यां तिष्ठामि।।१०।। त्वत्कृपया पुत्राद्याः योगक्षेमकरा अहं तु भवत्पादसेवां कांक्षे।।११।। श्रीगुरुरुवाच मम सेवनं कष्टं कोऽपि न शक्नोति यतो ग्रामे नद्यां दुर्गमे वनेऽपि वसामि।।१२।। सायंदेव आह यत्र क्वापि सेव इति। भगवांस्तथेत्युक्त्वैकदा तेन सह संगमं ययौ।।१३।। तं परीक्षितुमकालेऽप्यब्दं वृष्ट्या आदिशत्।।१४।। स झंझावातो गर्जिताब्दो ववर्ष विद्युच्चाभात्।।१५।। आसारार्ति-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

रणद्दंतः कंपितोऽपि सर्वसहः स वस्त्रैः प्रभुं भेजे।।१६।। यामाभ्यां खंडितं वृष्टिं दृष्ट्वा गुरुराह शीतं बाधतेऽत इतस्ततोऽपश्यन्
ग्रामं गत्वाऽग्निमानयेति। शीकरक्लेदिताङ्गः करकार्दितोऽपि।।१७-१८।। विद्युत्तेजसा मार्गं पश्यन्द्वारपालदत्तमार्गः स भाजनेऽग्नि-
मादाय न्यवर्तत। गुरूक्तिं ज्ञातुमितस्ततोऽपश्यत्।।१९।।२०।। पार्श्वयोः सर्पौ दृष्ट्वा भीतो गुरुं स्मृत्वाऽधावयत्।।२१।। तदा दूरा-
त्संगमे वेदध्वनिं श्रुत्वा प्रकाशं प्रेक्ष्य स शंकितस्त्वरयाऽगात्।।२२।। तत्र केवलं गुरुं दृष्ट्वा विस्मितं प्रभुः प्राह मा भीस्त्वद्रक्षायै
सर्पौ प्रेषितौ।।२३।। सर्पौ गुरुं नत्वा यातौ। प्रभुः सायंदेवं प्राह देवानामपि दुर्लभेदृशी गुरोः सेवा।।२४।। सायंदेव उवाच भग-
वन् परं तारकं गुरुसेवा तत्त्वं कथय।।२५।। श्रीगुरुरुवाच छाया पुरुषमिव गुरुं भजेत्सधनं देहं गुरवेऽर्पयेत्।।२६।। ईशं मत्वा
तत्प्रसादभुक्तद्ध्यानजीवनस्तत्पादतीर्थपस्तत्कथारतिः।।२७।। दुःसाध्येऽपि कार्यं आदिष्टश्चेदारभेत्स आरब्धं सिद्धिं नयेत्कालोऽ-
स्माद्भीतोऽप्यपैति।।२८।। गौरीशसंवादं शृणु त्वष्टा विद्यार्थी गुरुमभजत्। गुरुस्तद्दार्ढ्यायेदमाह।।२९।। प्रत्यब्दमुटजे वर्षास्वापः
पतन्ति एकं सुंदरं रम्यं गृहं रचय।।३०।। गुरुस्त्रीराह चित्रमकृत्रिमं चारु मेऽङ्गमितं कञ्चुकं देहि।।३१।। पुत्र आह गर्ते जलेऽपि
सुखदेऽङ्.घ्रियोग्ये चिंतितस्थलनायके पादुके देहीति।।३२।। कन्याह कुंडले दंतिदंतनिर्मितलसदेकस्तंभगृहं सचेतनाः पुत्रिका
अनञ्जनस्पृग्भाण्डानि च देहीति। एवं श्रुत्वा स वने ययौ।।३३-३४।। गुर्वर्थं मर्तव्यमिति निर्विण्णं तं कश्चिद्दयालुः साधुरा-
प।।३५।। स गतभीर्हृष्टो गुरुभावनया तं नत्वा सर्वं न्यवेदयत्।।३६।। साधुराहाभीष्टदे काशीक्षेत्रे विश्वेश्वरे जाग्रति सति किं
दुर्लभं।।३७।। तत्रत्योद्वीक्षणादपि पापं नश्यति आनंदवने सुखं किं वाच्यं।।३८।। पुमर्थदो विश्वेशो मृतं प्राणिमात्रमपि तारको-
पदेशेन मुक्तिं नयति।।३९।। शिष्य उवाच क्वास्ते काशी क्व वा विश्वेशः स्वर्भुवि वा न जानतोऽज्ञाय दर्शयेति प्रार्थये।।४०।। स
आह यदीक्षणाज्जन्मसाफल्यं त्वद्योगात्तद्दर्शनं भविष्यत्यतस्त्वां नेष्ये।।४१।। ततस्तमादाय योगगत्याशु स काशीं गत्वा यथावत्क्षे-
त्रामुक्त्वा।।४२।। विश्वेशदर्शनं अंतर्गृहयात्रां दक्षिणोदङ्मानसयात्रां पंचक्रोशीं च।।४३।। भवानीशहरिधुंडिदंडपाणिभैरवगुहका-
शीगंगादिनदीदर्शनं पूजनं च स्नानदानश्राद्धयुग्यात्रां पाक्षिकीं च।।४४-४५।। कथयित्वा लिङग्ं स्थापयोक्तवत्कुर्वीश्वरः प्रसीदे-
दित्युक्त्वाऽन्तर्दधे।।४६।। मत्परीक्षार्थं रूपांतरेण गुरुप्राप्तोऽयं मत्वोक्तवच्छिष्यश्चक्रे लिङ्गं स्थापयामास। साक्षाद्विश्वेशः प्रादुर्भूत्वा-
ह।।४७-४८।। वत्स गुरुभक्त्या पूतो धन्योऽस्यतोऽभीष्टं वृणु।।४९।। शिष्योऽपि गुरुतत्पत्न्यादियाचितं शशंस। विश्वेश आह
कलाविद्याज्ञानविज्ञानवान्भूत्वा।।५०।। चातुर्यं प्रसार्य ख्यातो भविष्यसीत्युक्त्वांतर्दधे।।५१।। स गुरुमेत्य विश्वेशप्रसादाद्याचिता-
खिलवस्तूनि ददौ। तुष्टो गुरुराह।।५२।। यावच्चंद्रसूर्यौ चिरंजीवी भूत्वा चातुर्यं प्रसार्यापरस्त्रष्टा भविष्यसि।।५३।। तव सविधे
निधयो वशा, चिंताव्यथादि न स्पृशत्ययं मम प्रसादः।।५४।। इति स प्रस्थापितो गृहमेत्य गुरूक्तवद्भूत्वा श्रीमांस्त्वष्टाऽखिलश्रुत

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

आस्ते।।५५।। इति शिवेन गौर्ये कथितं तस्मादगुरुभजनं तदुक्ताचरणं कार्यं।।५६।। इत्युक्त्वा विरतं स आह भवता यद्यत्समा-
ख्यातं तत्सर्वं मया खलु दृष्टं।।५७।। क्वाहं क्व काशी क्व भवान् तथाप्यदृष्टपूर्वमदर्शि। त्वं न नरो न सुरो नेतरः किंतु परात्माऽज
एव।।५८।। पूर्वं त्वमक्रियं ब्रह्मापि बहु स्यामिति धिया ब्रह्माणं सृष्ट्वा ततो जगत्सर्जितं। अगुणोऽपि त्वमवतीर्य स्वगुणैः स्वं
रमयन्दुष्टान् हंसि। हे नृसिंहसरस्वति वरे ते पादकमलं वंदे।।५९।। कलौ देवानां मुदे धर्मस्थापनाय च महामोहांधकारं ग्रसन्सूर्य
इवोदितोऽसि धर्मं च रक्षसि।।६०।। भो सर्वान्दत्वायामलं सत्त्वं सुखं पावनं रूपं प्रकटीकृत्य तुर्याश्रमी सन्संसाराब्धिमग्रमुद्धर-
सि।।६१।। मूकाय वाचं, अंधायाक्षि, वंध्यायै पुत्रं, मृताय जीवितं, विधवायै सौभाग्यं च ददासीतीदृक् ते महिमा।।६२।। भो
मुक्तावास मुक्तिदः कामपूरको दैन्यतापहरः शास्त्रवादातीत इति श्रुतिगीतोऽसि।।६३।। भो योगीश्वर तीर्थाश्रयसज्जनजीवनं
कामिदैवं श्रीलीलास्थलममलं विद्वद्वादास्पदं सुकृतक्षेत्रं पावनं ते पदं भेजे।।६४।। भो वेदागोचर ते चरितं वक्तुं कः समर्थस्त्वम-
ष्टमूर्तिभिर्विभाव्यावस्थितोऽसि, हे ॐकाररूपेश्वर ते नमः।।६५।। भगवन्कृष्णाभीमातटस्थं दंडकमंडलुकरं शांतध्येयं शरण्यं ते
यतिरूपं मयि स्थिरीकुरु।।६६।। एवं स्तुतं तं प्रभुराह तुष्टेन मयाऽहैतुकी भक्तिर्दत्ता ते वंशजा अपि मे भक्ता भविष्यन्ति।।६७।।
इतःपरं म्लेच्छसेवां त्यक्त्वा स्वैः सहात्र तिष्ठेति। द्विजोऽपि स्त्रीपुत्रानानीय गुरुं तुष्टाव।।६८।। हे त्रिगुणेश्वर वाच्यवाचकत्वेन
जगन्मयोऽप्याद्यंतवर्जितोऽसि। पूर्वपुण्यात्तव रूपं दृष्टं।।६९।। त्वच्चरणस्पर्शात्पापोऽपि पूतोऽस्मि, तप्तोऽपि मुखेंदुदर्शनाच्छांतोऽ-
स्मि, स्पर्शाश्रयात्स्वर्णीभूतं लोहमिव ते प्रसादतो दानोऽपि धन्योऽस्मि।।७०।। इति स्तुत्वा कारनाटकभाषया तत्कथां
जगौ।।७१।। तदा तुष्टः प्रभुराह अयं ते ज्येष्ठपुत्रो मेऽतीव वल्लभः।।७२।। इत्युक्त्वा नागनाथस्य मूर्ध्नि करं दधौ। स सहसा वक्ता
ज्ञाता च बभूव।।७३।। प्रभुः सायंदेवं प्राह तवेयं साध्वी भार्या चतुरः पुत्रान्जनयिष्यति, त्वं च भाग्यशाली।।७४।। इतःपरं
यवनलब्धवृत्तिं त्यक्त्वाऽत्रैव तिष्ठ श्रेयोऽवाप्स्यसि।।७५।। अघतारकमनंतव्रतमस्ति तत् त्वमाचर। धर्मः कृष्णाज्ञया यत्कृत्वा दिव्यं
सौख्यं भुक्त्वा सतनुं दिवं ययौ।।७६-७७।। सायंदेव उवाच भवान्नोऽनंतो भवत्सेवा व्रतं तथा कोऽनंतः कीदृग्व्रतं उपाख्या-
हि।।७८।। श्रीगुरुरुवाच पांडवस्य धर्मस्य सदसि मानी दुर्योधनो जले स्थले भ्रमात्पतितो जनहासतो व्रीडितो भूत्वा द्यूतेन
सस्त्रीकं धर्मं जित्वा सानुजं तं वनायाप्रेरयत्।।७९।।८०।। सस्त्रीकः सानुजो दुःखितो धर्मस्तत्रागतं कृष्णं नत्वाऽऽह भक्तत्रातेति
बिरुदं वहसि दुःखं न वेत्सि किमित्याह।।८१।। कृष्ण उवाच दैवं बलवदपि मद्भजकान्नेक्षते। त्वं मद्भक्तोऽपि मद्व्रतं कुरु।।८२।।
अहमेवानंतो ममेदमनंताख्यं व्रतं तच्छृणु।।८३।। चराचरजगत्कालभूतादिरूपोऽहं विभुः कर्मप्रयोजनगुणैः पृथग्भूतोऽस्मि।।८४।।
भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनंतफलदमिदं कार्यं।।८५।। पूर्वं वासिष्ठः सुमंतुऋषिः तत्स्त्री भार्गवी एकां कन्यां प्रसूय मृता। ऋषिणा पुनर-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

न्योद्वाहिता।।८६।। सा दुःशीला चंडी कन्यां पतिं च पीडयामास। ऋषिः च विवाहार्हां कन्यां।।८७।। चित्रक्रियाकुशलां सच्छीलगुणलक्षणां तां कौण्डिण्याय विधिवद्ददौ।।८८।। श्वशुरवात्सल्यात्तत्र द्विमासं स्थितोऽपि श्वश्रूत्रस्तः सभार्यः कौण्डिण्यः प्रतस्थे।।८९।। तदा चंड्या द्वारं पिधाय पाथेयं नार्पितं। सुमंतुर्बहिस्थगोधूमपुलाकं ददौ।।९०।। वध्वा सह गच्छन्मध्याह्ने नद्यां तस्थौ। तत्रैकदेशे सुवासिनीर्दृष्ट्वा कन्या ता आह कस्येदं पूजनमिति।।९१।। स्त्रिय ऊचुः अद्य भाद्रशुद्धचतुर्दश्यामनंतव्रतं तद्विधिस्तु स्नात्वा रक्तांबरं धृत्वा रक्तसूत्रे चतुर्शग्रंथीन्बध्वा।।९२।। कुंभोपरि दर्भमयशेषे निधाय तं विष्णुं मत्वा संपूज्य।।९३।। चतुर्दशापूपान्ब्राह्मणाय दत्वा नवं दोरकं हस्ते बध्वा जीर्णं विसृज्य विप्राय दत्वा दंपती भोजयित्वैवं प्रत्यब्दं कृत्वा।।९४।। चतुर्दशेऽब्दे उद्यापनं कुर्यादिदमुत्तमं व्रतं कुर्विति तस्यै दोरकं ददुः। साऽपि तथा व्रतं कृत्वा पुलाकार्धं दत्वा सदोरका पतिं प्राप।।९५।। स तया गच्छन्ग्रामांतरे धनिभिः सत्कृत्य स्थापितस्तत्रानंतप्रसादाच्छ्रीमानाढ्योऽभूत्।।९६।। ऋषिरेकदा दोरकं दृष्ट्वा वशीकरणं मत्वा तया श्रीदानंतं न त्यजेति निवारितोऽप्यग्नौ तत्याज।।९७।। ततोऽग्न्यरिचोरतः श्रीर्नष्टा तदाऽनंतकोप इति मत्वा क्वानंत इति स गोवृक्षादीन्पृष्ट्वा मूर्छितः।।९८।। तदा वृद्धविप्ररूपेण तमाश्वास्य कल्पितं नगरं नीत्वा स्वरूपं दर्शयामास। स च तं तुष्टाव।।९९।। जय सर्वेश्वरानंत विश्वव्यापिन् जनार्दन त्वन्मायामोहितधिया कृतान्मंतून्क्षमस्व भोः।।१००।। अनंत उवाच मत्प्रसादाद्दुःखदैन्यादि त्यक्त्वा श्रियं भुक्त्वा नक्षत्रेषु पुनर्वसुर्भविष्यसि।।१।। ऋषिरुवाच फलिताम्रस्य केऽपि फलं नाश्नन्ति, गोपशोश्च मुखे तृणं न याति, जीवास्पृष्टे पूर्णे सरसी, दीनः खरो, हस्ती च वृद्धविप्रश्चेमे मया दृष्टा एषां कुत ईदृक्स्थितिः।।२।।३।। अनंत उवाच विद्वांश्छिष्यान्नापाठयदत ईदृगाम्रः, मोघभूदानात्तादृशी गौरदाता धनी वृषः।।४।। अन्योन्यदानग्रहणात्तथा सरस्यौ, क्रोधी खरः, मदी हस्ती, वृद्धविप्रोऽहमेव। य एते दृष्टास्तेऽपि मोचिताः।।५।। इति लब्धवरः स तथाऽभवत्। हे धर्मातो व्रतं चर हितं भवेत्।।६।। इति कृष्णेनोक्तो धर्मो व्रतं कृत्वाऽरीन्हत्वा राज्यं भुक्त्वा सदेहः स्वर्गं गतः।।७।। हे विप्र त्वमपीदमाचरेति प्रभुणोक्तः सोऽनंतव्रतं चक्रे।।८।। स्वैः सह तत्र स्थित्वा सायुज्यं गतः। तद्वंशजा अपि गुरोः प्रसादात्तादृशा अभवन्।।९।। हे नामधारक त्वमपि तादृगतो मृगतृष्णोपमं भवं तरिष्यसि।।१०।।

।। इति चूर्णिकायां विंशोऽध्यायः।।

अथ एकविंशोऽध्यायः

नामधारक उवाच साधूक्तमिदं दिनं धन्यं तत्कथां विनाऽद्य क्षणमात्रोऽपि कालो न यातः।।१।। सिद्ध उवाच तंतुको

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा

नामैको भक्तस्त्रियामं गृहकृत्यं कृत्वा याममात्रं गुरुं भेजे।।२।। एकदा बांधवाः श्रीशैलं गन्तुं तमाह्वयन्। स तानाह मठो मे शैलः श्रीगुरुर्मल्लिकार्जुन इति।।३।। मूर्खोऽयमिति मत्वा ते गताः। कुतो न गतोऽसीति गुरुणोक्तोऽपि तंतुकस्तथाऽब्रवीत्।।४।। ततः शिवरात्रिदिने मध्याह्ने तंतुकं श्रीगुरुराहाद्य शैलोत्सव इति।।५।। तंतुक उवाच त्वत्पादाब्जोत्सवात् क्वापि नाधिकोत्सवस्तदज्ञात्वा मुग्धा भ्रमन्ति।।६।। भगवानाह मैवं ईश्वरः सर्वगो यद्यपि तथा क्षेत्रे तथा क्षेत्रे विशेषतः।।७।। महातपस्विपवित्रकृते क्षेत्रे परमात्मा जागर्ति।।८।। अतस्तत्रैव द्रुता सिद्धिः महांतः स्वयं मुक्ता अपीतरान्स्वतपसा मोचयन्ति।।९।। लोकोद्धरायैव सत्तपस्विविभूतयः प्रजायन्ते।।१०।। तत्संचारस्थलरजःस्पर्शोऽपि मुक्तिदः अतस्तत्र लोका यान्ति।।११।। अद्य गच्छ क्षेत्रमहिमानं दर्शयामि इत्युक्त्वा पादुके धारयित्वाक्षीणि निमील्य।।१२।। तेन सह योगगत्या श्रीशैलं गत्वोचेऽक्षीणि उन्मीलय श्रीशैलं एतं पश्येति।।१३।। सोऽपि श्रीगिरिं दृष्ट्वा गुर्वाज्ञया क्षौरस्नानादि कृत्वा मल्लिकार्जुनं द्रष्टुं ययौ।।१४।। तत्र तं दृष्ट्वा बांधवा आहुः कुतो अनुयातोऽपि युतिं न करोषीति। तदा तेन सत्यमुक्तमपि ते मिथ्या अमंस्त।।१५।। तंतुको गुरुं ध्यायन्लोकव्याप्तप्रासादे मल्लिकार्जुनं द्रष्टुं गतः।।१६।। तत्र गुरुमेव दृष्ट्वा संपूज्य बहिर्गुरुमेत्य प्राह।।१७।। अत्रापि त्वमतोऽज्ञा कुतो निकटस्थं हित्वा भ्रमन्ति? त्वमेव सर्वं व्याप्य स्थितोऽसि।।१८।। श्रीगुरुरुवाच सर्वत्रैक आत्मा तथापि स्थानप्रभावो भिन्न। इदं स्थानं मुक्तिप्रदम्। पूर्ववृत्तं शृणु।।१९।। किराते विमर्षणाख्यकृती राजा दयालुर्देवद्विजभक्तोऽभूत्।।२०।।स शैवोत्तमोऽपि पूर्वप्रकृतिवशान्निषिद्धभुक् स्त्रीलंपटश्चास। तं महिषी प्राह दुश्चेष्टितस्यापि शिवे कथं भक्तिरिति।।२१।। राजोवाच पूर्वजन्मनि पंपापुरे श्वाभवमेकदा शिवरात्र्यां शिवसंनिधिं गतं मां जना हन्युः।।२२।। शिवं प्रदक्षिणं परीत्यार्चितं शिवं दृष्ट्वा शैवे दिने मृतिं गतस्तेन शैवो नृपोऽभवं। ये दुर्गुणास्ते श्वस्वभावजाः जीवो हि पूर्वसंस्कारानुग इति।।२३।। ममापि जन्म कथयेति तयोक्त आह पूर्वं धृतमांसं कपोतीं त्वां श्रीशैले चिल्लोऽहनत्तेन मे महिषी जातासीति।।२४।। जन्मांतरे नौ क्व गतिरिति तयोक्त आह सिंधुदेशेऽहं राजा त्वं सृंजयोत्था मत्स्त्री।।२५।। ततः सौराष्ट्रराजोऽहं कलिंगजा मत्स्त्री त्वं, ततो गांधारजोऽहं मत्स्त्री मागधी त्वं, अवंतिजोऽहं दशार्णजा त्वं।।२६।। तोऽनंतो नृपोऽहं ययातिजा मत्स्त्री त्वं, ततः स्मरोपमोः पांड्योऽहं सगुणां विदर्भदेशजां त्वां वृत्वा यज्ञैरिष्ट्वा साम्राज्ये भोगान्भुक्त्वा सप्तमे जन्मन्यगस्त्यप्रसादान्मुक्तौ भविष्याव इति।।२७-२८।। एवं तिरश्चोपि गतिरिति बुद्ध्वा लोका आयान्ति। देवता हि स्थानानुमानाज्जागरूका।।२९।। इत्युक्त्वा तं पुनः संगममानयत्। स च गुर्वादिष्टो ग्रामं ययौ।।३०।। तत्पूर्वं तत्रत्याः संगमे गुरुमदृष्ट्वा ग्रामं गतास्तेऽनुयान्तं तंतुकं दृष्ट्वोचुः कस्मात्क्षौरं कृतमिति।।३१।। तेन यथोक्तं कथितं श्रुत्वाप्यूचुः मध्याह्नेऽत्रैव दृष्टोऽयं मृषा ब्रूत इत्युक्त्वा ते संगममेत्य निश्युपोषिताः सर्वे शैवनामोच्चारणपूर्वकं।।३२।।३३।। जागरं चक्रुः। ततः पक्षेण शैला-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा

ज्ञना आगतास्तैरप्युक्तं।।३४।। श्रीशैलेऽयं तंतुकः सकृद्दृष्टः तदा सप्रत्ययाः सर्वे विस्मिता भृशं ननंदुः।।३५।। गुरुसेवया कर्मबंधं छित्वा तंतुको निर्द्वंद्वं परानंदं गतः।।३६।। एवमकैकभक्त्या कति मुक्तास्तान्को वेद तथा द्वौ कवी गुरुकीर्तनान्मुक्तौ।।३७।। ताभ्यां गुरुलीलामयाः प्रभूताः कविता ग्रथिताः। तल्लीलाः कार्त्स्न्यात् को वेद यत्र वेदोऽपि शंकितः।।३८।। नामधारक उवाच कौ शिष्यौ कवी जातौ तन्मे कथय वक्ताऽपि श्रोतृपृच्छामभिनंदति।।३९।। सिद्ध उवाच नंदिशर्मा कश्चिद्द्विजः तुलजापुरि त्रिवर्षं तपस्तेपे तदा देव्योक्तं चंदलेश्वरीं गच्छेति।।४०।। स चंदलेश्वरीमेत्य सप्तमासं तपोऽतपत्। तयोक्तं गंधर्वे यतिं गच्छेति।।४१।। स आह मर्त्यं गच्छेति वक्तुं न लज्जसे किं? त्वदैश्वर्यं परीक्षितं कुत इयत्कष्टं दत्तं।।४२।। इत्युक्त्वा तपस्तेपे। देव्या हापितः स तदा देव्याज्ञयैकवारं यतितव्यं।।४३।। इति निश्चित्य पारणां कृत्वा गंधर्वे यतिं ययौ।।४४।। तत्र क्व भगवानिति पृच्छतं तं कुष्ठिनं लोको नोत्तरं ददौ।।४५।। तं कश्चिदाह शिवरात्रिव्रतपारणायै देव आश्वायास्यतीति।।४६।। अत्रांतरे प्रभुमायान्तं विप्रा आहुः कुष्ठी विप्र आगत इति।।४७।। विश्वसाक्षी तमाहूयाह देवान्हित्वा मर्त्यं कुत आयातोऽसि? दोषमिमं हर्तुं नरोऽर्हः किमि-ति।।४८।। तच्छ्रुत्वाऽनेन मदंतरं ज्ञातं नैष मानुषः किंत्वात्मेति मत्वा क्षमाप्याह।।४९।। मूढः कुधीः पापोऽहं दयाब्धिं भक्तव-त्सलं त्वां प्रपद्ये।।५०।। विवाहोर्ध्वं मयि कुष्ठमुदितं पितृदारैरपि त्यक्तं मां कोऽपि नेक्षते।।५१।। देवा अपि नाङ्गीकुर्वन्त्यतो मरणं वरं। परात्मन्नुपेक्षसे चेत्प्राणांस्त्यक्ष इति।।५२।। श्रीगुरुरुवाच मा भीः पापोत्थरोगेण पापं भुक्तं अतो मय्यचला भक्तिर्जा-ता।।५३।। अत्राघहे तीर्थराजे संगमे स्नाहीत्युक्त्वा प्रभुः सोमनाथमाह।।५४।। षट्कूले स्नानं कारयित्वाऽश्वत्थमर्चयित्वाश्वानये-ति।।५५।। सोऽपि तथा कारयित्वा गुरुपादयोः पातयामास तमुत्थाप्येश आहोत्तिष्ठ वपुः पश्येति।।५६।। स शुद्धः किञ्चित्कुष्ठा-ङ्किताष्ठीवदङ्गं दृष्ट्वाऽऽह।।५७।। भगवन्कुतोऽल्पमिदमवशिष्टमिति? प्रभुराह त्वत्संशयफलमिदमिति।।५८।। विप्रो नत्वा प्राह जलबुद्ध्या पीता सुधा मृत्युं नयति किं?।।५९।। अज्ञानादग्निर्न दहति किं? हरे स्वभावोऽनेन पूर्णतामेति किं?।।६०।। श्रीगुरु-रुवाच यादृग्यद्भावः स नान्यथा स्यात्स्वदोषतोऽन्धस्यार्के शून्यतेवान्यथा भाति।।६१।। मर्त्येन मम किमिति त्वयि शंकोदिता तत्फलं त्विदं अत्र प्रतीकारं शृणु।।६२।। श्रुतिबृंहितया मर्त्यत्वप्रतिषेधपरां स्तुतिं कुरु। तया शुद्धः कृतार्थश्च भविष्यसि।।६३।। द्विजो दीनो लोलन्नाह स्वामिन्सर्वांतरस्थोऽसि तवाग्रे कि वाच्यं।।६४।। लिपिमपि ज्ञातुमक्षमोऽहं कथं स्तौमि? अन्यत्किमपि कर्तुं यथार्हं नियोजय।।६५।। प्रभुः प्राह हस्तिदंतवद्वक्त्रात्सकृन्निर्गतं वाक्यं न पुनरंतः प्रविशति।।६६।। उक्तमेव कार्यमित्युक्त्वा मंत्रितं भस्म तन्मुखे क्षिप्त्वा प्राह मा स्तुहीति।।६७।। सोऽपि गीष्पतिवद्भूत्वा प्रेमगौरवनम्राङ्गो गद्गद्वाचा तुष्टाव।।६८।। हे ईश तत्त्वमसि कर्ता भर्ताऽव्ययः साक्षी आत्मा त्वं सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि।।६९।। त्वया प्रकृतिमहात्रिगुणेभ्यो भूतान्युद्भाव्य मायामयवशं

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

चराचरं विश्वं सृष्टं तत्र पुंमान्ज्ञानपात्रं।।७०।। सोऽपि त्वन्मायया भ्रांतः संकल्पवान्भूत्वा।।७१।। पापेन नरके भ्रमते कल्पेऽपि न मुच्यते। ऊर्ध्वं गतोऽपि पुण्यक्षयेऽधश्चंद्रमंडले पतति।।७२।। ततोऽप्योषधिगो भूत्वा ततो तद्द्वारा पुंसि रेतो भूत्वा।।७३।। ऋतौ स्त्रीपुंसंयोगाच्छुक्ररक्तमयो गर्भत्वमेति। एकाहात्कलिलं, पंचरात्राद्बुद्बुदः, पक्षाद्घनो, मासात्क्रूरः, द्वितीये शिरः, तृतीये ग्रीवा, चतुर्थे त्वग्रोमनखाः पंचमे च।।७४।।७५।। षष्ठे छिद्राणि, सप्तमे चलनं, अष्टमे धीर्नवमे पूर्णो देही भूत्वाऽऽह।।७६।। शश्वज्जातो मृतोऽहं वियोनीर्भूक्त्वाऽद्यावाङ्मुखो जरायुवीतोऽत्र त्रस्तोऽभवं। हे देव मामुद्धरातः परं त्वां भजे।।७७।। एवं स्तुत्वा सूतिवायुना बहिस्त्यक्तो विस्मृतधीर्मायामोहितो रोरूयति।।७८।। पराधीनो व्यथां वक्तुमक्षम उत्थानादौ अनभिप्रेतमापन्नः।।७९।। बाल्ये क्रीडासक्तस्तारुण्ये स्त्रीभावैरजितेन्द्रियो भोगोत्सुकोऽज्ञातकार्याकार्यो दुर्मार्गगः।।८०-८१।। वार्धक्ये त्रस्तोऽस्वस्थः श्वासकासार्तोऽजितेन्द्रिय एवं।।८२।। शतायुरपि रात्र्याऽर्धं शिष्टं बाल्यादिभिः पराधीनतया च हृतं अतः श्रेष्ठपुंजन्मना किं।।८३।। हे भगवन् त्वद्भक्त्या सत्संगत्या तत्साफल्यमतस्तद्द्वयं याचे।।८४।। भो जनात्रावतीर्णोऽयं परात्मा नैष नरः।।८५।। योगेन श्रवणादिना वा श्रेयसेऽयं सेव्यतां भक्तिभावनोऽयं भजतोऽनुभजति।।८६।। भगवन् ते गुणवर्णने श्रुतिरपि चकिताऽतो वाङ्मनसाविषया ते गुणाः कति वाच्याः।।८७।। इति स्तुत्वा ननाम। तदा भगवत्प्रसादाच्छिष्टं कुष्ठं नष्टं।।८८।। ततः स लब्धवरो गुर्वाज्ञया स्त्रियमानीय तत्र स्थित्वा विविधाः कथाः व्यरचयत्।।८९।। ग्रामान्तरस्थः कश्चिन्नृकेसरी कविः तं कवितां श्रुत्वेयमुदाराऽपि नृस्तुतिर्गर्ह्येत्यमंस्त।।९०।। कदाचिद्ग्रामं गतो भगवान् तन्मानसपूजायां कल्लेशलिङ्गस्थं स्वं रूपं दर्शयामास।।९१।। नित्यवत्पंचनूत्नश्लोकैः स्तुवन्तं तं प्रभुराह क्व कल्लेश्वर इति।।९२।। स तदा ध्यानं विसृज्य नृरूपेण भगवानवतीर्ण इति मत्वा तमागात्।।९३।। पंचभिः श्लोकैः स्तुवन्तं तं प्राहेशं हित्वा किं नरं स्तौषीति।।९४।। नृकेसर्युवाच मयाऽज्ञानेन भगवान्मानुषो मतः कृपयाऽद्य मेऽज्ञानमपास्य सत्त्वं ज्ञानं प्रदर्शितं।।९५।। तेन मे मोहो नष्टः पूर्वपुण्यं च फलितं मां शिष्यपङ्क्त्यां योजय। तदा प्रीतो भगवान् वस्त्रं दत्वा प्राह कल्लेश्वरं भज तत्रापि मत्स्थितिः।।९७।। स प्राह ते प्रत्यक्षं रूपं हित्वा गन्तुं नोत्सहेऽतः त्वत्पादाब्जे स्थिरीकुरु।।९८।। कामधेनुस्त्वमनायासाल्लब्धोऽसि भगवन्दयनीयतमस्य ममोपेक्षां मा कुरु।।९९।। इत्युक्त्वाऽग्रे पपात। दयाब्धिस्तमाश्वास्य शिष्यत्वेनाङ्गीकृत्य स्वात्मसुखं ददौ।।१००।। एवं कविः भूत्वा भक्त्या भगवद्गुणकीर्तनान्मुक्तोऽपि बभूव।।१०१।।

।। इति चूर्णिकायां एकविंशोऽध्यायः।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

नामधारक उवाच गुरो भगवत्कथां श्रुत्वाऽपि न मे तृप्तिः श्रवणपानतोऽतीव तृष्णा वर्धते।।१।। कृपाकरोऽनलसो भगवानुदारतम एव पूर्वपुण्यत एव संगतोऽसि।।२।। सिद्ध उवाच सच्चित्सुखस्य परात्मनो गुणानुवादक्षीराब्धेर्लीलामृतं कति पास्यसि।।३।। अनंतस्य गुणान्कार्त्स्न्येन वक्तुं कोऽपि न क्षमः अहं तूच्चावचखगोड्डानन्यायतो यथामति वक्ष्ये।।४।। कृष्णामरजाविहारी भक्तवत्सलः भक्ताधीनत्वमङ्गीकृत्य तन्मतानुगोऽभवत्।।५।। निराकारो निरीहोऽपि शुद्धसत्त्वस्वरूपी भगवानजो बुद्ध्या संगत्य लीलया विश्वात्मकोऽभूत्।।६।। सर्वत्रगोऽपि स मुनयो मां पश्येयुरिति मत्वा ब्रह्मविष्ण्वीशरूपैः सत्यादिषु स्थितः।।७।। ततोऽपि भुवि मन्मया भूयांसो भक्तांस्तेषां गोचरोऽभवमिति मत्वा भक्तिप्रियः स युगे युगेऽवतीर्य भजतोऽनुगृह्णाति।।८।।९।। भगवतो भक्तवात्सल्यं किं वाच्यं यतः पूर्णस्तृप्तोऽपि तद्गृहे भोक्तुं भ्रमति।।१०।। अन्य अपि बहुशस्तल्लीलाः केवलं भक्तानुग्रहलक्षणा एव।।११।। युगांतरे तपसा दुर्लभोऽपीशोऽद्य स्मृत्यैव सुलभोऽतः कलौ नो भाग्यमुदितं।।१२।। स एष भगवान् तत्रान्वहं निमंत्रितो भक्ताधीनतया भोक्तुमटति।।१३।। एकदा दीपावल्युत्सवे सप्तग्रामस्थाः प्रिया भक्ता गुरुं नेतुकामा एत्य ऊचुः।।१४।। पंचवासरं भवंतं नेतुकामोऽद्यागतोऽस्मि प्रसादः क्रियतामिति।।१५।। श्रीगुरुरुवाच यूयं सप्ताहमेककालिकोत्सवे सप्तग्रामेषु गंतव्यं।।१६।। एकत्रैकैकदिन एकैकगृहे वा गन्तुमुचितं तथा मतं चेन्मे वरं।।१७।। भक्ताधीनं मां यो यो नयेत्तं तमनुयास्यामीति श्रुत्वाऽहमेव नेष्यामीत्यन्योऽन्यं कलहं चक्रुः।।१८।। अयं दरिद्रोऽयं धनीति दृष्टिं मा कुर्वित्यग्रतः पतितान्भो सम मद्गेहमेहीति वदतस्तानाह गच्छध्वं सर्वगृहानेष्यामीति गुरुणोक्ता अपि भ्रांतास्ते कैर्विश्वस्तव्यमित्यूचुः।।१९।।२०।। तद्भाववित्प्रभू रहस्येकैकमाहूयाह त्वद्गृहमेष्ये क्वापि न वाच्यमिति। ततस्तेऽन्योऽन्यमाशंसंतो गृहान्ययुः।।२१।। भवान्नो हित्वा क्व यास्यतीति तत्रत्यैरुक्तः प्रभुराहात्रैव तिष्ठामीति। ततोऽष्टरूपैरष्टग्रामगोऽभूत्।।२२।। जगन्मयो भगवान् पंचाहं सप्तसु ग्रामेषु स्थितो मठे वसन्नपि।।२३।। चतुर्विधान्नवस्त्रदानादिना तोषितो भगवान् लौकिकैकस्वरूपो संगमेऽस्थात्।।२४।। पुनः कार्तिक्यां प्राप्तास्तेऽन्योन्यमूचुः दीपावल्यां मद्गृहे भगवान् स्थित इति।।२५।। तत्रत्या आहुः क्वापि न गतोऽत्रैवास्मादिभिर्दीपावल्युत्सवः कृत इति।।२६।। मृषा मृषेत्यन्योन्यं वदस्तान्निवार्याह भगवान् तूष्णीं स्थेयं सर्वत्राहं गतः खलु।।२७।। तदा ते चकितास्तुष्टुवुः भगवन् ते महिम्नः परं पारमजनतान्नः।।२८।। लौकिकवाचस्तोत्रपात्रं कथं भविष्यति? श्रुतेरप्यगोचरत्वाद्गुहाशयस्थ विश्वव्यापक यत्ते दिव्यं जन्म कर्म च भक्तानुग्रहार्थमेव।।२९।।३०।। यद्दृश्यते श्रूयते चेयं दुरत्यया त्वन्माया सा नो नावृणोत्विति वरं देहि।।३१।। इत्युक्त्वा प्रणतान्तान् तथेत्युक्त्वा संतोष्य प्रस्थापयामास। तेऽपि ययुः।।३२।। एवं सच्चित्सुखात्मको भगवान् दुर्विभाव्या लीला इहाकरो-

दि गं ब रा
दि गं ब रा
श्री पा द व ल्ल भ
दि गं ब रा

दि गं ब रा
दि गं ब रा
श्री पा द व ल्ल भ
दि गं ब रा

त्।।३३।। भक्तिप्रियोऽसौ जात्याचारवयोरूपविद्याऽर्थगुणपौरुषं नापेक्षते।।३४।। कश्चिच्छूद्रो दास्येनैवैहिकान्भोगान्भुक्त्वांते मुक्तः।।३५।। कृषीवलः स स्वकर्म कुर्वन् प्रत्यहं संगमं यातं गुरुं ननाम।।३६।। तद्गमागमसौख्यार्थं संगममार्गं कंटकाश्माद्यपसरणेन सुगमं चक्रे।।३७।। पुनरागतं नत्वाऽनासक्त्या स्वकर्माकरोत्। भगवानेकदा तं पृच्छति स्म।।३८।। सदाऽग्रतः कुतः पतस्येतेन किं साध्यं किं तेऽभीष्टं वद।।३९।। शूद्र उवाच सुखकामस्त्वां भजामि त्वत्कृपया क्षेत्रं मनोज्ञं भाति तत्प्रेक्ष पादजोऽप्यहं नोपेक्ष्यो दास्यत्वात्।।४०।। तदा सस्मितो भगवान् सर्वक्षेत्रे किञ्चित्प्रादुर्भूतधान्यं दृष्ट्वा तं प्राह मद्वाक्ये विश्वासश्चेद्यावन्मदागमस्तावत्सर्वं छिंधीत्युक्त्वा संगमं ययौ।।४१।।४२।। शूद्रोऽपि क्षेत्राधिपमेत्याह ते करं निश्चित्य क्षेत्रं देहीति। स प्राह नेदं साध्विति।।४३।। शश्वत् प्रार्थ्य वार्षिककरादिद्विगुणं दातुं निश्चित्य प्रमाणपत्रं जग्राह। सोऽपि तथा।।४४।। ततो लोकानाहूय छेत्तुमारेभे। तदा सापत्या भार्याऽऽगत्य वारयामास।।४५।। तां भीषयित्वा चिच्छेद। भागवतानां निष्ठैवेयं भरतेन माता, प्रह्लादेन पिता, बिभीषणेन भ्राता च त्यक्तो भार्यादेः का कथा।।४६।।४७।। साधिपं गत्वाऽऽह मुंडिवाक्यानुवर्ती तेऽपक्वक्षेत्रं छिनत्ति तं वारयेति।।४८।। सोऽपि दूतं प्रेरयत्। स दूत एत्य गभीरवाचा निवारयामास।।४९।। तं शूद्र आहाहं न बिभेमि इदं पत्रमस्तीति।।५०।। दूतोऽपि परावर्त्य तं न्यवेदयदधिप आह रे शूद्रि कथं वाक्यमन्यथा कार्यं सोऽप्यर्थधान्यवानास्ते।।५१।। तदा सापत्या सा क्षेत्रसीमां प्राप्य रुदती शूद्रोऽखिलं छित्वा गुर्वागममाचकांक्ष।।५२।। गुरुरप्यागच्छन् छिन्नं क्षेत्रं दृष्ट्वा प्रणतं तमाह किमिदं कृतमिति।।५३।। यदन्येन मनसाऽपि कर्तुमशक्यं मया तु विनोदेनोक्तं। कुतस्ते वृत्तिः किं वाऽऽढ्याय दास्यसीदमपक्वं वृथागतं।।५४।।५५।। शूद्र आह कथमप्युक्तं गुरुवाक्यं मेऽतिफलदं शास्त्रवत् येन जन्म दत्तं स वृत्तिद इति।।५६।। भक्तिश्चेत्तथा भवत्वित्युक्त्वा गुरुर्ययौ सोऽपि तद्ध्यायन् गृहमाप।।५७।। ततोऽर्के मूलनक्षत्रगे मेघो ववर्ष तच्छिन्नमपि यावनालाद्यवर्धत।।५८।। प्रादुर्भूतानसंभाव्यानङ्कुरान्दृष्ट्वा सर्वे ननंदुः। शूद्र्यपि हर्षिता।।५९।। पत्युः पादौ धृत्वा सगद्गद प्राह गुरुभक्तोऽसि ममापराधान्क्षमस्वेति।।६०।। शूद्रस्तथेत्युक्त्वा तया सह क्षेत्रं संपूज्य यांतं गुरुं नत्वा क्षेत्रं दर्शयित्वा आह।।६१।। तव पादौ चिंतामणिः, वाक्यं सुधास्पर्धि, रूपं ज्योतिर्मयं चेदं घूकोऽर्कमिवाज्ञो न वेद।।६२।। मयापीदं दिव्यं धाम पूर्वपुण्येन दृष्टं कृतार्थोऽस्मि मां मा विस्मर।।६३।। श्रीगुरुरुवाच दुराचारोऽप्यनन्यधीर्मां सेवते चेत्साधुस्त्वं तु स्वाचारो मद्भक्तश्च।।६४।। अतस्ते कुलेऽचला कमला मद्दास्यं च तिष्ठतु नात्र संशयः।।६५।। इत्युक्त्वा गुरुर्गतः सोऽप्यधिमेत्याहाधिभागं प्रदास्ये ते यतो धान्यर्धिरद्भुता।।६६।। स प्राह मे नान्यथोक्तिरन्यायं न स्पृशामीयमृद्धिर्गुरुप्रसादलब्धा त उक्तमेव देहीति।।६७।। ततः स कामं धान्यं नीत्वाऽवशिष्टं लोकेभ्योऽदात्। बहवः प्रकामं धान्यं लेभिरे। सोऽपि सद्गुरुकृपया श्रीमान्भूत्वाऽतिनीचवत् सद्गुरुं सिषे-

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

वे।।६८।।६९।। यत्रेदृश्यः प्रभोर्लीलाः वृत्ताः अतस्तत्पुरं धन्यतमं मन्ये।।७०।। नामधारक उवाच काश्यादिक्षेत्रं विहाय कुतोऽत्रैवोवास भगवान् तन्मे कथय।।७१।। सिद्ध उवाच अधोक्षजो भगवान् तत्र तीर्थानि सर्वशो देवांश्चोद्वीक्ष्य जगन्निवासोऽवसत्।।७२।। एकदा तत्रत्यान्काशीजिगमिषून्लोकान्प्रति कलौ गुप्तानि तीर्थानि ख्यापयन्नाहात्रैव तीर्थानि दर्शयामीत्युक्त्वा तेभ्यो दर्शयन्नाह।।७३-७४।। संगमोऽयं प्रयागोऽत्र षट्कूले तीर्थानि अयं त्रिवेणीसंगमोऽसौ अमरजा पापघ्नीष्टदा।।७५।। युद्धे जालंधरेण हतान्देवान्जीवयितुमिंद्राय शिवेन दत्तममृतं किञ्चिच्च्युतं।।७६।। ततोऽपि महा प्रवाहो जातः सेयं कालमृत्युभयाघघ्नी अमरजा जाता।।७७।। कल्पद्रुमाश्वत्थसंनिधौ मनोरथाख्यं तीर्थं तदग्रे संतोषतीर्थं तत्र रुद्रः स्वयं विश्वेश्वरः।।७८।। शिवं विधिवत्प्रदक्षिणीकृत्य वामहस्तेन नंदिनोऽण्डं धृत्वाऽङ्गुष्ठतर्जन्यौ शृङ्गयोर्निधाय मध्यत ईशं यः पश्येत्स देववद्भवेत्। इयं भक्ततुष्टये ईशेन काशी निर्मिता।।७९-८०।। अत्र जीवन्मुक्तः शैवो लोके जड इति मतः येनाहिनेव संगस्त्यक्तः, भोगा विषमिव, स्त्रीश्च शववत्त्यक्ता।।८१।। कदाचिद्वशी स बंधूनाहात्रेयं काशी त ऊचुर्नो दर्शयेति।।८२।। तदेशं दध्यौ ईशोऽप्यागत्य तदिच्छया स्वात्मना सह तत्र काशीं प्रादुश्चकार।।८३।। जलमध्य उत्तमे कुंडे विश्वेश्वरलिङ्गं तथान्यान्यपि चिह्नानि दर्शयित्वा तानाहेयं काशीह विधिवद्यात्रा कर्तव्येति।।८४।।८५।। प्रत्यब्दं नः कुलदैवतं विठ्ठलं त्वत्र काशी यात्रा कार्या सर्वाघघ्नीष्टदा च।।८६।। तत इयं काशीति गुरौ ब्रुवति पूर्वाश्रमस्वसा रत्नाऽऽगत्य प्रभुं ननाम।।८७।। स तामाहोक्तस्मृतिरस्ति किमिति। तदा साऽपि स्मृत्वा शरीरे कुष्ठं च दृष्ट्वा खिन्नाऽभूत्तां प्रभुराह भवांतरे पापं भोक्ष्यसि चेत्कुष्ठं नश्येदिति।।८८।।८९।। सा प्राह पुनर्गर्भवासो यथा न भवेत्तथा कुरु हे परात्परान्यन्न जाने।।९०।। गुरुः प्राह पापनाशतीर्थे त्र्यहस्नानात्सप्तजन्माघो नश्यति कुष्ठस्य तु का कथा।।९१।। साऽपि तत्र त्र्यहस्नानाच्छुद्धा जाता। तत्र मठं निर्माय स्थित्वा मुक्ताऽभूत्।।९२।। ततो गुरुर्जम्बुद्वीपस्थाखिलतीर्थवत्पापघ्नं कोटितीर्थं दर्शयित्वाऽऽह।।९३।। अत्र क्रान्तिपर्वग्रहेषु स्नानदानजपादयो भाविकानां अक्षय्यानंतफलदाः।।९४।। गयावद्रुद्रपादाख्यमग्रतो दर्शयित्वाऽऽह गयोक्तवदत्रानुष्ठेयं तथात्र कृष्णाग्रे द्वारवतीसमं चक्रतीर्थं।।९५।। द्वारकातश्चतुर्गुणफलदं पतितोऽप्यत्र स्नानात्कृती भवत्यस्थि चक्रवच्च।।९६।। ग्रामप्राग्भागो गोकर्णवत्कल्लेश्वरोऽत्र महाबलेशवन्मन्मथाख्यं सिद्धिदं सागरवत्तीर्थं।।९७।। श्रावणे शिवेऽखण्डाभिषेकात्कार्तिके दीपोत्सवाच्च सिद्धिपूर्वकं श्रेय एव।।९८।। इति श्रुत्वा ते तथा चेरुरीदृक् क्षेत्रं विज्ञाय भगवान् तस्थौ। भक्तकामदोऽसौ म्लेच्छमुद्धृत्य तत्र साक्षात्स्थितोऽपि जन्मांधैः सूर्य इवाज्ञैर्न दृश्यते।।९९।।१००।।

।। इति चूर्णिकायां द्वाविंशोऽध्यायः।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नामधारक उवाच साधु साधु पावनं क्षेत्रमाहात्म्यमुक्तं यत्र जगन्निवासः।।१।। तत्र देवाद्यास्तीर्थानि च वसन्ति यत्र साक्षाद्भगवान्सोऽयं संगमः कृष्णापंचगङ्गासंगम इव।।२-३।। अत्र पश्वादयोऽपि स्नानपानादिना धन्याः नृणां धन्यत्वं तु किं वक्तव्यं।।४।। यन्माहात्म्यश्रवणात्पापक्षयस्तन्निवासिनां फलं को वदेत्।।५।। ये भक्तियुक्तास्तत्करे मुक्तिरास्ते मुक्तिं परिभाव्य भक्तिमेव सेवन्ते।।६।। पुरा मे मुक्त्यपेक्षा जातापि वृद्धाऽहैतुकभक्तियोगेन व्यपेता।।७।। अतो भगवतः कीर्तनादि रोचते विशेषतः श्राव्यतद्गुणश्रवणं।।८।। तवात्मापि देवेऽयं भगवच्चरितापूर्णोऽतो मे पावनं मंगलं भगवच्चरितं ब्रूहि।।९।। को म्लेच्छः हीनोऽपि स कथं भगवत्कृपापात्रभूर्जातः।।१०।। सिद्ध उवाच भगवत्प्रसादात्तवेदृशी मतिरतो धन्योऽस्यतो वक्तुमानंदोऽतीव वर्धते।।११।। यदा श्रीपादः कुरुपुरे प्रत्यक्षं स्थितः तदा कश्चिद्रजकः प्रत्यहं नत्यादिना भेजे।।१२।। कदाचित्तुष्टः श्रीपादस्तमाह रे भाविक साम्राज्यं कुर्विति।।१३।। स तुष्टः कदाचिद्युवतीयुतं क्रीडन्तं सबलं नृपं दृष्ट्वाऽमन्यत।।१४।। कोऽस्य गुरुः कुत इदं भाग्यं धन्यमस्य जीवितं कुतस्तरां मय्यस्य वार्तेति।।१५।। तज्ज्ञात्वा श्रीपाद आहाधुना वृद्धस्त्वं राज्यं भोक्तुं नार्हस्यत आगामिजन्मनि भुंक्ष्वेति।।१६।। भवदुक्तं मे मतं यूनो राज्यरसज्ञता राज्येऽपि ते स्मृतिरस्त्विति स ययाचे।।१७।। श्रीपादोऽपि तथेत्यूचे। स प्रेत्य वैडूर्यनगरे म्लेच्छजातीयः सार्वभौमोऽभूत्।।१८।। स प्राक्संस्कारात्स्वधर्मारुचिर्देवविप्रभक्तो धर्मज्ञः शुद्धात्मा सर्वभूतसमोऽभवत्।।१९।। तत्पुरोहितास्तमाहुः स्वधर्मं सेवय वर्णधर्मोऽयं मनसाऽप्यग्राह्यः।।२०।। मुखाद्यङ्गैर्देहसाम्ये कथं वर्णाश्रमः?अचेतनाश्मादौ अन्यत्राश्वत्थादौ वा कथं देवतेति।।२१।। राजा प्राहेदं बुद्धिमांद्यं ईश्वरेण गुणकर्मभिदा चातुर्वर्ण्यं सृष्टं देवस्तु सर्वगः।।२२।। यथा शिशोः स्थूलाक्षराल्लिपिज्ञानं तथा गुरूक्तेश्वरार्चाकल्पनया हृत्स्थैर्याद्बोध उद्भवेत्।।२३।। यथा मलिनेऽम्ब्वादौ प्रतिबिम्बं न दृश्यते, शुद्धे तु सम्यग्दृश्यते तथा समलेऽन्तःकरणे नेश्वरप्रतीतिर्ध्यानादिना तस्मिन्नेव शुद्धे सम्यक्प्रतीतिः।।२४।। तस्मात्स्वतःप्रमाणभूतवेदोक्तधर्मपरान्विप्रान्भक्त्या नमस्कुरुत ते देवानामपि देवाः।।२५।। वेदानुसारिस्मृत्युक्तधर्मानुसारी लोका अपि पूज्याः अतो द्वेषशंकां त्यजतेति।।२६।। ततः कियता कालेन राज्ञोऽङ्के स्फोटको जातस्तेनात्यंतं व्यथितः, प्रतिक्रिययाऽपि न शशाम।।२७।। यातनया त्यक्तभोजननिद्रो राजा विप्रमामंत्र्य विनयेन स्फोटकशमोपायं पप्रच्छ।।२८।। विप्र आह त्वं म्लेच्छोऽहं विप्रोऽतो जनश्रुतिभिया रहसि वक्तव्यं।।२९।। तथेत्युक्त्वा विप्रेण सह राजा पापनाशतीर्थमागतः। विप्र आह पूर्वार्जितदुष्कर्मयोगाद्रोगो भवति।।३०।। स च दानभेषजदेवसेवनाद्विशेषतः सर्वाघहरणक्षमसाधुदृष्ट्या च नश्यति।।३१।। पूर्वमु-

दि गं ब रा दि गं ब रा श्री पा द व ल्ल भ दि गं ब रा

ज्जयिन्यां त्यक्तकर्मा कश्चिद्विप्रः पिङ्गलाख्यवेश्यासक्तोऽभूत्।।३२।। तत्पूर्वपुण्यप्रभावात्तत्र ऋषभयोगी प्राप्तस्तं तौ प्रेम्णा सेवयामासतुः।।३३।। तं संपूज्य स्तुत्वा तत्पादतीर्थं पीत्वा भोजयित्वा पर्यङ्के शाययित्वा तौ प्राञ्जली स्थितौ।।३४।।मुनिः प्रातरुत्थायागात्। तेन पुण्येन तौ प्रेत्यामले राजकुले जातौ। दशार्णेशस्य वज्रबाहोर्महिष्या उदरे स विप्रो जातः। तत्सपत्नी तद्द्वेषाद्गर्भिण्यै गरलं ददौ। तेन विद्धाऽपि न मृता दैवात्सा सुषुवे सुतं। बालोऽपि विषविद्ध उभौ व्रणार्तौ जातौ।।३५-३६-३७।। नानोपायैस्तदार्तिर्न शशाम। उभौ निराहारौ क्रंदमानौ क्षीणौ बभूवतुः।।३८।। एकदा पूतिगंधित्रस्तो राजा सूतमाज्ञाप्य तौ कानने प्रस्थापयामास।।३९।। सूतो घोरेऽरण्ये तौ त्यक्त्वाऽकथयत्। तदा हृष्टो राजा हृष्टयाऽन्यभोगिन्या रेमे।।४०।। घोरसत्त्वे वने व्रणकर्शिता राज्ञी कण्टकोपलादीना त्रस्ताऽभूत्।।४१।। सबाला सा प्राह हे दैवालं कष्टेन बालेन सह हिंस्रैर्मां खादय दुःखाच्च मोचय।।४२।। एवं विलपन्ती साऽग्रे गाः प्रेक्ष्य गत्वा गोपान्प्राह मम प्राणास्तृषोत्क्रामन्तीति।।४३।। ते तामाहुः समीपमिदं जलं मंदं व्रजेति। तथेति सा सरो गत्वाऽऽपः पीत्वा तत्स्थस्त्रियः प्राह कोऽत्र राजाऽत्र प्रजा हृष्टा भांतीति। ता आहुः पद्माकरः साधुवैश्योऽत्र कृती राजेति।।४४-४५।। अत्रांतरे दास्य आगतास्ताभिः सह पुरं गता सा सर्वं राज्ञे शशंस। स दयालुस्तां ररक्ष। ततः सुतोऽल्पकालेन व्रणत्रस्तो ममार।।४६।।४७।। राज्ञी प्रेतमाह शोकार्णवे दीनां मां त्यक्त्वा क्व यास्यसि? त्वत्कृते मया भुक्तं कष्टं न स्मरसि किं? त्वदर्थे भर्तृमात्रादयोऽन्तरिताः तथापि मया त्वां दृष्ट्वा दुःखं विस्मृतं। त्वं मे जीवस्त्वयि यातेऽहं मरिष्ये।।४८-४९-५०।। इति तद्रुदितं श्रुत्वा गच्छन्नृषभो मुनिर्विशं प्राप्य सर्वं ज्ञात्वा ता प्राप्य कृपयाऽऽह।।५१।। हे राज्ञि कुतो रोदिषि? इदं जगन्मायामयं असत्यं भौतिके नश्वरे देहे कुतः पुत्रादिकल्पना।।५२।। यथा कीटः कण्टककुटीरेण यावदायुश्चेष्टते तथाऽवशो जीवः पूर्वोपार्जितदेहेन यावदारब्धं चेष्टते।।५३।। कालकर्मगुणोत्पन्नोऽयं जीवस्तु चिदंशः सर्वगो न संबंधलिङ्गभाक् अनादित्वाद्देहस्त्वाद्यंतवान्जगुः।।५४।। अनयोर्मध्ये न कोऽपि शोकविषयोऽतः सात्त्विकीं धृतिं धृत्वा प्रारब्धमश्नन्ती यावदायुः परेश्वरं भजेति।।५५।। इत्युक्त्वा स विरराम। साऽज्ञानविक्लवा प्रणम्याह।।५६।। कारुण्याद्भवतोक्तं तत्त्वज्ञानोपहतायां मयि कथं तिष्ठेत्।।५७।। येन मे मनः सुप्रसन्नं भवेत्तद्विधीयतां दुःखदशायामपि मह्यं भवानीश्वरेण प्रहितः।।५८।। कारुणिको मुनिस्तच्छ्रुत्वा बालं स्वसेवकं ज्ञात्वा प्रससाद। साधवो हि नत्या फलन्ति।।५९।। तपस्वी साक्षाच्छंभुरिव स शिशवे भस्म चिक्षेप तदा स सुप्तोत्थितवदुत्तस्थौ।।६०।। तस्मै खड्गं शिवकवचं द्वादशसहस्रनागबलं च दत्वाऽयं भद्रायू राजशास्ताऽजेयो भवेदिति मुनिस्तमाह। तदा माता सुतश्च दिव्याङ्गौ बभूवतुः। हे राजनेतावान्साधुमहिमाऽतःसाधुमेव शरणं व्रज।।६१-६२-६३।। राजोवाच सन्माहात्म्यं साधूक्तं। ईदृक्साधुः क्वास्ते तन्मे कथय। कथं म्लेच्छाय कथनीयमिति न मन्तव्यं यस्माच्छुद्धधीरहं विप्रदासः।।६४-६५।। विप्र उवाच भीमामरजासं-

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

गमे साक्षादीश्वर इव कश्चित्साधुरास्त इति श्रुतं त शरणं व्रजेति।।६६।। तच्छ्रुत्वा राजा सत्वरं राष्ट्रमेत्य शिबिकारूढः ससैन्यः साधुसंदर्शनाय ययौ।।६७।। स गंधर्वपुरमेत्य पौरान्यप्रच्छात्र साधुः क्वास्ते तं मे दर्शयन्तु भवन्त इति।।६८।। म्लेच्छान्दृष्ट्वा भीतास्ते नोचुः। पुनराह राजा तद्दर्शनायागतोऽस्मि स क्वास्ते कथ्यतामिति।।६९।। तदा ते आहुः संगमेऽस्तीति। तच्छ्रुत्वा स पादचारी संगमं गत्वा।।७०।। गुरुं ददर्श। गुरुरपि तं दृष्ट्वा प्राह रे रजकानुग क्व तिष्ठसीह कुतो नागत इति। तदा लब्धस्मृतिः स आह।।७१।। त्वद्दत्तराज्यसक्तेन मया तव पादौ विस्मृतौ योऽहं पूर्वरजकः स इदानीं राजेयं भवत्कृपा! हे सत्यसंकल्प, हे कृष्णाविहारे श्रीपाद तेऽनुगं प्रणतं रजकं मां पाहि। स्फोटकार्तिनिमित्तेन ते दर्शनं जातं विस्मृताऽपि संविदद्यैव लब्धा।।७२-७५।। क्व स्फोटको दर्शयेति गुरुणोक्तोऽङ्के संतमपि स्फोटकमदृष्ट्वा चकित आह।।७६।। स्वामिन्तेऽनुगोऽयं स्फोटकोऽन्यायवर्तिनं दंड्यं मामानीयान्यत्र गत इति मन्ये।।७७।। तव जाग्रत्सु वाक्येषु दुःखदोषपरिप्लुतेऽसारे संसारे मग्नं मामुद्धर।।७८।। श्रीगुरुरुवाच भोगैस्तृप्तोऽसि किं? राज्यं भुक्तं पुत्रादयो लब्धाः का वाऽपेक्षाऽवशिष्टा हे म्लेच्छ सत्यं वदेति।।७९।। स प्राह भवत्कृपया सर्वं परिपूर्णं भवद्दत्ताखिला श्रीर्भगवते दर्शनीयेत्यपेक्षितं।।८०।। श्रीगुरुरुवाच गोघ्ने राज्ये यतेर्मम गमनं कथं? मां वर्णास्त्वां च म्लेच्छा हसिष्यन्ति।।८१।। राजोवाच अहं रजको भवांश्छ्रीपादश्च इतः परं पुरे न हिंसेत्युक्त्वा गुरुं नेतुकामो नमन्नस्तुवत्।।८२।। गुरुः प्राह भक्तवात्सल्यान्मद्भक्ता नोपेक्ष्या अतस्तुष्ट आयास्ये।।८३।। स तच्छ्रुत्वा प्रतीतो गुरुं शिबिकायामुपवेश्य शिष्येभ्यश्च वाहान्दत्वा तत्पादुके गृहीत्वा पादचारेणान्वगात्।।८४-८५।। तं प्रभुराहेतो दूरं गन्तव्यमतो राज्ञस्तेऽदो न श्लाघ्यं।।८६।। स प्राह को राजाऽहं तु तेऽनुगो रजकस्त्वन्न्यस्तभूभारत्वदाज्ञावशवर्ती।।८६।। श्रीगुरुरुवाच दिक्पालांशैस्ते राट्त्वं दत्तं तेन त्वं सत्कार्योऽसि हे राजन् ममाज्ञयाऽश्वमारुह्य व्रजेति।।८८।। ततः सोऽश्वमारूढः। भगवान् तमाह गत्यानया क्रियालोपो भवेदतोऽग्रे व्रजामि।।८९।। त्वं मंदं पापनाशतीर्थमेहि इत्युक्त्वा क्षणार्धेन चतुश्चत्वारिंशत्क्रोशमपि तत्प्राप।।९०।। सशिष्यं तीर्थे सांध्यं कर्म कुर्वाणं तं दृष्ट्वा चकोरश्चंद्र इव हृष्टो नागनाथः सायंदेवसुतस्तं सादरं प्रार्थ्य गृहं नीत्वा भोजयामास।।९१-९२।। सशिष्यः स भुक्त्वा तमाहात्र म्लेच्छो राजा आगमिष्यत्यतोऽस्माभिस्तीर्थे स्थेयं।।९३।। इत्युक्त्वा तीर्थं गतो राजाऽपि तदागत्य पादचारी गुरुं स्वपुरं निन्ये।।९४।। अलङ्कृतं रत्नतोरणपताकादिभूषितं गीतवाद्यजयशब्दसंकुलं पुरं शिबिकास्थो भगवान्रत्नदीपैर्नीराजितो विवेश।।९५-९६।। पट्टकूलाच्छादितमार्गेणांतःपुरं गुरुं नीत्वा तस्मै महिषीपुत्रादिभ्यो दर्शयामास।।९७।। गुरुं भद्रासने शिष्यांस्तदनुगुणपीठे चोपवेश्य नृत्याद्यकारयत् छत्रचामरमालिने गुरवे च प्रकृतीर्दर्शयामास।।९८-९९।। म्लेच्छास्तं धिक्चक्रुर्द्विजाः पुण्यश्लोकोऽयमिति प्रशशंसुः।।१००।। गुरुराह रे दास ते प्रकृतीर्दृष्ट्वा हृष्टोऽस्मि ते बुद्धिरलं जाता वा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपादवल्लभ दिगंबरा

न वा वद।।१।। स आहाभिर्न तुष्टोऽतः परमं भवत्पदसेवनं कांक्षे तद्दुरापमपि मे देहि।।२।। अद्य भवते सर्वस्वात्मनिवेदनं कुर्वे इत्युक्त्वा तथा चकार।।३।। श्रीगुरुरुवाच त्वया साधु कृतं। अनेन तुष्टस्ते शुद्धभावाय कांक्षितं दास्ये।।४।। इत्युक्त्वा यूने तज्ज्येष्ठपुत्राय विनीताय भूधुरं दापयित्वा गुरुस्तमाह।।५।। सर्वं परित्यज्य श्रीपर्वतं गच्छाहमपि शिष्यादीनाश्वास्यागमिष्यामि। तत्र मद्दर्शनात्त्वं कृतार्थो भविष्यसि।।६।। इत्युक्त्वा शिष्यैः सह गौतमीं गत्वा स्नात्वा भीमामरजासंगमं प्राप्तः।।७।। तं दृष्ट्वा हृष्टाः सर्वे नीराज्य ब्राह्मणभोजनं चक्रुः।।८।। भक्तिः प्रसृता म्लेच्छा अपि भजन्त्यतोऽत्र घोरे कलौ साक्षान्न स्थेयमिति गुरुरमंस्त।।९।। ततः श्रीशैलं गत्वा सर्वस्वात्मार्पणेन तुष्टः भगवान् म्लेच्छायापि सद्गतिं दत्वा मठमेत्य।।१०।। भक्तकामधेनुस्तत्र तस्थौ। स तत्र सतां गोचरो नानार्याणां जन्मांधानां भास्कर इव।।११।। कृष्णापंचनद्यां प्राप्तः स्नात्वाऽत्र संगमे मध्याह्निकं कृत्वा मठे भिक्षां भुक्त्वा तिष्ठति।।१२।। तत्र विविधा लीला दर्शिता दर्शयति दर्शयिष्यति च तस्य दुर्ग्रहं प्रभावं को वेत्ति।।१३।। यो यो यस्य कामः स तद्भजनात्सिद्धिमेति यतोऽसौ भक्तिभावनो भजतोऽनुभजति।।१४।। कलौ भगवत्कला प्रायो न जागरूका यस्मात्सा-क्षात्फलदं तं भगवंतं भजेति।।१५।। एवं सिद्धोक्तं श्रुत्वा श्रद्धयाऽसंशयं गुरुमभ्यर्च्य नामधारको गुणानुवादश्रवणान्मोक्षं प्राप।।१६।। तत्संवादमयं धर्म्यं ग्रंथं गुरुचरित्राख्यं गंगाधरात्मजो व्यरचयत्।।१७।। यत्र क्वापि स्थापितः प्रेतभूतरक्षोमुख्यासद्ग्र-हार्तिघ्न एषः। सप्ताहं तत्पाठिने शृण्वतेऽपि दत्तात्रेयोऽभीष्टकामान्ददाति।।१८।। स एवात्रेयगोत्रोत्थगणेशपुत्रब्रह्मगां। पुनानोर्थ्यो जयत्यत्र ग्रंथात्मा तारकोऽव्ययः।।१९।। ॐ नमो भगवन् विश्वहेतो ब्रह्मेडिताज ते मालीनो विश्वभृल्लीलाविहार्यस्यार्यभाव-नः।।२०।।

।। इति चूर्णिका समाप्ता।।

।।श्रीगुरुदेव दत्त।।

दिगंबरा दिगंबरा श्रीपाद वल्लभ दिगंबरा